प्रकाशक :
रामजी गुप्त,
प्रामाणिक प्रकाशन,
३५, लाजपत कुंज,
सिविल लाइन्स, आगरा

प्रथम संस्करण, मई, १९६७
११०० प्रतियाँ
मूल्य : २० रुपये

मुद्रक :
दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स
रैली नं० २, आगरा

हकार् · आकार्य—पुकारना १०४ ७। हकार हक्कार आकार—पुकार ८६ ३। हटतार हट्ट+ताल—हाटो मे ताला लगाने की स्थिति ६२ १। हर गृह—घर ३५४ ७ (दे० पद्मावत ३७८.६)। हरि हडि—[काष्ठ की] वेड़ी ७४ ३। हरुव हलुक लघु+क—हल्का २३३ २। हाडी भाण्ड+इका—पात्र-विशेष १५२ ६। हास हस १४६.१। हार्—थकना २७६ ४। हिर्—हिलना १६६ ४, ३३६ ४। हिरि ह्री—लज्जित होना ११८ ७। हिरगाना—हिलग करना, पास लाना २४२ ४। हिलोर : हिल्लोल—बडी लहर २४५ २। हीड्—चलना-फिरना २५ ६। हुल्हस् उल्लस् उल्लसित होना १ ७। हेठ हेट्ठ अधस् (?)—नीचे का भाग २१२.७।

प्रस्तावना

'चादायन' की फारसी-अरवी मे लिखी हुई कतिपय खंडित प्रतियो मे विखरे हुए ८० कडवको को नागरी मे लिपिबद्ध कर प्रस्तुत करने का प्रथम प्रयास अव से सात-आठ वर्ष पूर्व इन पक्तियो के लेखक ने किया था। इसके अनतर क० मु० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ के तत्कालीन निदेशक डॉ० विश्वनाथ प्रसाद ने फारसी मे लिपिवद्ध भोपाल की एक प्रति के कडवको को, जो प्रिंस ऑव वेल्स म्यूजियम वंबई मे थी, नागरी मे लिपिवद्ध किया था। ये दोनो प्रयास एक ही जिल्द मे उक्त विद्यापीठ द्वारा १९६२ मे 'चदायन' नाम से प्रकाशित हुए थे। तीन वर्षो के लगभग हुए डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त ने जॉन राइलैण्डस लाइब्रैरी, मैनचेस्टर की एक प्राचीन प्रति, तथा अन्य कुछ नवीन सपादन-सामग्री के साथ उक्त प्रतियो का भी उपयोग करते हुए, जो मेरे और डॉ० विश्वनाथ प्रसाद द्वारा प्रस्तुत किए हुए पाठो मे प्रयुक्त हो चुकी थी, 'चदायन' नाम से रचना का एक पूर्णतर पाठ प्रस्तुत किया। इन प्रयासो ने हिंदी सूफी प्रेमाख्यान परपरा की प्रथम रचना के सबध मे जहाँ विचारणीय सामग्री प्रस्तुत की, वहाँ रचना के एक ऐसे आलोचनात्मक सस्करण के अभाव की ओर भी निर्देश किया जिसको रचना और उसकी परपरा के अध्ययन के लिए एक अधिक निश्चयपूर्ण आधार वनाया जा सकता। प्रस्तुत प्रयास इसी लक्ष्य को सामने रखते हुए किया गया है।

ऊपर उल्लिखित प्रतियो के अतिरिक्त और उन सव की अपेक्षा पूर्णतर रचना की एक प्रति जयपुर के एक साहित्य-सेवी श्री रावत सारस्वत के पास थी और यह प्रति नागरी मे थी, जवकि शेप समस्त प्रतियाँ फारसी-अरवी लिपियो मे थी। लगभग छ मास हुए इसी पाठ-शोध के प्रसग मे मैने श्री सारस्वत को रचना के एक कडवक का पाठ अपनी प्रति से भेजने को लिखा, तो उन्होने न केवल उसका पाठ मुझे भेजा, वल्कि मेरी पाठ-शोध-निष्ठा को देखकर उन्होने लिखा कि यदि मै रचना का आलोचनात्मक पाठ-सपादन करने को प्रस्तुत हूँ तो वे उक्त प्रति को दे सकते थे और तदनतर उन्होने उक्त प्रति विद्यापीठ को दे भी दी।

इस अतिम प्रति के उपयोग के लिए मैं आगरा विश्वविद्यालय के विद्यानुरागी कुलपति, जिसका उक्त विद्यापीठ एक अभिन्न अग है, डॉ० श्री रन्जन जी

का हृदय से आभारी हूँ, जिन्होने प्रस्तुत कार्य के लिए उक्त प्रति के उपयोग की अनुमति दी। शेष प्रतियो मे से कुछ के फोटोग्राफ का उपयोग मैं अपने पहले के प्रकाशित कार्य मे कर चुका था, प्रिंस ऑव वेल्स म्यूजियम मे सुरक्षित भोपाल की त्रुटित प्रति के फोटोग्राफ जो डॉ० विश्वनाथ प्रसाद द्वारा प्रस्तुत किए हुए रचना के पूर्वोल्लिखित सकलन मे प्रयुक्त हो चुके थे, विद्यापीठ मे सुरक्षित थे, राइलैण्ड्स पुस्तकालय मैनचेस्टर की प्रति के फोटोग्राफ राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के पुस्तकालय मे मुझे उस समय मिल गए थे जब मैं चार वर्ष पूर्व वहाँ पर था, मसाचसेट्स के होफर-सग्रह के दो पृष्ठो के अक्स 'मध्ययुगीन' हिंदी प्रेमाख्यान के लेखक और मेरे प्रिय शिष्य डॉ० श्याममनोहर पाण्डेय ने दो-ढाई वर्ष पूर्व भिजवाए थे, जब वे शिकागो विश्वविद्यालय मे अमेरिका मे थे। इन अन्य सामग्रियो के भी स्वामियो और उपयोग-सूत्रो का मैं हृदय से आभारी हूँ।

मुदर छपाई के लिए मैं स्थानीय दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स, और विशेष रूप से उसके व्यवस्थापक श्री पुरुषोत्तमदास भार्गव को धन्यवाद देता हूँ जिन्होने बडी तत्परता के साथ पुस्तक छापी है। कुछ भूलें रह गई हैं, जो पुस्तक के अन्त मे शुद्धि-पत्र मे दी हुई है। पाठक कृपया इन्हे शुद्ध कर पढेंगे।

प्रस्तुत प्रयास भी उसी परपरा मे है जिसमे लेखक के अधिकतर पूर्ववर्ती प्रयास है—रचना के निर्धारित पाठ को देते हुए सदर्भ, शीर्षक, पाठ-टिप्पणियाँ, पाठातर, अर्थ और शब्द-कोश देने के अतिरिक्त भूमिका मे रचना से सबधित समस्त समस्याओ पर एक मौलिक प्रकाश डालने का यत्न किया गया है। इस प्रयास मे स्वीकृत पाठो के उन अशो को जिनके पाठान्तर दिए गए हैं अको से चिह्नित करने के स्थान पर उलटे कामो से चिह्नित किया गया है, जिससे इस भ्रम की सभावना न रहे कि पाठातर स्वीकृत पाठ के किन अशो के हैं। आशा है कि इस नवीनता से पाठको को यथेष्ट सुविधा होगी।

आगरा
८-५-६७

माताप्रसाद गुप्त

विषय-सूची

प्रियवर

राम तथा श्याम

को

सस्नेह

भूमिका

१ दाऊद और उनके समसामयिक

रचना मे दाऊद ने अपने विपय मे वहुत कम लिखा है। उन्होने रचना की तिथि सन् ७८१ दी है,[१] जो विक्रमीय स० १४३६ के वरावर होती है, इसलिए कदाचित् स० १४०० के आस-पास उनका जन्म और स० १४७५ के आस-पास उनका निधन माना जा सकता है। रचना का स्थान उन्होने दलमौ (डलमऊ) नगर वताया है, जो गगा-तट पर स्थिति था।[२] यह नगर उत्तरप्रदेश के रायवरेली जिले मे अव भी है और एक अच्छा कस्वा है। यहाँ के मीर उनके समय मे मलिक वया के पुत्र मलिक मुवारक थे, जैसा कि दाऊद ने लिखा है।[3]

रचना के प्रारभ मे दाऊद ने पाँच कडवको मे खानेजहाँ की प्रशसा की है[४], और उसे 'सयाना मत्री' कहा है।[५] साथ ही उन्होने शाहे-वक्त के रूप मे फीरोजशाह की प्रशसा की है।[६] इतिहास के अनुसार खानेजहाँ फीरोजशाह का वजीर था, जिसका देहान्त ७७२ हि० मे हो गया था, और जिस समय दाऊद ने प्रस्तुत काव्य की रचना की, उसका वजीर खानेजहाँ का पुत्र जौना शाह या जूना शाह था।[७] दाऊद ने भी वजीर के रूप मे जौना शाह का उल्लेख किया है।[८] 'खानेजहाँ' एक उपाधि थी, जो कि सभव है जौना शाह को भी दी गई हो, इसलिए इन उल्लेखो मे परस्पर कोई विरोध नही ज्ञात होता है। इन खानेजहाँ को दाऊद ने 'खाँद' (खाविन्द-फा०) लिखा है—

'खाँद' खान जी(वि ?) ना और गुनी को आहि।

'खाँद' पान गै दान दिवावै।[९]

'खाविन्द' 'स्वामी' का फारसी पर्याय है, इसलिए यह निश्चित है कि दाऊद खानेजहा के आश्रित थे। यद्यपि दाऊद ने लिखा नही है, किन्तु यह अनुमान

---

१ कडवक १७। २ वही। 3 वही। ४ कडवक १०-१४। ५ कडवक १०। ६ कडवक ८। ७ 'मुतखिवुत्तवारीख' से श्री एस० एच० अस्करी के 'रेयर फ्रैगमेट्स आफ् चदायन ऐंड मृगावती' शीर्षक लेख मे पृ० ७ पर उद्धृत। ८ कडवक १७। ९ क्रमश. कडवक १० तथा ११।

किया जा सकता है कि प्रस्तुत काव्य की रचना उन्होने खानेजहाँ के अनुरोध पर की होगी।

दाऊद 'मौलाना' कहलाते थे [जिस का अर्थ विद्वान् होता है यह अलवदायूनी के उनके सबध के एक उल्लेख से ज्ञात होता है।[10] रचना के एक कडवक मे जहाँ 'दाऊद' का नाम आता है, उसके एक पाठ मे 'मौलाना' उपाधि जुडी हुई है।[11] यह उपाधि स्वत कवि ने अपने नाम के साथ न रक्खी होगी, यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है, किन्तु इससे इस वात का समर्थन होता है कि दाऊद को 'मौलाना' की उपाधि प्राप्त थी, और वे 'मौलाना' के रूप मे प्रसिद्ध भी थे। हिन्दी के कुछ इतिहास-लेखको ने उन्हे 'मुल्ला' कहा है, जो अशुद्ध है।

एक 'मौलानाज़ादा' दाऊद का उल्लेख इतिहास-ग्रथो मे मिलता है, जिन्होने सुल्तान मुहम्मद तुगलक के देहावसान के अनतर उसके उस वजीर ख्वाजाजहा की ओर से दूतत्व किया था, जिसने किसी को मुहम्मद तुगलक का पुत्र कहकर दिल्ली की गद्दी पर विठा दिया था। कहा गया है कि तीन अन्य व्यक्तियो के साथ इन 'मौलानाज़ादा' को भी उसने फीरोज़शाह की सेवा मे यह समझाने-बुझाने के लिए भेजा था कि वह दिल्ली की ओर न बढे, किन्तु उसने ख्वाजाजहा का यह अनुरोध स्वीकार नही किया और उक्त 'मौलानाजादा' के द्वारा उत्तर भेजा कि जिस व्यक्ति को उसने दिल्ली के तख्त पर बिठाया था, वह मुहम्मद तुगलक का पुत्र नही था, इसलिए उसे मुहम्मद तुगलक का वैध उत्तराधिकारी वह नही स्वीकार सकता था, और इसके इसके पश्चात् उसने आगे बढकर दिल्ली के सिहासन पर अधिकार भी कर लिया था। ('तारीखे फीरोज़शाही', पृ० १११, तथा 'तारीखे मुवारकशाही' पृ० १२१)। किंतु यह मानने के लिए पर्याप्त कारण नही दिखाई पडता है कि उक्त 'मौलाना-ज़ादा' दाऊद और 'चदायन' के रचयिता दाऊद, जो अपनी विद्वत्ता के कारण 'मौलाना' कहलाते थे, एक ही व्यक्ति थे। यदि हमारे दाऊद ख्वाजाजहा के विश्वास और प्रीतिपात्र रहे होते, जैसे वे इन उल्लेखो मे वताए गए है, तो वे किसी न किसी रूप मे इसका उल्लेख अवश्य करते। मेरी समझ से दोनो व्यक्ति एक-दूसरे से भिन्न थे।

दाऊद ने अपने गुरु का नाम जैनुद्दीन वताया है और रचना के प्रारम्भ मे

[10] दे० 'मुतख़िबुतवारीख़' का ऊपर उद्धृत सन्दर्भ। [11] कडवक ३२९।

उनकी भी स्तुति की है।[१२] किन्तु इन जैनुद्दीन के सबध मे और कोई जानकारी उन्होने नही दी है और न अन्यत्र से प्राप्त हो सकी है।

रचना मे दाऊद ने तीन स्थानो पर तीन विभिन्न व्यक्तियो को सबोधन भी किया है—ये है मुहम्मद, सिराजुद्दीन तथा मलिक नत्थन।[१३] इनके सबध मे कोई जानकारी न हमे दाऊद की रचना से मिलती है और न इतिहास से। एक मीर मसूद (मसऊद) को भी उनका समसामयिक माना गया है, किन्तु वह अशुद्ध है, वह 'मेरड सूधि' का अपपाठ मात्र है।[१४]

२ रचना-काल और स्थान

मौलाना दाऊद के समय के सम्बन्ध मे कुछ विवाद रहा है, किन्तु अल्बदायूनी के एक उल्लेख से उसका समाधान हो जाता है। 'मुतखिबुत्तवारीख' मे उसने लिखा है—'सन् ७७२ हि० (१३७० इस्वी) मे खानेजहा, जो फीरोजशाह का प्रधान मत्री था, मर गया और उसका लडका जूना शाह (या जौना शाह) उसके पद पर नियुक्त हुआ। 'चदायन' जो हिन्दी की एक मसनवी है और लोरिक तथा चादा के प्रेम का वर्णन करती है, उसके लिए मौलाना दाऊद द्वारा रची गई थी। यह इन भूभागो मे इतनी अधिक प्रख्यात है कि इसकी प्रशसा करना अनावश्यक होगा। मखदूम शेख तकीउद्दीन वाइज रब्बानी ने एक अवसर पर इससे कुछ अश पढ कर सुनाए, तो इसे सुनकर लोगो को एक अद्भुत आनद प्राप्त हुआ। जब उस युग के कुछ विद्वानो ने शेख से मसनवी को इस प्रकार महत्व देने का कारण पूछा, तो उन्होने उत्तर दिया कि यह पूरी रचना ईश्वरीय सत्य तथा सकेतो से भरी हुई थी, रोचक थी, ईश्वर-प्रेमियो और उपासको को आनदपूर्ण चिन्तन की सामग्री प्रदान करती थी, 'कुरान' की कुछ आयतो का मर्म स्पष्ट करने मे उपयोगी थी और भारत के मधुर गीतो की परिचायिका थी।[१५]

कुछ समय हुआ, श्री अगरचद नाहटा ने 'मिश्रबधु विनोद' की कुछ भूलो की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखा था कि मौलाना दाऊद की इस रचना की तिथि ७८१ हि० है जो १४३१ वि० होती है, ओर यह लिखते हुए उन्होने उसकी एक प्रति से कुछ पक्तिया भी उद्धृत की थी।[१६] यह प्रति कदाचित् बी० थी, जिसके अनुसार सबधित पक्तिया निम्नलिखित है —

---

[१२] कडवक ९। [१३] क्रमशः कडवक ७५, २६५ तथा ३२९। [१४] कडवक २६५। [१५] एस० एच० अस्करी : 'रेयर फ्रैगमेन्ट्स ऑव चंदायन ऐंड मृगावती' पृ० ७ पर उद्धृत। [१६] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५४, अक १, पृ० ४२।

वरस सातै(त) सै होये इक्यासी ।
तिहि या(य)ह कवि सरसे(स) उभासी ।।
साहि पेरोज ढीली सुलतानू ।
जोना साहि इजीरु(उजीरु) बखानू ।।
दलमौ (डलमउ) नयरु बसै नवरगा ।
उपरि कोटु तले बहै गगा ।।[१७]

अलबदायूनी के ऊपर उद्धृत विवरण से इस तिथि का मेल पूरा बैठता है, इसलिए इसमे कोई सन्देह अब शेष नही है कि मौलाना दाऊद की उपर्युक्त रचना सन् ७८१ हि० की है । किन्तु ७८१ हि०=१४३६ वि० है ।[१८] रचना का स्थान भी निर्विवाद रूप से डलमऊ है, जो अब उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले मे स्थिति है, जहाँ पर कवि निवास करता था, जो रचना मे वहा के मीर मलिक मुबारक की विस्तृत प्रशसा से प्रकट है ।[१९]

३. रचना का नाम-रूप

एक कडवक जो रचना के 'विसहर खण्ड' के अत मे आता है, और जिसमे रचना के नाम का उल्लेख हुआ लगता है, इस प्रकार है—

'दाऊद कवि चादायनि(न?) गाई' । जेइ र (रे) सुना सो गा मुरुझाई ।
धनि ते बोल धनि लेखनहारा । धनि ते अखिर धनि अरथु विचारा ।
हरदी जात सो चांदा रानी । साप डसी हउ सोइ बखानी ।
'तउ र(रे) कहा मइ यहु खडु गावउ' । 'कथा कावि' कइ लोग सुनावउ ।
नथन मलिक दुख बात उभागी । सुनहु कान दइ बहु गुनयारी ।
अउर केत मइ करउ वीनती सीसु नाइ कर जोरि ।
इकइक सुनि मुनि बोलु विचारी कहौ जो ह्रिदो(हिरदौ) तौरि ।।[२०]

इस कडवक के प्रथम चरण का ऊपर दिया हुआ पाठ वी० प्रति का है, मै० का उसका पाठ है—'मौलाना दाऊद यह कवि गाई' और म० का है—'दाउद कवि जउ चादा गाई' । प्रथम चरण का मै० का पाठ पूर्ण रूप से स्वीकार्य नही है, क्योकि दाऊद स्वत अपने को 'मौलाना' नही लिख सकते थे, शेष दो विचारणीय है ।

अवधी की सूफी प्रेमाख्यान परपरा मे काव्यो का नाम प्राय नायिका के नामो से अभिन्न है—'मृगावती', 'पदुमावती', 'मधुमालती' आदि नामो से

[१७] कडवक १७ । [१८] देखिए—स्वामी कन्नू पिल्लई : इडियन एफिमिरस । [१९] कडवक १५-१६ । [२०] कडवक ३२९ ।

यह प्रकट है। प्रस्तुत रचना की नायिका 'चाद' है, जिसका नाम छद की आवश्यकताओ के कारण 'चादा' भी मिलता है। इसलिए रचना का नाम 'चाद' या 'चादा' हो ही सकता है। साथ ही कवि ने अपनी रचना को 'कथा काव्य' कहा है—'कथा कावि कइ लोक सुनावउ', इसलिए रचना का पूरा नाम 'चाद-कथा' रहा हो तो भी आश्चर्य न होगा। किन्तु इस प्रसग मे एक तथ्य और भी विचारणीय है। जैसा हम इसी शीर्षक मे आगे देखेगे, रचना सभवत २७ खडो मे विभक्त थी, और चंद्र की स्थितियो के नक्षत्र भी भारतीय ज्योतिप के अनुसार २७ है, साथ ही नायिका को आकाश के चन्द्र का अवतार कहा गया है, और इस प्रकार की उक्तियो का भी प्रयोग रचना मे हुआ है जिनमे नायिका आकाश के चाद के रूप मे प्रस्तुत की गई है, और नक्षत्रो के प्रसग मे 'अयन' का अर्थ उनका वृत्त या मार्ग होता हे, इसलिए 'चादायन' या 'चदायन' नाम भी काफी सभव लगता है।

वी० पाठ मे 'चादायन' के स्थान पर जो 'चादायनि' मिलता है, वह उसकी एक विशिष्ट प्रकृति के कारण भी हो सकता है इस पाठ मे कही-कही पर अकारान्त एक० पु० के स्थान पर इकारान्त कर्त्ता-कर्म कारको के चिह्न के रूप मे भी प्रयुक्त हुआ है। अपभ्रश और पुरानी हिन्दी की भाति इकारान्त प्रस्तुत रचना मे भी प्राय. अकारान्त एक० पु० सज्ञाओ के करण-अधिकरण कारको के चिह्न के रूप मे ही मिलता है, किन्तु वी० पाठ मे वह कही-कही पर कर्त्ता-कर्म कारको के चिह्न के रूप मे भी प्रयुक्त हुआ है' जो नीचे दिए हुए वी० के पाठातरो पर दृष्टि डाल कर स्वत देखा जा सकता है—

कर्त्ता 'महरि' दीत वावन कह चादा (३९ ७), जहा 'महरि' पटसारि सवारी (४१ १), मैं न अकेले सव 'जगि' देपा (६६ ५), उलटि 'समदि' जनौ मानिक रहे (६८ ४), 'महरि' मदिर चढि देपा (९२ ६), राय 'महरि' घरि आपनु साजा (१०२.१), भाटि कहा तव राइ स्यो (१०४ ६), 'महरि' काढि केकान पलाने (११८ १), सुना 'सियारि' पितर पख आवा (१२० ५), रेवत 'महरि' दीन्ह यकतारी (१२६ १), 'महरि' देपि तौ लोरु वुलावा (१२८ १), लोरिन्हु 'महरि' पाट् वैसारा (१५१ १), 'वीरि' भुआ वरि वरहु फिरावा (१६१ १), परतिहार 'भरि' वैठ दुवारू (३६४ ५), वि(वी)रह 'विपरि' आसिका औधारी (३६६ २), मैना सवद्दु जु 'विपरि' सुनावा (३७० १), सुना 'लोरि' हिय गहवरि आवा (३७० १)।

कर्म बहुरि यही 'षडि' गाउ (६४ ६), राय महरि 'घरि' आपनु साजा (१०२ १), चलहु वेगि 'घरि' जाहि (१६९ ६)।

प्रति की पुष्पिका मे रचना का नाम 'कथा चादायन' आता भी है (दे० आगे 'रचना की सपादन-सामग्री' शीर्षक के अन्तर्गत दिया हुआ बी० प्रति का परिचय), इससे भी इसी की पुष्टि होती है।

'चादायनि' को स्त्री० वाची रूप मानकर उसे नायिका तथा उसके आधार पर रचना दोनो के नामो के रूप मे भी ग्रहण किया जा सकता है, जिस प्रकार उसके कुछ लोक-गाथा रूपो मे हुआ है। इस दशा मे शब्द 'चान्द्रायणिका' से व्युत्पन्न होगा, जिसका अर्थ होता है 'चन्द्रायण व्रत करने वाली स्त्री'। यद्यपि कथा मे इस नाम के लिए कोई आधार नही मिला है, किन्तु नामकरण कभी-कभी विना आधारो के भी हो जाता है, इसलिए यह विकल्प भी विचारणीय है। यह अवश्य है कि नायिका के नाम के रूप मे 'चादायनि' रचना मे एक स्थान पर भी नही आया है, 'चाद' या 'चादा' ही आया है।

किन्तु वी० प्रति के प्रारम्भ मे प्रति का परिचय 'चदायन' नाम के साथ दिया गया है 'नुसखह चंदायन गुफ्तार मौलाना दाउद दलमई'। इस प्रति की पाठ-परपरा फारसी लिपि की थी, यह भली-भाँति देखा जा सकता है। फारसी मे मिलने वाले ऐतिहासिक ग्रथो मे भी यही नाम मिलता है। अतः यह असभव नही है कि फारसी लिपि के माध्यम से इस ग्रथ से परिचय प्राप्त करने वाले लोगो मे 'चदायन' नाम ही प्रचलित रहा हो।

फलत 'चाद' 'चादा', 'चाद कथा', 'चादायन', 'चादायनि' और 'चंदायन' मे से कौन-सा निश्चित रूप से रचना का नाम रहा होगा, यह कहना कठिन है। इस कठिनाई की स्थिति मे इस सस्करण के लिए मैने 'चादायन' नाम स्वीकार किया है, जो कि मुझे सबसे अधिक सभव लगा है।

इस रचना के स्फुट कडवको का जो सकलन मैने पहले किया था, उसमे भी ऊपर उद्धृत कडवक आता था, क्योकि म० मे, जो उस सकलन की एक आधार-भूत प्रति थी, यह कडवक मिलता था। उसमे चौथी अर्द्धाली के प्रथम चरण का पाठ मैने इस प्रकार दिया था—

तोर (लोर) कहा मइ यहि खड गाऊ (गावउ)।

और उसके आधार पर मैंने लिखा था कि रचना मे 'लोर-कहा' नाम आता है, जो 'लोर-कथा' का अपभ्रंश है (भूमिका, पृ० ४)। किंतु कडवक का जो पाठ मैंने अब दिया है, वह बाद मे प्राप्त अन्य दो प्रतियो मँ० तथा वी० की सहायता से निर्धारित हुआ है, इसलिए रचना के नाम के संबध का मेरा पूर्ववर्ती अनुमान अब स्वीकार्य नही है।

जहाँ तक रचना के रूप का प्रश्न है, वह उद्धृत कडवक की चौथी अर्द्धाली मे दिया हुआ है और वह है 'कथा-काव्य' अर्थात् कथा-प्रधान वह रचना जिसे काव्य का रूप दिया गया हो। 'कथा' शब्द का प्रयोग रचना मे अन्यत्र भी इसी अर्थ मे हुआ है (यथा ६१ ६)। साथ ही कवि ने उसके खड-विशेष के गान करने का उल्लेख किया है, इससे यह प्रकट है कि यह कथा-कृति खडो मे विभाजित थी। यह खड-विभाजन अव रचना की किसी-प्रति मे नही मिलता है, किन्तु मैं० मे कडवक के शीर्पक मे 'विसहर खड' की समाप्ति का स्पष्ट उल्लेख हुआ है · "आखिर विसहर खड चद सुखन फरमूदने मौलाना नत्थन।" इमसे यह प्रमाणित होता है कि मैं० के किसी पूर्वज मे खड-विभाजन अवश्य था, और इस खड को उसमे 'विसहर खड' कहते हुए समाप्त किया गया था। एक अन्य स्थान पर रचना मे पुन इसी प्रकार 'खड' शब्द का प्रयोग हुआ है जैसा कि विवेच्य कडवक मे हुआ है जव वाजिर राव रूपचद से चादा का शृगार-वर्णन प्रारभ करते हुए उसकी माग का वर्णन करता है, राव कह उठता है, कि वह इसी खड को गाए—

राउ रूपचद वोला वहुरि इहइ 'खड' गाउ।[21]

फलत यह निश्चित है कि रचना अपने मूलरूप मे खडो मे विभक्त थी, जिनके नाम कदाचित् फारसी की मसनवियो मे खड-विभाजन की प्रथा न होने के कारण रचना के फारसी-सुर्खी-लेखको ने निकाल दिए।

फारसी के शीर्पक कवि के दिए हुए नही हैं, अन्य व्यक्तियो के दिए हुए हैं, यह तथ्य एक तो इससे प्रमाणित है कि सभी प्रतियो मे ये शीर्पक भिन्न-भिन्न है, दूसरे इससे कि ये कभी-कभी गलत भी है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित शीर्पको को लीजिए ·

कडवक ५३ अ (दे० परिशिष्ट) शि० कैफियत करदन फिराके माह फागुन पेश सहेलियान जुदाई शौहर=फागुन मास के पति वियोग का सहेलियो के आगे वर्णन करना। किन्तु इस कडवक मे वर्णन माघ मास के कष्टो का है।

कडवक ७५ भो० सिफत मोहरए मह पैकरे चादा मिस्ल औदे कुलाल गुज़ाश्तन=चद्र-वदनी की ग्रीवा की विशेषता को कुम्हार की चाक से अकित करना। किंतु इस कडवक मे ग्रीवा की तुलना कुम्हार की चाक से नही की गई है, वल्कि यह कहा गया है, उसकी ग्रीवा इतनी सुडौल है कि मानो किसी कुम्हार के द्वारा चाक पर रख कर फिराई गई हो।

---

[21] कडवक ६४।

कडवक ९८ मैं० . रजा तलवीदने रसूलान बराए वाज गुश्ज़तन खुद अज़राय=दूतो का अपने जाने के लिए राय से स्वीकृत लेना। किन्तु इस कडवक मे राव रूपचन्द के द्वारा महर के दूतो को दी गई उस धमकी का उत्तर मात्र है जो उन्हे इसके पूर्व के कडवक मे दी गई है।

कडवक १०२ मैं० रोजे दुवम राव रूपचद कसदे हिसार कर्दन व बेरू आमदने महरा जग कर्दन उफ्तादन=दूसरे दिन राव रूपचद का घेरा डालने का सकल्प करना व महर का वाहर आकर युद्ध करने के लिए उठना। किंतु इस कडवक मे न रूपचद के घेरा डालने की घटना आती है और न महर के वाहर निकल कर युद्ध करने की। घेरा कडवक ९२ मे डाला जा चुका है, और महर युद्ध के लिए कडवक १३१ मे बाहर निकलता है।

कडवक ११० भो० लोरिक जानिव खानए राव रफ़तन'' =लोरिक का राव (महर) के घर की दिशा मे जाना । किन्तु लोरिक इस कडवक मे महर के घर नही, अजई के घर जाता है, जो उसको आया जानकर घायल होने का वहाना वनाता है।

कडवक १२३ मैं० जग कर्दने सिगार वा बाठा '' '''''=सिगार का वाठा के माथ युद्ध करना''' ''। किंतु सिगारतो सिह के साथ राव रूपचद की ओर से लडने के लिए युद्ध-भूमि मे उतरा है सीह सिंगार वीर दुइ आए राउ मया करि पान देवाए (१२२ २), और सिह को कुवरू के चेर ने मारा है (१२२.६-७)। कडवक १२२ मे तो वाठ का नाम भी नही आता है।

कडवक १५६ मैं० रफ्तने विरस्पत व वहाने कारी दरखानए लोरिक=काम के वहाने विरस्पति का लोरिक के घर जाना। किंतु कडवक मे विरस्पति काम का वहाना करके लोरिक के घर नही गई है, वह बाजार कुछ सौदा लेने गई हुई थी, और केवल लोरिक के स्नेह के कारण उसके घर की ओर जा पडी है।

कडवक १७० मैं० कैफियत दर तनहाइए लोरिक गोयद=लोरिक एकान्तता मे अपना हाल कहता है। किंतु प्रसग लोरिक का एकान्तता मे अपना हाल कहने का नही है, अपनी असहायता का अनुभव करने का है, वह अपनी असहायावस्था पर व्यथित हो रहा है।

कडवक १७२ मैं० . तलवीदने चादा विरस्पति रा पुरसीदने हिकायते लोरिक=चादा का विरस्पति को वुलाना और लोरिक का हाल पूछना। किंतु कडवक मे चादा विरस्पति ने कोई पिरम कहानी कहने मात्र का अनुरोध करती है, जिससे वह विरह-दुःख को भुला सके।

कडवक १९५ मैं० सिफते तख्ते ज़री व मुकल्लल व जवाहराते(?) चिराग=जरी के तथा मुलम्मा किए हुए तख़्त और दीपो के रत्नो की विशेषता। किन्तु इस कडवक मे तख़्त तथा रत्न-दीपो का कोई प्रसग नही है, प्रसग सुदर पलग और उस पर सोई हुई सुदरी चादा का है।

कडवक १९६ मैं० वेदार कर्दन लोरिक चादा रा अज ख़्वाव=लोरिक का चादा को सोते से जगाना। किन्तु इस कडवक मे कहा गया है कि वहुत चाहते हुए भी वह भय के कारण चादा को जगा न सका।

कडवक १९८ मैं० जवाव दादने लोरिक वर चादा रा वा नरमी=लोरिक का चादा की वात का नरमी से जवाव देना। किंतु नरमी से उत्तर देने की कोई वात इस कडवक मे नही है, केवल लोरिक का चादा से यह कथन आता है कि वह चोर नही है, वरन् उसका प्रेमी है।

कडवक २०७ मैं० गुफ्तने चादा हिकायते इश्क ऊ=चादा का उसके प्रेम का हाल कहना। किन्तु इस कडवक मे चादा लोरिक के इस कथन पर सन्देह व्यक्त करती है कि वह उस पर अनुरक्त है।

कडवक २०९ मैं० गुफ्तने चादा हिकायते मैना वा लोरिक=लोरिक से चादा का मैना का हाल कहना। किन्तु कडवक मे चादा लोरिक से यह कहती है कि मैना जैसी स्त्री के रहते हुए भी वह जो उसके पास आया था, इससे ज्ञात होता था कि वह एक भ्रमर मात्र था, जो किसी पुष्प का रस लेकर पुन उसके पास नही जाता है।

कडवक २२३ मैं० आमदने मादर व पिदरे जानदन(?) दर ख़्वाव साख़्त ने चादा खुदरा=माता-पिता का आना और चादा का स्वय नीद मे होने का वहाना गढना। किंतु कडवक मे वहाना गढने की कोई वात नही है। उसमे दो वाते है एक तो माता-पिता का आकर उसके चरित्र पर सन्देह करना और दूसरी उनका अपने दो भृत्यो को इसलिए भेजना कि वे जाकर यह पता लगाए कि कोई चादा के कक्ष मे कही छिपा हुआ तो नही है, जिसे देखकर लोरिक के प्राणो का सूखना।

कडवक २२४ मैं० विदाअ कर्दने लोरिक वा चादा=लोरिक को चादा से विदा करना। किन्तु कडवक मे लोरिक को चादा का चेत मे लाना और उसे यह ढाढस देना वर्णित है कि वह अब किसी प्रकार की शका न करे क्योकि अव चादा प्रत्येक स्थिति मे उसके साथ रहेगी।

कडवक २३४ मैं० तकरीर कर्दने खोलिन वर मैना रा=खोलिन का मैना से कथन करना। किन्तु कडवक मे उल्लिखित कथन मैना का खोलिन से है।

कडवक २४४ मैं० · कैफियते चाद तरावत दर बुतख़ान गुफ्तन महत = मदिर मे के चाद के आह्लाद का हाल कहना। किन्तु कडवक मे मदिर मे के चाद के आह्लाद का कोई कथन नही है, पडित गणना करके चादा को आषाढी का पर्व बताता है और उक्त पर्व पर देव-मदिर मे जाकर सोमनाथ की पूजा करने का माहात्म्य बताता है।

कडवक २६५ · भो० रिहा करदन अमीर मसऊद व जनक व सामान दादन मैना रा व मनअ कर्दने चादा रा = अमीर मसऊद का मुक्त करना, व मैना को सामान देना व चादा को मना करना। किंतु कडवक मे—और पूरी रचना मे भी—अमीर मसऊद या जनक की कोई बात नही आती है, अशुद्धि 'मरई सूधि कइ' शब्दावली को गलत पढने के कारण हुई है, जो कडवक के प्रथम तथा सप्तम चरणो मे आती है, मैनां को सामान देने का भी कोई प्रसग नही है, चादा से लोरिक ने अवश्य कहा है कि उसे यह समझना चाहिए था कि मैना से किसी प्रकार का युद्ध (कलह) उसे नही करना था।

कडवक २९५ म० · दास्तान गुफ्तने बावन बसखुन खुद रा = बावन की स्वगतोक्ति की कथा। किन्तु कडवक मे बावन का लोरिक से यह भुलावा-पूर्ण कथन है कि उसने उन दोनो को दपति के रूप मे स्वीकार कर लिया था और उन दोनो को गोवर लौट चलना चाहिए था, जिस पर वे विश्वास न कर आगे बढते हैं।

कडवक २९६ अ (दे० परिशिष्ट) म० दस्तान रवान शुदन बावन तरफ ख़ान खुद = बावन का अपने घर की ओर प्रस्थान करने का वर्णन। किन्तु कडवक मे उस धीमर का, जिसकी नाव छीन कर दोनो ने नदी पार की थी, राजा से यह समाचार निवेदन करना वर्णित है कि एक अप्रतिम सुदरी एक पुरुष के साथ आई हुई थी, जिसके साथ सोने के आभूषणो से भरा हुआ एक पेटक भी था।

कडवक २९९ मैं० गिरफतार शुदने बोदिया व दस्त बुरीदने लोरिक = बोदिया का गिरफ्तार होना और लोरिक के द्वारा उसका हाथ काटा जाना। किन्तु कडवक मे बोदिया के हाथ काटे जाने का कोई उल्लेख नही है, उल्लेख बोदिया के द्वारा आगत परदेसियो के काटे हुए हाथ-गात्र-और अगुलियो के वहा पडे हुए होने का है, बोदिया के हाथ काटने की बात बाद के कडवक मे आती है।

कडवक ३२१ म० दर्दमदी खुद गुफ्तन लोरिक दरख्त मुकाबिला (मुकाबिलन्) = लोरिक का वृक्ष के समक्ष अपनी व्यथा का निवेदन करना। किन्तु इस कडवक मे लोरिक उन दुखो को स्मरण करता है जिनको उसे चादा के प्रेम मे सहन करना पडा है।

कडवक ३२६ मैं० शिरीनी कुबूल कर्दने लोरिक बर गुनी रा—लोरिक का गुणी को मिठाई [देना] स्वीकार करना। कडवक मे मिठाई देना स्वीकार करने का कोई प्रसग नही है, प्रसग है आभूषणो को देना स्वीकार करने का। हो सकता है कि 'शिरीनी' के स्थान पर शुद्ध पाठ 'जरीन'='आभूषण' रहा हो।

कडवक ३२८ अ ख म० चू लोरिक तुरा रोज बद उफ्तद मरा याद कुन=लोरिक जब तुझ पर बुरा दिन आए तो तू मुझे स्मरण कर। किन्तु किसने लोरिक से यह कहा, यह शीर्षक मे नही आता है।

कडवक ३२८ अ च (दे० परिशिष्ट) म० चू शुनीद लोरिक कि दस्त पा बुरीद बर दरस्त=जब लोरिक ने सुना कि हाथ-पाव क्रूरता से कटे है। किन्तु कडवक मे हाथ-पाव कटे होने की बात नही आती है—सभवत योगी के नाम 'तो ता' को 'टूटा' पढकर और उसकी अर्थ कटे हुए हाथ-पाव वाला समझ कर यह अर्थ लगाया गया है। किन्तु बाद वाले कडवक मे ही कहा गया है कि जब आखे निकाल कर तोता लोरिक की ओर झपटा तो लोरिक डरा कि वह उसे खा जाएगा। यदि उसके हाथ-पाव कटे होते तो लोरिक की ओर उसका इस प्रकार झपटना कैसे सभव होता ?

कडवक ३२८ अ ज (दे० परिशिष्ट) म० दरमियान जोगी व लोरिक गुफ्तगू शुदन=योगी और लोरिक के बीच वार्तालाप होना। किन्तु यह वार्तालाप योगी (तोता) और लोरिक के बीच नही हुआ है, उस सिद्ध और लोरिक के बीच हुआ है जिसने चादा के स्वप्न मे तोता के द्वारा उस के अपहृत होने पर लोरिक को सहायता का वचन दिया था।

कडवक ३२८ अ ञ म० गुफ्त जोगी ई जन मन अस्त=योगी ने कहा कि यह स्त्री मेरी है। किंतु कडवक मे सभासदो (पचो) के द्वारा लोरिक से किया गया यह प्रश्न है कि वे दोनो कौन थे, वह स्त्री लोरिक को कहा मिली थी, और वे दोनो घर छोड कर किस कारण निकले थे—आदि।

कडवक ३२९ मैं० आखिर बिसहरखड चद सुखन फरमूदने मौलाना नत्थन=विषहर खड का अत और मौलाना नत्थन का कुछ वाक्य निवेदन करना। किन्तु कडवक मे मौलाना नत्थन का कुछ कहने का प्रसग नही है, दाऊद ने मलिक (मौलाना नही) नत्थन को सबोधित करते हुए कहा है कि उन्होने यह दु ख-वार्ता उभाडी थी, इसलिए वे इस गुणमयी वार्ता को कान देकर सुनते।

कडवक ३७२-३७३ मैं० कैफियत आवरदने बनिज गुफ्तने सुरजन

पेश लोरिक=सुरजन का लोरिक के आगे अपने वनिज का हाल लाना। किन्तु इन कडवको मे सुरजन ने लोरिक से वताया है कि कुवरू उसे किस प्रकार अपने घर वुला ले गया था और तव मैना ने यह जानने पर कि वह हरदी आ रहा था आत्मघात करने का भय दिखाते हुए उस से अपना वनिज छोड कर उसका सन्देश लादने का अनुरोध किया था।

कडवक ३८७ मैं० रफतने मैना वा सहेलियान दरवेगा व तलवीदने लोरिक=सहेलियो के साथ मैना का वेगा मे जाना और लोरिक का उस को वुलाना। किन्तु 'वेगा' कोई स्थान नही है, कडवक मे 'वेगा' 'शीघ्रता से' अथवा 'सवेरे' के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।

कडवक ३८९-३९० म० मे इन कडवको का शीर्षक वही वताया गया है जो इसके पूर्ववर्ती का है : अर्थात् खरीदने लोरिक शीर व देहानीदने माल वर लोरिक मैना रा=लोरिक का दूध मोल लेना और लोरिक का मैना को द्रव्य दिलाना। किन्तु इन कडवको मे लोरिक का मैना से छेडछाड करना तथा उसके सन्दर्भ मे मैना का उसे वुरा-भला कहना और अपना पति-वियोग निवेदन करना वर्णित है।

कडवक ३९१ मैं० वाज रफतने मैना दर वेगा वासहेलियान खुद—मैना का सहेलियो के साथ वेगा मे वापस जाना। यहा भी 'वेगा' किसी स्थान का नाम समझा गया है, जो अशुद्ध है, इस कडवक मे दूसरे दिन उनका पुन देवहा पहुचना कहा गया है, जहा पर लोरिक आकर ठहरा हुआ था।

कडवक ३९४ मैं० खवर कुनानीदने लोरिक दर शहर गोवर अज आमदने खुद=लोरिक का अपने आने का समाचार गोवर नगर मे करवाना। किन्तु इस कडवक मे कहा गया है कि मैना के इस परदेसी के यहा रात्रि मे रह जाने की वात जव गोवर मे फैली, खोलिन के अनुरोध पर अजई इस दुराचारी परदेसी को दण्ड देने पहुचा और दोनो मे युद्ध छिड गया, किन्तु फिर एक-दूसरे को पहचान लेने पर वे गले मिले।

ऊपर मैं०, म० भो० तथा शि० के फारसी शीर्षको मे आई भूलो को हमने देखा है, शेष प्रतियो मे से का० मे केवल छ कडवक प्राप्त है, मसा० मे दो ही, इसलिए उनमे भूले नही मिलती है तो आश्चर्य न होगा। वी० मे कुछ शीर्षक पाठ के साथ आते हैं—और वे केवल तीन है कडवक १-३—सिफति [illegible] की, २६—मिफति रावताह की, ३४७—वारामासा। हाशिये मे किसी अन्य व्यक्ति के दिए हुए चौदह शीर्षक और आते है कडवक ८—शाहि फीरोज की सीफत; १८—गोवर की वरनी, ३२—चादा की जनमु,

३८—चादा वावनै दीनी, ४०—वरात चाली, ४२—बीवाह हुवौ, ४६—चादा नै लेन गया, ५४—वाजुर आमद जोगी, ६०—वाजुर रूपचद कै राजपुरी [चाला ?], ८७—रूपचद वाठा आया, ११२—लोरिक महर की भीर लडन आया, १३६—चादा ले(लो)रीक दीठ , १४२—जैंतार, २५१—मैना चाद जुध। ये सभी शीर्षक अनियमित रूप से दिए गए है, इसलिए ये निश्चित रूप से कवि के दिए हुए नही हो सकते हैं।

ऊपर दिए हुए तथ्यो के आधार पर प्रस्तुत कार्य मे पूरी कथा को खडो मे विभक्त किया गया है, और प्रत्येक खड का शीर्षक भी सुझाने का यत्न किया गया है। फारसी सुर्खियो का उल्लेख मात्र कडवको का निर्धारित पाठ देने के अनतर कर दिया गया है। किंतु खडो का यह विभाजन पूर्णत निश्चयात्मक न होने के कारण कडवको की क्रम-सख्या पूरी रचना की रक्खी गई है।

इसके वाद केवल यह समझना शेष रह जाता है कि प्रस्तुत काव्यरूप फारसी ममनवी का है अथवा भारतीय कथा आख्यायिका का। लेखक मुसलमान था, सुर्खिया फारसी मे मिलती हैं और मुसलमान लेखको की आध्यात्मिक सकेतो से समन्वित कथाए मसनवियो के रूप मे ही मिलती हैं, इसलिए यह एक व्यापक विश्वास रहा है कि दाऊद की रचना फारसी मसनियो की परपरा मे आती हैं, किन्तु मेरा मत इससे भिन्न है।

फारसी मे मसनविया प्राय अपने विषयो के अनुसार पाच प्रकार के ऐसे छंदो मे लिखी गई है जिनमे दो-दो चरण समान तुको के होते है और जो एक शृखला मे प्रयुक्त किए जा सकते हैं। इन छदो की सख्या निश्चित नही होती है। ममनवियो के विषय भी अनेक हो सकते है—ऐतिहासिक, पौराणिक, दार्शनिक, सदाचार-निरूपक, रहस्यवादी अथवा धार्मिक। यह भी आवश्यक नही है कि पूरी रचना मे कथा एक ही हो मौलाना रूम की मसनवी मे एक-दूसरे से स्वतत्र अनेक कथाए है, और ये सभी छोटी-वडी कथाए अपने-आप मे पूर्ण है। फिर भी वाहुल्य ऐसी मसनवियो का है जिनमे आदि से अत तक कथा एक है। वडी मसनविया प्राय हम्द (ईश्वर-वदना) से प्रारभ होती है, तत्पश्चात् उनमे नात (रसूल की वदना) होती है और उनके मेराज का उल्लेख आता है, तत्पश्चात् समसामयिक शासक या किसी महान् व्यक्ति की दुआ (स्तुति) और पीर की खिताव की जाती है, रचना को प्रस्तुत करने के कारणो का उल्लेख किया जाता है, और किसी को सवोधन होता

है। मूल रचना मे विभिन्न प्रसगो का विषय-निर्देश करने वाली सुर्खिया दी जाती है, जो कि प्राय उनके शीर्षको के रूप मे होती है।[२२]

भारतीय साहित्य मे 'आख्यायिका' और 'कथा' दो ऐसे साहित्य-रूप है जो इस प्रसग मे विचारणीय हैं। प्राचीन साहित्य-शास्त्रियो ने गद्य मे प्रस्तुत किए गए साहित्य-रूपो के अन्तर्गत कथा-कृतियो को दो प्रकार की बताया है आख्यायिका और कथा। कुछ बाद के साहित्य-शास्त्रियो ने कथाओ का प्राकृत गाथाओ मे भी लिखा जाना माना है। भामह (काव्यालकार १ २५-२८) के अनुसार 'आख्यायिका' एक प्रकार का ऐसा साहित्य रूप होता है जो रोचक और उपयुक्त गद्य मे प्रस्तुत किया जाता है, यह उच्छ्वासो मे विभक्त होता है, इसमे अनुभवपूर्ण तथ्यो का समावेश किया जाता है, इसमे मूल कथा का वक्ता नायक स्वय होता है, साहित्य-रूप के प्रतीक-स्वरूप इसमे वक्त्र और अपरवक्त्र छद होते हैं, इसमे कवि को अपनी व्यक्तिगत छाप छोडने के लिए यथेष्ट अवसर रहता है, कन्यापहरण, युद्ध, विरह, पुनर्मिलन जैसे विषयो का इसमे समावेश होता है। 'कथा' मे वक्त्र तथा अपवक्त्र छद नही होते है, और न उच्छ्वास-विभाजन होता है; कथा भी नायक द्वारा नही कही जाती है, अन्य व्यक्तियो द्वारा कही जाती है। भामह ने 'आख्यायिका' के लिए भाषा-माध्यम सस्कृत का और 'कथा' के लिए सस्कृत तथा अपभ्रंश का माना है।

रुद्रट (काव्यमाला १६ २०-२९) के अनुसार 'कथा' का आरभ देवो और गुरुजनो की छदोबद्ध वदना मे होता है, और उसके अनतर उसमे लेखक के कुल तथा रचना के उद्देश्य का उल्लेख रहता है, रचना—जिसमे पुर-वर्णन आदि भी सम्मिलित रहता है—प्रवाहपूर्ण तथा आनुप्रासिक गद्य मे रची गई होती है, कथारभ मे एक कथान्तर आता है, जिसकी सहायता से मुख्य कथा उपन्यस्त की जाती है, किसी कन्या की प्राप्ति 'कथा' का सामान्य उद्देश्य होता है और शृगार रस 'कथा' मे पूर्ण रूप से व्याप्त रहता है, इसकी रचना सस्कृत मे गद्य मे की जाती है, जब कि अन्य भाषाओ मे पद्य मे होती है। रुद्रट के अनुसार 'आख्यायिका' मे भी रचना का आरभ छदोबद्ध देव तथा गुरु-वदना के साथ होता है, साथ ही उसमे पूर्ववर्ती कृतिकारो की प्रशसा होती है और अनतर रचना के उद्देश्य के सबध मे स्पष्ट कथन किया जाता है,

---

२२ विस्तृत परिचय के लिए देखिए डॉ० श्याममनोहर पाण्डेय : 'मध्ययुगीन प्रेमाख्यान', पृ० २५३-६१।

जो किसी शासक या कृती व्यक्ति का यशोगान भी हो सकता है, लेखक गद्य मे अपना और अपने कुल का परिचय देता है। मूल कथा 'आख्यायिका' मे भी 'कथा' की ही भाति वर्णित होती है, रचना उच्छ्वासो मे विभक्त होती है, और प्रथम उच्छ्वास के अतिरिक्त सभी के प्रारभ मे दो आर्या छद आते हैं।

उपर्युक्त विवेचन मे ज्ञात होता होगा कि फारसी 'मसनवी' तथा भारतीय 'आख्यायिका' और 'कथा' मे ऐसे अनेक लक्षण मिलते हैं जो एक-से है। दोनो सामान्यत ऐसे छन्दो मे रचे जाते हैं जिनमे शृखलावद्ध या धारावाहिक रूप मे रचना प्रस्तुत की जा सके। विषय भी दोनो के अनेक प्रकार के हो सकते हैं। कथा 'मसनवी' मे प्राय एक होती है, किन्तु अनेक कथाए भी उसमे रक्खी जा सकती हैं, भारतीय कथा-साहित्य के रूपो मे कथा आदि से अन्त तक एक ही रहती है। वडी मसनवियो मे जिस प्रकार ईश्वर-वदना, रसूल-वदना, रसूल के मेराज, समसामयिक शासक या किसी महान् व्यक्ति की प्रशसा, पीर की खिताव, रचना के कारण और उद्देश्य-कथन आदि का समावेश होता है, भारतीय कथा-साहित्य के रूपो मे देव तथा गुरु-वदना, अपनी परपरा के पूर्ववर्ती कवियो और कथाकारो का प्रशसापूर्ण स्मरण, रचना के उद्देश्य का उल्लेख, समसामयिक शासक या कृती व्यक्ति का यशोगान, लेखक के अपने वश का परिचय आदि होता है। मुख्य अतर कदाचित् इतना ही होता है कि मसनवियो मे जब कि एक ही छद प्रयुक्त होता है, भारतीय कथा-साहित्य के दोनो रूपो मे रचना कडवको मे की जाती है, और जब कि फारसी मसनवियो मे प्रसगो की सुर्खिया दी जाती है, भारतीय आख्यायिका मे उच्छ्वास (खड)-विभाजन होता है और 'कथा' मे वह भी नही होता है।

इन दृष्टियो मे यदि दाऊद की रचना को देखा जाए तो उसका प्रारभिक अश दोनो परपराओ मे खप सकता है और यह भी असभव नही है कि कवि ने इस अश मे दोनो परपराओ का कोई समन्वय किया हो, किन्तु जहा तक प्रयुक्त छद-विधान तथा प्रवध-व्यवस्था की बात है, वह पूर्ण रूप से भारतीय है—उसमे न तो फारसी मसनवियो के छद प्रयुक्त हुए हैं और न उसमे उनकी छद-विषयक एक-रूपता है। उसकी रचना प्राकृत-अपभ्रंश

२३ विशेष विवरण के लिए देखिए एस० के० दे · 'दि आख्यायिका ऐंड कथा इन क्लासिकल सस्कृत', बुलेटिन आव दि स्कूल आव ओरिएटल स्टडीज, तृतीय वर्ष, अक ३, पृ० ७५०७-५१७।

साहित्यो की परपरा मे कडवको मे की गई है, और प्रत्येक कडवक चौपाई की पाच अर्द्धालियो तथा एक दोहे या मिलते-जुलते छद का है। जो फारसी सुर्खियां उसकी प्रतियो मे मिलती है, वे कवि की दी हुई नही हैं, यह हम ऊपर देख ही चुके है। ऊपर यह सभावना भी देखी जा चुकी है कि रचना का सपूर्ण प्रवध मूलरूप मे खडो मे विभाजित था, यद्यपि फारसी सुर्खी-लेखको ने उन्हे हटा दिया। फलत मेरा मत है कि यह भारतीय परपरा का 'कथा-काव्य' है, जिस के प्रारभ के ही अश मे कुछ ऐसे तत्व आ गए है जो मसनवियो मे भी मिलते है, किन्तु यह साम्य कदाचित् ऊपरी है, जो केवल कवि के मुसलमान होने के कारण इसलिए भी हो सकता है कि उसने दोनो परपराओ का किसी मात्रा मे समन्वय किया हो। मुख्य रचना अपनी फारसी मसनवियो से भिन्न छद-व्यवस्था, प्रवध-व्यवस्था, समान आकार के कडवको के प्रयोग और खड-विभाजन के कारण भारतीय परपरा की ही मानी जाएगी।

४ रचना की कथा और उसका आधार

१ स्तुति खड . (कडवक १—१७)

सृष्टिकर्त्ता, हजरत मुहम्मद तथा उनके चार यारो के गुण-कीर्त्तन के साथ ग्रथ का आरभ किया गया है, तदनतर शाहे वक्त फीरोजशाह और अपने गुरु जैनुद्दीन का कवि ने स्तवन किया है और खानजहा की सत्य और न्याय-निष्ठा की प्रशसा की है, जो फीरोजशाह का वजीर था। मलिक मुवारक के शौर्य की इसी भाति प्रशसा की गई है, जो डलमऊ का मीर था। फिर कवि ने कहा है कि दिल्ली के सुलतान फीरोजशाह के समय मे, जिसका वजीर जौनाशाह था, डलमऊ नगर मे, जिसका मीर मलिक बया का पुत्र मलिक मुबारक था, ७८१ हि० मे उसने ग्रथ की रचना की।

२ गोवर-वर्णन खड (कड० १८—३१)

गोवर की राज-वाटिका, उसके पक्षियो, वहा के मढ-मदिरादि, वहा के सरोवर, उनके आश्रित रहने वाले जल-पक्षियो, वहा की खाई, वहा के परकोटे, वहा निवास करने वाली जातियो, वहा के कुमारभुक्तो, वहा की हाटो मे बिकने वाले फूलो, फलो, मेवो, वस्त्रो, वहा के खेल-तमाशो, स्वागो, नृत्यो, उत्सवो, महर के सिंह-द्वार, महर के धवलगृह, तथा उसकी रानियो और पट्टमहिषी फूलारानी का वर्णन किया गया है।

३ चादा-जन्म एव विवाह खड (कड० ३२—४२)

कहा गया है कि उसी गोवर मे महर सहदेव के घर पद्मिनी जाति की [illegible] रानी के गर्भ से चाद (चन्द्र) का अवतार हुआ। उसकी छठी हुई। जव

वह बारहवें मास की हुई, तभी से उसके सौन्दर्य की ख्याति धुर समुद (द्वार समुद्र), मावर, गुजरात, तिरहुत, अवध, वदायू [आदि] तक जा पहुची और विवाह के लिए सन्देश आने लगे। जव वह चार वर्ष की हुई, जइत नाम के सजातीय ने अपने पुत्र बावन के साथ उसका विवाह करने के लिए उसे कहलाया। महर ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। घूम-धाम से वारात आई, विवाह हुआ और बहुतेरा दायज देकर महर ने उसे विदा किया।

४ चादा-पितृगृह-आगमन खड (कड० ४३–५३)

विवाह के बारह वर्षों के वाद जव चादा सोलह वर्ष की हुई, उसको अपने पति सिउहर के सबध मे दुख होने लगा। वह कद मे छोटा (इसीलिए बावन वामन) था, एक आख से काना था, गदगी के साथ रहता था और [कदाचित् नपुसक होने के कारण] चादा से दाम्पत्य-सबध न रखता था। एक वर्ष तक चादा ने उमका यह व्यवहार देखा, तो उसने ननद से कहा, जिसने अपनी माता से चादा की बाते कही। सास ने पहले तो समझाया किन्तु फिर कह दिया कि [यदि उसे सतोप न हो तो] वह सन्देश भेज कर अपने मायके को चली जाए। महर को जव चादा का सन्देश मिला, उसने लडके को भेजकर उसे घर बुला लिया। चादा से उमकी सखियो ने उसके स्वामी के व्यवहार के बारे मे पूछा, तो [कदाचित् प्रतीक रूप से] माघ, ज्येष्ठ तथा भादौ के कष्टो का वर्णन करते हुए[२४] उसने बताया कि किस प्रकार वह उसके द्वारा उपेक्षित रही।

५ वाजुर-मूर्छा खड (कड० ५४-५९)

इसी समय वाजुर नाम का एक भिक्षुक गोवर आया, जो गा-वजाकर उदर-पूर्ति के लिए भिक्षा मागता-फिरता था। एक दिन उसने धवलगृह के झरोखे से झाकती हुई चादा को देखा, तो वह मूर्च्छित हो गया। लोगो ने उससे जव इस मूर्छा का कारण पूछा, उसने एक प्रहेलिका की सहायता से उत्तर दिया और वह दण्ड-भय से वहा से भाग निकला।

६ चादा-शृगारवर्णन खड (कड० ६०—८५)

एक मास तक चलकर वह गाव रूपचद के नगर राजपुर मे पहुचा। वहा रात मे उसने तत्री वजाई और 'चद्रावली का गीत'[२५] गाया, जो कि नगर भर

---

[२४] 'मृगावती' मे भी ठीक इसी प्रकार कुँअर की इन्हीं तीन मासो की विरह-व्यथा का वर्णन किया गया है (दे० प्रस्तुत लेखक द्वारा सपादित मृगावती छंद ३४–४१।) [२५] बाद मे यही कथा कुतुबन के द्वारा 'मृगावती' नाम से प्रस्तुत की गई है। बगला तथा प्राचीन असमी मे इसके दोनो नाम सुरक्षित हैं : द्विज पशुपति की रचना 'चंद्रावली' है, द्विजराम की 'मृगावती'।

मे गूज उठा । दिन होने पर राजा ने उसे बुलवाया और गीत-नाद-सुर-कविता-कहानी द्वारा मनोरजन करने के लिए उसे सेवा मे रख लिया । बाजुर ने उसे अपना परिचय देते हुए कहा कि वह उज्जैन का था । फिर उसने चादा के रूप की प्रशसा की, और रूपचद के आदेश पर विस्तार से उसका शृगार-वर्णन किया । उसने क्रमश उसके माग से लेकर चरणो तक के उसके विभिन्न अगो, उसकी काया-यष्टि, उसके वस्त्रो तथा आभरणो आदि का वर्णन किया । खड को समाप्त करते हुए किसी 'मुहम्मद' को कवि ने सबोधन किया है ।[२६]

७ गोवर-अभियान खड (कड० ८६–१०१)

इस शृगार-वर्णन को सुनते ही राव रूपचद ने गोवर पर आक्रमण करने का आदेश दिया । उसकी पदाति-सेना, अश्व-सेना और गज-सेना ने प्रयाण किया । प्रयाण के समय उसे कुछ अपशकुन हुए, किन्तु उन पर ध्यान न देते हुए उसने गोवर को जा घेरा । इस सेना ने पेडो-पौदो को काट डाला और मठो-देवालयो और अमराइयो मे आग लगा दी । महर ने जब यह देखा, तो उसने राव रूपचद के पास बसीठ भेजे । उनके पूछने पर राव रूपचद ने बताया कि चादा का विवाह उसके साथ कर दिया जाए, वह इसलिए आया था । बसीठो ने कह दिया कि यह असभव था और महर युद्ध के लिए प्रस्तुत था । फिर भी रूपचद ने उनके द्वारा अपना सन्देश भेजा । उन्होने लौट कर महर को उसका सन्देश दिया । महर ने कुमारभुक्तो को बुलाकर उनसे परामर्श किया । कुछ ने तो चादा को दे देने का समर्थन किया किन्तु कुवरू और धवरू ने इसका विरोध किया और युद्ध के लिए प्रस्तुत होने की सम्मति दी । उन्ही की बात मानी गई ।

८ गोवर-युद्ध खड (कड० १०२–१२४)

महर की ओर से कुवरू आगे बढा, रूपचद की ओर से उसका प्रमुख योद्धा वीर बाठा आया, बाठा के प्रहार से कुवरू धराशायी हुआ । अब धवरू आगे आया, और वह भी बाठा के प्रहार से धराशायी हुआ । इन दोनो के गिरने पर महर के कुमारभुक्तो का साहस जाता रहा । यह देख कर महर ने लोरिक के पास सदेश भेजा, जिसने युद्ध मे भाग लेना स्वीकार कर लिया । उसने रण-सज्जा की । उसकी माता तथा स्त्री मैना ने उसे रोका, किन्तु फिर

२६ प्रसग की इस प्रकार की समाप्ति से लगता है कि प्रसंग पूरे एक खड का विषय था ।

उन्होने उसे हर्षपूर्वक विदा दी। तदनतर लोरिक अपने गुरु (?) अजई के पास गया, जिसने युद्ध मे न सम्मिलित होने के लिए आहत होने का स्वाग कर रक्खा था। लोरिक उससे शास्त्रास्त्र-सचालन की युक्ति लेकर विदा हुआ। लोरिक महर की सेवा मे उपस्थित हुआ, तो महर ने उसे विजय-प्राप्त करने पर वहुत-कुछ देने का वचन और पान का बीडा देकर रण-धरा मे भेजा। लोरिक के उतरते ही महर की सेना लौट पडी, और वहा डटकर स्थित हो गई। महर ने भी अव युद्ध की पूरी तैयारी की। उसकी सभी प्रकार की सेनाए सज्जित हो गई। [यह देखकर] रूपचद ने महर के पास यह कहलाया कि अव युद्ध एक-एक से एक-एक का हो, तीसरा कोई निकट न जाए। महर ने यह स्वीकार कर लिया, तो रूपचद की ओर से (क्रमश) सीह और सिंगार आगे आए। कुवरू के चेर (पुत्र ?) ने सीह को खदेड दिया। अव सिंगार आगे बढा तो वह भी धराशायी हुआ।

इसके वाद क्रमश व्रह्मदास और धरमू रूपचद की ओर से आगे आए। व्रह्मदास को मार कर [कुवरू के] चेर (पुत्र ?) ने धरमू को भी समाप्त कर दिया। तदनतर रणमल आगे वढा, जिसने कुवरू के पुत्र को मारा। यह देखकर महर ने रणपति को आगे वढाया, जिसने रणमल को समाप्त कर दिया। रूपचद की ओर से अव सिरीचद आगे आया, जिसे रणपति ने पाखर पर आघात कर आहत किया। तदनतर अजयराज ने उस पर एक वेलक (वाण) छोडा, जो उसकी पाखर मे रह गया। सिरीचद भाग निकला। रूपचद ने वाठा से परामर्श की, तो उसने तीस पाखरित योद्धाओ को युद्ध मे प्रवृत्त करने का वचन दिया। जव उनकी सेना वाठा रण-धरा मे लाया, तो महर ने लोर से उसका सामना करने का अनुरोध किया। एक घडी तक तुमुल युद्ध हुआ, रूपचद की सेना बहुत नष्ट हुई, उसके सिर पर कुत (भाला) लगा, और वाठा भाग खडा हुआ। वाठा की सम्मति लेकर रूपचद ने एक वार अपनी पूरी सेना को चलाया, किन्तु वह सेना भी भाग निकली। तव वाठा सौ पाखरित योद्धाओ को लेकर रण-धरा मे उपस्थित हुआ। उसका सामना महर से हुआ, उसने महर पर प्रहार किया तो महर का सन्नाह टूट गया, और उसका खड्ग छिटक कर भूमि से जा लगा। अव लोर सामने आया। उसके प्रहार से रूपचद भाग निकला, फिर उसने महीराज, सिरीचद, भुइराज और वीरराज को समाप्त किया। यह देखकर वाठा आगे आया। वीरतापूर्वक युद्ध करता हुआ जव वह धराशायी हुआ, लोरिक उसका सिर काट कर ले चला। यह देखकर रूपचद की सेना भाग निकली। लोरिक ने

उसका पीछा किया। स्पचद ऐसा भागा कि फिर गोवर पर आक्रमण करने का वह नाम भी न लेता।

९. चादा-लोर प्रथम दर्शन खंड (कड० १३५–१५३)

इस विजय का महर ने उत्सव मनाया, और उसमे लोरिक को एक हाथी पर चढा कर सामतो के साथ नगर भर मे घुमाया। चादा को इस गोवर का उद्धार करने वाले को देखने की साध हुई और उसने अपने धवलगृह पर से उसका दर्शन किया। उसे देखते ही वह लोरिक के स्नेह से अभिभूत हो गई। उसकी धाय वृहस्पति ने दूसरे दिन उसके इस प्रकार रोमाच मे आने का कारण पूछा, तो चादा ने वताया और उससे पुन लोरिक को दिखाने का अनुरोध किया। इसके लिए वृहस्पति ने उक्त विजयोत्सव के प्रसग मे पिता से एक वृहत् ज्यौनार आयोजित कराने का सुझाव दिया, जिसमे लोर को आमन्त्रित किया जाता। चाँदा के अनुरोध पर महर ने एक वडे ज्यौनार का आयोजन किया। लोरिक तथा पूरे नगर के लोग इस ज्यौनार मे सम्मिलित हुए। जव चादा पुन शृगार करके धवलगृह के ऊपर [लोरिक को देखने के लिए] आई, लोरिक की दृष्टि उस पर पडी और वह चादा के सौन्दर्य से अभिभूत होकर सुधि-बुधि खो वैठा। उसे डाडी पर लेकर उसके घर पहुचाया गया।

१०. चादा-लोर-पुनर्दर्शन खंड (कड० १५४–१८०)

लोरिक ने घर जाकर खाट ले ली। वैद्यो ने वताया कि वह काम-विद्ध था। सयोग-वश जव वृहस्पति उसके घर पर गई और उसने उसकी यह दशा देखी, उसने कारण पूछा। माता के वहाँ होने के कारण कारण बताने मे लोरिक सकोच कर रहा था। माता हट गई, तव उसने कारण वताया और चादा से मिलाने का उससे अनुरोध किया। वृहस्पति ने वताया कि चादा से मिलना दुर्गम था। लोरिक ने उसके पैरो पर पड कर इस कार्य मे उसकी सहायता करने का अनुरोध किया, तो उसने यह युक्ति वताई कि वह तपस्वी के रूप मे होकर [निर्धारित] मंदिर मे रहे, तो वह देव-दर्शन के मिस से उस मदिर मे चादा को ला कर उसे मिला देगी। यह युक्ति वताकर वह चादा की सेवा मे चली गई। लोरिक तपस्वी का वेप वनाकर उस मदिर मे जा बैठा, वह कद-मूल-फल खाता और चांदा का नाम जपता। एक वर्ष तक वह उस मदिर मे रह कर देवता की पूजा करता रहा। जव दीपावली का पर्व आया, चादा ने बृहस्पति को बुलाया और साठ सखियो को लेकर वह

उस देव-मदिर मे गई। सयोग से उसका हार टूट गया। जब उसकी सखिया हार के मोतियो को उठा कर पुन हार गूथने मे लगी, बृहस्पति उसको मदिर की छाया मे ले गई। इसी समय उसकी कुछ सहेलियो ने किसी रूपवान् राजपुत्र-योगी के वहाँ होने की सूचना दी। चादा ने जैसे ही उसके पास जाकर उसे सिर झुकाया, तपस्वी अचेत हो गया और चादा वापस चली आई।

घर आकर चादा अनमनी हो रही थी, उसने बृहस्पति से कोई रस-वार्त्ता कहने का अनुरोध किया तो उसने रस-कुड मे डूब कर मरते हुए उस तपस्वी को उबारने की बात कही। चादा ने उसे ऐसा कहने से मना करते हुए कहा कि वह तो उसी दिन से लोरिक की हो चुकी थी जिस दिन से उसने उसे देखा था। बृहस्पति ने बताया कि मदिर मे जिस तपस्वी को उसने देखा था, वह वही लोरिक था। चादा ने कहा कि तब वह तत्काल जाकर उसे उठाए और उस विरहाभिभूत तपस्वी को आश्वासन दे कि उसकी आशा पूरी होगी। बृहस्पति ने जाकर जब लोरिक को सात्वना दी, तो वह उसके पैरो पर गिर कर चादा से मिलाने का अनुरोध करने लगा। उसे आश्वासन देकर बृहस्पति चादा के पास चली गई और लोरिक भी मदिर से चला गया।

११. धवलगृह-आरोहण खड (कड० १८०–१९६)

अब लोरिक इधर-उधर भटकता रहता था, घर मे नही आता था, यह देख कर मैंना ने उससे चित्त को स्थिर करने और मन को शात करने के लिए अनुनय-विनय की, किन्तु उसका कुछ असर न हुआ। दिन भर वह वनखड मे फिरता और रात मे गोवर चादा की झलक पाने की लालच से आता। चादा भी लोरिक से मिलने के लिए छटपटाती रहती। उसने बृहस्पति से लोरिक को मिलाने का उपाय करने को कहा। बृहस्पति वनखड मे जाकर लोरिक से मिली, और उसने चादा के धवलगृह पर किसी युक्ति से चढ कर उससे मिलने की राय दी। अनुरोध करने पर बृहस्पति ने उसे साथ ले जाकर चादा के धवलगृह का मार्ग दिखा दिया। लोरिक ने एक मज़बूत बरहा (रस्सा) पटसन का बनाया, और उसमे एक लोहे की आकडी लगाई, जो धवलगृह पर फेंकने पर कही फँस सकती। भादो की छठी की रात को, जब वर्षा हो रही थी, वह निकल पडा। उस समय कुछ सूझ नही पड रहा था, किन्तु बिजली के प्रकाश मे उसे चादा का धवलगृह दिखाई पड गया। उसने आगे बढकर उसके ऊपर बरहा फेका। चादा जाग गई। नीचे जब लोरिक को देखा तो उसने बरहा छिटका दिया। चादा ने कई बार ऐसा ही किया, तो लोरिक ने अतिम रूप से एक बार और उसे फेंकने का सकल्प किया।

चादा ने सोचा कि वार-वार ऐसा करने से लोरिक चला जाएगा, इसलिए इस वार फेंके जाने पर वरहे की आकडी को उसने एक खभे से अटका दिया और चुपचाप जाकर पलग पर लेट गई। अब वह वीर उस वरहे के सहारे धवलगृह पर चढ आया। खभे की प्रतिच्छाया मे खडे होकर उसने चादा की सुसज्जित और सुचित्रित चौखडी का निरीक्षण किया। ईंगुर वर्ण की उस चौखडी मे सोने के पानी से अनेक प्रकार के चित्र उरेहे हुए थे, भाति-भाति के सुगधित द्रव्य, ताम्बूलादि और खाद्य-पदार्थ रक्खे हुए थे, और एक पुष्पालकृत शैया पर चादा विश्राम कर रही थी। चीर के हट जाने से उसके स्तन दिखाई पड रहे थे, वार-वार वह उसे जगाने की सोचता था, किन्तु इसके लिए उसका साहस नही पडता था।

१२ चादा-लोर-सवाद खड (कड० १९७–२११)

अत मे उसने उछल कर चादा का हाथ जा पकडा। चादा जाग गई और उसके केश पकड कर 'चोर-चोर' पुकारने लगी, किन्तु कोई न जागा। चित्त मे वह प्रसन्न हुई कि वह उसे मिल गया था। लोरिक ने कहा कि वह चोर नही था, अन्यथा वह उसके आभरण लेकर चला जाता, वह उसका प्रेमी था, और वह अपने प्राण गवा कर भी उससे प्रेम करना चाहता था। चादा ने कहा कि वह अपनी मृत्यु को धोखा देकर आया था, और यदि विस्तर पर उसने पैर रक्खा तो उसने अपने प्राण गवाए। लोरिक ने कहा कि वह तो मर कर इस स्वर्ग मे आया था, और तभी मर गया था जव उसने उसका दर्शन किया था, फिर मरे को मारने की वात कैसी थी ? लोरिक की इस वात को सुनकर चादा को ममता आई और उसने उसके केश छोड कर उसका अचल पकडा और उसका परिचय मागा। उसने वताया कि वह वही कूरू लोर था, जिसने उसको [रूपचद के] ग्रहण से उवारा था, और जो उसके लिए प्राणो पर खेला था। इसके अनतर चादा ने लोरिक से उसके प्रेम-निवेदन की सत्यता का प्रमाण चाहा, और उसके उत्तर मे लोरिक ने वह प्रमाण प्रस्तुत किया। [कवि के प्रेम-दर्शन को भली-भाति समझने के लिए यह सवाद अत्यधिक उपयोगी है और वाद के शीर्षक मे विस्तार से इसका विश्लेषण किया गया है, इसलिए इसे वहा देखा जा सकता है।] लोरिक ने कहा कि ज्योनार के दिन उसको जव उसने देखा था, उसके स्नेह ने उसे अभिभूत कर लिया था, उसके स्नेह का विटप उसके हृदय मे उसी दिन आ लगा था, वह विटप धरती से आकाश तक वढकर ही रहने वाला था, भले ही उसके कारण उसका जीव जाता। चादा ने भी स्वीकार किया कि उसकी

विजय-सवधी शोभा-यात्रा मे जिस दिन उसे उसके दर्शन हुए थे, उसी दिन उसने उसके पेट मे प्रविष्ट होकर उसके प्राण निकाल लिए थे, और ज्यौनार भी उसी ने उसे भरपूर देखने के लिए कराई थी। इस समय जो कुछ उसने किया था, वह उसके स्नेह की परीक्षा मात्र लेने के लिए किया था।

१३. चादा-लोर-मिलन खड (कड० २१२–२२५)

चादा के इस अमृत-वचन को सुनकर लोर प्रसन्न हो गया, और उसने चादा का अचल पकडा, किन्तु ऐसा करते ही चादा का मुक्ता-हार टूट गया। चादा ने उसके मोतियो को वीन कर देने के लिए कहा, जिसमे वह रात वीत ही गई, दिन हुआ तो चादा ने उसे शैया के नीचे छिपा दिया। दूसरी रात को कुछ कथोपकथन होने के वाद शैया मे दोनो मिले और 'काम-तृप्ति-लाभ कर दोनो वहुत अपूर्व हो गए, उनके पचभूत और आत्मा शीतल हो गए।' दूसरे दिन भी चादा ने लोरिक को शैया के नीचे छिपा रक्खा। किंतु चादा की सखियो ने उसकी अस्त-व्यस्त वेप-भूपा के साथ ही देखा कि उसके नेत्र आनद से रतनारे हो रहे थे, जैसे उन्होने तावूल खाया हो, अत वे समझ गईं कि फूल पर भ्रमर वैठ चुका था। यह भाप कर चादा ने वहाना किया कि रात मे उस पर विल्ली कूद पडी थी, जिसके कारण ऐसा हो गया था। जब यह समाचार उसके माता-पिता को मिला, वे भी कन्या को देखने आए। लोरिक इन परिस्थितियो मे शैया के नीचे पडा हुआ अपनी आसन्न-मृत्यु की कल्पना कर रहा था, उसका रक्त सूख गया था, विना जीव का हुआ वह अपनी काया को भी न जान रहा था। जब पुन रात्रि हुई, चादा ने अमृत छिडक कर उसको जीवित किया। अपनी मृत्यु को लोरिक अपने नेत्रो से देख चुका था जो कि, यह आश्चर्य की वात थी, आकर लौट गई थी। चादा ने उसे ढाढस दिया, कि वह अपने मन मे चिन्ता न करता क्योकि अब वह उसकी विवाहिता-जैसी हो चुकी थी। चादा उसे पहुचाने आई, तो पौरिया पैरो की आहट पाकर जाग पडा, चादा उसे छिपाते हुए वोली कि वह चेरियो को फूल वीनने को फुलवाडी मे भेजने के लिए वुलाने जा रही थी, यह सुनकर पौरिए ने पौरी खोल दी और लोरिक वीर भाग निकला। चादा जब पुन अपनी चौखडी पर चढ गई, पौरी लगा दी गई। जब लोरिक घर पहुचा, तो मैंना ने प्रश्न किया कि रात उसने किस नारी के गले मे वाहे डाल कर व्यतीत की थी, लोर ने कहा कि उसने राधा की रास कछाई थी, उसी को देखते-देखते रात वीत गई थी। चादा ने धवलगृह पर चढ कर देखा कि लोरिक अपने घर पहुच गया था। फिर उसने ग्रह-नक्षत्रो की स्थिति को

देखकर समझ लिया कि दोनो गगा को पार कर जब हरदी जाएँगे, तभी वे मिल सकेगे।

१४ मैना समाधान खड (कड० २२६–२४३)

चादा-लोरिक का यह प्रेम-प्रसग गोपित न रह सका था, मैना ने सुना तो लोरिक से साकेतिक रूप से अपनी व्यथा उसने कही। खोलिन ने मैना से उसकी प्रत्यक्ष व्यथा का कारण पूछा। चादा-लोरिक के प्रेम की चर्चा की ओर उसने सकेत किया, फिर उसे वताया कि किस प्रकार भ्रमर कमल-कलिका की वात भी नही पूछता था और केतक (केवडे) की सुगध पर अनुरक्त हो गया था [जिससे वह अपने को संकट मे डाल रहा था]। खोलिन से फिर उसने वताया कि लोरिक चादा की अटा पर जाकर उससे रमण करता है, और समझाने पर भी नही सुनता है। रात बीतने पर लोरिक लौटा, तो देखा कि मैना रुष्ट थी और रो रही थी। लोरिक को यह अनुमान हो गया कि मैना ने उसके नए प्रेम-प्रसग के विपय मे कुछ सुना था और उसकी मनुहार करने लगा। मैना ने जव चादा के साथ उसके प्रेम-प्रसग की चर्चा चलाई, उसने स्वर्ग जैसे धवलगृह पर पहुँचने की असभावना का कथन किया, और कहा कि इस प्रकार यदि वह उसे स्वर्ग भेज रही थी तो उससे मिलना कैसा था ? जव खोलिन ने लोरिक के आने का समाचार पाया, वह दौडकर आई और उसने बुरा-भला कहकर दोनो मे मेल कराया। मैना ने फिर लोरिक को चादा से प्रेम करने का उलाहना दिया, तो लोरिक ने कहा कि केवल दूसरो के कहने पर वह न जाए, क्योकि उससे अधिक कोई भी स्त्री उसके मन मे स्थान नही पा सकती थी। मैना ने इस पर चादा की तुलना मे अपने सौन्दर्य की अधिकता वताई, तो लोरिक ने उसे शात किया और मैना ने भी उसका स्नेह-सत्कार किया। किन्तु घर से वाहर होते ही लोरिक पुन जैसे का तैसा हो गया।

१५ चादा-मैना-विवाद खड (कड० २४४–२६५)

आषाढी आई तो गोवर की अन्य स्त्रियो के समान चादा भी मनोकामना-पूर्ति के अभिप्राय से सोमनाथ की पूजा के लिए अपनी सखियो को लेकर सोमनाथ के मदिर मे गई। सुन्दरी चादा को देखकर देवता की सुधि-वुधि जाती रही। लोरिक को पति के रूप मे प्राप्त करने के विषय मे उसने देवता से मान्यता की। तव तक अपनी सखियो की टोली लेकर मैना भी वहाँ जा पहुची, जो शोक-सताप के कारण कृष्ण वर्ण की हो रही थी। उसने देवता की पूजा कर उससे याचना की कि जो स्त्री अपनी शैया को छोड कर अन्यत्र दौडती

रहती है, उसे वह खा जाए। जब चादा और मैना मिली, उनमे विवाद छिड गया। फिर दोनो मे हाथा-पाई की नौबत आ गई, जिसके परिणाम-स्वरूप दोनो के आभरण और वस्त्र टूटे और फटे और चादा घर जाने को लौट पडी। यह देखकर मैना ने चादा का चीर पकड कर खीचा, तो वह विवस्त्रा हो गई। मैना ने जब जी-भर उसकी दुर्गति कर ली, तब उसका रोष ठडा हुआ। किन्तु वे पुन परस्पर भिड गई। वे ऐसी विवस्त्रा हो रही थी जैसे वे नदी या सरोवर मे डूबने चल पडी हो। तब तक लोरिक आ पहुँचा था। उसने दोनो को समझा-बुझाकर शात किया और दोनो को अकवारो मे भरा। दाऊद ने लिखा है कि ये छद उसने सवार कर [किन्ही] सिराजुद्दीन से कहे हैं।[२७]

१६ चादा-लोर परदेश प्रस्थान खड (कड० २६६–२८०)

चादा इस प्रसग से अत्यधिक व्यथित हो कर घर गई, क्योकि अब उसके मुख मे ऐसा कालिख लग गया था जो धोया नही जा सकता था। मैना हसती हुई घर आई, क्योकि उसने भरपेट चादा का पानी उतारा था। खोलिन के पूछने पर उसने सारा प्रसग सुनाया। तदनतर मैना ने अपनी मालिन को बुलाया और उसे चादा के सबध का उलाहना देने के लिए उसकी माता के पास भेजा। उसने जाकर चादा-मैना के बीच मदिर मे हुए कलह की चर्चा की। फूला महरी को अत्यधिक दुख हुआ, वह पछताने लगी कि ससुराल से चादा बुलाई ही क्यो गई थी? तदनतर उसने लौट कर मैना से बताया कि इस लोकोपवाद से महरी दुखित हुई। उधर चादा ने भी समझ लिया इस अपवाद के बाद उसका गोबर रहना ठीक नही था, इसलिए उसने बृहस्पति से लोरिक को कहलाया कि वह रातो-रात उसको लेकर निकल भागे, नही तो सवेरा होते ही वह विष खाकर प्राण त्याग देगी। बृहस्पति ने जब लोरिक को चाँदा का यह सदेश सुनाया, तो उसने वर्षाकाल मे यात्रा की कठिनाइया बताते हुए शरद, शिशिर, हेमत अथवा बसत ऋतु मे चलने के लिए कहा। उसने जाकर चादा से लोरिक की बात कही, जिस पर चादा सहमत नही हुई और उसने बृहस्पति को पुन लोर के पास भेजा। बृहस्पति ने पुन जाकर चादा को निकल भागने की व्यग्रता का निवेदन किया, तो लोरिक ने पडित से दूसरे ही दिन का मुहूर्त लेकर प्रस्थान करने का वचन दिया।

---

२७ प्रसग की जिस प्रकार समाप्ति की गई है, उससे लगता है कि यह प्रसग पूरे एक खड का विषय था।

सवेरा होने पर लोरिक ने पडित से मुहूर्त लिया। रात होने पर लोरिक पुन वरहे की सहायता से धवलगृह पर चढ गया, चादा पहले से तैयार बैठी थी। वह लोरिक के पैरो पर गिरी और लोरिक ने उसे उठा कर मत्थे से लगाया। तदनतर अपनी [नवजीवन-] यात्रा पर वे दोनो निकल पडे।

१७. कुवरू-भेट खड (कड० २८१–२८५)

चादा और लोरिक काले झगे पहन कर निकले तथा ओडन-खाडा-लोरिक ने और धनुष चादा ने लिया। दस कोस जाने पर लोरिक का भाई कुवरू मिला। कुवरू ने कहा, "लोरिक तुमने यह अच्छा न किया कि तुम महर कन्या को लेकर भाग निकले। ' तुम्हारी बूढी माता खोइलिन और बाल्यावस्था की तुम्हारी विवाहिता मैना चिल्ला-चिल्लाकर तुम्हारे विरह मे मर जाएगी।" चादा ने कहा, "मैं लोरिक को जीते-जी न छोड़ूँगी।' 'वह मेरे और मैं उसके चित्त मे वस रहे है, इस यात्रा मे हम देशान्तर भी देख लेगे।" इस पर कुवरू ने कहा, "तुझे तो काला मुख करके फिरना चाहिए, ऐसा तेरा आचरण है।" लोरिक ने कुँवरू को गले लगाया और वह रोने लगा। फिर कुँवरू उसका गला छोडकर उसके पैरो पडा। लोरिक ने कहा, "कार्तिक मास की ऋतु का उत्सव मनाकर हम लौट आएगे। अब हम हरदी के मार्ग पर है, विदा दो। मा से कहना कि मैना पीहर न जाने पाए और उसकी सेवा मे रहे।"

१८ वावन-युद्ध खड (कड० २८६२–९६)

सध्या होने पर वे गगा के तट पर पहुच कर एक वृक्ष के नीचे सो रहे। गगा वढ रही थी और उसे पार करना था, इसलिए लोरिक-चादा ने एक छलपूर्ण युक्ति का आश्रय लिया—वह छिप गया और चादा वार-वार अपने-आप को दिखाने लगी कि उसे अकेली देखकर कोई नाव वाला आ जाता। एक नाव वाला जव अपनी नाव के पास आया, तो उसे चादा ने कगन दिखाया। उसे देखते ही नाव वाला वहा आ गया। दोनो नाव पर चढ गए, उन्होने नाव वाले को वही छोड दिया और करिये (डाडे) को लोरिक ने अपने हाथो मे कर लिया इस प्रकार दोनो गगा को पार कर गए। तव तक पीछा करता हुआ वावन नदी-तट पर आ पहुँचा, केवट ने उसे वताया कि वे उसकी नाव लेकर नदी पार कर गए थे। वावन लोरिक को नदी के उस पार देखकर नदी मे कूद पडा। किन्तु उस ने जव तक नदी पार की, चादा-लोरिक चार कोस आगे जा चुके थे। वावन ने दौडकर दस कोस पर उन्हे पकडा, जहाँ पर एक ऊचा वृक्ष था। वावन ने वाण चलाया, जिससे लोरिक का

ओडन फूट गया, लहावट फूट गया। लोरिक एक आम के वृक्ष की आड मे जाकर खडा हो गया। चादा ने कहा, "हे वावन, जव विवाह के अनतर मैं तेरे पास वरस-दिन तक रही और तूने प्रेम पूर्वक वात न की, तरस-तरस कर मैं मर गई और तेरी शैया न मिली, जैसी आई थी, वैसी ही मायके गई, तव जो मेरे भाग्य मे लिखा था वह मुझको मिला। तू अव अपने घर को वापस जा, समझ ले कि यह वह कूकू लोर है जिसने राव रूपचद और वाठा को मारा है।" किन्तु वावन ने लोरिक के साथ भाग निकलने के लिए उसे लज्जित करते हुए एक वाण और छोडा जो वृक्ष को फाडता हुआ निकल गया। चादा ने उसे पान के देवकुल (मदिर) का आश्रय लेने की राय दी। वावन के पास तीन ही वाण थे, जिनमे से दो को वह पहले छोड चुका था, शेप एक को भी उसने छोड दिया, किन्तु वह वाण उड (चूक) गया। चादा ने कहा, "शुक्र (काना वावन) अव अस्तमित हुआ और सूर्य (लोरिक) प्रकाशित हुआ।" वावन ने तव धनुप फेक दिया और दोनो को शाप दिया, "मेरी विवाहिता होने पर भी इसे तुम ले जा रहे हो और यह तुम्हारे साथ जा रही है, इसलिए तुम, ऐ लोरिक, यमपुर मे राज्य करोगे और चादा को साप डसेगा।" वावन ने एक वार उन्हे यह भुलावा देकर लौटाना चाहा कि वे दोनो स्त्री-पुरुप होकर रहेगे और वह इसमे कोई दखल न देगा, किन्तु चादा ने कहा, "जिसकी विवाहिता ली जाए, उसकी प्रतीति न करनी चाहिए," और, यह कहते हुए वे आगे वढे।

१९ कलिग-युद्ध खड (कड० २९७–३०७)

जव वे कलिग के राज्य मे पहुचे, उन्हे वोदई नाम का एक दानी (कर उगाहने वाला) मिला, जो कर के रूप मे चादा को मागने लगा। लोरिक अर्थ-कर देने लगा, किन्तु उसने उसे स्वीकार न किया। यह देखकर लोरिक और चादा दोनो युद्ध के लिए तैयार हो गए। उन्होने विपक्ष के सभी जनो को मार गिराया। जव वोदई ने लोरिक को पहचान कर उससे जीवदान मागा, उसने उसका मुख काला कर और उसके वालो मे वेल वाधकर उसे राजा के पास भेज दिया। वोदई राजा के पास पहुचा और उसने सारी घटना सुनाई। राजा उसको आगे करके चला। सयानो ने इस पर राजा से कहा, "कोई परदेशी यदि आता है, तो उससे इस प्रकार की छेड-छाड न करनी चाहिए, क्योकि यदि हार हो जाती है तो मुख काला होता है, अत ऐसे वीर क्षत्रिय को वहुतेरे पसाव के साथ बुलाकर रखिए और फिर वह जहां जाए, जाने दीजिए।" सयानो की वात मान कर राजा ने लोरिक-चादा को आदरपूर्वक

बुलाया और उस दानी को जो उन्होने दडित किया था, उसका समर्थन किया। लोरिक ने राजा के न्यायी होने की सराहना करते हुए उन्हे हरदी भेजने का अनुरोध किया। राजा ने उन्हे रुकने के लिए कहा, किन्तु वे न रुके।

२० प्रथम सर्पदश खड (कड० ३०८–३१२)

राजा ने चादा और लोरिक को सुखासन और घोडे पर बिठाकर विदा किया। वे वहा से आकर [कलिंग देश मे ही] एक ब्राह्मण के घर पर ठहरे। वे फूलो की शैया विछा कर सोए तो फूलो की वासना से एक सर्प आ गया और उसने चादा को डस लिया। चादा ने जब पुकार की तो लोरिक ने उठकर उस सर्प को मार डाला। किन्तु चादा तब तक निर्जीव हो चुकी थी। चादा को जीवित करने का कोई उपाय न चल सका, तो लोरिक ने चिता तैयार की और लाकर उस पर आग रखी कि वह चादा के मृत शरीर को लेकर जल जाए, किन्तु तब तक एक गुणी आ गया जिसने चादा को जीवित कर दिया। लोरिक ने चादा के समस्त आभरण उसे दे दिए। तदनतर चादा को सुखासन पर चढा कर वह आगे बढ़ा।

२१ द्वितीय सर्पदश (बिसहर) खड (कड० ३१३–३२९)

[यही एकमात्र खंड है जिसका नाम मिला है, और यह नाम मिला है मैं० के फारसी शीर्षक मे जो स्वीकृत कडवक ३२९ के साथ उसमे मिलता है।]

खा-पीकर जब दपति सो गए, तो रात्रि के अन्तिम प्रहर मे एक विषधर आ निकला और उसने चादा को डस लिया। वह लोरिक को जगा कर इतना ही बता पाई थी और अचेत हो गई। विलाप करते हुए लोरिक ने कहा, "जिस चादा के लिए अनेक बार इस जीवन का तिरस्कार कर चुका हू, जिसके लिए युद्ध मे प्रवृत्त होकर मैंने बाठ को मारा और रूपचद को सीधा किया, रुग्ण होकर खाट पर मैं पडा, पुन योगी बनकर भिक्षा मागी, और एक वर्ष तक देवालय मे जागता रहा, बरहा फेक कर धवलगृह पर गया और अपने सिर की बाजी लगाकर उसको लाया, 'चोर-चोर' की पुकार होने पर पकडे जाने और प्राण-दण्ड पाने से बचा, अब उसी स्त्री को मैं बनखड मे पहुच कर गवा रहा हू।" एक पूरा दिन और एक पूरी रात गए, तो लोरिक ने चिता बनाई और चादा को सिर पर ले जाकर उस चिता पर रक्खा, किन्तु उसके आसुओ से चिता की आग बुझ-बुझ जाती थी, तब-तक एक गुणी आ पहुचा। सर्वस्व समर्पित करने का वचन देकर लोरिक ने उससे चादा को जिलाने का निवेदन किया। उस गुणी ने मत्र का उच्चारण कर जैसे ही पानी छिडका, चादा चेत मे आ गई। इस पर लोरिक ने चादा के और अपने आभरण एव अन्य

वहुमूल्य पदार्थ उसे दे दिए । दाऊद कवि ने कहा है "इस खड मे उसने चादा की कथा इसलिए गाई है कि कथा-काव्य करके वह लोक को सुनाए । नथन मलिक ने यह दुःख का प्रसग उठाया था, उन्ही को इमलिए ये छद (इस खड के छद) सुनाए हैं ।"[२८]

२२ हरदीं-पाटन-निवास खड (कड० ३३०–३३८)

चौदह कोस आगे वढने पर वे हरदी पाटन पहुचे । वहा का राजा छेतम आखेट के लिए निकल रहा था, तभी लोरिक ने उसे जुहार की और नगर देखने को आगे वढ गया । राजा ने एक नाई उसे ले जाकर आवास देने के लिए नियुक्त कर दिया । वह उन्हे एक राजभवन मे ले गया और उससे आवश्यक जानकारी प्राप्त की । आखेट के अनतर जव राजा लौटा, नाई ने उसे उनके वारे मे जो कुछ ज्ञात हुआ था, वताया । उसने कहा कि वह गोवर का योद्धा लोरिक था और जिसके कारण राव रूपचद को इसने मारा (मार भगाया) था, वह चादा नारी [उसके साथ की स्त्री] थी । दूसरे दिन लोरिक राजा को भेंट देने आया, तो छेतम ने सम्मानार्थ निकट बुला कर उसे वाना (पहनावा) दिया और प्रसन्न होकर एक घोडा दिया । इस घोडे को पाकर लोरिक हर्षित हुआ । इस प्रकार एक वर्ष तथा कतिपय मास तक दोनो ने वहा सुख-पूर्वक निवास किया ।

२३ मैना-सन्देश-निवेदन खड (कड० ३३९–३६२)

इधर मैना निरतर रोती और लोरिक की वाट जोहती रहती । वह उन पथिको का मार्ग देखती रहती जिनसे उसे लोरिक का कुशल-समाचार मिल सकता । एक दिन उसने एक टाडे (सार्थ) के आने की वात सुनी । खोलिन ने उसके नायक को बुलाकर पूछा कि वह कहा का निवासी था और कहा जा रहा था । उसने वताया कि वह गोवर का था, सुरजन उसका नाम था और वह हरदी पाटन जा रहा था । पाटन का नाम सुनते ही खोलिन रो पडी और मैना नायक के पैरो पर गिर पडी । मैना ने वताया कि उसका स्वामी एक वर्ष से [एक अन्य स्त्री] चादा के साथ हरदी पाटन मे रह रहा था, उसी के पास वह सन्देश भेजना चाहती थी । उसने उससे सावन मास से लेकर आषाढ तक के वरस-दिन के कष्टो का वर्णन किया ।

तदनतर उसने चादा के लिए उसे सन्देश दिया । उसने कहा, "उसके

---

[२८] प्रसग की इस प्रकार की समाप्ति से यह स्पष्ट लगता है कि प्रसग एक स्वतत्र खड का विषय था ।

जिस स्वामी के लेकर उमने छ ऋतुओ तक शैया सूनी कर रखी थी, उसे वह दक्षिणा के रूप मे ही दे देती। वह भी स्त्री थी, इसलिए उसे तो समझना चाहिए था कि पति के न होने पर स्त्री का हृदय रात्रि मे किस प्रकार फटता है।" खोलिन ने भी उससे अपने हृदय की पीडा कही, उसने कहा, "मेरा जीवन तो [सध्या की] पीली धूप है·· ·· वह अस्त हो जाएगी तो तुम आकर भी क्या करोगे ?"

२४ सदेश-प्राप्ति तथा स्वदेश-आगमन खड (कड० ३६३–३८०)

चार मास तक चलने पर टाडा हरदी पहुचा। सुरजन भेट की वस्तुएँ लेकर उस राज-भवन की पौरी पर पहुचा जिसमे लोरिक निवास कर रहा था। लोरिक पौरी पर आया, तो ब्राह्मण ने उसे अनेक अशीर्वाद दिए, और उसके ग्रह-नक्षत्रो की गणना करके उनके फल कहते हुए सकेतो मे यह भी कहा कि वह पापकुड (पर नारी का ससर्ग) छोड कर शुद्ध गगा नहाएगा (विवाहिता के साथ रहेगा)। सुरजन ने पुन कहा, "तेरा भाई कुवरू, तेरी माता, तेरे कुटुवी और तेरी पत्नी मैना—सभी तेरी वाट देख रहे है, मैना तो तेरी विरह-ज्वाला मे सवसे अधिक जल गई है। तुझे उससे डरना चाहिए जो अपना विवाहित पुरुष छोड कर दूसरे पुरुप को लिए बैठी है।" फिर उसने वताया कि किस प्रकार उसको वुला कर उन्होने सन्देश दिए, और मैना किस प्रकार उसके साथ आने का हठ कर रही थी, जव खोलिन ने उसे समझा कर शान्त किया। मैना का यह सताप सुनकर लोरिक रोने लगा, और दूसरे ही दिन उसके साथ स्वदेश के लिए प्रस्थान करने को तैयार हो गया। किन्तु चादा ने जव यह सुना, उसकी दशा ऐसी हो गई जैसी चाद की ग्रहण होने पर होती है। लोरिक ने ब्राह्मण को लेकर भोजन किया, किन्तु चादा उपासी रह गई।

सवेरा होने पर लोरिक ने पाटन-राज से विदा ली। पाटन-राज ने सम्मान पूर्वक उसे दो सौ पदातिको के साथ विदा किया। चादा ने गोवर जाने से उसे वहुत रोका, और हरदी वापस जाने का उमसे वहुतेरा आग्रह किया, किन्तु लोरिक ने उसकी एक न सुनी।

२५ मैना-सतीत्व-परीक्षा खड (कड० ३८१–३९३)

पचास कोस चलकर गोवर के निकट देवहा मे लोरिक-चादा उतरे। लोरिक ने सवेरा होने पर एक माली को वुलाया और उसे कुछ फूल देकर गोवर मे भेजा। वह गोवर मे घर-घर फूल देता फिरा, किन्तु जव वह मैना के पास पहुचा, तो उसने यह कह कर उसे स्वीकार नही किया कि उसका पति

परदेश गया हुआ था। फिर भी, हठपूर्वक माली ने उसके गले मे एक पुष्प-हार डाल दिया। उसमे मैना को कुछ वैसी वासना मिली जैसी उसे केवल लोरिक के लाए हुए फूलो मे मिलती थी, इसलिए रोते हुए वह उससे पूछने लगी कि उसका परदेशी प्रिय कहा पर आया हुआ था। उसने उत्तर दिया कि वह स्वय परदेशी था, किन्तु उसके साथ अन्य लोग भी ठहरे हुए थे जो विभिन्न स्थानो से आए हुए थे, सभव था कि उनसे उसके परदेशी प्रिय का कोई समाचार मिल जाता, यदि वह सवेरे ही दूध वेचती हुई वहा आ जाती। लोरिक ने इस प्रकार माली द्वारा उसे वहा आने के लिए प्रेरित कर ग्वालिनो से दूध-दही लेने का प्रवध किया। जो महरिया आई, उनके सिर मे सिंदूर डलवा कर और उन से दूध-दही लेकर उन सभी को जाने दिया, और जब मैना आई, चादा से उसके माग मे सिदूर डालने और उसके दूध-दही का दस गुना दाम देने के लिए कहा। किन्तु मैना सिंदूर कराने के लिए तैयार नही हुई, क्योकि, उसने कहा, उसका पति हरदी गया हुआ था, और उसके न होने के कारण उसे इस प्रकार की साध नही होती थी। फिर भी लोरिक मैना को जाने नही दे रहा था, और छेड-छाड कर उसका मर्म ले रहा था, मैना ने उसे इसके लिए झिडक दिया और वह चल पडी, तो चादा उसको लेकर पलग पर अपने साथ विठाने लगी, किन्तु मैना दूसरे दिन पुन आने का वचन देकर चली गई। दूसरे दिन वह पुन आई, जैसे और महरिया आईं। चादा ने भीतर बुला कर पुन उसकी उदासी के सवध की वात चलाई, तो मैना ने कहा कि उसके दु ख-सताप का कारण एक चादा थी जो वरस-दिन पूर्व उसके पति को भगा ले गई थी, और वह यदि मिल जाती तो उसका मुख काला कर वह उसे सर्वत्र घुमाती। चादा ने इसके उत्तर मे जब अपनी वडाई वताई, तव दोनो एक-दूसरे को पहचान गईं और आपस-मे झगडने लगी। लोरिक ने दोनो को शात किया। चेरियो से उसने मैना का शृगार करने को कहा और उसे रात के लिए वही रोक लिया। नहला कर मैना का शृगार किया गया और रात्रि मे लोरिक ने उसके पास जाकर उसकी मनुहार की।

२६. गृह-आगमन खड (कड० ३९४–३९७)

यह अपयश की वात गोवर भर मे फैल गई कि मैना पिछली रात को किसी परदेशी के साथ रह गई थी। खोलिन अजई के घर यह समाचार लेकर गई, तो अजई निकल कर वहा गया। लोरिक पर उसने खाडे का प्रहार किया, किन्तु उसके आघात से ज्यो ही लोरिक का टाटर टूटा, अजई पहचान गया कि यह लोरिक था। फिर उसने लोरिक को अको मे भरा और

घर चलने को कहा। लोरिक घोडे पर चडा हुआ घर आया, माता के चरणो मे पडा और उससे क्षमा-याचना की। माता ने कहा ऐसा कर उसे वह दु खित न करता। तदनतर दोनो वहुओ को खोलिन घर के भीतर ले गई। गीत गाए गए और वधावे हुए। लोरिक ने माता से अपनी अनुपस्थिति के वीच के समाचार पूछे, तो उसने वताया कि उसके जाने पर वावन आया था, जो मैना और वैना को निकाले ले जा रहा था, अजई ने उन्हे छुडाया। तव महर ने माकर को कहला भेजा कि लोरिक के न होने पर यह अच्छा अवसर था कि वह उसकी गायो को हाक ले जाता, [शोक मे] दुर्वल कुवरू उसके समक्ष क्या था ? यह सुनकर माकर एक कटक लेकर आ गया। अकेला कुवरू क्या कर सकता था ? वह लडते-लडते मारा गया। जव महर ने यह समाचार एक नाई से पाया, उसको उसने वस्त्र पहनाए। एक दु ख तो उसे उस (लोरिक) का ही था, दूसरा जव कुवरू के मारे जाने का लगा, वह दिन भर रोती और रात भर जागती रहती थी।

२७ अत खंड (कड० ३९८–)

रचना का यह अश अनुपलब्ध है। रचना के लोक-गाथा-रूप के अनुसार ऊपर लिखा विवरण पाने पर लोरिक माकर के घर पर जाता है और उसे युद्ध के लिए ललकारता है, दोनो मे युद्ध होता है, जिसमे माकर मारा जाता है। तदनतर माकर के वेटे देवसिया से उसका युद्ध होता है, जिसमे एक क्षेत्रीय रूप के अनुसार लोरिक मारा जाता है, और एक अन्य क्षेत्रीय रूप के अनुसार वह विजय प्राप्त करता है, किन्तु उसके अनतर किसी अन्य कारण मे वह काशी जाकर करसी सीझ जाता है (अपने चारो ओर उपले जला कर जल मरता है)। दाऊद ने अपनी रचना मे लोक-गाथा से स्थान-स्थान पर भिन्नता भी रखी है, इसलिए यदि इस अत के विषय मे अतर हो, तो आश्चर्य न होगा। हरदी मे सुरजन ने उससे भविष्य-कथन करते हुए कहा है—"राजा चद्रु पाट वइसारा, मति विरसपति सुरिजु उभारा।"[२९] यह कथन किस रूप मे चरितार्थ हुआ होगा, यह स्पष्ट नही है, किन्तु इसका सवध कथा के इस अश से ही है, यह स्पष्ट ज्ञात होता है। इसी प्रसग मे चादा की षष्ठी के अवसर पर का ज्योतिषियो का यह कथन भी विचारणीय है कि जीवन के ऊर्ध्व मे ही वह मृत्यु को प्राप्त होगी उरधइ सौ जाइहि जम वारा।[३०] फलत ज्ञात होता है कि गोवर का राज्य प्राप्त कर जीवन के

[२९] चांदायन ३६९। [३०] वही, ३३।

ऊर्ध्व मे ही किसी कारण-वश, असभव नही कि लोरिक के मृत होने पर चादा, और कदाचित् मैना ने भी, देह-त्याग किया ।

रचना की कथा का आधार क्या है, यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है । कथा का मूल आधार निस्सदेह आभीरो की वह जातीय लोक-गाथा है जो 'लोरिकी' और 'चनैनी' के नामो से अधिकाश हिन्दी-क्षेत्र मे प्रचलित रही है । इसके अनेक क्षेत्रीय रूपो का पता चला है और 'मध्ययुगीन प्रेमाख्यान' के योग्य लेखक डॉ० श्याममनोहर पाण्डेय अमरीकन इस्टीट्यूट आव इडियन स्टडीज़ की आर्थिक सहायता से एक विशाल परियोजना विगत दो वर्षों से चला रहे है, जिसमे इन समस्त विभिन्न रूपो को वे गायको के कण्ठ से टेप-वद्ध कर रहे हैं, वाद मे वे इन विभिन्न रूपो का विश्लेपण कर इनके प्राचीनतम रूप की स्थापना करेगे और दाऊद के 'चादायन' का उनसे क्या सवध है, इसे स्थिर करेगे । उसके कुछ क्षेत्रीय रूपो के सक्षेप विभिन्न विद्वानो और लेखको ने दिए हैं । नीचे खड क्रम से हम देखेगे कि 'चादायन' की कथा के कौन से तत्व इन लोक-गाथा रूपो से विशिष्ट है ।

खड १ यह कवि का अपना है । इसमे स्तुतियो के अनतर उसने अपनी रचना के सवध मे उसका रचना-काल आदि दिया है, किन्तु उसके आधार का उल्लेख नही किया है । कथा का कोई भाग इस खड मे नही आता है ।

खंड २ यह भी कवि का अपना है । कथा के लोक-गाथा रूपो मे गोवर-वर्णन जैसी कोई वस्तु नही मिलती है, दो-चार पक्तियो मे गोवर की प्रशसा भले ही मिल जाए ।

खंड ३ पद्मिनी के रूप मे चद्र का अवतार 'चादायन' के कवि की अपनी कल्पना है । वारह मासो की होने पर ही उसके सौन्दर्य का ख्याति देश-विदेश मे होने लगती है, यह भी उसकी अपनी ही कल्पना है । वावन मिउहर से उसका विवाह लोक-गाथा की वस्तु है ।

खंड ४ वावन के द्वारा चादा की उपेक्षा लोक-गाथा की ही वस्तु है किन्तु उसका अपने भाई को वुलाकर पीहर जाना 'चादायन' का अपना है । लोक-गाथा रूपो मे वह अकेली चली जाती है । पीहर जाने पर उसका जो वर्णन शीत, ग्रीष्म तथा वर्षा के सदर्भ मे किया गया है, वह भी 'चादायन' का अपना है ।

खंड ५ वाजुर-मूर्च्छा का सारा प्रसग 'चादायन' का अपना है और निस्सदेह कवित्वपूर्ण ढग से प्रस्तुत किया गया है—विशेप रूप से प्रहेलिका की सहायता से उसका चादा के अपरूप का कथन । वाजुर नाम अवश्य किसी

लोक-गाथा रूप से लिया हुआ हो सकता है। मैथिली गाथा-रूप मे 'बाजिल' उस सदेश वाहक कौवे का नाम बताया गया है जो मैना का सदेश लेकर उस समय लोरिक के पास गया था जब वह हरदी मे था। सभवत वही नाम 'चादायन' मे उस भिक्षुक का रख लिया गया है, जिसकी मूर्च्छा का इस खड मे उल्लेख होता है।

खंड ६ · रूपचद के सम्मुख वाजुर द्वारा चादा के रूप-शृगार-वर्णन की कल्पना 'चादायन' की अपनी वस्तु है। लोक-गाथा रूपो मे न रूपचद मिलता है और न वाजुर द्वारा चादा के रूप-शृगार-वर्णन का प्रसग आता है।

खंड ७ प्राय समस्त लोक-गाथा रूपो मे वाठा चादा से छेड-छाड करता दिखाया जाता है, जब वह पीहर लौटती हुई चादा को मार्ग मे मिलता है। 'चांदायन' मे राव रूपचद वाठा को लेकर चादा के लिए उसी प्रकार आक्रमण करता है जिस प्रकार अलाउद्दीन ने चित्तौर की पद्मिनी के लिए किया था। उसकी मेना के द्वारा मार्ग मे किया हुआ तहस-नहस भी उसी प्रकार वर्णित हुआ है जैसा कि सुल्तानो के हिंदू राज्यो पर किए हुए आक्रमणो के समय देखा जाता था। मठो-देवालओ-अमराइयो को ढहाना और उनमे आग लगाना रूपचद के सवंध मे उतने तथ्यपूर्ण नही लगते है जितने वे अलाउद्दीन तथा दिल्ली के अन्य कुछ सुल्तानो के सबध मे थे, किंतु इस प्रकार के वर्णन से हिन्दुओ और उनकी धार्मिक संस्थाओ के साथ कवि की सहज सहानुभूति के सकेत अवश्य मिलते है।

खंड ८ गोवर-युद्ध का समस्त विस्तार 'चादायन' की अपनी वस्तु है, जिम प्रकार वाजुर-मूर्च्छा और गोवर-अभियान के प्रसग उसके अपने है। माता, मैना तथा अजई से विदा लेने के अनतर लोरिक का युद्ध मे सम्मिलित होना भी उसका अपना है। वाठा का लोरिक के द्वारा मारा जाना कथा के लोक-गाथा रूपो मे भी मिलता है, किन्तु 'चादायन' मे वह चादा से छेड-छाड करने के कारण नही मारा जाता है, वह तो रूपचद का महता होने के कारण युद्ध मे सम्मिलित होता है और लोरिक द्वारा मारा जाता है।

खंड ९-१० कथा के लोक-गाथा रूपो मे चाद-लोर मे छेड-छाड के प्रसग प्रारभ से ही मिलते हैं दोनो एक ही गाव मे रहते हैं और झूले, होली तथा जल-विहार आदि के गाव के कार्यक्रमो मे वरावर मिलते रहते है। उनमे वावन की उपेक्षा के अनतर चादा अधिकाधिक लोरिक की ओर खिचती जाती है और अन्त मे उसकी हो जाती है। प्रथम दर्शन और पुनर्दर्शन के प्रसग 'चादायन' मे उनके सर्वथा अपने हैं और तत्कालीन सामतीय परिवेशो मे

समाज-वर्जित अनुराग का जो विकास इन प्रसगो के द्वारा प्रस्तुत किया गया है, वह अवश्य ही सराहनीय है ।

खड ११ धवलगृह-आरोहण का प्रसग उसी प्रकार लोक-गाथा रूपो मे भी मिलता है जिस प्रकार वह 'चादायन' मे है, किन्तु चित्रित चौखडी और चादा के विलास के प्रसाधनो का वर्णन 'चादायन' का अपना है ।

खड १२-१३ चादा-लोर मिलन के पूर्व एक विस्तृत सवाद रचना मे आता है, जिससे उसके प्रेम-दर्शन का अच्छा परिचय मिलता है । निस्सदेह रचना का सबसे उपयोगी अश यही है, जो कि उसको कथा के लोक-गाथा रूपो से अलग करता है । इस खड मे मरण-मार्ग से जिस अमरत्व की प्राप्ति कराई गई है वह दाऊद के प्रेम-दर्शन का एक उज्ज्वल उपादान है, जो कि आगे जायमी और मझन की कृतियो मे भी अविकल रूप मे प्रयुक्त होता है ।

खड १४-१५ लोरिक द्वारा मैना का समाधान और चादा-मैना विवाद के प्रसग भी 'चादायन' के अपने है और ये दोनो ही अपने स्वाभाविक परिवेशो मे दिखाए गए है—विशेष रूप से दूसरा ।

खड १६ मालिन द्वारा चादा की मा फूला के पास मैना द्वारा उलाहना भेजे जाने का प्रसग भी 'चादायन' का अपना है । चादा-लोरिक के हरदी-प्रस्थान की बात दोनो मे समान रूप से मिलती है ।

खंड १७ कुवरू से भेट का प्रसग भी दोनो मे समान रूप से मिलता है ।

खंड १८-१९ बावन और कलिग युद्ध के प्रसग भी थोडे से अतर के साथ दोनो मे मिलते हैं ।

खड २०-२१ सर्पदशो के प्रसग भी दोनो मे मिलते है, यह अवश्य है कि द्वितीय सर्पदश (बिसहर) खड मे लोरिक के आत्म-निवेदन-पूर्ण आत्मोत्सर्ग का जो भव्य रूप प्रस्तुत किया गया है, वह कृति का अपना है ।

खड २२ हरदी-निवास का प्रसग दोनो मे मिलता है, किन्तु अन्तर के साथ । लोक-गाथा रूपो मे इसका विकास लोरिक को एक चपल और उद्धत नायक के रूप मे चित्रित करते हुए किया गया है, जो एक ओर एक कलालिन से प्रेम करने लगता है, और दूसरी ओर इतने उद्दडतापूर्ण कार्य करता है कि हरदी के राजा को उससे पीछा छुडाने का उपाय करना पडता है । 'चादायन' मे लोरिक का हरदी-निवास वहा के राजा के साथ सौहार्दपूर्ण है । वह किसी अन्य स्त्री के हाथो मे बिकता भी नही है और मनचाही चादा को पाकर भली भाति सतुष्ट और प्रसन्न है । हरदी के राजा का नाम भी दोनो मे भिन्न-भिन्न है ।

खंड २३ बनजारे के द्वारा सदेश-निवेदन मैना ने लोकगाथा-रूपो मे भी किया है, जिस प्रकार उसने 'चादायन' मे किया है, किन्तु बारहमासे के रूप मे उसका कष्ट-निवेदन और चादा को दिया हुआ उसका सदेश रचना के अपने है, और निस्सदेह कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किए गए हैं। नायक के नाम भी दोनो मे भिन्न-भिन्न हैं।

खंड २४ सदेश-प्राप्ति और स्वदेश-आगमन के प्रसग दोनो मे मिलते हैं, किन्तु ज्योतिप-विचार पूर्वक सुरजन का लोरिक के जीवन का भावी क्रम-निरूपण 'चादायन' की अपनी वस्तु है। हरदी-नरेश से सौहार्दपूर्ण विदा प्राप्त करने का प्रसग भी रचना का अपना है।

खंड २५ मैना-सतीत्व-परीक्षा दोनो मे प्राय समान है, विस्तारो मे कुछ अतर है। माली को फूल लेकर गोवर भेजने और मैना को आमन्त्रित करने का प्रसग रचना का अपना है। चादा-मैना का कलह भी इसी प्रकार उसका अपना है।

खंड २६ गृह-आगमन का प्रसग भी दोनो मे प्राय समान है।

रचना की कथा का शेष अश अप्राप्य है, और उसके निश्चित रूप का अनुमान करना सभव नही है।

इस सबके अतिरिक्त एक बात और विचारणीय है, लोक-गाथा के अनेकानेक कथा-विस्तार रचना मे नही लिए गए है, और उनके छोड देने मे कवि की सुरुचि का ही प्रमाण मिलता है।

फलत हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि रचना के लिए लोक-गाथा की स्थूल रूपरेखा को भले ही ग्रहण किया गया है, उसके विस्तारो को भिन्न ढग से भरा गया है। यह कुल नवीनता दाऊद का निजी कृतित्व है, या कथा से सबधित किसी पूर्ववर्ती कृति का भी इसमे योग है, यह कहना कठिन है। यद्यपि यह असभव नही है, किन्तु जब तक इसके स्पष्ट प्रमाण प्राप्त नही होते है, यही मानना होगा कि यह दाऊद का मौलिक कृतित्व है।

५ रचना का सन्देश

रचना का सन्देश एक विवाद का विषय बना हुआ है। दाऊद ने जिस प्रेम का प्रतिपादन अपनी रचना मे किया है, वह किस प्रकार का है, यह एक विचारणीय प्रश्न है। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए चादा और लोरिक के पूरे प्रेम-प्रसग को देखना पड़ेगा।

रचना मे प्रेम नायिका (चादा) मे पहले-पहल अकुरित होता दिखाया गया है। गोवर-युद्ध के विजेता लोरिक को सम्मानित करने के लिए नायिका

का पिता महर उसकी शोभा-यात्रा का आयोजन करता है, जिसमे लोरिक एक हाथी पर विठा कर राजकीय सम्मान के साथ नगर मे घुमाया जाता है। नगर भर उसे देखने को उमड पडता है—उस लोरिक को देखने के लिए जिसने अपने खाडे की वदौलत गोवर की रक्षा की है, और उसकी भुजाओ की पूजा करता है। यह ध्यान देने योग्य है कि इस युद्ध मे वह किसी कामना के साथ नही प्रवृत्त हुआ था। जहाँ रूपचद ने चादा के लिए गोवर का अभिमान किया था, लोरिक चादा की प्राप्ति को लक्ष्य वना कर युद्ध मे नही उतरा था, वह योद्धा केवल इसलिए युद्ध मे उतरा था कि उसे महर ने एक आक्रान्ता से, जो उसकी कन्या चाहता था, लोहा लेने के लिए आमत्रित किया था। महर के भेजे हुए भाट ने उससे ज्योही कहा था—

लोर महर तुम्ह वेगि हकारे। कुवरू धवरू वाठइ मारे।[31]
जा रवि गोवरु लागि गोहारी। लइ(लेइ) अव चाद होइ अधियारी।[32]

वह आक्रान्ताओ को मार भगाने के लिए उठ खडा हुआ था—

उठ लोरु सुनि नाखा परलै महर भया अवसान।
आज वाठु रन मारउ देखउ राइ परान॥[33]

अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि उसने चादा के सवध के एक अस्फुट स्नेह के कारण अपने प्राणो की वाज़ी लगाई थी, जैसा उसने एक स्थान पर कहा भी है—

तुम्हरिय माख जो दीति न काऊ। मारिउ वाठ खिदेरिउ राऊ।[34]

यद्यपि यह कथन केवल प्रेमिका का स्नेह अर्जित करने के लिए भी किया गया हो सकता है, क्योकि युद्ध-यात्रा के प्रकरण मे इस प्रकार का कोई भाव लोरिक मे नही अकित किया गया है।

इस युद्ध-यात्रा के प्रसग मे महर की सेवा मे भी जव वह उपस्थित होता है, वह किसी रूप मे यह माग नही करता है कि विजयी होने पर उसे चादा दे दी जाए यद्यपि उस युद्ध मे कदाचित् ऐसे भी योद्धा थे जो इसी लक्ष्य से महर की ओर से लडने को प्रस्तुत हुए थे, रणपति नाम का एक कुमार इसी प्रकार लगता है—

रनपति महर दीन्ह अगुसारी। चाह वियाहि आनइ कुवारी।[35]

किन्तु लोरिक ऐसो मे नही था।

---

[31] चांदायन, १०५। [32] वही। [33] वही। [34] वही, २०२।
[35] वही, १२६।

कथा के लोक-गाथा रूपो मे से किन्ही-किन्ही मे यह मिलता है कि चादा और लोरिक मे फाग-झूले आदि के उत्सवो मे स्वच्छद प्रेम के सकेत होते रहते थे, किन्तु दाऊद ने अपने दोनो पात्रो को इससे बचाया है—और निश्चय ही जान-बूझ कर वचाया है। दाऊद की कथा मे तो उनका परस्पर का प्रथम दर्शन ही गोवर-युद्ध के अनतर विजयोत्सव और ज्यौनार के अवसरो पर होता है। इसलिए लोरिक की युद्ध-यात्रा निष्काम है और मात्र धर्म अथवा स्नेह से प्रेरित है।

चादा के मन मे तो रचना मे इस वीर के प्रति किसी प्रकार का स्नेह-भाव पहले से नही दिखाया गया है। जब वह उसकी विजय-सवधी शोभा-यात्रा मे उसका दर्शन करने के लिए धवलगृह के ऊपरी खड पर जाती है, उसमे उस वीर के दर्शनो की एक श्रद्धापूर्ण उत्सुकता भर है, जिसने उसको और उसके देश-ग्राम को उवारने के लिए प्राणो की बाज़ी लगाई है—

सो कस आहि जेइ गोवरु उवारा। कवनु वीर जेंहि कटकु सघारा।
कवनु सिंघु जेंहि गैवरु हना। धनि सो जननि अइस जेइ जना।
पूछेउ (पूछउ) धाइ बचनु सुनि मोरा। एंहि दर कवनु सो कूकू लोरा।[३६]
कवनु रूपु वह मदिर आछइ आखउ बिरस्पति तोहि।
साधि मरित हउ बीरनि लोरु दिखावहि मोहि॥[३७]

लोरिक-दर्शन की उसकी यह साध अवश्य ही बहुत उत्कट है—जो 'मरति हउ' से प्रकट है, किन्तु यह 'साध' अपने त्राणकर्त्ता के दर्शनो द्वारा अपने श्रद्धापूर्ण कुतूहल को सतुष्ट करने के मात्र लिए है, इससे आगे और किसी वात के लिए नही है।

किंतु जव बृहस्पति उसे लोरिक का दर्शन कराती है, वह उसे देखकर विमोहित हो जाती है और वेकरार (वेचैन) भी, उस पर पानी छिडका जाता है, तव वह चेत मे आती है। फिर भी, पून्यो के उस चाद की सोलह कलाए सूर्य (लोरिक) की सहस्र कलाओ की छाया पडने पर तिरोहित हो जाती है और वह अमावस्या की रात्रि हो जाती है—

चादहि लोरिक निरखि निहारा। देखि विमोही गई वेकरारा।
सुरिज सनेह चाद कुविलानी। आइ बिरसपति छिरका पानी।
घरु आगनु सुख सेज न भावइ। चाद उमाही सुरिजु बोलवाइ।
पूनिउ चद्र जइस मुख अहा। गई सो जोति गहन होइ रहा।

---

[३६] वही, १३६। [३७] वही, १३६।

सहस करा सूरिज कइ रही चाद चित छाइ।
सोरह करा चाद कइ भई अमावसि जाइ।।[३८]

ऐसा लगता है कि जैसे उसकी कृतज्ञतापूर्ण श्रद्धा ने उस नीव का रूप ग्रहण कर लिया, जिस पर प्रेम का नव प्रासाद खडा हुआ, अथवा वह वीज का वह पौदा वन गई जिस पर प्रेम के अधिक सुरस फल की कलम लगी। यदि उस अपूर्व पौरुषपूर्ण सौन्दर्य के दर्शन के लिए पहले से उसने मानसिक तैयारी की होती, तो कदाचित् उसे झेल जाती, किन्तु अकस्मात् ही उसका सपूर्ण अस्तित्व उस अप्रतिम पुरुष-सौन्दर्य से अभिभूत हो जाता है, और दूसरे दिन बृहस्पति जव उससे पूछती है—

कहु सो वात जिहि तू असि भई। काहि लागि भरि आकुर गई।[३९]

वह वृहस्पति के पैरो मे पडकर पुन लोरिक का दर्शन कराने को कहती है—

चाद विरस्पति कै पा परी। काल्हि सुरिजु देखिउ एक घरी।
कइ ओहि मोरे घरे वुलावहि। कइ मोहि लइ ओकै डड लावहि।[४०]

लोरिक तो और भी विना किसी तैयारी के—अकस्मात्—चादा का दर्शन करता है, और इसीलिए उसे देखते ही उसके जीव का अपहरण हो जाता है—

अमिरितु जेवन तेहि माहुर भएउ। जीउ काढि हरि चादइ लिएऊ।
मुक्ख न जोति कया अति रूखी। चाद सनेह सुरिजु गा सूखी।[४१]

उसे लोगो को उसके घर तक डाडी पर ले जाना पडता है। वह खाट पर पड जाता है और तभी उठ पाता है जव चाद की धाय वृहस्पति चाद से मिलाने का उसे आश्वासन देती है। उस समय बृहस्पति से भी उसने इस जीवापहरण की वात कही है जो चादा के प्रथम दर्शन का परिणाम था—

जेहि दिन हउ जेवनार वोलावा। महर मदिर काहू दिखरावा।
सो जिउ लइ गइ कही न जाई। विनु जिउ भएउ परेउ घहराई।[४२]

नायिका-नायक मे प्रेम के प्रादुर्भाव का यह रूप रचना की विशेषता है, कथा के लोक-गाथा रूपो मे यह कही नही मिलता है।

इस प्रेम का विकास जिस प्रकार रचना मे होता है, वह भी हमे उस मे ही मिलता है, लोक-गाथा रूपो मे नही। प्रेम-रुग्ण लोरिक को देख कर वृहस्पति ने

---

[३८] वही, १३८। [३९] वही, १४०। [४०] वही, १४०। [४१] वही, १५३।
[४२] वही, १५८।

अनुमान कर लिया कि यदि उसके इस रोग की औपधि न हुई, तो यह जीवित न रहेगा—

विरस्पति देख लोरिक कइ कया। मरन सनेह उठी मन भया।
पाड छाडि लोरिक पिइ पानी। ओषद करउ पीर तोरि जानी।[४३]

यह 'मरण' ही लोरिक की प्रेम-यात्रा का सबसे बडा सवल है, यही हिन्दी सूफी प्रेम-कथाओ मे प्रेमी को अमरत्व प्रदान करता है; इस 'मरण' के आधार पर ही प्रेमी काल से भी नही डरता है, क्योकि उसे विश्वास होता है कि मरे हुए को काल भी नही मारता है। इसी कारण इस 'मरण' को जायसी ने 'उपकार' की सज्ञा से अभिहित किया है। जो दशा लोरिक की यहा पर सौन्दर्य के साक्षात्-दर्शन से हुई है, वही रत्नसेन की शुक-द्वारा पद्मावती के सौन्दर्य-वर्णन को सुन कर होती है, और चेत मे आने के वाद अवन (असुन्दर) जगत् को देख कर रत्नसेन रोने लगता है—

जौं भा चेत उठा बैरागा। वाउर जनहु सोइ अस जागा।
अवन जगत बालक जस रोवा। उठा रोइ हा ग्यान सो खोवा।[४४]

और कहता है—

हौं तो अहा अमरपुर जहा। इहा मरनपुर आएउ कहा।
केइ उपकार मरन कर कीन्हा। सकति जगाइ जीउ हरि लीन्हा।[४५]

इसी कारण वह मृत्यु-जयी प्रेमी काल से भी भय नही करता है—

गजपति यह मन सकती सीऊ। पै जेहि प्रेम कहा तेहि जीऊ।
जौं पहिले सिर दइ पगु धरई। मुए केर मीचुहि का करइ।[४६]
कत तेहि मीचु जो मरि कै जिया। भा अम्मर मिलि कै मघु पिया।[४७]

इन प्रेम-कथाओ मे प्रेमी वार-वार मरता है। रचना मे यह लोरिक का दूसरा मरण है, उसका पहला मरण तो रणक्षेत्र मे हो चुका है। उसने चादा की रक्षा के लिए ही तो उस मरण का वरण किया था, जिसको न उसका विवाहित पति वावन कर सका था और न महर के वे भृत्य कर सके थे जिन्होने सब दिन उससे लाभ उठाए थे—प्राणो का सकट आने पर वे सभी भाग निकले थे।

लोरिक का तीसरा मरण उस समय होता है जिस समय वह वरस-दिन तक तपस्वी के वेप मे आसन मारे और चादा का नाम जपते हुए प्रतीक्षा करने के अनन्तर चादा को नमस्कार करती देखता है—

---

[४३] वही, १६१। [४४] पद्मावत १६१। [४५] वही, १६१। [४६] वही, १४२। [४७] वही, ३०५।

चाद सीसु भगिवतहि नावा। भा अचेतु मन चेतु गवावा।
मुनिवर मन देखन गुन गएऊ। पीत बरन मुख भेभर भएऊ।
नैन झुर्रहि अति कया सुखानी। धनि धानुक चखि हना बिनानी।
नैन दिस्टि चादा मुख लाएसि। रहा पाइ न सो देखइ पाएसि।
भउह फिराइ चाद गुन तानी। नैन बान मुनि हना सयानी।
काटि दीन्ह जस वकर देवारी रगत कीन्ह घर बार।
देखि गई घर धरती मुनिवर देउ दुवार॥[४८]

चादा के चले जाने पर लोरिक निर्जीव-सा पडा-पडा सोचने लगता है—

माता पिता वधु नहि भाई। सगु न साथी मीतु न धाई।
एहि वन खड कोड पास न आवइ। को रे 'मरत' मुखि नीर चुवावइ।
को रे उठाइ वइसार सभारी। एहि कथा गुन देइ हकारी।[४९]

और इसके कुछ समय वाद उसका जीव लौटता है—
दई (दइय) पेट जीउ (जिउ) वहुरि सचारा। बाधेसि सीसु झारि कइ बारा।[५०]

इसीलिए योद्धा और गोवर-युद्ध के विजेता लोरिक के विरह से पीडित चादा ने जव वृहस्पति से कोई रस की वार्त्ता करने के लिए कहा है, उसने इस घटना की ओर सकेत करते हुए कहा है कि वह रस की वाते तो तब करती जव कि रस की घडी आने पर वह विरसता न करती रस के कुड मे डूवता-मरता हुआ उसका जो प्रेमी उस मदिर मे पडा था, पहले वह उसको तो उस कुड मे से पकड कर वाहर लाती, तव रस की ऐसी बाते करती—

रस कइ वात चिर्तहि जउ धरसी। रस कइ घरिय बिरस जनि करसी।
रस के कुड परा मरहि मुनिवरु गन (गहन ?) गहीरु।
रस क वूड धरि वाहइ चादा लावहि तीर॥[५१]

—उस प्रेमी को जो उसके रस की आशा-पिपासा मे उसके विद्यमान होते हुए मर रहा है—

तोरे रस घर आहि पियासा। निससत रहइ लेइ मरि सासा।[५२]

लोरिक का चौथा 'मरण' चादा के धवलगृह-आरोहण मे घटित होता है और यह 'मरण' अकेला नही पूरी एक मरण-श्रृखला है। जब और कोई युक्ति दोनो के मिलन की नही रह जाती है, वृहस्पति धवलगृह-आरोहण की युक्ति की ओर सकेत करती हुई लोरिक से कहती है कि उसका अवलबन

---

[४८] चादायन १६८। [४९] चादायन, १७०। [५०] वही, १७०। [५१] वही, १७३। [५२] वही, १७५।

करने पर वह या तो स्वर्ग (धवलगृह) पर चढकर वह चादा के रूप का भोग करता और या तो उसे फासी ही मिलती—दोनो ही अवस्थाओ मे उसे स्वर्ग का निवास-लाभ प्राप्त होता—

उटउ वीर जउ उटवइ पारसि। सरग पथ जउ चढत सभारसि।
कइ कारन हनिवत बरु बाधसि। कइ कर लाइ पुख सर साधसि।
कइ रे फास बरु मेलसु जउ रे सरग चढि जासु।
कइ रे चाद रबि भूजसु दुहु तस सरग निबा(वा)सु ॥[५३]

दाऊद ने उसके स्वर्ग (धवलगृह) के आरोहण का वर्णन भी इसी दृष्टि से किया है—

चला वीरु बरहा कर लावा। जिय के परे दूसर न वोलावा।[५४]
वीर परान वरन गुन काहा। वेडिनि बास चढति जनु आहा।[५५]

सोती चादा को जगाते समय भी उसके प्राण निकल जाते है, प्राणो की वाज़ी लगाकर वह चादा को जगाता है—

'गा परान' बर पौरुख वीरहि वकति न आउ।
जीउ उडान मनि सका केहि बिधि सोवत जगाउ ॥[५६]

चादा जब जाग कर 'चोर-चोर' पुकारते हुए उसके केश पकड़ती है, वह उससे कहता है—

तोहि लागि जउ 'मरऊ' नेह न छाडउ काउ।
पिरीति तुम्हारि लागि मोरे हिरदइ जइ 'जीउ' जाइ तउ जाउ ॥[५७]

और चादा इसका उत्तर देती हुई कहती है—

'जिउ देइ चाह' आइ सो वेरा। जियतहि न कोउ चोर मुह हेरा।
'मीचु' टारि तू आतेसि कइसेइ मेटि न जाइ।
पाउ धरहि तोहि बिस्तर 'जाइहि जीउ गवाइ' ॥[५८]

प्रत्युत्तर देते हुए लोरिक मरण-साधना द्वारा अमरत्व की सिद्धि के अपने उसी विश्वास का प्रतिपादन करता है जिसकी ओर ऊपर सकेत किया जा चुका है, और यह प्रतिपादन कितना स्पष्ट और दृढ है, इसको सुगमता से देखा जा सकता है—

जउ लहि जीउ घट महहि होई। तउ लहि सरगि न आवइ कोई।
परथमि मानुस 'जीउ गवावइ'। तउ पाछे चढि सरगहि आवइ।

---

[५३] वही, १८५। [५४] वही, १८८। [५५] वही, १९१। [५६] वही, १९६। [५७] वही, १९८। [५८] वही, १९९।

'मरि कइ' चाद सरगि हउ आवा। जउ जिउ होइ डराइ डरावा।
हउ तउ 'मरिउ' जउहि तू देखी। तोहि देखि धनि 'मुइउ विसेखी'।
'मुए' जो मारइ सो कस आहा। चाद 'मुए' कर मारव काहा।
देखि रूप 'जिउ दीन्हा' तउ आइउ तोहि पास।
रहे नैन जेहिं देखउ रहइ जियहु लइ सास ।।[५६]

प्रेमी के इस मरण-निवेदन से जो प्रभाव प्रेम-पात्र पडना चाहिए था, वही चादा पर पडता है और जो वह उसको चोर की भाति पकडे हुए थी, छोड देती है—

कहत वचन मोहि असभा का गहि करियहि तोहि।
महर रूखि लइ टागइ सो हत्या फुनि मोहि ।।[६०]

इस मरण-शृखला की सवसे दृढ कडी हमे लोरिक-चादा-मिलन के अनतर उस समय मिलती है जव चादा चौखडी मे उसे अपनी शैया के नीचे छिपा देती है, और दो राज-भृत्य उसे खोज कर पकड ले जाने के लिए आते हैं। कवि ने इस 'मरण' का वर्णन भी वड़ी पूर्णता के साथ किया है—

चाद सुरिजु घर धरा छपाई। राहु गरह दुइ गरहइ आई।
लोर चउखडी दई सभारा। कउहु देवस अथवइ करतारा।
अइस कुलखना मूड कटाउव। पापधि चोर परि रूखि टगाउव।
'नियरि मीचु होइ ढूकी रगत न रहा सुखान'।
'विनु जिय' लोरिक सेजि तराही आपनि कया न जान ।।[६१]

लोरिक ने इस वार अपनी मृत्यु अपने नेत्रो से स्वय देखी है, जो आकर और उसे पहचान कर लौट गई है, और यह भी उसे तव भान हुआ है जब चादा ने उसे अमृत छिडक कर जिलाया है—

अथवा सुरुज चाद दिखरावा। अविरित छिरका लोरु 'जियावा'।
आपनि 'मीचु' नैन मइ देखी। 'मीचु' आइ फिरि गई विसेखी।
हउ जइ जिया चाद कुविलानी। अत अवसान भया तेहि वानी।
एहिं परि रइनि 'जउ दई जियावइ। 'नाखउ मीचु' नहि नियरें आवइ ।।[६२]

किन्तु इस वार के मरण मे लोरिक को यह आश्वासन भी मिल जाता है कि [मरण मे भी] अव वह अकेला न रहेगा, चादा उसकी सगिनी होगी—

---

[५६] वही, २००। [६०] वही, २०१। [६१] वही, २१३। [६२] वही, २२४।

सुनहु लोर एक विनती अब तुम्ह काह मखाहु ।
हउ तुम्हरइ जइसि व्याही तू मोर व्याहू नाहु ।।[६३]

और इस प्रकार उसकी मरण-साधना उसे अमरत्व की सिद्धि प्रदान करती है ।

दाऊद ने इस मरण-साधना का निर्वाह चादा के सर्पदश के प्रसगो मे भी किया है । दोनो वार लोरिक चिता रच कर चादा के निर्जीव शरीर के साथ उस पर जल मरने को उद्यत होता है, यद्यपि दोनो वार गारुडियो द्वारा चादा के जीवित किए जाने पर उसका यह 'मरण' टल जाता है । प्रथम सर्प-दश का प्रसग तो सक्षिप्त है, उसमे 'मरण' की तत्परता मात्र ही आ पाई है, किन्तु दूसरे सर्पदश प्रसग मे वह चिता की रचना कर चादा के निर्जीव शरीर के साथ उस पर बैठ भी जाता है, और तव गारुड़ी आकर चादा को जिलाता है ।

मरण से अर्जित होने वाले दाऊद के इस 'प्रेम' का एक अभिन्न सहचर 'सत्य' है । जव लोरिक चादा से अपना प्रेम-निवेदन करता है, वह जानना चाहती है कि उसमे 'सत्य' भी है अथवा नही, क्योकि यही वह बल है जिससे 'प्रेम' की नाव पार लगती है—

पूछउ लोरिक कहु 'सति' मोही । केइ असती वुधि दीन्ही तोही ।
'सत' हि तिरइ सायर महि नावा । विनु 'सत' वूडइ थाह न पावा ।
जेहि 'सतु' होइ सो लागइ तीरा । 'सत' कर हीन वूड मझि नीरा ।
'सत' गुन खैचि तीर लइ लावा । 'सत' छाडे गुन तोरि वहावा ।
'सत' सभार तउ पावइ थाहा । विनु 'सत' थाह होइ अवगाहा ।
'सतु' साथी 'सतु' साभल 'सत' इ नाउ कडहार ।
करि 'सत' कत तू आवसि वर सिधि देइ करतार ।।[६४]

'प्रेम' और 'सत्य' के इस अटूट सवध को जायसी ने भी इसी प्रकार महत्ता दी है—

कै अस्तुति जौ वहुत मनावा । सवद अकूट मडप मह आवा ।
मानुस प्रेम भएउ वैकुठी । नाहि त काह छार एक मूठी ।
प्रेमहि माह विरह औ रसा । मैन के घर मधु अम्रित वसा ।
'निसत' धाइ जौ मरै तो काहा । 'सत' जौ करै वैसेइ होइ लाहा ।
एक वार जौ मनु कै सेवा । सेवहि भल परसन हो देवा ।[६५]
हा अव कुसल एक पै मागौ । प्रेम पथ 'सत' वाधि न खागौ ।

[६३] वही, २२४ । [६४] वही, २०५ । [६५] पद्मावत, १६६ ।

जौं 'सत' हिए तौ नैनन्ह दिया। समुद न डरै पैठि मरजिया।
तह लगि हेरौं समुद ढढोरी। जह लगि रतन पदारथ जोरी।
सपत पतार खोजि जस काढे वेद गरथ।
सात सरग चढि धावौं पदुमावति के पथ।।[६६]
सायर तिरै हिए 'सत' पूरा। जौं जिय 'सत' कायर पुनि सूरा।
तेहि 'सत' वोहित पूरि चलाए। जेहिं 'सत्त' पवन पख जनु लाए।
'सत' साथी सत कर महिवारू। 'सत्त' खेइ लै लावै पारू।
'सतै' ताक मव आगू पाछू। जह जह मगर मच्छ औ काछू।
उठै लहरि नहिं जाइ सभारा। चढै सरग औ परै पतारा।
डोलहिं वोहित लहरै खाही। खिन तर खिनहिं उपराही।
राजै सो 'सतु' हिरदै वाधा। जिह 'सत' टेकि करै गिरि काधा।[६७]

दाऊद की निम्नलिखित पक्ति—

'सतु' साथी 'सतु' साभल' 'सत' इ नाउ कडहार'।[६८]

जायसी की निम्नलिखित पक्ति से तुलनीय है—

'सत' साथी 'सत' कर 'सहिवारू'। 'सत्त' खेइ लै लावै पारू'।[६९]

'सत्य' सम्वन्धी उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए लोरिक कहता है कि जिस दिन से उसने उसे देखा है, उसका रग (अनुराग) ही उसका जीवन हो गया है, और वही रग (अनुराग) उसके नेत्रो से नदी वन कर वहा है, यदि 'सत्य' न हुआ होता, तो उसके गहरे जल मे वह डूव चुका होता, 'सत्य' ने ही उसे इस गहरी सरिता मे डूवने से वचाया और पार लगाया है।

इस 'सत्य' का प्रमाण देते हुए लोरिक जव रग (अनुराग) की वातें कहने लगता है, किस प्रकार इस रग (अनुराग) ने उसके समस्त जीवन को आपूरित किया है, वह उसके विवरण निम्नलिखित प्रकार से देता है—

जेहिं दिन चाद गडउ जेवनारा। देखि बिमोहिउ रूप तुम्हारा।
तुम्हरी जोति जु भा उजियारा। परिउ पतग होइ मइ न सभारा।
सो रग रहा न चित हुत जाई। चितहु माझ रग कुरिया छाई।
रग जेवन रग भोजन करउ। रग पुनि जीवन निरग फुनि मरउ।
तेहि रग नैंन नीर नइ वहा। होइ वर रग करारन ढहा।

---

[६६] वही, १४९। [६७] वही, १५०। [६८] चादायन, २०५।
[६९] पद्मावत, १५०।

रग जउ देह मन भारी बिनु रग उठइ न पाउ।
जीउ चाहि रगि दूलह सुनु चादा 'सत' भाउ ॥[७०]

'प्रेम' के अभिन्न सहचर के रूप मे 'सत्य' का यह कथन भी दाऊद के काव्य की विशेषता है, कथा के किसी लोकगाथा-रूप मे दोनो के इस अभिन्न सवध का निर्वाह ही नही सकेत भी नही हुआ है।

इसी प्रकार दाऊद प्रेम के एक अन्य आत्मीय 'दुःख' का भी परिचय हमे कराते है। उपर्युक्त प्रसग मे लोरिक के कथन पर जव चादा कहती है कि रग (अनुराग) के कोई लक्षण उसे उसमे दीखे नही, यह रग (अनुराग) तो 'दुःख' से पक्का होता है, जिसे रग (अनुराग) होता है वह इस प्रकार चल और चढ कर नही आता है, वह तो पडा (गिरा) हुआ आता है, रग (अनुराग) मे विद्ध को न अन्न रुचता है और न नीद आती है, मोटा और स्थूल होते हुए लोरिक यह कैसे कह रहा था कि उसे रग (अनुराग) लगा हुआ था ?

रग कइ वात कहउ सुनु लोरा। कइसे रात मोहि मन तोरा।
जाति अहीरु रग आहि न तोही। रग बिनु निरग न राता होई।
कहु 'दुख' जो तइ मोहि निति सहा। 'विनु दुख यह रग कइसे रहा'।
जउ न सहिय सिर खाडइ घाऊ। रग रती एक होइ न काऊ।
अगिनि झार बिनु रग न होई। जेहि रग होइ अवटि मर सोई।
अन न रूच रग वेधा जाइ नीदि निसि जाग।
मोट थूल तू लोरिक कहु कइसे रग लाग ॥[७१]

तो उत्तर मे लोरिक कहता है—

पानु भएउ चादा तोहि जोगू। सिर देइ खेलेउ चित धरि भोगू।
गात किहेउ अस जइसि सुपारी। खाडि पीसि दोई कीतेउ नारी।
अवन स काढि कीन्ह दुइ आधा। अइस चाद मइ आपुहि साधा।
विरह दगध हउ चूना कीन्हा। जरत नीरु तेहि ऊपर दीन्हा।
अनु छोडेउ विरहइ कइ झारा। पानी के हउ रहिउ अधारा।
कहिउ निरति सव आपनि अब जउ पूछहि वात।
अधर धरत गई पियरई तेहि रग तोरे रात ॥[७२]

जायसी की प्रेम-कथा 'पद्मावत' मे भी रत्नसेन और पद्मावती मे प्रेम

---

[७०] चादायन, २०६। [७१] वही, २०७। [७२] वही, २०८।

के इस पक्ष को लेकर जो सवाद होता है, वह यहाँ पर उघृत करने की अपेक्षा रखता है। जब रत्नसेन कहता है—

रग तुम्हारे रातेउ चढेउ गगन होइ सूर।[७३]

और जब पद्मावती उसके 'रग' पर शका व्यक्त करती है—

जोगि भिखारि करसि बहु बाता। कहेसि रग देखौं नहि राता।
कापर रगैं रग नहि होई। हिए औटि उपनै रग सोई।
चाद के रंग सुरूज जौ राता। देखिय जगत साझ परभाता।
दगधि बिरह निति होइ अगारू। ओहि की आच धिकै ससारू।
जौ मजीठि औटै औ पचा। सो रग जरम न डोलै रचा।
जरै बिरह जेउ दीपक बाती। भीतर जरै उपर होइ राती।
जर पराम कोइला के भेसू। तब फूलै राता होइ टेसू।
पान सुपारी खैर दहु मेरै करै चकचून।
तब लगि रग न राचै जब लगि होइ न चून॥[७४]

रत्नसेन भी कुछ-कुछ उसी प्रकार की शब्दावली मे उत्तर देता है जिसमे लोरिक ने दिया है—

धनिआ का सुरग का चूना। जेहि तन नेह दगध तेहि दूना।
हौं तुम्ह नेहु पियर भा पानू। पेंडी हुत सुनिरास बखानू।
सुनि तुम्हार ससार बडौना। जोग लीन्ह तन कीन्ह गडौना।
करभज किंगरी लै बैरागी। नवती भएउ बिरह की आगी।
फेरि फेरि तन कीन्ह भुजौना। औटि रकत रग हिरदै औ(अव)ना।
सूखि सुपारी भा मन मारा। सिर सरौत जनु करवत सारा।
हाड चून भै बिरह जो डहा। सो पै जान दगध इमि सहा।
कै जानै सो बापुरा जेहि दुख अैस सरीर।
रकत पियासे जे हहि का जानहि पर पीर॥[७५]

'प्रेम' की साधना मे दुख की यह स्वीकृति इन प्रेम-कथाओ की ही विशेषता है और इनके लोक-गाथा रूपो मे नही मिलती है।

पुन द्वितीय सर्पदश प्रसग मे कवि ने प्रेम और दुख का जो अभिन्न सबध प्रतिपादित किया है, वह ध्यान देने योग्य है। वह लोरिक से कहलाता है—

जरम न छूट पिरम कर बाधा। पिरम खाड आहइ बिस साधा।
जेहि एह चोट लागि सो जानी। कइ लोरिक कइ चादा रानी।

---

[७३] पद्मावत, ३०७। [७४] वही, ३०८। [७५] वही, ३०९।

सुखी न जान दुख काहू केरा। सोई जान परइ चेंहि वेरा।
पिरम झार जेहि हिरदइ लागइ। नीदि न जान तपत निसि जागइ।
सात सरग जउ वरिसहिं आई। पिरम आगि कइसेहु न बुझाई।
चिनगि एक जउ वाहेर मारइ एहिं पिरम कइ झार।
भसम होइ जरि धरती खिन एक सरग पतार।।[७६]

इसी प्रकार वह पुन. लोरिक से कहलाता है—

जेहि रे पिरम तेंहि विरह सतावइ। विरह जेहि तेहि पिरम सुहावइ।
पिरम सेल आहइ अनियारा। पैग न जोर पिरम कर मारा।
पिरम घाउ तेहि पूछहु जाई। जेइ यह भाल करेजइ खाई।
पिरम घाउ ओपदि नहि मानइ। पिरम बान जेंहि लाग सो जानइ।
भल फुनि होइ खाड कर मारा। जरम न पलुह पिरम कर जारा।
कवनिहु भाति न छूटहि देखेउ परे पिरम कइ झेल।
पिरम खेल सोई पइ खेलहि जो सिर सेतिइ खेल।।[७७]

इन पक्तियो को इसी आशय की 'पद्मावत' मे वार-बार आई हुई जायसी की पक्तियो से भली भाति मिलाया जा सकता है, दोनो मे किसी प्रकार का अन्तर न मिलेगा।

इस प्रसग मे लोरिक ने एक वार अव तक के उन दु खो को सक्षेप मे विवृत भी किया है जिनको उसने अपनी प्रेम-साधना मे अपनाया है—

चाद लागि मइ बहु दुख देखे। गिनति न आवइ एकउ लेखे।
मारेउ वाठ किएउ सुध राई। राखेउ महर केरि महराई।
परेउ खाट लइ पिरम जउ मारा। आइ विरस्पति दीन्ह अधारा।
एक वरिस मढ देवर जागेउ। जोगी भेख भीख फुनि मागेउ।
वरहा मेलि सरग चढि धाएउ। सिर सेउ खेलि चाद लइ आएउ।
चोर चोर कइ मारत उवरेउ तेइ धनि लिएउ छडाइ।
अव तेइ धनि वन खड गै छाडेउ केहि घरि आएउ चाइ।।[७८]

चादा के साथ निकल भागने पर उसके हेतु लोरिक को जो अनेक युद्ध झेलने पडे है, वे भी उसकी इस दु ख-सूची मे आते हैं।

दाऊद की कथा का अत किस प्रकार होता है, यह ज्ञात नही है। कथा के कतिपय लोकगाथा-रूपो के अनुसार काशी जा कर वह करसी सीझ जाता है, और इस प्रकार चादा के कारण अगीकृत किए गए दु खो को झेलते हुए

---

[७६] चांदायन, ३२३। [७७] वही, ३२४। [७८] वही, ३२१।

वह अपने प्राण-विसर्जन भी करता है। यदि दाऊद की कथा का अत भी इसी प्रकार हुआ हो, तो ऐसी दु ख-प्लावित प्रेम-कथा हिन्दी साहित्य मे अन्य नही दिखाई पडती है। यदि इसके निकट कोई पहुचती है, तो वह है जायसी की 'पद्मावत'।

फलत इस बात मे रत्ती भर सन्देह नही रह जाता है कि दाऊद की यह रचना पूरी अवधी सूफी प्रमाख्यानक काव्य परपरा की यशस्विनी पूर्वज है और इस दृष्टि से अप्रतिम महत्त्व की है।

मानवीय और ईश्वरीय प्रेम के सबधो को लेकर सूफियो मे दो प्रमुख विचार-धाराए रही है एक विचार-धारा के अनुसार पुरुष और स्त्री का प्रेम ईश्वरीय प्रेम का ही प्रतिरूप है और दोनो मे किसी प्रकार का अतर नही है, दूसरी विचार-धारा के अनुसार उक्त मानवीय प्रेम ईश्वरीय प्रेम की प्राप्ति के लिए एक पुल मात्र है, ईश्वरीय प्रेम सजातीय होते हुए भी मानवीय प्रेम से भिन्न स्तर की वस्तु है और ईश्वरीय प्रेम की अनुभूति प्राप्त होने पर मानवीय प्रेम त्याज्य हो जाता है।[७९] प्रश्न यह है कि दाऊद इनमे से किस विचार-धारा के हैं। दाऊद की तीन पक्तिया इस प्रसग मे विचारणीय हैं, जो लोरिक के द्वारा चादा के द्वितीय सर्पदश के अवसर पर कहलाई गई है—

दइय गोसाइँ सिरजनहारा। तोहि छाडि किसु करउ पुकारा।
जस कीन्हेउ तस पाएउ रहेउ चाद चित लाइ।
जो बाउर मनुसहि चित बाधइ सो अइसइ पछताइ॥[८०]

इन पक्तियो के आधार पर दाऊद की गणना कदाचित् दूसरी विचार-धारा के सूफियो के साथ ही करनी पडेगी। ये पक्तिया रचना की धर्म-सापेक्ष्यता भी निर्विवाद रूप से प्रमाणित कर देती है।

इस प्रेम के सबध मे स्वभावत एक शका उठती है जो प्रस्तुत रचना और 'पद्मावत' के पाठको और आलोचको की सचमुच एक बडी शका है, वह यह है कि जो एक स्त्री—और रूपवती स्त्री—के होते हुए दूसरी की ओर दौड रहा है, वह रूप-रस-लोभी स्नेह का प्रपच मात्र करता है, और उसकी आड मे एक मुग्धा को छलना ही चाहता है। दाऊद ने तो इस शका को नायिका के माध्यम से उपस्थित भी किया है, जो कि 'पद्मावत' के रचयिता ने नही किया है। चाद कहती है—

---

७९ डा० श्याम मनोहर पांडेय · 'मध्य युगी प्रेमाख्यान', पृ० १८-२४।
८० चादायन, ३२७।

सुरग सेजि भरि 'फूल विछावसि । कंवल कली तसि मैना रावसि ।
असि धनि छाडि जउ अनतइं धावा । कइ सनेह तउ ही छटकावा ।
भवर फूल पर रहइ लोभाई । रसु लइ तार्पाहि वहुरि जाई ।
काहि लागि तू कोड करावसि । मोहि कुल राका धूरि भरावसि ।
अरे लोर तू कहं वउरावसि । तह वउराउ जहा कछु पावसि ।

का अचेति हउं वाउरि कै तू लोर वउरावसि ।
कइ सनेह मोहि छरगसि जित भावइ तित जावसि ॥[८१]

और इस शका का उत्तर लोरिक निम्न प्रकार से देता है·

जेहि दिन चाद दइय हउ गढा । तेहि दिन हुते तोर रग चढ़ा ।
विसरा लोक कुटुव घर वारू । विसरा अरथु दरवु व्यवहारु ।
मुख तंवोलु मिर तेलु विसारा । विसरा परिमलु फूल कइ मारा ।
अन न रूच निसि नीदि विसारी । विसरी सेज सो कलि फुलवारी ।
वुधि विसरी रग भएउ मवाई । ताकह निरग कहइ वउराई ।

तह तोरइ रग विरवा हिरदइ लागेउ आइ ।
कोप मरग जरि धरती जिय वरु जाइ तउ जाइ ॥[८२]

इम उत्तर मे कदाचित् इस तथ्य की कवि-द्वारा स्वीकृति है कि एक स्त्री के रहते हुए भी अन्य स्त्री से प्रेम किया जा सकता है, आवश्यक इतना ही है कि वह ऐसी आसक्ति हो जिसके लिए जीवन-दान का अनुष्ठान किया गया हो । इसीलिए चादा को इस उत्तर से सतोप हो जाता है, और वह लोरिक मे अपने प्रेम की 'सत्यता' का प्रतिपादन करने मे लग जाती है

जेहि दिन लोरिक रन जीति आएहु । पइसत नगर धायं दिखराएहु ।
तेंहि दिन हुत मइं अन न कराई । परी न नीदि सेज न सुहाई ।
पेंट पइसि जिउ लीन्हा काढ़ी । विनु जिउ नारि देख वरु ठाढ़ी ।
मइ तोहि लागि जेवनार कराई । छत्तीस कुरी पिता हकराई ।
मकु इक तिल तुम्ह देखइ पावउ । देखि रूप मकु नैन सिराहउ ।

तेंहि दिन हुत हउं भूलिउ मोर जिउ तोहि को चाह ।
चरचा मरमु तुम्हारा लोर दहु करियहु काह ॥[८३]

कथा के लोक-गाथा रूपो मे न यह शका ही उठाई गई है और न इस प्रकार के किसी समाधान की आवश्यकता ही समझी गई है ।

---

[८१] वही, २०९ । [८२] वही, २१० । [८३] वही, २११ ।

प्रस्तुत प्रसग मे केवल एक बात और विचारणीय रह जाती है, वह यह है—हिन्दी की किसी भी अन्य सूफी प्रेम-कथा मे प्रेम का आलबन किसी अन्य की विवाहिता पत्नी नही है, जैसी वह इस कथा मे है। चादा के प्रसग मे ध्यातव्य यह है कि, (१) चादा अपने विवाहित पति के पास बरस-दिन रह चुकी थी किन्तु उसने चादा से कभी प्रेमालाप तक न किया था, (२) इस उपेक्षा के जीवन की अपेक्षा अपने पितृगृह जाकर निवास करने का जब उसने सकल्प किया, उसके विवाहित पति बावन ने उस समय भी अपने व्यवहार मे किसी प्रकार का परिवर्तन न किया और उसकी माता ने उसे उसके पितृगृह जाने के लिए एक प्रकार से भडकाया ही, (३) उसके पितृ-गृह से चादा को ले आने या वापस बुलाने की बावन और उसके माता-पिता ने कल्पना तक न की; (४) जब रूपचद ने चादा के लिए गोवर-युद्ध छेडा, बावन वन खड मे छिप रहा, चादा की लाज बचाने आया तक नही। इन परिस्थितियो मे वैवाहिक संबध किसी भी जाति मे समाप्त समझा जायगा। अहीरो मे तो इससे कम आपत्तिजनक स्थितियो मे भी जाति के द्वारा वैवाहिक सबध का विच्छेद स्वीकार कर लिया जाता है, और उसे सामाजिक मान्यता दे दी जाती है, इसके बाद दोनो प्राणी इस बात के लिए स्वतत्र हो जाते हैं कि वे अपना दाम्पत्य सबध जाति के किसी भी अन्य सदस्य के साथ स्थापित कर ले। जहा तक लोरिक का प्रश्न है, निस्सदेह लोरिक की एक स्त्री पहले से थी, किंतु एक से अधिक विवाह करना पुरुषो के लिए मध्ययुग मे मान्य था। इसलिए सामाजिक दृष्टि से भी लोरिक और चादा का पारस्परिक प्रेम निषिद्ध नही है।

इस प्रसग मे इतना और ध्यान देने योग्य है कि फारसी की अनेक सूफी मसनवियो मे प्रेम का आलबन अन्य की विवाहिता स्त्री है। प्रसिद्ध सूफी कवि निजामी की 'खुसरो-शीरी' की नायिका शीरी खुसरो की विवाहिता है, और फरहाद नाम का शिल्पी उस पर अनुरक्त होता है। निजामी की 'लैला-मजनू' की नायिका लैला भी, जिसे मजनू प्रेम करता है, इब्नसलाम से ब्याही हुई है। नायिका शीरी का प्रेमी फरहाद उसकी मृत्यु का गलत समाचार सुनकर प्राण दे डालता है और मजनू लैला की मृत्यु के अनतर उसकी कब्र पर प्राण देता है।[८४]

---

[८४] विशेष विवरण के लिए दे० डा० श्याम मनोहर पाडेय, 'मध्य युगीन प्रेमाख्यान', पृ० २६-२९।

फलत दाऊद ने जिस प्रेम का निरूपण किया है उसमे सूफी धर्म के तत्त्वो की विद्यमानता प्रकट है।

६ रचना की संपादन-सामग्री

आधारभूत सपादन-सामग्री का विवरण इस प्रकार है

(१) का० : काशी के कलाभवन के प्रति रचना की किसी चित्रित प्रति के छ स्फुट पत्र भारत कला भवन, काशी मे है। इन समस्त पत्रो पर एक ओर कथा के चित्र है और दूसरी ओर रचना का पाठ है। ये पत्र लगातार नही हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि चित्रित पत्रो का महत्त्व समझकर उनको सुरक्षित रक्खा गया था, और शेष को नष्ट हो जाने दिया गया था। चित्रो की शैली, अनुमानत सोलहवी शती ईस्वी के मध्य की है। इसलिए प्रति सभवत रचना के सौ-डेढ सौ वर्षों से अधिक बाद की न होगी। इसकी लिपि अरबी है। ये पत्र बहुत यत्न से सुरक्षित हैं। प्रतिलिपि भी सावधानी से की गई है। प्रस्तुत कार्य के लिए पाठ इसके एक फोटोग्राफ से लिए गए है, जो क० मु० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ ने मँगाए थे इसलिए लेखक कलाभवन तथा विद्यापीठ का आभारी है।

(२) बी० : बीकानेर की प्रति . यह प्रति बनी पार्क, जयपुर के श्री रावत सारस्वत के पास थी, और इसका एक विस्तृत परिचय कुछ उद्धरणो के साथ उन्होने राजस्थान साहित्य समिति, विसाऊ (राजस्थान) के मुखपत्र 'वरदा' (वर्ष २, अक ३, पृ० २६-३३) मे 'मौलाना दाऊद और उनका चदायन' शीर्षक से सात वर्ष पूर्व प्रकाशित किया था। अब यह प्रति क० मु० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ मे आ गई है। प्रति स० १६७३ की लिखी हुई है और उसका लेखन-स्थान शेखावाटी (राजस्थान) का फतेहपुर है, यह बीकानेर के किन्ही सज्जन के लिए लिखी गई थी। प्रति के आदि-अत निम्नलिखित है—

आदि . ॥६०॥ स्वस्ति श्री सारदायनम ॥ नुसख चदायन गुफ्तार मौलाना दाऊद दलमइ ॥

अत ॥ श्री अथ सवत्सरेस्मिन् श्री नृप विक्रम सवतु १६७३ वर्षे हिम रिनौ महा ॥ मागल्येमार्गसिर मासे शुक्ल पक्षे सप्तम्या ७ तिथौ गुरु वासरे ॥ श्री जुगिनपुरी से श्री साहि सलेम अदल राज्ये श्री मत्यु (मत्सु ?) फत्यहपुर मध्ये श्री अलफ खान राज्ये ब्राह्मण गौडान्ये प्रधान महारसिया अमरू तत्पुत्र दुरगा लिपित पठनार्थे कथा चादायन पठनार्थे महीराज वोशवाल महाराजा

श्री राइस्यह तस्यपुत्र श्री सूर वास्तव्य बीकानेर मध्ये श्री सुभमस्तु मागल ददातु ।।

प्रति का आकार ६½"×६" है। प्रारभ के दो पृष्ठ शेष प्रति के लिपिकर्त्ता से भिन्न व्यक्ति के हस्तलेख मे हैं। प्रति १६२ पत्रो तक लिखित है, उसके वाद उसमे तेरह पृष्ठ सादे छोडे हुए हैं। तदनतर ऊपर दी हुई पुष्पिका आती है। लिखित पृष्ठो के अन्तर्गत ४३९ कडवक आते हैं। उस अनुपात से सादे छोडे हुए पृष्ठो मे लिखने के लिए अधिक से अधिक २९-३० कडवक और हो सकते थे। इस प्रकार रचना की पूरी कडवक-सख्या बी० पाठ के अनुसार ४६८-४६९ के लगभग रही होगी। इस हस्तलिखित प्रति के उपयोग के लिए प्रस्तुत लेखक विद्यापीठ का विशेष रूप से आभारी है।

(३) भो० : भोपाल की प्रति प्रस्तुत प्रति अत्यधिक खडित है। इसके कुल ६८ पत्र ही उपलब्ध हो सके हैं, जिनमे से चार पर साधन के 'मैना सत' के कडवक है। शेप ६४ पत्र भी रचना के विभिन्न अशो के है। यह पूरी प्रति चित्रित थी पत्र के एक ओर रचना के कडवक तथा दूमरी ओर सवधित चित्र थे। यह अत्यधिक खेद का विपय है कि प्रति के शेप पत्र लुप्त हो गए। प्रति अरवी लिपि मे है। यह पहले भोपाल मे एक सज्जन के पास थी, जिनसे इसे प्रिंस आव् वेल्स म्यूजियम, ववई के निदेशक डॉ० मोती चन्द्र ने उक्त सग्रहालय के लिए प्राप्त किया। जिस समय प्रस्तुत लेखक 'लोर-कहा' का सपादन कर रहा था, उसी समय उसे भोपाल मे इस प्रति के होने का पता लगा था, और पुरातत्व विभाग के डॉ० तैमूरी की कृपा से इसके दो पृष्ठो के फोटोग्राफ भी उसे प्राप्त हो गए थे। प्रस्तुत लेखक के प्रयास से लखनऊ सग्रहालय के लिए उसे प्राप्त करने का प्रयत्न चल रहा था कि तव तक वह ववई पहुँच गई। प्रस्तुत लेखक के अनुरोध पर डॉ० मोती चन्द्र जी ने प्रति के पत्रो के फोटोग्राफ क० मु० हिंदी तथा भापाविज्ञान विद्यापीठ को देना स्वीकार किया, और वे मँगा लिए गए। इन्ही के आधार पर रचना का एक पाठ विद्यापीठ के तत्कालीन निदेशक डॉ० विश्वनाथप्रसाद ने 'चदायन' नाम से सपादित कर अन्य प्राप्त प्रतियो के आधार पर लेखक द्वारा सकलित 'लोर-कहा' के साथ प्रकाशित किया था। यह प्रति भी अनुमानत ईस्वी १६वी शती के मध्य की है। फोटोग्राफ प्रिंस ऑव वेल्स म्यूजियम से विद्यापीठ को प्राप्त हुए थे, और इस कार्य के लिए प्रस्तुत लेखक को विद्यापीठ से मिले, इसलिए प्रस्तुत लेखक उक्त म्यूजियम और विद्यापीठ का आभारी है।

(४) म० : मनेर शरीफ के खानकाह की प्रति · इस प्रति के प्रारभ के १४३ पत्र तथा १७८ के वाद के पत्र नही हैं। बीच के भी कुछ पत्र नही है। कुछ पत्रो पर तो प्रतिलिपिकार के द्वारा दी हुई पत्र-सख्या है, और कुछ पर नही है। 'तर्क' भी समस्त पत्रो पर नही है। फिर भी प्रति सिली हुई है, इसलिए कुछ अस्त-व्यस्त हुए पत्रो को छोडकर शेष अपने पूर्ववर्ती क्रमानुसार ही है। जिन पत्रो पर प्रतिलिपिकार की दी हुई पत्र-सख्याए नही रह गई है, उन पर अन्य व्यक्तियो ने पत्र-सख्याए लगा दी हैं, जो निर्भरता-योग्य नही मानी जा सकती है। इस बहुमूल्य प्रति को ढूढ निकालने और प्रकाश मे लाने का श्रेय पटना विश्वविद्यालय के इतिहास के अवकाश-प्राप्त प्रोफेसर श्री एस० एच० अस्करी को है। यह प्रति भी अपनी लिखावट मे आदि से प्राचीन लगती है और असभव नही कि सोलहवी-सत्रहवी शताब्दी ईस्वी की हो। इसकी लिपि फारसी है। प्रतिलिपि इसमे भी सावधानी से की गई है। इस प्रति के फोटोग्राफ प्रस्तुत लेखक को स्व० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल से प्राप्त हुए थे, अत इस प्रति के पाठ के लिए वह मनेर शरीफ खानकाह के अधिकारियो तथा उनका आभारी है।

(५) मसा० : मसाचसेट्स (सयुक्त राज्य अमेरिका) के श्री फ्रासिस होफर के सग्रह की प्रति . भो० तथा मैं० की भाति प्रस्तुत प्रति भी चित्रित है, पत्रो के एक ओर रचना के कडवक तथा दूसरे ओर तत्सबधी चित्र दिए हुए है। किन्तु खेद का विपय है कि केवल दो पत्र इसके प्राप्त हैं, जिन पर रचना के दो ही कडवक मिल सके है। ये अरवी लिपि मे है। मेरे एक प्रिय शिष्य और 'हिन्दी प्रेमाख्यान' के योग्य लेखक डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय उस समय (१९६४ ई० मे) शिकागो मे थे जिस समय इन पत्रो का पता लगा। उन्होने बहुत यत्न करके अपने एक मित्र श्री गोपाल शरण से, जो उस समय हारवर्ड मे थे, इन दोनो पत्रो का अक्स उतरवाया था। फलत . इन पत्रो के पाठ के लिए प्रस्तुत लेखक उनके स्वामी श्री होफर के साथ ही डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय और श्री गोपाल शरण का आभारी है।

(६) मैं० . मैनचेस्टर के जॉन राइलैण्डस पुस्तकालय की प्रति . आदि से अत तक चित्रित यह प्रति अरवी अक्षरो मे लिखी हुई है, किन्तु यह प्रारभ तथा अत मे त्रुटित है, और वीच-वीच मे भी इसके कुछ पत्र निकले हुए तथा अस्त-व्यन्त हैं, जो कि सवधित चित्रो और उनके सामने के पृष्ठो पर दिए हुए रचना के कडवको मे परस्पर वैपम्य से ज्ञात होता है। प्रति का अन्तिम प्राप्त कडवक वर्तमान पाठ का ३९७ है। यदि रचना की समाप्ति वी० मे

छोडे गए सादे पत्रो के अनुसार मानी जाए, तो यह समझना चाहिए कि रचना के अत के लगभग १४ कडवक अव प्रति मे नही रहे। प्रस्तुत कार्य के लिए उपलब्ध प्रतियो मे वी० के वाद यही सबसे अधिक पूर्ण है। यह प्रति भी काफी प्राचीन है, और कदाचित् १६वी शती ईस्वी के मध्य की ठहरेगी।

इस प्रति को खोज निकालने का श्रेय पटना सग्रहालय के निदेशक डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त को है। इसका उल्लेख उन्हे तासी के हिंदुई और हिन्दुस्तानी के इतिहास मे मिला था, जो १९वी शती ईस्वी मे लिखा गया था। तव से यह कई हाथो मे होती हुई वर्तमान सग्रह मे पहुँची है। हिन्दी जगत् को इस उपलव्धि के लिए डॉ० गुप्त का कृतज्ञ होना चाहिए। प्रस्तुत लेखक को इस प्रति का पाठ उसके एक माइक्रो-फिलम से मिला, जो राजस्थान विश्वविद्यालय के पुस्तकालय मे है, अत. इस प्रति के पाठ के लिए प्रस्तुत लेखक उक्त जॉन राइलैण्डस पुस्तकालय तथा उसके साथ ही राजस्थान विश्वविद्यालय के पुस्तकालय का आभारी है।

(७)-(८) शि० : शिमला सग्रहालय की प्रतिया रचना की दो चित्रित प्रतियो के दस पत्र—नौ पत्र एक प्रति के है तथा शेष एक अन्य प्रति का है—शिमला के राजकीय सग्रहालय मे है। इन पत्रो पर भी एक ओर कथा के चित्र है और दूसरी ओर रचना का पाठ है। ये पत्र भी लगातार नही है। इन पत्रो की भी कथा वही प्रतीत होती है जो कलाभवन के पत्रो की रही होगी। इन प्रतियो का लेखन-काल भी अनुमानत सोलहवी शताब्दी का मध्य है, इसलिए इन प्रतियो का भी महत्व कला भवन की प्रति के समान है। एक प्रति वाले नौ पत्र अरवी लिपि मे है और दूसरी का शेष एक पत्र फारसी लिपि मे है। लेख दीर्घकाल तक अरक्षित रहने के कारण अनेक स्थलो पर अपाठ्य हो गया है। इन प्रतियो का पाठ भी इनके फोटोग्राफ से लिया गया है जो क० मु० हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ के लिए कराए गए थे, अत इन प्रतियो के पाठ के लिए लेखक शिमला सग्रहालय और विद्यापीठ का आभारी है।

रामपुर के रजा पुस्तकालय मे जायसी के 'पद्मावत' की फारसी अक्षरो मे लिखी हुई एक वहुमूल्य प्रति है। उसके मुखपृष्ठ पर निम्नलिखित 'पक्तिया दी हुई हैं —

(१) कोइल जइसि फिरिउ सव रूखा। पिउ पिउ करत जीभ मोरि सूखा।
(२) वनखड बिरिख रहा नहिं कोई। कौनि डारि जेहिं लागि न रोई।
(३) पीत कहे वहु आ मिले (?) उत्तिम जिय की लागि।

(४) सो जग जो मिलि मैं रही गही न चकमक आगि ।।
(५) एक वाट गई हरदी दूसरि गई महोव ।
(६) ऊभ हाथ कइ चादा बिनवइ कवनि बाट [हम होब ?] ।।
(७) फाटहि तासु नारि को हिया । एक छाडि जेहि दूसर किया ।
(८) एक एक करत जिउ देऊ । जग दूसर को नाउ न लेऊ ।

उद्धृत पहली पक्ति के ऊपर 'चदायन' शीर्षक दिया हुआ है, और वह प्रस्तुत सस्करण के कडवक ५३ मे देखी जा सकती है । दूसरी पक्ति के लिए कोई शीर्षक नही दिया हुआ है, किन्तु वह मझन की 'मधु-मालती' की ४०६ ५ है (दे० प्रस्तुत लेखक द्वारा सपादित तथा मित्र प्रकाशन लि०, प्रयाग द्वारा प्रकाशित सस्करण) । (३)-(४) के ऊपर शीर्षक 'विषम धूत (?)' दिया हुआ है । (५)-(६) के ऊपर कोई शीर्षक नही दिया हुआ है । उसमे चादा-कथा का कोई प्रसग आता है, यह उसका नाम आने से प्रकट है, किन्तु दाऊद की रचना के अब तक प्राप्त अशो मे ये पक्तिया नही मिली है, इसलिए या तो ये उसके अत के उस अश की होगी जो अब तक अप्राप्य है, और या तो ये किसी अन्य कवि की चादा-सबधी किसी कृति से आई होगी । (७) के ऊपर 'सत मैना' शीर्षक दिया हुआ है और वह उस मे मिलती भी है (दे० प्रिंस आव् वेल्स म्यूज़ियम, बबई के भो० के साथ प्राप्त 'सत मैना' के पृष्ठ) । (८) भी 'सत मैना' की ही पक्ति है और रचना मे उपर्युक्त (७) के साथ ही उसके बाद की पक्ति के रूप मे आती है । इसके ऊपर शीर्षक 'ऐजन' दिया हुआ है, जो 'सत मैना' के लिए ही है । फलत 'पद्मावत' की प्रति पर ये पक्तिया किसी ने अपनी स्मृति के आधार पर ही विभिन्न रचनाओ से टाक दी है, और 'चादायन' के सपादन मे इनकी उपयोगिता शून्यप्राय है ।

७. रचना की लिपि-परंपरा

दाऊद मुसलमान थे । अपने गुरु जैनुद्दीन की स्तुति मे कहते हुए एक स्थान पर उन्होने लिखा है

उघरे नैन हिये उजियारे । पायो लिप नौ अक्षर कारे ।
पुनि मैं अप्पिर की सुधि पाई । तुरकी लिपि लिपि हिंदुकी (गी?) गाई ।[८५]

अर्थात् शेख जैनुद्दीन की कृपा से उन्होने लिखना सीखा और तुर्की (अरबी-फारसी) मे लिख-लिख कर उन्होने हिन्दुगी (तत्कालीन हिन्दी)

---

[८५] चादायन, ९ ।

[गीतो-कविताओ] का गान किया। किन्तु यह उनके जीवन के प्रारभ की बात थी। आगे चल कर उन्होने अपनी रचनाओ को भी तुर्की (अरबी-फारसी) मे ही लिपिवद्ध किया, पूरी निश्चयात्मकता के साथ यह नही कहा जा सकता है।

प्रस्तुत रचना के पाठ का यदि इस दृष्टि से विश्लेषण किया जाए तो ज्ञात होगा कि उसकी विभिन्न प्रतियो मे जितनी अरबी-फारसी लिपि से सबधित भूले मिलती है, नागरी से सबधित भूले उनसे किसी प्रकार कम नही है। और ध्यातव्य यह है कि जहाँ पर नागरी मे लिखी हुई बी० प्रति मे नागरी से और उससे अधिक अरबी-फारसी लिपियो से सबधित भूले मिलती है, रचना की उन समस्त प्रतियो मे जो अरबी-फारसी मे लिखी हुई है, विशेष रूप से मै० मे, अरबी-फारसी लिपियो से सबधित भूलो के साथ-साथ नागरी की भूले भी प्रचुरता के साथ मिलती है। इससे यह तो प्रमाणित ही है कि अरबी-फारसी मे लिखी हुई प्रतियो के कोई न कोई पूर्वज नागरी मे लिपिवद्ध थे, और इसी प्रकार उसकी नागरी मे लिखी हुई प्रति बी० का कोई न कोई पूर्वज अरबी-फारसी मे लिपिवद्ध था। बी० सत्रहवी शती ईस्वी के पूर्वार्द्ध की प्रति है, अरबी-फारसी लिपियो मे प्राप्त अनेक प्रतियाँ इससे पहले की है (दे० ऊपर 'रचना की सपादन-सामग्री' शीर्षक)। इन सबके नागरी मे लिपिवद्ध पूर्वजो का लेखन-काल १४वी अथवा १५वी शती ईस्वी हो तो आश्चर्य न होगा। रचना की आदि प्रति नागरी मे थी, यद्यपि यह कहने के लिए पर्याप्त प्रमाण अभी उपलब्ध नही है किन्तु यह असभव भी नही है, और रचना की अरबी-फारसी लिपियो मे लिपिवद्ध समस्त प्रतियो की प्राचीनता और उन सभी मे नागरी लिपि से सबधित भूलो का अतिरेक इस सभावना की ओर स्पष्ट निर्देश करते है। जो भूलें जिन लिपियो से सबधित है, आगे प्राय उनका उल्लेख यथा-स्थान किया गया है, और उनको वहा पर आसानी से देखा जा सकता है।

८. रचना के संपादन-सिद्धान्त

रचना की विभिन्न प्रतियो मे सकीर्ण सबध निम्नलिखित प्रकार से मिला है

(१) म० बी० परिशिष्ट मे दिए हुए कडवक २७९ अ, २७९ आ, २८० अ, २८० आ, २९६ अ, ३२८ अ, ३३१ अ, ३३१ आ, ३३१ इ जो कि निश्चित रूप से प्रक्षिप्त है, इन दोनो ही प्रतियो मे पाये जाते हैं।

(२) शि० बी० परिशिष्ट मे दिया हुआ कवडक ३२८ ए, जो निश्चित रूप से प्रक्षिप्त है, इन दोनो प्रतियो मे पाया जाता है ।

(३) भो० बी० २६५.१ तथा २६५.७ में दोनो प्रतियो मे 'मेरइ सूधि कइ' के स्थान पर पाठ 'मीर मसऊद।मसूद कि।की' है, और भो० मे शीर्पक भी तदनुसार है । बी० मे कोई शीर्पक नही है, इसलिए दोनो के शीर्पक-साम्य का कोई प्रश्न नही उठता है । म० तथा शि० यहाँ पर खडित है, अन्यथा ऊपर दिए हुए बी० के साथ शि० और म० के सकीर्ण सबधो को देखते हुए उसमे भी यह विकृति मिल सकती थी ।

फलत' बी० म० शि० तथा भो० निश्चित रूप से परस्पर सकीर्ण सबध से सबधित है । अब प्रश्न यह उठता है कि परस्पर उनका यह सबध किस प्रकार का है । अलग-अलग उनके अपने-अपने प्रक्षेपो पर दृष्टि डाली जाए तो इसका निराकरण सुगमता से हो सकता है । ऐसे प्रक्षेप निम्नलिखित है ·

बी० २४ अ, ३१ अ, २१० अ, २७८ अ, २८१ अ-ई, २८२ अ-अ, २८६ अ-ई, ३२८ आ-लृ, ३१८ ऐ-छ ।

म० ३२८ अक-अठ ।

शि० ५३ अ-आ ।

भो० ३११ अ-आ ।

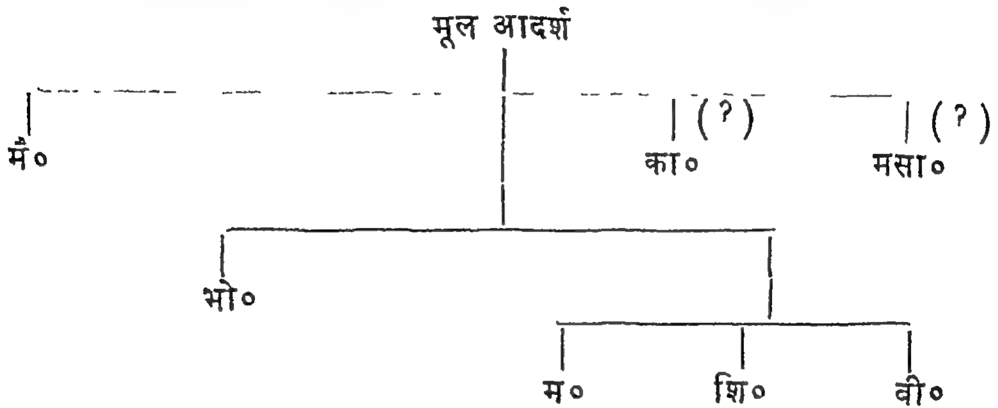
मै० २८८ अ-आ, ३०७ अ ।

इस तालिका से ज्ञात होगा कि बी०, म०, शि० तथा भो० के अपने-अपने प्रक्षेप भी है ।

अत सपूर्ण रूप से स्थिति यह ज्ञात होती है कि मै० से स्वतन्त्र—और उससे कदाचित् कुछ अधिक प्रचलित—एक पाठ-शाखा थी, जिसमे से पहले भो० का कोई पूर्वज अलग हुआ, भो० से बी० म० शि० का कोई प्रक्षेप साम्य नही है, केवल उपर्युक्त पाठ-प्रमाद-साम्य है, यह इसी ओर निर्देश करता है । उसके अनतर बी० म० शि० के किसी सामान्य पूर्वज मे प्रक्षेप-वृद्धि होती रही—शि० मे ऐसा एक ही प्रक्षेप मिला है, किन्तु शि० प्रतियो के केवल दस ही अब प्राप्त भी है, यदि अधिक प्राप्त होते तो सभव था कि ये प्रक्षिप्त कडवक भी उसमे मिलते जो इस समय केवल बी० तथा म० मे मिलते है । आगे चल कर बी०, म० और शि० के पूर्वज परस्पर अलग-अलग हो गए और उनमे उनके अपने-अपने प्रक्षेप मिलने लगे । यह प्रक्रिया बी० मे अधिक हुई, क्योकि ऊपर दी हुई तालिका मे २७८ के बाद भी जहाँ से ३२८ तक म० प्रति मिलती है, बी० मे प्रक्षेप-वृद्धि अधिक हुई है ।

का० तथा मसा० की स्थिति स्पष्ट नही हो सकी है क्योकि उनके क्रमश छ और दो ही कडवक प्राप्त हुए है, और इतने छोटे 'अश मे' कोई ऐसी विकृतियाँ नही मिलती है जो अन्य किसी प्रति मे भी पाई जाती हो।

इन परिणामो को कुछ इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।



इस पाठ-सबध के आधार पर रचना के पाठ-निर्धारण के लिए निम्न-लिखित सिद्धान्त स्वीकार किए जा सकते है

(१) जो पाठ मैं० तथा अन्य किसी प्रति मे समान रूप से मिलता है, उसे मूलादर्श का माना जा सकता है।

(२) जब कि मैं० मे एक पाठ हो और भो० म० शि० वी० मे उससे भिन्न पाठ हो, तो दोनो की वहिर्साक्ष्य-मूलक स्थिति समान मानी जाएगी और पाठ-निर्धारण का आधार होगा रचना का अन्तस्साक्ष्य।

(३) जिस पाठ का आधार उक्त दोनो शाखाओ मे से एक ही होगी—और प्रतियो अथवा उनके पूर्वजो मे पाठ त्रुटित होने के कारण ऐसे कडवको की सख्या नगण्य नही है—वह निश्चय ही अतिम रूप से निर्धारित न किया जा सकेगा।

(४) जो पाठ केवल भो० म० शि० वी० शाखा मे मिलेगे और उनमे से जो भो० से साम्य रखता होगा, वह उनके सामान्य पूर्वज का माना जाएगा, और यदि भो० मे एक पाठ तथा म० शि० वी० मे भिन्न पाठ मिलता होगा तो पाठ-निर्धारण का आधार रचना का अन्तस्साक्ष्य होगा।

(५) जो पाठ केवल म० शि० वी० मे मिलेगा, उसमे भी दो या अधिक पाठो के मिलने पर पाठ-निर्धारण का आधार रचना का अन्तस्साक्ष्य होगा।

(६) पाठ-भेद की शेष स्थितियो मे सामान्यत वह पाठ मूलादर्श का माना जाएगा जिसकी अन्तस्साम्यो एव वहिर्सादियो के अनुसार अधिक सभावना होगी।

कहना नही होगा कि दो-चार अपवादो के अतिरिक्त प्रस्तुत सस्करण के लिए पाठ-चयन इन्ही सिद्धान्तो के अनुसार किया गया है।

पाठ-सुधार के लिए समस्त अन्तरग और वहिरग सभावनाओ (Intrinsic and Extrinsic probabilities) का साक्ष्य ग्रहण करते हुए दो वातो का बराबर ध्यान रक्खा गया है एक तो यह कि रचयिता भाषा के एक ऐसे रूप मे रचना प्रस्तुत कर रहा था जो बाद मे परिवर्तित हुआ है, और दूसरे यह कि रचना की पाठ-परपरा नागरी तथा फारसी-अरबी दोनो प्रकार की लिपियो मे चली है। इसीलिए प्रस्तुत सस्करण मे रचना का एक ऐसा पाठ प्रस्तुत किया जा सका है जो पहले नही प्रस्तुत किया जा सका था, और ऊपर दी हुई विधियो का अनुसरण कर हम रचना के एक ऐसे निर्भरता और विश्वास-योग्य पाठ पर पहुँच सके है जो अन्यथा सभव नही था।

जहा तक वी० के पाठ दिए गए है, कोष्ठको मे ऐसे पाठो को सुझाने की आवश्यकता अन्य प्रतियो की तुलना मे अधिक पडी है जो रचना के अन्तस्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य के अनुसार प्राप्त पाठ के स्थान पर अधिक सभव हो सकते हैं। ऐसा इसलिए करना पडा है कि वी० प्रति का प्रतिलिपिकार रचना की भाषा तथा वस्तु से एक तो अन्य प्रतिलिपिकारो की तुलना मे कदाचित् कम परिचित है, दूसरे वह अपनी बोली के रूपो से भी प्राय प्रभावित है जो शेखावाटी (राजस्थान) की है, और तीसरे उसके लेखन की कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियाँ है जो उसके देश-काल की है और अन्यत्र उस रूप मे नही मिलती है। शेष समस्त प्रतिया फारसी-अरबी लिपियो मे है, उनके सवध मे ऐसी कोई समस्याए नही है। उनकी समस्या फारसी-अरबी लिपियो और लेखन-शैलियो की अपूर्णता की यह सामान्य समस्या है कि वे हमारी बोल-चाल की भाषाओ को लिपिबद्ध करने के लिए पर्याप्त नही होती है, और वी० के मिल जाने से यह त्रुटि प्राय दूर हो गई है।

६ रचना की भाषा

दाऊद के सबध की अन्य कुछ समस्याओ के समान ही उनकी भाषा भी विवाद का विषय बनी हुई है। यहाँ पर उसके व्याकरण के रूपो को लेकर[८६]

[८६] रचना के व्याकरण-रूपो के विश्लेषण के लिए देखिए क० मुं० विद्यापीठ के मुखपत्र 'भारतीय साहित्य' मे प्रकाशनीय 'दाऊद की भाषा' शीर्षक लेख। यह विश्लेषण रचना के 'द्वितीय सर्पदंश (बिसहर) खंड' के आधार पर किया गया है।

'यह देखने का प्रयत्न किया जा रहा है कि दो सौ वर्ष पूर्व के दामोदर के 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' और प्राय दो सौ वर्ष वाद की जायसी की 'पद्मावत' मे उनकी क्या स्थिति है। आशा है कि इससे दाऊद की भाषा की स्थिति अधिक स्पष्टता के साथ समझी जा सकेगी।

उक्ति० के सदर्भ सामान्यत उसकी उस भाषा-भूमिका (उ० भा०) से उसके अनुच्छेदो की सहायता से दिए गए है, जो डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या की लिखी हुई है। इसी प्रकार जायसी की भापा के सन्दर्भ सामान्यत डॉ० प्रभाकर शुल्क की 'जायसी की भाषा' (जा० भा०) से उसके पृष्ठो की सहायता से दिए गए हैं। जो रूप इन विवेचनो मे न मिलकर पाठो मे मिल गए है, उन्हे उक्ति० के पृष्ठो-पक्तियो और 'पद्मावत' के (मेरे द्वारा सपादित सस्करण के) कडवको और उनकी पक्तियो की सहायता से दिया जा रहा है।

सज्ञा

रचना मे एक०।वहु०,।पु०।स्त्री० कर्त्ता का रूप निर्विभक्तिक है, केवल अकारान्त पु० एक० मे -उ प्रत्यय भी है।

उक्ति० मे भी स्थिति यही है (उ० भा० अनु० ५६)।

जायसी की भापा मे भी यही स्थिति पाई जाती है (जा० भा० पृ० ८६)। उसमे भी-उ प्रत्यय उपर्युक्त प्रकार से मिलता है—यथा 'भडारू' (पदमावत' ५ १)

कर्म का रूप रचना मे कर्त्ता के समान ही है, केवल अकारान्त पु० एक० मे -उ प्रत्यय भी है।

उक्ति० मे भी ऐसा ही है (उ० भा० अनु० ५६)।

जायमी की भाषा मे भी यही स्थिति पाई जाती है (जा० भा० पृ० ८८)। उसमे भी-उ प्रत्यय उपर्युक्त प्रकार मे मिलता है—यथा 'करतारू' 'ससारू' ('पदमावत' १ १)

करण का भी एक० पु०।स्त्री० का सामान्य रूप रचना मे निर्विभक्तिक है। वहु० मे -न्ह युक्त विकारी रूप प्रयुक्त हुआ है। विभक्ति के रूप मे एक० पु० मे-अइ का और परसर्गों के रूप मे 'सेउ' 'सेती' तथा 'सइ' का प्रयोग मिलता है।

उक्ति० मे करण का रूप निर्विभक्तिक नही है, उसमे पु० मे सामान्य रूप से-ए।ए तथा स्त्री० मे ई।इ विभिक्तयाँ (उ० भा० अनु० ५६), और परसर्गों के रूप मे एक० मे 'सउ'। (सेउ), तथा वहु० मे -हु प्रयुक्त हुए हैं (उ० भा० अनु० ६२, ६३)।

रचना मे जो करण मे भी सज्ञा का निर्विभक्तिक रूप प्रयुक्त हुआ है, वह उक्ति० के वाद का विकास हो सकता है। उक्ति० की-ए रचना में-अइ के रूप मे आई है, और उक्ति० का परसर्ग -सेउ रचना मे यथावत् मिलता है, 'सेती' और 'सइ' परसर्ग बाद मे विकसित हुए हो सकते है। इसी प्रकार वहु० मे उक्ति० के -हु के स्थान पर रचना मे जो-न्ह मिलता है, वह उक्ति० के वाद का विकास हो सकता है।

जायसी की भाषा मे करण एक० प्राय निर्विभक्तिक है, केवल कही-कही पर -हिं।हि अथवा -इ (-अइ)। -इ (अइ) अथवा-ऐं।ऐ।ए विभक्तिया मिलती है। ये उक्ति० की-ए।ए तथा रचना की -अइ के समान ही हैं। जायसी की भाषा मे वहु० मे -न्ह।न्हि मिलता है (जा० भा० पृ० ८९-९०)। रचना का 'सेउ' जायसी की भापा मे 'से।सैं' होकर और उसका 'सेती'। सेती' यथावत् मिलते है (जा० भा० पृ० ९५-९६)।

रचना मे सप्रदान एक० का रूप या तो निर्विभक्तिक है, और या तो -हि विभक्तियुक्त है, उसमे परसर्गो के रूप मे 'कह' और 'लागि' प्रयुक्त हुए है।

उक्ति० मे सप्रदान एक० का रूप निर्विभक्तिक अथवा -हि विभक्तियुक्त है, और परसर्ग के रूप मे उसमे 'किह' का प्रयोग मिलता है (उ० भा० अनु० ६२)।

जायसी की भाषा मे भी सप्रदान या तो निर्विभक्तिक है, और या तो एक० मे उसकी विभक्ति-हिं।हि है (जा० भा० पृ० ९३)। परसर्ग के रूप मे उसमे भी 'कह' मिलता है (वही, पृ० ९६)।

अपादान का रचना मे एक ही रूप मिला है और वह 'हुत' परसर्ग युक्त है।

उक्ति० मे अपादान मे 'हुत' परसर्ग मिलता है (उ० भा० अनु० ६२), जो कि रचना के 'हुत' का पूर्ववर्ती रूप हो सकता है।

जायमी की भापा मे अपादान मे 'हुत' है तथा उसके 'हुति।हुतै।हुते' रूप भी पाए जाते है (जा० भा० पृ० ९६-९७)।

सवध रचना मे परसर्ग-युक्त है, उसमे एक० पु० का परसर्ग 'कर'। 'क', एक० स्त्री० का 'कइ' है, और वहु० पु० का 'के' है।

उक्ति० मे परसर्ग एक० पु० मे 'कर' तथा एक० स्त्री० मे 'करी' है, बहु० मे भी 'कर' है (उ० भा० अनु० ५९)। 'क' तथा 'के' उसमे नही मिलते है।

जायसी की भाषा मे एक० मे परसर्ग 'कर' और 'क' और वहु० मे 'के' प्रयुक्त हुए हैं (जा० भा० पृ० ६७)।

अधिकरण रचना मे प्राय निर्विभक्तिक है और जहा वह विभक्तियुक्त है, अकारात एक० मे विभक्ति-इ। अइ है। परसर्ग के रूप मे उसमे कही-कही 'माझ' भी प्रयुक्त मिलता है।

उक्ति० मे भी अधिकरण का रूप प्राय निर्विभक्ति है, विभक्ति-युक्त रूप मे विभक्तिया -इ तथा-ए प्रयुक्त हुई है (उ० भा० अनु० ५६), और परसर्ग के रूप मे 'माझ' प्रयुक्त है (पाठ १६-३०)। रचना का-अइ उक्ति० के-'ए' का ही एक रूप है, जैसा वह ऊपर करण मे देखा जा चुका है, और 'माझ' दोनो मे समान रूप से मिलता है।

अधिकरण मे जायसी की भापा मे भी प्राय निर्विभक्तिक प्रयोग मिलते हैं, और विभक्ति के रूप मे उसमे भी-अइ का प्रयोग मिलता है, यद्यपि उक्ति० के समान उसमे-ए का भी प्रयोग मिलता है (जा० भा० पृ० ६२-६३)। -इ विभक्ति कदाचित् उसमे नही मिलती है। परसर्ग 'माझ' उसमे भी प्रयुक्त मिलता है (वही, पृ० ६८)।

रचना मे सबोधन निर्विभक्तिक है, केवल पु० आकारान्त शब्द उसमे एकारान्त होकर आते है, और कभी-कभी ह्रस्व-स्वरान्त शब्द दीर्घ-स्वरान्त हो गए है। क्रियाविशेपण के रूप मे 'रे' का प्रयोग भी मिलता है।

उक्ति० मे सबोधन एक० के निर्विभक्तिक प्रयोग नही मिलते है, बहु० मे अकारान्त शब्द उसमे एकारान्त होता बताया गया है, और सबोधन के क्रिया-विशेषण 'अहो' तथा 'अरे' हैं (उ० भा० अनु० ६२)।

उक्ति० की तुलना मे रचना मे अन्तर यह है कि उसमे एक० मे भी आकारान्त का परिवर्तन एकारान्त मे हुआ है, तथा उक्ति० का 'अरे' उसमे 'रे' के रूप मे आया है।

जायसी की भापा मे भी आकारान्त के अतिरिक्त सभी सज्ञाए निर्विभक्तिक रूप मे आई है, आकारान्त सज्ञाए सामान्यत एकारान्त होकर प्रयुक्त हुई है (जा० भा० पृ० ६४), तथा सबोधन वाचक क्रियाविशेपण के रूप मे उसमे भी 'रे' का प्रयोग हुआ है (वही, पृ० १६५)।

सर्वनाम

रचना मे कर्त्ता प्रथम पु० एक० सर्व० 'मइ', कर्म-सप्रदान प्रथम पु० एक० सर्व० 'मोहि', सबध प्रथम पु० एक० सर्व० पु० मोर, स्त्री० 'मोरि' है।

कर्त्ता प्रथम पु० एक० का दूसरा सर्व० 'हउ' है, जिसका वहु० का रूप 'हम' और सबध प्रथम पु० बहु० का रूप 'हमार' है ।

उक्ति० मे प्रथम पु० एक० के समानातर रूप क्रमश 'हउ', मोहि' और 'मोर' तथा बहु० के 'अम्हे' और 'अम्हार' है, 'मइ' उसमे करण एक० का रूप माना गया है (उ० भा० अनु० ६६) । रचना के एक० के रूप पूर्णत उक्ति० के समान हैं, बहु० के उसके 'हम' तथा 'हमार' रूप उक्ति० के 'अम्हे' और 'अम्हार' से विकसित हुए है ।

जायसी की भापा मे 'हउ' के स्थान पर रूप 'हौं' तथा 'मइ' के स्थान पर 'मैं' है, 'हम' और 'हमार' उसमे रचना के समान ही आते है (जा० भा० पृ० १००-१०२) ।

रचना मे द्वितीय पु० कर्त्ता० एक० के सर्व० 'तइ' तथा 'तू' है, इनके सवध का रूप उसमे 'तोर' है । एक अन्य सर्व० 'तुम्ह' है जो कर्त्ता मे एक०।वहु० तथा सप्रदान मे एक० मे प्रयुक्त मिलता है । किन्तु 'तुम्ह' का यह प्रयोग आदरार्थक भी हो सकता है ।

उक्ति० मे 'तू' रचना के समान ही मिलता है, 'तइ' करण मे प्रयुक्त माना गया है, सबध का रूप उसमे भी 'तोर' है । 'तुम्ह' उसमे बहु० मे ही कर्त्ता 'तुम्हे' तथा कर्म 'तुम्ह' के रूपो मे मिलता है । सम्भवतः उक्ति० का बहु० 'तुम्ह' ही सानुनासिकता से युक्त होकर रचना मे वहु० तथा आदरार्थक एक० के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

जायसी की भाषा मे 'तू' तथा 'तोर' रचना के समान ही है, 'तइ' के स्थान पर 'तै' है और 'तुम्ह' 'तुम्ह' के रूप मे वहु० अथवा आदरार्थक एक० मे प्रयुक्त मिलता है (जा० भा० पृ० १०३-१०५) ।

रचना मे तृतीय पु० का कर्त्ता एक० का० सर्व० 'सो' तथा कर्म-सप्रदान एक० का सर्व० तेहि' और सबध एक० का सर्व० 'तेंहि' है, करण० एक० मे विकारी रूप 'तेहि' के साथ सेते।सेती परसर्ग लगा हुआ है। बहु० मे कर्त्ता का रूप 'ते' है।

उक्ति० मे 'सो' तथा 'ते' रचना के समान ही मिलते है, कर्म एक० का रूप 'ताहि' है और सवध एक० का 'ताकर' है (उ० भा० अनु० ६६) । ऐसा ज्ञात होता है कि रचना के समय तक सवध का 'तेंहि' ही अपनी सानुनासिकता छोडकर कर्म-सप्रदान के लिए भी प्रयुक्त होने लगा था।

जायसी की भाषा मे 'सो' रचना के समान ही है, कर्म-सप्रदान एक० मे 'तेंहि' । 'तेहि' तथा 'ताहि' दोनो हैं, तथा विकारी रूप मे 'तेहि' उसमे भी मिलता है (जा० भा० पृ० १०६-१०९) ।

रचना मे सबधवाचक सर्व० कर्त्ता एक० 'जो', है, कर्म-करण-सबध एक० 'जेहिं' है, जो उसका विकारी रूप लगता है। किंतु कही-कही पर उसमे कर्म एक० के लिए 'जेइ' भी प्रयुक्त मिलता है।

उक्ति० मे सबधवाचक कर्त्ता। कर्म एक० 'जो' है, करण एक० उसमे 'जेइ'।'जेइ' है (उ०भा० अनु० ६६)। उक्ति० का यह 'जेइ' ही रचना मे 'जेंहि' होकर आया है, किन्तु सबध का रूप उक्ति० मे 'जा' है।

ऐसा लगता है कि 'जो' का विकारी रूप 'जेहि' विकल्प से सबध के लिए भी प्रयुक्त होने लग गया था।

जायसी की भाषा मे भी सबधवाचक कर्त्ता० एक० 'जो' है और उसके विकारी रूप 'जा' तथा 'जेइ'।'जेंहि'।'जेहि' हैं (जा० भा० पृ० ११४-११५)।

रचना मे अनिश्चयवाचक सर्व० कर्त्ता एक० 'कोइ' तथा 'कोउ' है, इनका विकारी रूप 'केहु' है और सबध एक० 'काहुकेर' है। अप्राणिवोधक अनिश्चयवाचक सर्व० के रूप मे 'किच्छु। किछु।' मिलता है।

उक्ति० मे कर्त्ता एक० 'कोउ' है, जिसका 'केहु' रूप करण मे प्रयुक्त माना गया है, सबध एक० 'काहु' मात्र है, किन्तु असभव नही कि वैकल्पिक रूप मे उसके साथ परसर्ग 'कर' का भी प्रयोग होता रहा हो। अप्राणिवोधक अनिश्चय-वाचक के रूप मे उसमे भी 'किछु' मिलता है (पाठ · १५ ५)।

जायसी की भाषा मे 'कोइ' तथा 'कोउ' रचना के समान ही मिलते है, विकारी रूप 'केहु' के स्थान पर 'केहु' है, और सबध के लिए उसमे 'काहू। काहु' तथा 'काहू (काहु)।कर' मिलते हैं। 'काहु' तथा 'केहु' के साथ सानुनासिकता का आगम वाद का विकास हो सकता है। अप्राणिवोधक अनिश्चय-वाचक 'किच्छु।किछु' जायसी की भापा मे 'किछु' के रूप मे मिलता है (जा० भा० पृ० १११-११३)।

रचना मे प्रश्नवाचक सर्व० का साधारण रूप कदाचित् नही है, उसका विकारी रूप 'केइ' मात्र है, जो कर्त्ता और सबध मे प्रयुक्त हुआ है। कर्म मे उसका एक अन्य विकारी रूप 'किसु' भी मिलता है।

उक्ति० मे प्रश्नवाचक कर्त्ता एक० 'को' है, जो कर्म एक० के रूप मे भी प्रयुक्त हुआ है, उसका विकारी रूप 'केइ'। 'केइ' है जो करण मे प्रयुक्त माना गया है, सबध का रूप उसमे 'काकर' है (उ० भा० अनु० ६६)।

जायसी की भाषा मे 'को' तथा 'केइ' रचना के समान ही मिलते हैं, 'किसु' उसमे नही मिलता है।

रचना मे निजवाचक सर्व० 'आपु' है, जो वलात्मक क्रियाविशेषण 'हि' के साथ एक मात्र कर्म मे प्रयुक्त मिलता है ।

उक्ति० मे निजवाचक सर्व० कर्म का रूप 'अपाण' है, जिस मे प्राकृत की ध्वनि-प्रणाली की छाप विद्यमान है ।

जायसी की भाषा मे निजवाचक सर्व० 'आपु' है, जो कर्म मे वलात्मक क्रिया विशे० 'हि' के साथ भी मिलता है (जा० भा० पृ० ११६) ।

विशेषण

रचना मे पु० विशे० प्राय अकारान्त है, और स्त्री० विशे० प्राय. इकारान्त/ईकारान्त, पु० अकारान्त विशे० कभी-कभी छदोनुरोध से आकारान्त भी हो गए है ।

उक्ति० की भाषा-भूमिका मे इस विषय मे कुछ नही कहा गया है ।

जायसी की भापा मे स्थिति रचना के समान ही है (जा० भा० पृ० ११८-१२०) ।

रचना मे परिमाण के विशे० 'वहुल', 'वहु', 'वड', 'सभ' तथा 'अउर' है ।

उक्ति० मे इनमे से 'वहु' (पाठ २६) और 'सव' के 'रूप' मे 'सव' (पाठ ५-२५, ६-३०, ४७-१३) ही है ।

जायसी की भाषा मे 'वहु' है (जा० भा० पृ० १२५, १८७), 'वहुल' है (जा० भा० पृ० १२५), 'वड' है (पद्मावत ४४७ ३, ४६२ १, ५०२ ४) 'सव' है (जा० भा० पृ० १२५), और 'अउर' है (सर्व० के रूप मे पद्मावत ७ ७, ५ ६, विशे० के रूप मे वही, १२ ६) । 'सभ' और 'सव' मे सभवत परस्पर विकल्प था, जिसमे एक मे 'सभ' और दूसरे मे 'सब' मिलता है ।

रचना मे सख्यावाचक विशे० 'एक' तथा 'सात' है ।

उक्ति० मे 'एक' यथावत् है, (पाठ १५ २०, २१ २६, १५ २७), सात नही है ।

जायसी की भाषा मे 'एक' यथावत् आता है (जा० भा० पृ० १२२) और 'सात' भी रचना के समान ही है (जा० भा० १२२) ।

रचना मे समुदाय वाचक विशे० एक ही है 'दुहू' (दुहऊ), इसी प्रकार क्रमवाचक विशे० भी एक ही है 'दूसर' ।

उक्ति० मे दोनो मे से कोई नही है ।

जायसी की भाषा मे ये रचना के समान ही आए है (जा०भा० पृ० १२४)।

रचना मे निकट सकेतवाचक विशेपण एक० पु०।स्त्री० 'एह' है, जिसका विकारी रूप 'एहिं'।'एहि' है ।

उक्ति० मे इसका रूप 'ए' है, जो अपने सार्वनाधिक रूप मे रचना मे अनेक वार आया है (उ०भा० अनु० ६६)। असभव नही कि 'ए' और 'एह' का परस्पर विकल्प रहा हो, अथवा 'ए' ही वाद मे 'एह' के रूप मे विकसित हुआ हो।

जायसी की भाषा मे भी 'एह' रूप ही मिलता है (जा० भा० पृ० ११८) और उसका विकारी रूप 'एहि'।'एही' है (वही, पृ० ११८)।

रचना मे दूर सकेतवाचक विशे० एक० 'सो' है, जिसका विकारी रूप 'तेइ'।'तेंहि' है।

उक्ति० मे 'सो' है (पाठ १० ८) तथा 'तेइ' है (पाठ ५१ २०)। सभव है कि 'तेंहि' 'तेइ' ही का वाद का रूप हो।

जायसी की भाषा मे 'सो' है (जा० भा० पृ० ११८), और उसका विकारी रूप 'तेहि' है (पद्मावत ६३ ६, ६३ ६)। सानुनासिकता रचना तथा उक्ति० दोनो के विकारी रूपो मे है, इसलिए यह असभव नही है, कि 'तेहि' 'तेंहि' का ही वाद का रूप हो।

रचना मे सबध वाचक विशे० 'जो' है।

उक्ति० मे भी यह मिलता है (पाठ २० ८, २१ १८)।

जायसी की भाषा मे तो यह मिलता ही है (जा०भा० पृ० ११८)

रचना मे प्रश्नवाचक विशे० पु० 'कवन'।स्त्री० 'कवनि' है, जिसके विकारी रूप 'कवने' तथा 'केइ' है।

उक्ति० मे 'कवन' के स्थान पर 'कवण' है (पाठ १५ २, १६ २०, २१ १४), जिस पर प्राकृत की ध्वनि-प्रणाली का प्रभाव वना हुआ है, और उसका विकारी रूप 'केइ'।'केइ' है (पाठ २१ ६, २७ ४)।

जायसी की भाषा मे पु० 'कवन' है (पद्मावत ८ ५), स्त्री० 'कवनि' है (जा० भा० पृ० ११८), तथा विकारी रूप 'केहि' है (पद्मावत ३५१ ७)। ऐसा लगता है कि 'केहि' उस 'केइ'। 'केइ' का ही बाद का रूप है। जो रचना तथा उक्ति० मे मिलता है।

रचना मे अनिश्चयवाचक विशेषण 'कोउ' है।

उक्ति० मे भी यह मिलता है (पाठ. २१ १८)।

जायसी की भाषा मे यह 'कोइ' के रूप मे मिलता है (जा० भा० पृ० ११८)।

रचना मे निजवाचक विशेषण स्त्री० रूप मे ही आया है, वह है 'अपनी'।

उक्ति० मे यह 'अपणी' के रूप मे मिलता है (पाठ : ५२.१६)। इसमे प्राकृत की ध्वनि-प्रणाली का अवशेष बना हुआ दिखाई पडता है।

जायसी की भाषा मे यह 'अपनी' के रूप मे है (पद्मावत ३३० १)। कदाचित् 'अपनी' 'अपणी' का विकसित रूप है।

क्रिया

रचना मे सामान्य वर्त० प्रथम पु० एक० के लिए धातु मे -अउ लगा है। सभावनार्थ वर्त० मे भी ऐसा ही हुआ है। द्वितीय पु० एक० का साधारण रूप नही मिलता है, सभावनार्थ मे धातु मे-असि लगा हुआ है। तृतीय पु० एक० के लिए धातु मे-अइ लगा हुआ है, सभावनार्थ वर्त्त० मे भी ऐसा ही है। यह रूप धातु मे-अ लगाकर भी बना है। तृतीय पु० बहु० धातु मे-अहि लगाकर बना है। एक स्थान पर वह भी-अ लगाकर बना है।

उक्ति० मे भी प्रथम पु० एक० धातु मे-अउ, द्वितीय पु० एक०-असि और तृतीय पु० एक०-अ [कभी ही कभी-अइ] लगा कर बने है (उ० भा० अनु ७१)। उसमे तृतीय पु० बहु०-अति लगाकर बना है (पाठ : १६ ५)।

जायसी की भाषा मे रचना के ही रूप हैं (जा० भा० १३०-१३१)।

रचना मे द्वितीय पु० एक० आज्ञार्थ के रूप धातु मे -उ अथवा -अउ।-अहु लगाकर बने है, द्वितीय पु० एक० का आदरार्थक आज्ञा का रूप धातु मे -इय लगाकर बना है, और तृतीय पु० एक० का कामनात्मक रूप -अइ लगाकर बना है।

उक्ति० मे द्वितीय पु० एक० का आज्ञार्थक रूप -उ लगा कर बना है, और तृतीय पु० एक० का -अउ लगाकर (उ० भा० अनु० ७४)। शेष के सबध की स्थिति ज्ञात नही है।

जायसी की भाषा मे द्वितीय पु० एक० आज्ञार्थक रूप -उ अथवा -औ।-अहु लगाकर (जा० भा० पृ० १३७), आदरार्थक आज्ञा का रूप -इए लगाकर (वही, पृ० १३७), द्वितीय पु० एक० का कामनात्मक रूप -असि। अहि लगा कर (वही, पृ० १३७) तथा तृतीय पु० एक० का कामनात्मक रूप -अइ लगा कर (पद्मावत १३ ७, २२७ ५) बने हैं।

रचना मे वर्त्त० कृदन्त का रूप धातु मे -अत लगाकर बना है।

उक्ति० मे यह -अत लगाकर बना है किन्तु कही-कही पर उसमे -अत लगा है (उ० भा० अनु० ८१)।

जायसी की भाषा मे यह -अत लगाकर बना है (जा० भा० पृ० १३८)।

सामान्यभूत प्रथम पु० एक० पुं० का रूप रचना मे सामान्यत. धातु मे

-एउ लगाकर बना है, किन्तु कुछ सक० क्रियाओ मे यह -ईन्हेउ लगाकर भी बना है, द्वितीय पु० स्त्री० एक०-इहु लगाकर बना है, तृतीय पु० एक० पु० -आ।-अ,-एउ, -एसि, -आन, ईन्ह।इन, ईत, और -उत लगाकर बने है, तथा स्त्री० -अई।अइ, -इसि, -आनी लगाकर बने है। बहु० पु० -ए लगाकर बना है। भूतकृदन्त एक० पु० -आ। एक० स्त्री० -ई लगाकर तथा उसका विकारी रूप -अए लगाकर बना है। सभावनार्थभूत प्रथम पु० एक० -अतेउ लगा कर बना है।

उक्ति० मे अकर्मक क्रियाओ के सामान्यभूत के समस्त पुरुपो के एक० रूप -आ लगाकर बने है, जैसाकि रचना मे केवल तृतीय पु० एक० के लिए हुआ है, फिर भी एक स्थान पर उक्ति० मे भी तृतीय पु० एक० -एसि लगा कर बना है (उ० भा० अनु० ७५)। सकर्मक क्रियाओ के कर्म प्रथम पु० पु० एक० के रूप -आ, द्वितीय पु० पु० एक० के -इअ तथा तृतीय पु० पु० एक० के -एसि लगाकर बने है, तृतीय पु० बहु० पु० -ए लगाकर बना है (वही, अनु० ७५)। भूत कृदन्त पु० रूप -अ और कभी-कभी -आ लगाकर बने है, तथा स्त्री० रूप -ई लगाकर बने है (उ० भा० अनु० ८२)। धातु के साथ -ईन, जो रचना मे -ईन्ह के रूप मे मिलता है, लगाकर बना हुआ रूप भी उक्ति० मे भूत कृदन्त का माना गया है (उ० भा० अनु० ८२)। सभावनार्थ भूत का तृतीय पु० का रूप धातु मे -अत लगाकर बना है (उ० भा० अनु० ७६)। उसका विकारी रूप उक्ति० मे नही है। सभावनार्थ भूत प्रथम पु० का रूप भी उक्ति० मे नही मिलता है।

जायसी की भाषा मे रचना के सामान्यभूत के सभी रूप यथावत् मिलते है (जा० भा० पृ० १४०-१४६), तथा सभावनार्थ का प्रथम पु० एक० का —अतेउ रूप भी उसी प्रकार उसमे मिलता है (जा० भा० पृ० १४०)। भूत कृदन्त का विकारी रूप इसमे भी -अए लगाकर बना है (जा० भा० १४२-१४३)।

उक्ति० के साथ दाऊद और जायसी की भाषाओ मे मिलने वाले सामान्य-भूत के रूपो मे जो अतर है, वह सक्षेप मे इस प्रकार रखा जा सकता है

	उक्ति०		दाऊद तथा जायसी की भापा
सा० भूत	अक० प्रथम पु० एक० पु०	-आ	-एउ
	सक० „ „	-आ	-ईन्हेउ
	अक० द्वितीय पु० एक०स्त्री०	-आ	-इहु

ऐसा ज्ञात होता है कि या तो ये अन्तर क्षेत्रीय है और या तो उक्ति० के लेखक की भूल से है। एक० तथा बहु० और प्रथम पु० और द्वितीय पु०

के सामान्य भूत के रूप परस्पर समान रहे होगे, इसकी सभावना बहुत कम है, क्योकि प्राचीन तथा मध्यकालीन भारतीय आर्य भापाओ मे इनके रूपो मे भेद दिखाई पडता है।

रचना मे प्रथम पु० एक० के सामान्य भविष्यत् के रूप मे -इहउ अथवा -अव लगाकर वने है।

उक्ति० मे केवल -अव रूप मिलता है (उ० भा० अनु० ७७)।

जायसी की भापा मे समानान्तर रूप -इहौ तथा -अव लगाकर वने है (जा० भा० पृ० १३४)।

रचना मे पूर्वकालिक कृदन्त रूप धातु मे -इ लगाकर बना है।

उक्ति० मे भी वह इसी प्रकार बना है (उ० भा० अनु० ८०)।

जायसी की भाषा मे भी वह इसी प्रकार है (जा० भा० पृ० १५३)।

रचना मे क्रियार्थक सज्ञा धातु मे सामान्यत -अइ लगाकर वनी है, किन्तु कही-कही पर वह -अ मात्र भी लगाकर बनी है।

उक्ति० मे यह -अण लगाकर बनी है (उ० भा० अनु० ८३), जिसमे प्राकृत की ध्वनि-प्रणाली का अवशेष स्पष्ट रूप से विद्यमान है।

जायसी की भापा मे भी यह रचना की भाति -अइ लगा कर वनी है। (जा० भा० पृ० १५१-१५२)

रचना मे भूत कृदन्त का विकारी रूप धातु मे -अएँ लगा कर बना है।

उक्ति० मे यह नही है।

जायसी की भापा मे यह रचना की भाँति ही है (जा० भा० पृ० १४२-४३)

अव्यय और क्रियाविशेषण

रचना मे सयोजक अव्यय 'अउ', 'अरु', 'जनु', 'पइ', 'बरु' और 'कइ' मिलते है।

उक्ति० मे 'जउ' के स्थान पर 'जइ' है (उ० भा० अनु० ८९), जो 'जउ' का पूर्ववर्ती रूप ज्ञात होता है। शेप मे से कोई नही है।

जायसी की भापा मे 'औ' [कभी-कभी 'अउ'] है (जा० भा० पृ० १६४), 'अरु' के स्थान पर 'औरु' है (वही, पृ० १६४), 'जनु' है (वही, पृ० १६४), 'बरु' है (पद्मावत १४२ ५, १४२ ७, १६८ ४ आदि)। 'जउ' 'जौ' के रूप मे है (पद्मावत ५८ १ ७० ४, ७८ ५ आदि)। 'पइ' 'पै' के रूप मे है (जा० भा० पृ० १६४), तथा 'कइ' 'कै' अथवा 'की' के रूप मे है (वही, पृ० १६४)।

निपेधवाचक क्रिया विशे० रचना मे 'न', 'नहि' तथा 'जनि' हैं।

उक्ति० मे 'न' है (उ० भा० अनु० ८९), 'नहि' उसका दृढतासूचक क्रि०

वि० युक्त रूप मात्र है। रचना का 'जनि' उसमे 'जणि' के रूप मे है (उ० भा० अनु० ८९), जिसमे प्राकृत की ध्वनि-प्रणाली की छाप विद्यमान है।

जायसी की भापा मे 'न', 'नहि' तथा 'जनि' है (जा० भा० पृ० १६२)।

कारण वाचक क्रिया विशे० रचना मे 'काहे' है।

उक्ति० मे 'काहे' 'काहे' के रूप मे मिलता है (उ० भा० अनु० ६८)।

जायसी की भाषा मे भी 'काहे' है (जा० भा० पृ० १६२)।

प्रकारवाचक क्रिया विशे० रचना मे 'कस', 'जस', 'कइसे' तथा 'अइसे' है।

उक्ति० मे इनमे से 'कइसे' 'कइसे' के रूप मे मिलता है (उ० भा० अनु० अनु० ६८), शेप नही मिलते है।

जायसी की भाषा मे 'कस' है (जा० भा० पृ० १६१), 'कइसे' 'कैसे' के रूप मे है (जा० भा० पृ० १६१) और 'अइसे', 'अइमे' के रूप मे है (जा० भा० पृ० १६१)।

कालवाचक क्रिया वि० रचना मे 'जउ', 'अब', 'फुनि' तथा 'वहुरि' है।

उक्ति० मे 'जउ' के स्थान पर 'जव' है (उ० भा० अनु० ६८), जो 'जउ' का विकल्प ज्ञात होता है, और 'फुनि' के स्थान पर 'पुनि' है (उ० भा० अनु० ८९)। शेप नही है।

जायसी की भापा मे 'जउ' 'जौ' के रूप मे है (पद्मावत ८२ ८, १७९ १, २२१ ७ आदि), 'अव' यथावत् है (जा० भा० पृ० १५९), 'फुनि' भी है (जा० भा० १६०), और 'वहुरि' भी है (जा० भा० पृ० १६०)।

स्थानवाचक क्रिया वि० रचना मे 'नियर', 'विच', 'कित', 'तह' और 'वाहेर' है।

उक्ति० मे इनमे से 'तहवा' 'तहा' के रूप मे है (उ० भा० अनु० ६८), शेप नही है।

जायसी की भापा मे 'नियर', 'विच', 'तह' और 'बाहर' (जा० भा० पृ० १५८-१५९) तथा 'कित (पद्मावत ३३९ ६) सभी है।

समुदायवोधक क्रिया विशे० रचना मे 'उ' तथा 'हु' हैं।

उक्ति० मे ये नही हैं।

जायसी की भापा मे ये हैं (जा० भा० पृ० १६५)।

दृढता वाचक क्रिया विशे० रचना मे 'इ' तथा 'पइ' हैं।

उक्ति० मे 'इ' यथावत् है (उ० भा० अनु० ८९), किन्तु 'पइ' अपने तत्सम/अर्द्धतत्सम रूप 'पर' के रूप मे है (उ० भा० ८९)। असभव नही है कि 'पइ' तथा 'पर' का परस्पर विकल्प रहा हो।

जायसी की भाषा मे -'अइ' '-ऐ' हो गया है (पद्मावत १०२ २-६) और 'पइ' 'पै' के रूप मे मिलता है (वही, ८१ ६, १४० १, २२६ १, आदि)।

केवलार्थ बोधक क्रिया विशे० रचना मे 'हि' है।

उक्ति० मे भी यह है (उ० भा० अनु० ८६)।

जायसी की भाषा मे भी यह है (जा० भा० पृ० १६५)।

परिमाणवाचक क्रिया वि० रचना मे 'अत', 'केत' और 'अति' है।

उक्ति० मे इनमे से कोई नही है।

जायसी की भाषा मे 'अत' है (पद्मावत ५१ ४, ५१ ८), 'केत' है (वही, ५७६ ५) और 'अति' भी है (वही ३४५ १)।

सबोधनबोधक क्रिया विशे० रचना मे 'रे' है।

यह उक्ति० मे है (उ० भा० अनु० ८६)।

जायसी की भाषा मे भी यह है (जा० भा० अनु० १६५)।

इस प्रकार ऊपर दिए हुए कुछ सौ रूपो मे से चार-छ रूपो मे ही रचना की भाषा उक्ति० की भाषा से भिन्न दिखाई पडती है, अन्यथा वह उसके समान अथवा उससे विकसित प्रमाणित होती है। जायसी की भाषा से वह मिलती-जुलती होते हुए भी किंचित् पूर्व की स्थिति का आभास देती है।

चांदायन

१. स्तुति खण्ड

(१)

पहलै गाउ(उ) सिरजन हारू।
जिनि सिरज्या यह दौ(दे)स वि(दि)यारू।
सिरजसि धरती औरु अगासू।
सिरजसि मेर म(म)दर कबिलासू।
सिरजसि चाद सुरुज उजियारा।
सिरजा(सिरजसि?)सरग नपत की मारा।
सिरजसि छाह सीव औ धूपा।
सिरजयि(सि) किर तन और सरूपा।
सिरजसि मेघु पवन अ(अ)धकारा।
सिरजसि बीज करै चमकारा।
जाकर सभै पिरथमी सिरजसि(?) कह्यो(ह्यो) येक सो गाई।
हीय गहवर मन हुल्हसै दूसर चित न समाई॥

सन्दर्भ—वी० १-३।

शीर्षक—वी० सिफति धणी की।

अर्थ—(१) पहले मैं सृष्टिकर्ता का [गुण] गान करता हूँ, जिसने इस देश-प्रदेश की सृष्टि की है, (२) जिसने धरती और आकाश की सृष्टि की है, जिसने मेरु, मन्दर और कैलास की सृष्टि की है, (३) जिसने उज्ज्वल (प्रकाशपूर्ण) चन्द्र और सूर्य की सृष्टि की है, जिसने स्वर्ग (आकाश) और नक्षत्र-माला की सृष्टि की है, (४) जिसने छाया, शीत और धूप की रचना की है, जिसने किल शरीर और रूपो की सृष्टि की है, (५) जिसने मेघ, पवन और अन्धकार की सृष्टि की है, और जिसने उस विद्युत् की सृष्टि की है जो चमत्कार करती है। (६) जिसकी सृष्टि की हुई (?) समस्त पृथ्वी है, उस एक का कथन मैंने गा कर किया है। (७) [उसके स्मरण से]

हृदय हर्षित होता और मन उल्लसित होता है, और अन्य कोई चित्त मे नही समाता है।

(२)

सिरजसि तीन (तेइँ ?) मेदनि नव षडा।
सिरजसि नदी अठारह गडा।
सिरजसि नीर पीर ओ(औ) पारू।
सिरजसि सम(मु)द न जानौ पारू।
सिरजसि गिर(रि) परष(ब)त तरवरा।
सिरजसि बनप(षं)ड औ सरवरा।
सिरजसि रतन पदारथ मोती।
सिरजसि मान(नि)क दीय(?) जोती।
सिरजसि माकार(मकर) गोह घार(रि)यारा।
सिरजसि बहुते मछ अपारा।
सिरजसि सभ ससार सपूरन जल[?] महियल सोइ।
ज(जि)ह कर ठाव न जानीये तिह बिन ठाव न होइ॥

सन्दर्भ—वी० ४-६।

शीर्षक—वी० · सिफति घणी की।

अर्थ—(१) उसने (?) नौ खण्ड पृथ्वी की सृष्टि की, और उसने अठारह गण्डे (१८×२०=३६०) नदियाँ रची। (२) उसने नीर, क्षीर तथा क्षार [समुद्रो] की रचना की, और [ऐसे] समुद्रो की रचना की जिनका पार हम नही जानते हैं। (३) उसने गिरियो, पर्वतो और तरुवरो की रचना की, उसने वनखण्ड और सरोवरो की रचना की। (४) उसने रत्नो, पदार्थो (बहुमूल्य पत्थरो) और मोतियो की रचना की, और उसने माणिक्यो की रचना की, [जिन्हे] उसने ज्योति दी। (५) उसने मकरो, गोहो, और घडियालो की रचना की, और उसने अपार [अपरिमित] मत्स्यो की रचना की। (६) उसने समस्त ससार और उसी ने सम्पूर्ण जल-राशि और महीतल की रचना की। (७) वह ऐसा है कि जिसका स्थान हम नही जान सकते हैं, [यद्यपि] उसके विना कोई स्थान नही होता है।

(३)

सिरजसि वेलि फूल ओ(औ) वासू(सू) ।
सिरजसि भ(भ)वर न छाडहि पांसू ।
सिरजसि सीतर चदनु सुहावा ।
सिरजसि नाग तिही यु(जु)बिढवि(बिढावा) ।
सिरजसि कोइल(लि) मधुरी वैनी ।
सिरजसि दादुर चवै यु (जु) रैनी ।
सिरजसि क(क)वर पदम जर माहा ।
सिरज[सि]पानौ यु(जु)अछैहि बाहा(छाहा) ।
सिरजसि अगनि जरत यो (जो) दहा ।
सिरजसि कनिक झार यो (जो) सहा ।
सिरजसि षानि अठारा(र)ह सिरजसि अगनित मूरि ।
सिरजसि कत अगुरायनि (आकरायनि?) सबै रहा भरपूरि ॥

सन्दर्भ—वी० ७-६ ।

शीर्षक—वी० याह भी सिफति धणी की ।

अर्थ—(१) उसने वल्लियो, फूलो और (उनकी) सुवासो की रचना की, और उसने उन भ्रमरो की रचना की जो (उनका) पार्श्व नही छोडते हैं। (२) उसने शीतल और सुख देने वाले चन्दन की रचना की, और उसने उन नागो की रचना की जो उसका [सुख] भोग करते हैं। (३) उसने उस कोकिला की रचना की जो मधुर वचनो वाली है, और उसने उस दादुर की रचना की जो रात्रि मे (?) वोलता है। (४) उसने कमल और पद्म की रचना की जो जल मे होते है, और उसने उनके पर्णों [पत्तो] की भी रचना की जो छाये रहते हैं। (५) उसने उस अग्नि की रचना की जो जलते ही दग्ध करती है, और उसने उस स्वर्ण की [भी] रचना की जो [उस अग्नि की] ज्वाला को सहन करता है। (६) उसने अट्ठारह खानियो (प्रकार के प्राणियो) की और अगणित [प्रकार की] मूलो (जडी-बूटियो) की रचना की, (७) उसने कितनो की ही आकर पदार्थों के रूप मे (?) रचना की, और [तदनन्तर] वह सभी मे भरित-पूरित (व्याप्त) हो रहा।

(४)

सिरजसि अन य (यु-जु) मानसु (मानुस) षाई ।
सिरजसि भूप यु (जु) तिही बुझाई ।
सिरजसि दाष दो (ऊ)षि रस भरी ।
सिरजसि बेलि य(जु)बीन (विन) यर(जर) फरी ।
सिरजसि मीठ पांड के (कै) उ(ऊ)षा ।
सिरजसि कर(रु)ये बहोति (ते) रूपा ।
सिरजसि साप डक विस भरा ।
सिरजसि गारुरि यो (जो) तिह हर(रा) ।
सिरजसि माह (हु) रु मनै(रै) यु (जु)पाइ(ई) ।
सिरजसि मधु मापी लै जाइ(ई) ।
सिरजसि हाथी घोरे औ गै(ग)हि बा(वा)धे राइ दुवारि ।
सभ राय(ज)नि कर राया(जा) यु (ज्यो) यो(जो?) ससि रैनि अहार

सन्दर्भ—वी० १०-१२ ।

अर्थ—(१) उसने अन्न की रचना की जिसे मनुष्य खाता है, और उसने उस भूख की रचना की जो उससे ही बुझती है। (२) उमने द्राक्षा [अगूर] और रसभरी ऊख (इक्षु) की रचना की, और उसने ऐसी वेलो की [भी] रचना की जो विना जल से [सिंचे भी] फला करती है। (३) उसने ऊख (इक्षु) [की रचना] कर खाँड (शर्करा) की रचना की और उसने वहुतेरे कड ुए वृक्षो की [भी] रचना की। (४) उसने उस सर्प की रचना की, जिसके डक (दश) मे विप भरा रहता है, और उसने उम गारुडी की [भी] रचना की जो उसे हरण करता है। (५) उसने उम महाविष की रचना की जिसे खाकर जीव मर जाता है, और उसने उस मधु की रचना की जिसे मक्खियाँ ले जाती हैं। (६) उसने हाथी-घोडे रचे, और उन्हे पकड (पकडवा) कर राज-द्वार पर वाँध [वँधवा] दिये। (७) वह ममस्त राजाओ का राजा है, जैमे शशि रजनी का आधार है।

(५)

सिरजसि मिरग नारि(भि?) यो(जो) वी(ची)ना ।
सिरजसि तिह की वासु यो (जो) ल्हीना ।
सिरजसि साड(उ)ज थरहि बिचाही ।

सिरजसि भगती (भुगुती) जरमहि षाई ।
सिरजसि पषि(पष्षि) राति उजियारी ।
सिरजसि वरन यो (जो) द्योस बिकारी ।
सिरजसि भ(भ)बर पाट यो (जो) तना ।
सिरजसि गुबिरोरा भुवि षना ।
सिरजसि पष(पि?) अवर(?) फर माहा ।
सिरजसि वरु(वरुं)सु तिह(हि) ठाहा ।
सिरजसि आथि न साथि औ झा(झा)कि (षि)* मरै जिन(नि)कोइ ।
येकि अकेलैं सब जगु सिरजा दु(दू)सर औरु न कोइ (होइ ?) ॥

सन्दर्भ—वी० १३-१५ ।

* वी० प्रति अपने मूल रूप मे इसके बाद मिलती है, इसके पूर्व का अश मूल प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति की लिखावट मे है, ऐसा लगता है कि मूल प्रति का प्रथम पत्र गल कर निकला जा रहा था, इसलिए उसकी प्रतिलिपि कर यहाँ से पूर्व का अश जो उक्त पत्र पर था उसमे रख दिया गया ।

अर्थ—(१) उसने उस मृग (कस्तूरे) की रचना की, जिसकी नाभि मे चीना रहता है (कस्तूरी रहती है), और उसने उस [चीना—कस्तूरी] की वासना की रचना की जो ली जाती हे। (२) उसने स्थल के वीच श्वापदो (हिंस्र जन्तुओ) की रचना की, और उनके लिए उस भुक्ति (भक्ष्य) की रचना की जिसे वे जन्म भर खाये। (३) उसने रात्रि के उज्ज्वल (शुक्ल) पक्ष की रचना की, और उसने उस दिवस की रचना की जो । (४) उसने उस भ्रमर (कीट) की रचना की जो पाट (रेशम) [का धागा] तनता है, और उसने उस गुवरोरे की [भी] रचना की जो भूमि को खनता (चालता) है। (५) उसने पक्षियो (?)की रचना की जो [?]फलो मे और उसने उसी स्थान पर भिडो की भी रचना की। (६) उसने [इस प्रकार यह समस्त] रचना की कि कोई [उसका] साथी-सगी नही था, और कोई [इस प्रकार के उसके साथी-सगी की खोज मे] झप कर न मरे (व्यर्थ श्रम न करे)। (७) एक और अकेले ही उसने समस्त जगत् का निर्माण किया, दूसरा और कोई [निर्माता] नही हुआ है ।

(६)

पुरिषु येकु सिरजसि उजियारा ।
नाउ महमदु जगतु पियारा ।

जिह(हि) लग सबै पिरथमी सिरी ।
औ तिहि नाउ मोनदी फिरी ।
जिह जिहवा वहु नाउ न लीजा ।
वर(रु) सी(सि)र काटि अगनि मुष दीजा ।
दूसर ठाउ(उ) दइ(ई) यो (जो) कीन्हा ।
वचनु मुनाइ पथु कै दीन्हा ।
तिह(हि) मारगि जौ चाल(लि?) सिराइ(ई) ।
दुह(हु) महि गति पि(?) छहि बडाई ।
पाप पुन की त(ता)री कालि यो (ज्यो ?) वरै(नै ?) तुम्हार(रि) ।
दइ(ई) लिपा सभु मागिहौ(है) धरहर कै हम (?) भार ॥

सन्दर्भ—बी० १६-१८ ।

अर्थ—(१) उसने एक उज्ज्वल (निष्पाप) पुरुष का निर्माण किया, जिसका नाम मुहम्मद है, और जो जगत् का प्रिय है, (१) जिसके लिए (ही) सभी पृथ्वी निर्मित हुई, और उसके नाम की मुनादी (दुदुभी) फिरी । (३) जिसने [भी] जिह्वा से उसका नाम न लिया, [उसके लिए] अच्छा यह होता कि वह [अपना] सिर काटकर आग के मुख मे डाल देता । (४) दूसरे (उसके वाद के) स्थान पर दैव ने उन्हे [निर्मित] किया जिन्हे उसने अपना वचन (कलमा) सुना कर अपने धर्म-पथ (इस्लाम) पर लगा दिया । (५) उस [धर्म-] पथ पर चल कर जो उसे समाप्त कर लेता है, उसे दोनो [जगत्] मे सद्गति और वड़ाई··· । (६) कल जब (?) तुम्हारी पाप-पुण्य की तालिका वनेगी (?) (७) और दैव (विधाता) उनका समस्त लेखा माँगेगा, तव वही हमारा (हमारे अपराधो का?) भार सँभालेगा ।

(७)

चारि मीत मिलि यकु मत कीन्हा ।
वेद पुरान चहू कहु दीन्हा ।
ओ जस सुना कहत तस आवइ ।
चहू व(च)क तिहि उ(औ)रेहि पत्या[व]इ ।
पडित येकु चहू मिलि गनी ।
चहु महि पचवा और न सुना(नी) ।

सो पढति जाकौ ति पढावहि ।
ते वहु पथ सु(सो?)धि कै पावहि ।
तिहु कर(रि) जिह वोहु नाउ न भावा ।
आपनु कुौ(क्यो ?) बेरी स कहावा ।
अबावकर उमरै उसमाना अली स्यघ ये चारि ।
जे निद तु(?) कर विज ति(?) सतुरह(हि) घालै(ले) मारि ॥

सन्दर्भ—वी० १६-२१ ।

अर्थ—(१) चार मित्रो ने मिलकर एक विचार किया [कि वे ह० मुहम्मद से धर्मोपदेश ग्रहण करे], तो उन्होने उन चारो को वेद-पुराण (इस्लाम के धर्म-ग्रथ) दिये। (२) उन्होने जैसा सुना, वैसा वे कहते आये, [पृथ्वी के] चारो चक्रो ने उन्हे उच्चरित किया और उन पर प्रतीति की। (३) चारो को मिलाकर एक ही पडित समझिए, चारो मे पाँचवाँ और किसी को न सुनिए (जानिए)। (४) उसी ने पढा जिसको उन्होने पढाया, वे ही वह [धर्म-] मार्ग शोध कर पा सके। (५) इस प्रकार कर के जिसे वह नाम अच्छा न लगा, वह आत्म (अपना ही) वैरी क्यो कहलाया ? (६) अबूवकर, उमर, उसमान और अली—ये चार सिंह हुए, (७) जिन्होने··· [इस्लाम के ?] शत्रुओ को मार डाला।

(८)

साहि प(ये)रोज ढीली बड राजा ।
छात पाट औ तें* पै छाज (जा) ।
येकु पडितु(पडितु) औ है पडिवाहा ।
दानि अपरिस (अपार ?) सराहै काहा ।
नीर पीर निरमर करि छानै ।
छोटे बडे वेव(ह)रि जानै ।
अति सिरवतु (सिरिवतु) भागे(गै)भरा ।
मान(नि)क जोति जानु परय(ज)रा ।
परग झार लका लहु जाइ(ई) ।
हनवतु स(स)गु सि(सइ?)रहै बुझाइ(ई) ।
देइ असीस पिरथमी य(ज)सु पु(पू)रौ बरुवाहा (पडिवाह?) ।
राजु करौ गढि ढीलरी जुगि जुगि हम अ(प ?)र छाह ॥

*'तें' को 'तो' वाद मे वनाया गया है ।

सन्दर्भ—बी० २२-२४।

शीर्षक—बी० साही पेरोज की सिफत [किन्तु यह शीर्षक अन्य लिखावट मे है और हाशिए मे दिया हुआ है]।

अर्थ—(१) फीरोज शाह [तुगलक] दिल्ली का बडा राजा (सुल्तान) है, छत्र तथा सिंहासन उसी को शोभित होते है। (२) एक तो वह पडित है और दूसरे प्रतिवाह (आक्रमण को रोकने अथवा शत्रु को पीछे ढकेलने वाला) है, वह ऐसा अपार (अपरिमित ?) दानी है कि उसकी क्या सराहना की जाए ? (३) वह [ऐसा न्याय करने वाला है कि] निर्मल कर के नीर से क्षीर को (असत्य से सत्य को) अलग कर देता है, और छोटे-बडे के साथ उचित व्यवहार करना जानता है। (४) वह अत्यधिक श्रीमत और भाग्य से पूरित है, [उसे देखने पर ऐसा लगता है] मानो माणिक्य की ज्योति प्रज्ज्वलित हो रही हो। (५) [उसके] खड्ग की ज्वाला लका तक जाती है, और उसके साथ हनुमान भी रहते है, वही उसको बुझा कर रखते है। (६) पृथ्वी भर उसको आशीर्वाद देती है, "हे प्रतिवाह (शत्रुओं को पीछे ढकेलने वाले ?) तुम यश-लाभ करो। (७) तुम दिल्ली के गढ मे युगानुयुग राज्य करो और हम पर तुम्हारी छाया [बनी] रहे।"

(६)

सेष जैनदी हौ(हो) पथि लावा।
धरम पथु जिह(हि) पापु गवावा।
पाप दीन्ह मे गाग बहाइ(ई)।
धरम नाव हौ लीन्ह चुराइ (चडाई)।
उघर(रे) नैन हिये उजियारे।
पायो लिष(षि) नौ अक्ष(क्ख)र कारे।
पुनि मै(मैं)अपि(ष्पि)र की मुधि पाइ(ई)।
तुरकी लिपि लिपि हिदुकी(गी?)गाइ(ई)।
ये(जै ?) पडए या(जा)इ स(से)ष पसारा।
पाप गये तसीकर(तसिकर) मारा।
त्यहु का घरु निरमरा जिह चितु रहा लुभाइ।
सेप जैनदी सेवता पाप निरतरु जाइ॥

सन्दर्भ—वी० २५-२७।

अर्थ—(१) शेख जैनुद्दीन ने मुझे मार्ग पर लगाया, उस धर्म-मार्ग पर जिस पर [चल कर] मैने अपने पाप गँवाये। (२) मैने [अपने] पाप गगा मे वहा दिये, [जव] उन्होने मुझे अपनी धर्म-नौका पर चढा लिया। (३) [उनकी कृपा से] मेरे हृदय मे उज्ज्वल (ज्ञान के) नेत्र उद्घाटित हुए, और मैने [कलमे के ?] काले नौ अक्षर लिख पाये। (४) तदनन्तर मैने [वर्णमाला के] अक्षरो का शोध प्राप्त किया और तुर्की (अरबी-फारसी) लिख-लिख कर हिन्दुकी (हिन्दुगी ?) का गान किया। (५) यदि इस प्रकार शेख (जैनुद्दीन) [की कृपा] का प्रसार प्राप्त हो जाए तो पाप उसी प्रकार मारे जाते है जैसे तस्कर (चोर-डाकू) मारे जाते हैं। (६) उनका घर (सम्प्रदाय) निर्मल है, जिससे उस पर मेरा चित्त लुब्ध हो रहा है। (७) शेख जैनुद्दीन की सेवा करते रहने से पाप निरन्तर जाते (नष्ट होते) रहते हैं।

(१०)

खानजहा घरि जुग जुग पानी।
अति नागरु बुधिवतु बिनानी।
चतुर सुजान भाष सव जान(नू)।
रूपवत मत(ति)री सयानु(नू)।
वहुत बिनानु दइ(ई) दे(दै) गढा।
चौदह पढतु हिये पै पढा।
पोथि पुरान अवहिरै (अवरेहि ?) लगावै।
पडित कै(के) मुप बकत न आवै।
पिरथमि पति(?)ये (जे) चोर स(सि)यारा।
भवर पुरप प्रिथमी महिआरा।
भयो राजु फुनि बररुचि (वररुचि) जोरत अरथ अगाह(हि)।
पौद पान [?] जी(बि?)ना और गुनी को आह(हि)॥

सन्दर्भ—२८-३०।

अर्थ—(१) खानेजहाँ युगानुयुग से चले आते हुए खानी कुल से है, वह अत्यधिक नागर, बुद्धिमान और विज्ञानी है। (२) वह चतुर, ज्ञानी और समस्त भाषाओ का जानकार है, वह रूपवान् है और [सुल्तान का] सज्ञान मन्त्री है। (३) वहुतेरा विज्ञान प्रदान कर दैव ने उसे निर्मित किया है, वह,

हो न हो, हृदय मे चौदह विद्याएँ पढे हुए है। (४) [धर्म-] पुस्तक और पुराण के वह ऐसे अर्थ (?) लगाता है कि [उन्हे सुनकर] पडितो के मुखो मे [उसकी प्रशसा के उपयुक्त] वाक्य नही आते है। (५) पृथ्वी मे (?) जहाँ चोर-शृगाल [बहुलता से] हैं, [खानेजहाँ जैसा] उसी मही तल पर (गुणग्राही) भ्रमर-पुरुष भी है। (६) वह [सुल्तान के] राज्य मे वररुचि [जैसा पडित] हुआ है और [धर्म-पुस्तक के] अग्राह्य (पकड मे न आने वाले) अर्थो को भी वह जोड (लगा) लेता है। (७) [इस समय] खाविद (स्वामी) खानेजहाँ [?] को छोड कर (?) दूसरा गुणी कौन है ?

(११)

पौद जान गै दान दिवावै।
देते(त) करनु नि सरभरि पावै।
सम(मु)द लहरि जिहि दिन दिन आवै।
मानिक आनै तीर चरा (डा)वै।
तस सतु दानु पाइ औतरा।
देत न घसि (खसइ ?) सम(मु)[द] जस भरा।
देत न अतु रवा(खा ?)गी द(दा)रिदु गयौ पराइ।
उठा सबदु जसु लीन्हा कीरति जगत फिराइ॥

सन्दर्भ—बी० ३१-३२। कडवक की दो अर्द्धालियाँ उसमे छूटी हुई है, इसीलिए एक चतुष्पदी की क्रम-सख्या मे कमी हो गई है।

अर्थ—(१) खाविंद (स्वामी) खानेजहाँ हाथियो को दान मे दिलाता है, [इसलिए] उसके दान करते समय कर्ण भी उसकी समता नही पाता है। (२) समुद्र की लहर जिस प्रकार दिनानुदिन आती और तटपर माणिक्य ला कर चढा (डाल) जाती है, (३) इसी प्रकार दान (का ससर्ग) पाकर उसका सत्व अवतरित हुआ है, वह देते हुए घटता नही है, और उसी प्रकार भरपूर रहता है कि जिस प्रकार समुद्र। (४) "(दान) देते हुए उसका अन्त ·· और दारिद्रय भाग गया," (५) यह कथन (चारो ओर से) उठने लगा और यह यश उसने प्राप्त किया, उसकी कीर्ति जगत् भर मे फिर गयी।

(१२)

मदन म(अ?)नगु तु र(रे) पर बिन बानै।
सोवन बरन देह तोरी जानै।

चदु लिलारु धरा जनु लाइ(ई)।
चदु घाटि वह अधिक सवाइ(ई)।
सहस करा जौ सुरिजु बपानौ(नौ)।
सुरिजु चाहि जगि निरमर जानौ।
देषि पिरथमी रूप भुलानी।
मानु मनोहर सकरत(सकिरित) बानी।
घन(नि) सु राति(राट ?) जिह तू औतरा।
जो देपो (पा) सो सिरुभुइ धरा।
तोहि रूप जगु[?] गहा चदु तराइनु जानु।
इह (एहि ?) रूपि जग कोइ न देपा अब फुनि होइ न आन ॥

सन्दर्भ—वी० ३३-३५।

अर्थ—(१) तू अनग मदन है, किन्तु विना बाणो के है, तेरी देह स्वर्ण के वर्ण की जान पडती है। (२) तेरा ललाट ऐसा [देदीप्यमान] है कि मानो उस पर चन्द्रमा लाकर रख दिया गया हो, किन्तु चन्द्रमा उससे घट कर है, और वह उससे सवा-गुना अधिक है। (३) सहस्र कलाओ के सूर्य का यदि वर्णन करो, तो उस सूर्य की अपेक्षा भी तुझे जगत् मे [अधिक] निर्मल जानना चाहिए। (४) पृथ्वी तेरा रूप देख कर [उस पर] इस प्रकार भूली हुई है, मानो मनोहर सस्कृत वाणी हो। (५) वह रात्रि (अथवा राष्ट्र—राज्य ?) धन्य है जिसमे तू [सूर्य] अवतरित हुआ है, क्योकि जिसे देखो वही [तेरे आगे] अपना सिर भूमि पर रख देता है। (६) रूप मानो जगत् मे चन्द्र तथा तारागण ने तुझसे ही ग्रहण किया है। (७) ऐसा रूप जगत् मे [अवतरित हुआ] कभी नही (?) देखा गया है, और न अब अन्य पुन होगा।

(१३)

हय चरि(डि) कोप(पि) षाडह(हि) जो धरा(र)इ।
सरगि यन्दु बासिगु पहराइ(परहरइ ?)।
गहि सी(सी)गनि जा कौ(क)हु कहु सरु मेलै।
रहै न सो धरु सुर्गेहि षेले (पेलै)।
षरगु ज देषौ तिरीअ धारू।
बारक काटै जनम किवारू।

सागि (?) कै षरगु ति अरि सिर धरा।
येक पुरिष सिघ(घ्घ) तिरि परा।
षान षरगु मै फु(सु)ने न आना।
टूटि(ट) पाउ सिर धरनि पराना।
पूरब पछिम उत्तर दषिन तुम सरि औरु न आन।
पान परग बैरनि(बैरिन) सिर तपै जैसे देषि(षो)रबि भान ॥

सन्दर्भ—बी० ३६-३८।

अर्थ—(१) खानेजहाँ! जब तू घोडे पर चढ कर खड्ग धारण करता है, तब स्वर्ग मे इन्द्र और [पाताल मे] वासुकी खलबला उठता है। (२) जिस पर तू सिंगिनी ग्रहण कर शर छोडता है, उस [शत्रु का] धड भूमि पर नही रहता है, वह स्वर्ग (आकाश) मे खेलने लगता है। (३) जब तेरे खड्ग की तीक्ष्ण धार देखता हूँ, तो [लगता है कि] इस जन्म (?) का किवाड (भी) एक बार वह काट देगा। (४) तू जब साध (?) करके शत्रु के सिर पर उस खड्ग को रखता है, तो एक पुरुप शीघ्र ही नीचे तिर्यक् पडा (गिरा) हुआ होता है। (५) खानेजहाँ! [ऐसा] खड्ग मैंने अन्य नही सुना है कि [उसके लगते ही] [शत्रु का] सिर धरती पर टूटा और दूर गया हुआ मिले। (६) पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण मे तुम्हारे समान अन्य नही है। (७) ऐ खानेजहाँ! तुम्हारा खड्ग बैरियो के सिर पर ऐसा तप्त होता है जैसे रवि-भानु को देखिये।

(१४)

एकु खभु 'मेदिनि कह' 'कीन्हा'। 'डोलि परइ' 'जउ होत न दीन्हा'।
'तेहि के बेरे' 'लोक चढावइ'। 'कर' गुन 'खेंचि' तीरु लइ 'लावइ'।
'हिदू' तुरुक 'दुहू' सम 'राखइ'। सत्ति 'जो होइ' 'दुहुन्ह कह भापइ'।
'गउव' सिघु एक पथु 'रेगावइ'। एक घाटि 'दुहु' पानि 'पियावइ'।
एक' दीठि' 'देखइ सय(य)सारू'। 'अचल न चलइ' 'चलइ बेवहारू'।
'मेरु धरति जस' भारनि जग भारनि 'सयसारु'।
'खानजहा' 'सो' 'कवनि' बडाई 'वड जो कीन्हा' करतारु ॥

सन्दर्भ—बी० ४१-४२ [बी० मे ३९-४० की सख्याएँ सभवत भूल से छूट गयी हैं], भो० पत्र १० (नवीन)।

शीर्षक—भो० अँजन लहू फी मदहे खानजहाँ दर बावे अदल व इन्साफ।

इस कडवक पर भो० मे पुरानी पत्र-सख्या बनी हुई, जो १२ है। उसमे प्रत्येक पत्र पर एक कडवक है, इसलिए उसमे इस कडवक की क्रम-सख्या भी वही रही होगी।

पाठान्तर—(१) १ बी० मेदुनि कौ। २ बी० कीन्हा। ३ बी० बूडि परौ। ४ बी० जिहि कोइ न दीन्हा। (२) १ बी० तिह के बैरी। २ बी० लोगु चरावा। ३ बी० पर। ४ बी० षाचि। ५ बी० लावा। (३) १. बी० ह्यदू। २ बी० कोइ। ३ बी० राषै। ४. बी० यै होय। ५ बी० दहू को भापै। (४) १ बी० गाव। २ बी० चलावै। ३ बी० दुहु। ४ बी० पिलावै। (५) १ बी० दृष्टि। २ बी० देषै सैसारू। ३ बी० अनत नि चलै। ४ बी० चलै बौहारू। (६) १ बी० मोर धनि जस। २ बी० सैसार। (७) १ बी० खानज (खानजहाँ ?)। २ बी० से, भो० सो जो बाद मे 'फुनि' बनाया गया है। ३ बी० कौन। ४ बी० वडी कीन्हु।

अर्थ—(१) खानेजहाँ को [विधाता] ने मेदिनी (पृथ्वी) के लिए एक [ही] खम्भा [निर्मित] किया है, यदि यह [खम्भा] न दिया होता, तो [पृथ्वी] डोल पडती। (२) [विधाता] उसके बेडे पर—अथवा वह बेडा बना कर—लोक को चढाता है और हाथो मे [उस बेडे के] गुण को खीच कर [लोक को] तीर पर लाकर लगा देता है। (३) वह हिन्दुओ और तुर्को—दोनो—को समभाव से रखता है, और जो-कुछ सत्य होता है, [वही] दोनो को (मे) कहता है। (४) वह [न्यायी ऐसा है कि] गाय और सिंह [जैसे परस्पर विरोधियो] को एक ही मार्ग पर रेगाता [चलाता] है और एक ही घाट पर दोनो को पानी पिलाता है। (५) वह ससार [मात्र] को एक ही दृष्टि से देखता है और [न्याय पर] अचल ऐसा है कि विचलित नही होता है, भले ही [ससार का] व्यवहार चलायमान हो जा। (६) जैसे मेरु धरती के भार के लिए [निर्मित] है, वह ससार मे जगत् के भार के लिए [निर्मित] है। (७) [किन्तु] इसमे खानेजहाँ की कौन-सी बडाई है जब कि उसे सृष्टि-कर्त्ता ने ही बडा कर रखा है।

(१५)

मलिक 'ममारखु' दर 'क' सिंगारू। दान 'जूझ' बड बीर 'अपारू'।
खडग घाइ 'ढहि' 'परहि' पहारा। 'बासुगि कापइ' 'नाहि' उबारा।
'काध' तोरि 'नई' रगत 'बहावइ'। धर बिनु'सिरु'तेहि' माझ 'तरावइ'।

'जेहि' सिरु 'देइ' मुदगर कर घाऊ। 'फेरि' न 'धरइ' 'सीध कइ' पाऊ।
'विधना मारि देस मह आनी'। 'भागहि राइ छाडि निसु' रानी।
चहु जग परा 'भगाना' छाडि 'देस नृप भाग'।
'कड रे दीन्ह सरब डड' 'कइ ते' पायनु लाग ॥

सन्दर्भ—वी० ४३-४५, मसा०।

भो० पत्र १०(नवीन)पर तर्क है 'मलिक मुबारक', जो इसी कडवक का है।

शीर्षक—मसा० मदहे मालिकुल उमरा मुबारक इब्न मलिक बयाँ मकत असतू डलमऊ।

पाठान्तर—(१) १ मसा० मुबारक। २ वी० कौ। ३ वी० सिगारू। ४ मसा० मे 'रू' पर चिप्पी लगी हुई है। (२) १ वी० मे नही है। २ वी० परै। ३ वी० वासिगु कपै। ४ वी० नही। (३) १. वी० कध। २ वी० नै। ३. वी० वहावै। ४. वी० तिस। ५ वी तिरावै। (४) १. वी० जिह। २ वी० दे। ३ वी० जनमि। ४ वी० धरै। ५. वी० सिघ कौ। (५) १ वी० वैरिन्हि मारि देषि तवु (सशोधित) वानी। २. वी० भागैहि राज छाडि निसि। (६) १ वी० भगाना। २ वी० राइ निसि भागि। (७) १ वी० कै आइ दे डड सभै। २ वी० कै राइ।

अर्थ—(१) मलिक मुबारक [शाही] सेना के शृगार है। वे दान तथा युद्ध—दोनो—मे अपार वीर है। (२) उनके खड्ग के आघात से पहाड ढह (गिर) पडते है, और वासुकी इसलिए काँपने लगता है कि उससे [उसका भी] उवार (बचाव) नही है। (३) वह [युद्ध मे] कन्धो को तोड़ कर रक्त की नदी बहाता है, और फिर उसमे धड से हीन सिरो को तैराता है। (४) जिसके सिर पर भी वह मुद्‌गर का घाव देता है, वह फिर पैर सीधा करके नही रख सकता है। (५) [शत्रु राजा-गण कहते हैं] 'विधाता ने देश मे मारी ला दी है', [और यह कहते हुए] वे अपनी रानियो तक को छोडकर भाग निकलते हैं। (६) [उसके आतक से] जगत् मे चारो ओर भगदड पड गयी है, और [शत्रु] राजा-गण अपने देश को छोडकर भाग रहे है। (७) या तो उन्होने अपना सर्वस्व दण्ड (कर) [के रूप मे] दे दिया है, और या तो वे उसके पैरो मे लगे हैं।

(१६)

करन विसेप दानु तर्स (तस) देइ(ई)। दारिदु छाडि दिसतरु लेइ(ई)।
भूपा देखि पास जौ आवै। जनम सभै कर भूष गवावा(वै)।

अमी मेघ जनौ बरसै पानी । ना डरु देषै (देषिय) भुमि सुकानी ।
करि दीया ति सवर के वेषा । दूसर राक न चित मै लेखा ।
किरति जाइ चहु भ(भु)वन जनावा । दान [पु]न जसु हाथ उपावा ।
मलिक ममारष न्हावताह बार षिसौ जिन काव(उ?) ।
रिन रावर(रि) मुष बानी दिनु दिनु बधियो आव(उ?) ।।

सन्दर्भ—वी० ४६-४८ ।

अर्थ—(१) "जो कर्ण से भी विशेष (अधिक) हो, ऐसा दान तू देता है, [जिसके परिणाम-स्वरूप] दारिद्र्य [देश को छोड कर] देशान्तर को जा रहा है। (२) तुझे देख कर यदि कोई भूखा तेरे पास आता है, तो वह समस्त जन्मो की क्षुधा गँवा देता है। (३) मेघ मानो अमृत-जल की वर्षा करते है, [जिसके परिणाम-स्वरूप] यह डर नही है कि भूमि शुष्क दिखाई पडेगी। (४) उनको तूने सवलो के वेष का कर दिया है, अत दूसरे रक चित्त मे मैं नही समझ पाता हूँ। (५) तेरी कीर्ति जा-जाकर चारो भुवनो मे [अपने को] व्यक्त करने लगी है, क्योकि दान-पुण्य के द्वारा तेरे हाथो ने यश उत्पादित किया है। (६) ऐ मलिक मुबारक ! नहाते हुए भी तेरा बाल न गिरे (तेरा कोई अनिष्ट न हो)। (७) तेरे मुख की वाणी दिनानुदिन बढती ही जाए।"

(१७)

वरस सातै(त) सै होये इक्यासी ।
तिहि याह कबि सरसे(स) उभासी ।
साहि पेरोज ढीली सुलतानू ।
जौना साहि इ*जीरु (उजीरु) वषानू ।
दलमौ (डलमउ) नयरु बसै नवरगा ।
उपरि कोटु तलै बहै गगा ।
धरमी लोगु बसहि भगवता ।
गुनगाहका नागर जसवता ।
मलिक बया पुतु उ(यु ?)ध* रन धीरू ।
मलिक ममारषु तहा का (तहा क,) मीरू ।
दाउद येह कबि जइ* गाइ(ई) मन महि लेहु बिचारि ।
जुरत बोलु चित राषहु टूटत लेहु स(स)वारि ।।

सन्दर्भ—वी० ५०-५२, ४६ की सख्या भूल से छूटी लगती है। *चिह्नित अक्षरो पर प्रति मे सशोधन किए हुए है।

अर्थ—(१) जब ७८१ का साल हुआ, तब [मैने] इस सरस काव्य को उद्भापित [प्रकाशित] किया। (२) [इस समय] दिल्ली का सुल्तान फीरोजशाह है, और जौनाशाह [उसका] वजीर कहलाता है। (३) एक नवरग [नये रग का] नगर डलमऊ बसता है, जिसके ऊपर [की भूमि मे] कोट (गढ या गढ का परकोटा) है और [जिसके] नीचे गगा बहती है। (४) उसमे धर्मिष्ठ और भाग्यवान् लोग निवास करते है, वे गुण-ग्राहक, नागर और यशवान् है। (५) युद्ध मे रणधीर मलिक बयाँ के पुत्र मलिक मुबारक वहाँ के मीर है। (६) दाऊद ने यह कविता गाई, इसे मन मे विचार कर ग्रहण कीजिए। (७) इसके जो बोल (वाक्य) जुड रहे हो, उन्हे चित्त मे [उसी प्रकार] रख लीजिए, और जो त्रुटिपूर्ण हो, उन्हे सवार (ठीक) कर स्वीकार कीजिए।

२. गोवर-वर्णन खण्ड

(१८)

कहू(हू) कबितु मन भयो गियानू।
कहत सुहावन सुनहु दै कानू।
गोवर कहौ(हौ) महर कर ठाउ(ऊ)।
कूवा बाइ बहुत (अबराऊ)।
नारियर गो(गू)वा के तह(ह) रूखा।
देपत रहै न लागै भूपा।
दार्यौ(यौ) दाष वह(हु)ल लै लाइ(ई)।
नारि(रि)ग झारिग कहे न जाइ(ई)।
कटहर तारा(र) भरे अ(अ)वराना(मा?)।
जामिनि कैथ* न* को जाना।
वास पिजूरि वर पीपरा(र?) अ(अ)बिली भई सैवार।
राइ महर की वारी द्योस होइ अ(अ)धियार॥

सन्दर्भ—वी० ५३-५५।

शीर्षक—वी० मे हाशिए मे 'गोवर की वरनी' शीर्षक दिया हुआ है [किन्तु यह प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति की लिखावट मे है।]

*चिह्नित अक्षर वी० मे सशोधित हैं।

अर्थ—(१) मेरे मन मे ज्ञान [उदित] हुआ है, इसलिए मैं कवित्व (कविता) कह रहा हू, यह [कवित्व] कहने मे सुहावना है, इसे कान देकर सुनो। (२) मै [अव] महर के स्थान गोवर का कथन कर रहा हूँ, वहाँ पर कूप, वापी और आम्राराम बहुतेरे थे। (३) वहाँ पर नारियल तथा गूवा (एक प्रकार की सुपारी) के वृक्ष थे, जिन्हे यदि कोई देखता रहता तो उसे भूख न लगती। (४) दाडिम (अनार) तथा द्राक्षा (अगूर) वहाँ पर बहुतेरे लेकर लगाये हुए थे, नारगी-झारगी (?) तो इतने थे कि कहे नही जा सकते थे। (५) कटहल और ताड उस आम्राराम (?) मे भरे हुए थे और जामुन तथा कैथ (कपित्थ) इतने थे कि उन्हे कोई जानता न था। (६) बाँस, खजूर, वट, पीपल तथा इमली [इस प्रकार] अधिकता से [लगे] हुए थे कि (७) राजमहर की वाटिका मे दिन मे ही अन्धकार हो रहता था।

(१६)

अति घन फेर(रि) देषि अ(अ)बराइ(ई)।
वासहि(हि) पखि कहू ते आइ(ई)।
चुहचुहाहि(हि) ते सूवा सारी।
कुहकुहाहि(हिं) ते कोकिल कारी।
पिउ पिउ बबिहा करै पुकारा।
नाचहि(हि) मोर सबद झनकारा।
महर पुकार ले रि दह(हि) आइ(ई)।
आडुकि (पाडुकि) येक येक चिललाई।
हरियर आइ देस कर रहा।
कागरूद्र (रूक) बहु भाषा कहा।
अस अबर(रा)उ सुहावना(न) जिहि चितु रहा लुभाइ।
बासैहि(सहि)पषी रहही(हि)अ(उ?)ति छाडि न अननरि(अतरि)जाइ॥

सन्दर्भ—वी० ५६-५८।

मै० प्रति इस कडवक से सम्वधित चित्र से मिलती है, इसके पूर्व वह खण्डित है।

अर्थ—(१) पुन: अत्यधिक सघन आम्राराम देख कर कही से भी आए हुए पक्षी वहाँ बोलते रहते थे, (२) शुक-सारिका वहाँ चुहचुहाते रहते थे और काली कोकिला कुहकुहाती रहती थी, (३) पपीहा पी-पी पुकारता रहता था, और मोर नाचते रहते तथा उनके शब्द झकृत होते रहते थे, (४) महर पुकारता रहता था 'आकर दही लो', जबकि पडुक 'एक' 'एक' चिल्लाता रहता था, (५) हारिल तो देश भर के आकर वही रहते थे और काकरूक (उलूक) वहुतेरी भाषाएँ बोलते थे। (६) वह आम्राराम इतना सुहावना था कि जो [पक्षियो के] चित्त को लुब्ध किये हुए था, (७) उसमे पक्षी बोलते तथा निवास करते रहते थे, और उसे छोड कर अन्य [आम्रारामो] मे नही जाते थे।

(२०)

तारा 'पोखर' कुड 'खनाए'। मढ 'देवर' चहु पासि 'उठाए'।
'खूना' तपसी अछहि तहा। 'अउ' भगवतु 'रहइ तिन्ह महा'।
मसवासी सिव मडपु छाई। 'पुरुख नाउ' तेहि 'ठौर' न जाई।
भॅंररा 'डवरू' डाक 'बजावा'। सबदु सुहाव 'नीद' सुनि आवा।
जोगी सहस 'चारि तह' 'गावहि'। सीगी पूरहि भसम 'चढावहि'।
सिद्ध पुरुख गुनआगर देखि 'लुभाने' ठाउ।
कहत सुनत अस 'जानिय' 'दहु' 'चलि देखइ जाउ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३, वी० ५९-६१।

शीर्षक—मैं० सिफते बुतखानः वर हौज व मानदन जोगियान मर्दान व ज़नान दर आ।

पाठान्तर—(१) १. वी० पोषरि। २ दी० षनाइ। ३ मैं० देव। ४ वी० उठाइ। (२) १ वी० षैना। २ वी० औ। ३ वी० रहै तिन माहा। (३) १ वी० पुरष ना। २ वी० ठाव। (४) १ वी० डौरू। २ वी० वजावा। ३ वी० मैं० इन्द्र। (५) १ वी० मैं० पाच एक। २ वी० गावैहि। ३ वी० चरावहि। (६) १ वी० लुटाने। (७) १ वी० जानौ। २. वी० धौ। ३. वी० चलु देषौ जाउ।

अर्थ—(१) [गोवर नगर मे] तडाग, पुष्कर और कुड खुदवाए हुए थे और उनके पास चारो ओर मठ और देवालय उठाए हुए थे। (२) वहाँ (उनमे) खूना-पथी (शरीर को क्षुण्ण—मर्दित चूर्णित करने वाले) तपस्वी थे और भागवत (अथवा भाग्यवान साधक) उनमे निवास करते थे।

(३) शिव के मण्डपो मे मास-कल्प करने वाली स्त्रियाँ छाई रहती थी, उनमे पुरुष नामधारी [मात्र] नही जाते थे। (४) उनमे भरडे (एक प्रकार का वाद्य), डमरू और डक्क वजते थे, जिनके सुहावने शब्द सुनकर निद्रा आती थी। (५) चार सहस्र योगी वहाँ गाते [रहते] थे, वे शृंग पूरते (फूँक कर वजाते) और [शरीर पर] भस्म चढाते थे। (६) सिद्ध पुरुष और गुणो मे अग्र—अथवा गुणो की खानि—लोग उस स्थान को देखकर [उस पर] लुब्ध थे। (७) कहने-सुनने मे से ऐसा जान पडता था कि मानो चलकर उसे देखने जाऊ।

(२१)

सरवरु एकु गुभर भरि रहा। झरना सहस 'एक अउ' बहा।
अति 'अवगाहु न पाइय' थाहा। पानी चोख 'सराहउ' काहा।
वास कपूर पियत खिन 'आवइ'। देखत मोतीचूर 'सुहावइ'।
'कुवरि' लाख दोइ पानी 'जाही'। तीरि 'बइठि' ते लेहि भराही।
'ठाउ ठाउ वइसे' रखवारा। 'खोरि नहाइ' न 'कोउव' 'पारा'।
'छाय(?)' होइ तरुन्ह 'कइ' 'केहु' न 'पाइय' बाट।
चाप रूप सरवर कै रावत(ट) बाधे घाट॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ४, शि०, वी० ६२-६४।

शीर्षक—मै०: सिफते हौज व लताफते आव ऊ गोयद। शि०. अपाठ्य है।

मै० मे (३)। १, (४)। १, (५)। १, (६) तथा (७) के अधिकाश पत्र के त्रुटित होने के कारण नही है। शि० मे (३), (४)। २, (६) तथा (७) के अधिकाश अपाठ्य है।

पाठान्तर—(१) १ मैं० पाच तह। (२) १ वी० औगाहु न पाइये। २ वी० सराहौ। (३) १ वी० आवा। २ वी० र(स ?)हावा। (४) १ वी० कवरि। २ वी० जाही। ३ वी० वैसी। (५) १ वी० ठाव ठाव राषै। २ वी० घोरा न्हाहि। ३ वी० कोउ, शि० कोइ। ४ वी० वारा। (६) १ वी० चापा। २ वी० नरुन (?) की। ३ वी० ककरि। ४ वी० सूझै।

अर्थ—(१) [वहाँ पर] एक सरोवर भरपूर भर रहा था, और [उसे भरने के लिए] एक सहस्र एक झरने प्रवाहित हो रहे थे। (२) वह [सरोवर] अत्यधिक गम्भीर (गहरा) था और उसकी थाह नही मिलती थी। उसका

पानी ऐसा चोखा (अच्छा) था कि उसकी क्या सराहना करूँ ? (३) उसको पीते समय क्षणमात्र मे कपूर की सुवास आती थी, और देखने मे वह मौक्तिक-चूर्ण जैसा सुहाता था। (४) दो लाख कुमारियाँ [वहाँ] पानी भरने के लिए जाती थी, किन्तु वे उस सरोवर के तट पर ही बैठ कर पानी भर लिया करती थी। (५) स्थान-स्थान पर रखवाले बैठे हुए थे, [जिससे] उसमे कोई भी खोर (अग-मार्जन कर) अथवा स्नान नही कर सकता था। (६) वहाँ पर वृक्षो की ऐसी [सघन] छाया थी कि मार्ग नही मिल पाता था, (७) उस सरोवर को धनुष के आकार का [बना] कर उसके घाट रावट पत्थर से बाँधे हुए थे।

(२२)

'पैरहि' हस 'माछ' फहराही। चकवा चकवी केरि कराही।
'धौला' 'ढेक' 'बइठ छिरियाए'। बगुला बगुली सिहरी 'खाए'।
'पीलू' सोन 'तहाँ रहे' छाई। 'अरु जल कुकुरी' 'चुहचुहाई'।
पसरी 'पुरइनि तूलमतूला'। हरियर पान 'ते' रातुर फूला।
'जलपखी आइ देस' कर परा। कार 'कुरुजवा जलहर भरा'।
सारस 'कुरलहि राति नीदि तिल एक न आवइ'।
सबद 'सुहाव कान पर' जागत 'रइनि बिहावइ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ५; बी० ६५-६७। बी० मे यहाँ भूल से एक सख्या बढ गयी है।

शीर्षक—मै० सिफते जानवरा दर आ हौज गोयद।
मै० मे (३) के कतिपय अश अस्पष्ट हैं।

पाठान्तर—(१) १ बी० बिहरैहि। २ बी० मछ। (२) १ मै० देला। २ बी० ढीक। ३ बी० बैसि छिहराही। ४ बी० खाही। (३) १ बी० पीयर। २ बी० रहे दुहु। ३ बी० और जकूकरि। ४ बी० चुहाचुहाई। (४) १ बी० परयनि (पुरइनि—फा०) टोलमटूला (तूलमतूला—फा०)। २ बी० तु। (५) १ बी० कपिल देसु आइ। २ बी० करौजा जग्हर भारा। (६) १ बी० कुररहि सभ निस तिलक नीद न आव। (७) १ बी० सुहावा कान रस। २ बी० रैनि विहाइ।

अर्थ—(१) [उस सरोवर मे] हस तैरते रहते थे, मत्स्य फहराते (ऊपर आते ?) रहते थे तथा [उसके तट पर] चक्रवाक और चक्रवाकी केलि

करते रहते थे। (२) धौले और ढेक [वहाँ पर] छिरिआए (पानी के छीटे लिए) हुए बैठे रहते थे और बकुले-बकुलियाँ शफरियाँ (मछलिया) खाते रहते थे। (३) पीलू तथा सोन वहाँ छाए रहते थे, और जल-कुक्कुटियाँ चुहचुहाती रहती थी। (४) पुटकिनी (कमलिनी) [जल के] विस्तार के बराबर ही फैली हुई थी, [उसके] पत्ते हरे थे और उसमे फूल लाल थे। (५) देश [भर] के जल-पक्षी आ कर [वहाँ] पडे हुए (निवास कर रहे) थे और काले क्रौंच उस जलाशय मे भरे हुए थे। (६) [वहाँ पर] रात्रि मे सारस बोलते थे, [जिससे] तिल मात्र (तनिक) भी नीद नही आती थी। (७) [उनका] सुहावना शब्द कानो मे ऐसा पडता रहता था कि [उसको सुनते हुए] जागते ही रजनी व्यतीत हो जाती थी।

(२३)

'जाइ देखि' गोवर कइ खाई। 'पुरुस' 'पचास' 'कइ रे गहिराई'।
'तरहुत' 'पथरहि तस कइ' बाधी। 'कतहु न सूझइ आतरु' साधी।
'डुबुकी(कि) फिरे' 'आछे पैराऊ'। तिल 'एक नीर घटइ न[हि] काऊ'।
नीर डरावन हरियर बानू। 'झाखत' हिए 'काप तस पानू'।
जो खिसि परइ 'सो जमपथ' जाई। 'परतहि माछ मगर' 'तेहि' खाई।
राइ बीसि 'एक जउ चलि' आवहि 'कैसहु लिएहु' न जाइ।
'दइ कै (कइ)' आपनु 'भागहि' साहन जाहि गवाइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ६, बी० ६९-७१।

शीर्षक—मै० सिफते खदक बर गिर्द शहर गोवर गोयद।

पाठान्तर—(१) १ बी० देपि जाइ। २ बी० की। ३ बी० पुरुस। ४ बी० की र (रे) गहराई। (२) १ बी० तरहत। २ बी० पथरह अस कै। ३ बी० कितहि न सूझै अतरु। (३) १ बी० डभकै भरी। २ बी० अच्छे पैराऊ। ३. बी० इक पानि न सूझै काऊ। (४) १ बी० देपत। २ मै० कीन्ह डर आनूं। (५) १ बी० सु जमपुरि। २ बी० परतेह मगर मच्छ। ३ बी० लै। (६) १ बी० औ मिलि कै। २ बी० कैसै लियो। (७) १ मै० डडी (डडि) कइ। २ बी० भार्जाहि।

अर्थ—(१) गोवर की खाई जाकर देखी। पचास पुरसे ($५० \times ३\frac{१}{२} =$ १७५ हाथ) की उसकी गहराई थी। (२) वह तल से ही पत्थरो मे इस प्रकार बाँधी गयी थी कि उसमे कही पर भी अन्तर या सन्धि नही सूझती थी।

(३) उसमे डुबकी लगा कर अच्छे-अच्छे तैरने वाले भी लौट चुके थे, उसका जल कभी तिल [भर] भी नही घटता था। (४) उसका जल डराने वाला तथा हरे वर्ण का था, यदि उसको कोई झाँकता था तो वह अपने हृदय मे पर्ण (पत्ते) के जैसा काँपने लगता था। (५) जो उसमे गिर पडता था, वह यम (मृत्यु) के मार्ग मे गमन करता था, [क्योकि] गिरते ही उसे मत्स्य तथा मकर खा जाते थे। (६) यदि बीस-एक राय [भी] चले आते, तो किसी प्रकार भी वह खाई उनके अधिकार मे नही जा सकती थी, (७) वे अपना ही देकर भाग जाते और साधन (सैन्यादि) को भी वहाँ पर गँवा कर जाते।

(२४)

'तेहु' 'चाहि' 'जो कोटु' उचावा। 'कारु' सेतु गढि पाथरु लावा।
'पुरस (पुरुस)' तीस 'यक' आहि उचाई। 'हाथ बीस केरी चकराई'।
कौसीसेहि 'सब' ईगुर लागा। ऊपर 'हेर' त खिसि पर पागा।
तेल 'धार' जइसि चिकनाई। ऊपर 'चाटी चरे (चडी)' न जाई।
सगर 'देवसु' चहु दिसि फिरि 'आइय'। सूरु 'आथवइ' 'ओर' 'न पाइय'।
बीस 'पवरि बीसउ' जरि लोहे 'सोनेइ' 'रसे' किवार।
'देवसहि रहहि' पवरिया 'राति भवहि' कोटवार॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ७, बी० ७२-७४।

शीर्षक—मै० सिफते हिसार गिर्द शहर गोवर गोयद।

पाठान्तर—(१) १ मै० एहु। २ बी० चाहु। ३ बी० जौ कोटु। ४ बी० कारु। (२) बी० मे चरणो का क्रम वदला हुआ है। १ मै० हाथ। २ मै० करि। ३ मै० पुरुष सात कड हइ चौडाई। (३) १ बी० सभ। २ मै० देख। (४) १ बी० ढार। २ मै० देखत चढी। (५) १ बी० द्योसु। २ बी० मे नही है। ३ बी० अथवै पै। ४ बी० वार। ५ बी० मे नही है। (६) १ बी० पैरि बीसै। २ बी० सोनै। ३ मै० मढे। (७) १ बी० द्योसहि गर्पाह। २ बी० रति रापैहि। दोहे की दोनो पक्तियो के बीच बी० मे एक और पक्ति है पतरी पगेहि वहुत वीर दानि जुधि जूझार।

अर्थ—(१) उसी प्रकार जो परकोटा उठाया हुआ था, उसे देखिए। उसमे श्वेत पत्थर कारुओ (पत्थर-कटो) ने गढ-गढ कर लगाये थे। (२) उसकी ऊँचाई तीस पुरसे ($३० \times ३\frac{१}{२} = १०५$ हाथ) के लगभग थी और उसकी

चौडाई बीस हाथ की थी। (३) समस्त कौसीसो (कपिशीर्पो—बुर्जो) पर ईंगुर लगा हुआ था, और उनके ऊपर देखिए तो पाग (पगडी) गिर पडती थी। (४) उसकी चिकनाहट तेल की धार जैसी थी, इसलिए उसके ऊपर चीटी भी न चढ सकती थी। (५) सारे दिन उसके चारो ओर फिर आइए और सूर्यास्त हो जाए, तो भी उसका अन्त न पाइए [वह इतना लम्बा था]। (६) उसमे बीस पौन्यिाँ थी, बीसो लौह-मण्डित थी, और सोने से मढे हुए उनके कपाट थे। (७) [उनकी सुरक्षा मे] दिन मे पौरिये रहते थे और रात मे कोटपाल भ्रमण करते (चक्कर लगाते) थे।

(२५)

'वाभन' खतरी 'वस' 'गोवारा'। 'खाडरवा[र]' 'अउ' अग्गरवारा।
बसहि तिवारी 'अउ' पचवाना। धाकर 'जोसी' 'अउ' जजमाना।
वसहि 'खधाई' 'अउ' वनिजारा। जाति सरावग 'अउर' प(प)वारा।
सोनी बसहि सुनार बिनानी। रावत लोग 'वसाए' आनी।
ठाकुर 'बहुत' वसहि चौहाना। परजा 'पौनि' गिननि को जाना।
बहुत 'चाप(पि)' दरमरि उठ' 'खोरिन्ह हीडि' न जाइ।
'बीस' 'वार वस' 'गोवरा' 'मानुस' चलत भुलाइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ८, बी० ७८-८०।

शीर्षक—मै० सिफत खल्के शहर कज सुकना बूदन्द दर आ शहरे मज़कूर।

पाठान्तर—(१) १ बी० वाभन। २ मै० वसहि। ३ बी० गवारा। ४ मै० गहरवार। ५ बी० औ। (२) १ बी० औ। २ मै० चौबे। ३ बी० औ। (३) १ बी० खदाइ। २ बी० औ। ३ बी० और। (४) १ बी० वसायो। (५) १ बी० बहुता। २ बी० नाव। (६) १ मै० जात। २ बी० दरम वुठ। ३ बी० घोरन हाथि। (७) १ मै० तीस। २ बी० पाच (?) रे। ३ बी० गोवारा। ४ बी० मानस।

अर्थ—(१) [नगर मे] ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ग्वाल, खण्डेलवाल और अग्रवाल वसते थे, (२) तिवारी, पचवान, धाकड और जोशी बसते थे जो यजमान (यज्ञ कर्म करने वाले) थे, (३) खधाई (गन्धी), बनजारे, श्रावक और पवार निवास करते थे, (४) सोनी (सोने का पानी चढाने वाले) तथा विज्ञानी सुनार वसते थे और रावत थे, जो (वहाँ) लाकर वसाये हुए थे,

(५) वहुतेरे चौहान ठाकुर [वहाँ] निवास करते थे। प्रजा-पवनियो की गिनती कौन जानता ? (६) [वहाँ की भरी गलियो मे] चप (दब) कर वहुतेरे दलित-मृदित हो उठते थे, और उन मे चला-फिरा नही जाता था। (७) यदि वीस दिनो तक भी गोवर मे कोई निवास करता, तो भी वह मनुष्य चलते हुए [मार्ग] भूल जाता।

(२६)

'राइ कुरी' 'कइ' 'वइस अथाई'। हम फुनि 'ठाढ' भए तहा जाई।
अति 'विदवास' पडित 'ते पढे'। 'रूपि वेरासि दइय के गढे'।
अधरन 'लागइ' पान चवाही। दात ति मुख 'महि' 'दीसहि' नाही।
दान झूझ 'के' 'बिरुद वोलावहि'। 'भाटन्हि कापर घोर देवावहि'।
हाथ खरग 'वै अरि' सिर देही। 'बैरिन्ह ऊपरि' बीरा लेही।
'छत्तीस कुरी' राजपुत 'भूर्जाह सासन गाउ'।
'देस के डाड आव महरइ कह' तिन्ह कुवरनि के 'नाउ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ६, वी० ८१-८३।
शीर्षक—मै० सिफते मजलिसे नरकश वन्दाने राय महर गोयद।
वी० सिफति रावताह की।

पाठान्तर—(१) १ मै० राजकुरी। २ वी० की। ३ वी० वैठ आँयाई। ४ मै० मे नही है। (२) १ वी० विधवास। २ वी० तोहि पठा। ३ वी० रूपि मदन गति विधना गढा। (३) १ वी० लागै। २ वी० महि। ३ मै० मूर्झाहि। (४) १ मै० कर। २ वी० विरद वुलावहिं। ३ वी० भाटेहि कौपरु देहि दिवावैहि। (५) १ मै० वैरिन्ह (दे० दूसरा चरण)। २ वी० वैरी उपरी। (६) १ वी० छतीस्यौं कुरि। २ वी० भूचहिं सहस ये गॉव। (७) १ वी० देम का डडु महर कै आवै। २ वी० नाव।

अर्थ—(१) राजकुल के लोगो की वहाँ अथाई (गोष्ठी) वैठती थी, पुन हम भी वहाँ जाकर खडे हो गए। (२) वे अत्यधिक विद्वान् तथा पढे हुए पण्डित थे और रूप तथा विलास के लिए दैव के द्वारा निर्मित थे। (३) वे पान चावते रहते थे, जो उनके अधरो पर लगता रहता था, [पान से रग कर लाल हो जाने के कारण] उनके मुखो मे जो दाँत थे वे दिखते नही थे। (४) वे दान और युद्ध के विरद [भाटो से] बुलवाया करते थे, और पुरस्कार मे उन भाटो को कपडे तथा घोडे दिलाते थे। (५) वे खड्ग का हाथ वैरियो

के सिरो पर देते थे, और वैरियो के ऊपर [खड्ग चलाने के लिए] वे वीडा लेते थे। (६) ऐसे छत्तीस कुलो के राजपुत्र [राज्य मे] शासनादेशो से प्राप्त ग्रामो का भोग करते थे। (७) उन कुमारो (कुमारभुक्तो) के नामो से महर को देश भर के दण्ड (कर) आते रहते थे।

(२७)

'सून' फूल 'हाटन्ह सव' फूला। 'जिउ बिमोहि गा' देखत भूला।
अगरु चदनु 'सवु' धरा विकाई। कूकू 'परिमल' सुगध 'खधाई'।
'वेना अउरु' 'कपूर' सुहावा। 'मेद' 'कस्तूरी महक सनावा'।
पान 'उडागर (अडागर)' सुरग सोपारी। जैफर लौग विकाइ 'छुहारी'।
'दौना' मरुवा 'कुद' निवारी। गूदे 'हार' ति 'वेचहि' मारी।
खाड 'चिरउजी' दाख खुरुहरी वहुतइ लोग 'वेसाहि'।
हीर 'पवार' 'सोन भल' कापर 'जत चाहिय सब आहि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १०, वी० ८४-८६।

शीर्षक—मै० सिफते वाजार इश्रियात शहरे गोवर व खरीदने खल्क।

पाठान्तर—(१) १ वी० सोवन। २ वी० हाटन (?) भल। ३ वी० जीउ विमोहा। (२) १ वी० सभु। २ मै० परीमल (परिमल)। ३ वी० सुहाइ। (३) १ वी० वीना औरु। २ वी० कफूर। ३ मै० मोद। ४ वी० कस्थूरी मह घसि ह्लावा। (४) १ मै० नगरखड। २ वी० चहारी। (५) १ वी० दोन। २ वी गूद। ३ वी० हर। ४ वी० वेचिहै। (६) १ वी० चिरौजी। २ वी० वसाहि। (७) १ मै० पवर। २ वी० वहु। ३ वी० भवै अँसे अँसे साहि।

अर्थ—(१) [गोवर की] हाटो मे सभी [प्रकार के] प्रसून तथा फूल फूल रहे थे। उनको देखते ही जी विमुग्ध हो जाता और भ्रमित हो जाता था। (२) अगुरु और चन्दन—सभी [उन हाटो मे] रखे हुए विकते रहते थे, कुकुम, परिमल [आदि] सुगन्धित द्रव्य महकते रहते थे। (३) वीरण (खस) और सुहावना कर्पूर था, मेद था, और कस्तूरी थी जो महक से सनी हुई थी, (४) अडाकर (समूचे) पान और अच्छे रग की सुपारी थी, जायफल, लवग तथा छुहारी विकते थे, (५) दौना, मरवा, कुद और निवारी [के] गूथे हुए हार माली वेचते रहते थे। (३) खाड, चिरौजी, दाख (मुनक्का) तथा खुरहुरी को वहुतेरे लोग मोल लेते रहते थे। (७) हीरा, प्रवाल, सोना और अच्छा कपडा, जितना भी चाहिए, सभी था।

(२८)

'हाट छरहटा पेखन' होई। 'देखहि' निसरि 'मनुस अउ' जोई।
वरुवा राम रमाइनु कहही। गावहि गीत नाच भल करही।
वहुरूपी 'वहु भेस फिरावा'। वार 'वूढ' चलि 'देखइ आवा'।
'राधा कान्ह देस छद ल्यावहि'। मटकि मूड 'मसि देह चरावहि'।
'गावहि गीत औ (अउ) कहहि' पवारा। नट नाचहि 'अउ' वाजहि तारा।
'भामनगारी' कोइ 'चरित हम देखा होइ' अपार।
'अछ' वधावा 'गोवर' 'घरि घरि मगराचार'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ११, वी० ६०-६२।

शीर्षक—मै० सिफत वाज़ीगरा दर वाजार शहर गोवर गोयद।

पाठान्तर—(१) १ वी० हाट चढे तो पिपिना अस। २ वी० ते देपति। ३ वी० मनु औ। (३) १ वी० वहु भेस फिरावहि, मै० वहु फेस (भेस) फिरावा। २ मै० वूड। ३ वी० देपन आवहि। (४) १ मै० रासइ गावहि भल छद लावहि। २ वी० लै निसेहि चरावहि। (५) १ मै० कीनर गावहि होइ। २ वी० औ। (६) १ वी० भाटमगारी। २ वी० रचित देपत सबै। (७) १ वी० इछ। २ वी० गोवर। ३ वी० घर घर मगलचार।

अर्थ—(१) उन हाटो मे छरहटा (छल-कृत्य) के प्रेक्षणक (तमाशे) होते रहते थे, जिन्हे पुरुप और स्त्रियाँ निकल-निकल कर देखते थे। (२) वरुवा (वटु) राम का रामायण कहते थे, वे गीत गाते थे और अच्छा नृत्य करते थे। (३) वहुरुपिए अनेक वेप धारण करते रहते थे, जिन्हे चल कर देखने के लिए वालक-वृद्ध [सभी] आते थे। (४) वे राधा-कृष्ण के सुन्दर छद्म लगाते (धारण करते) थे तथा वे [राधा के छद्म के लिए] सिर पर मटकी और [कृष्ण के छद्म के लिए] देह पर मसि चढाते (लगाते) थे। (५) वे गीत गाते और पवारे कहते थे, नट नृत्य करते और [उन नृत्यो पर] ताल वजते थे। (६) हमने देखा कि वहाँ पर भुलावे मे डालनेवाले अपार खेल तथा चरित्र होते थे। (७) गोवर [भर] मे वधावा और घर-घर मे मगलाचार होता रहता था।

(२९)

'कहउ महर मीह' वारु 'वखानी'। 'वइठ सीह गढि धरे' विनानी।
'वहुत' 'वीर' तिन्ह देखि पराही। हिए लाग डर 'खेदि' न खाही।

'देखत पवरि डीठि' फिरि जाई। एक सूति 'मुतिहार' उचाई।
'ओपि' रूप 'कइ' पानी ढारा। अस 'कइ' महर दुवार 'सवारा'।
सात लोह 'एकहि' 'औटाए'। वजर केवार 'पवरि गढि लाए'।
'राति जु' 'वइसइ' चौकी कुत खरग 'रह' छाइ।
पाखर 'सहस साठ फिर' 'चाटहि' सचरि न जाइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १२, वी० ८७-८६।

शीर्षक—मै० सिफते दरबारे राय महर गोयद।

पाठान्तर—(१) १ वी० कहौ महर सभ (?)। २ मै० वखानी। ३ वी० वैठ (?) स्यघ घरि धरौ। (२) १ वी० चाहत। २ वी० वी। ३ वी० पीर। (३) १ वी० देखि पौरि दिष्टि। २ मै० सुतिघार। (४) १ मै० औटि। २ वी० कै। ३ वी० कै। ४ वी० दुवारा। (५) १ वी० केये। २ वी० औटाइ। ३ वी० पौरि धरि लाइ। (६) १ मै० रातिहि। २ वी० वैसहि। ३ वी० रहि। (७) १ वी० साठिन आगर। २ वी० चीटी।

अर्थ—(१) [अव] मै महर के सिंह-द्वार को वखान (वर्णन) कर कह रहा हूं, [जिस पर] सिंह वैठे हुए थे, जिन्हे विज्ञानी (सुतारो—गढने वालो) ने गढकर (वना) रखा था। (२) वहुतेरे वीर [भी] उन्हे देख कर भाग जाते थे, उन्हे हृदय मे डर लगता था कि वे दौडा कर (पीछा कर) उन्हे खा न जाएँ। (३) उस पौरी को देखते दृष्टि फिर जाती थी (उस पर ठहरती नही थी), [लगता था कि] सूत्रधार ने एक ही सूत (नाप-जोख) मे उसे उठाया था। (४) उसको चमकाकर [उस पर] रौप्य (चाँदी) का पानी ढाला हुआ था, इस प्रकार से महर का द्वार सवारा हुआ था। (५) सात [चादरो के ?] लौहो को एक मे औटा कर वनाए हुए वज्र (फौलाद) के कपाट उस पौरी मे गढ कर लगाये हुए थे। (६) रात्रि मे (उस पर) जो चौकी वैठती थी (जो पहरेदारी होती थी), [उसके] कुन्त (वर्छे) और खड्ग छाये रहते थे, (७) साठ सहस्र पाखरे हुए (कवचित) सैनिक फिरते [हुए पहरा देते] थे, [जिसके कारण] चीटे से भी वहाँ सचरण नही किया जाता था।

(३०)

फुनि 'हउ कहउ' 'धौरहर' बाता। 'ईगुर' पानि 'ढारि किय' राता।
सत 'पड' पाटा 'अनवन' भाती। 'स(सा)ठि' चौखडी 'भई जिन्ह' पाती।

'असि' रचना 'किय' कौन बिनानी। 'साठि' करस 'लै' धरे 'सोनवानी'।
चउरासी सै(सइ) 'भाति' उचाई। लिपी देररी 'अते' सुहाई।
कनक खभ 'जडि' मानिक 'धरे'। जगमगाहि 'जनु तरई' भरे।
अगरु चदन 'उपटना' 'अछइ' 'मुहाई' बासु।
देवलोक 'अस' भापहि 'म कहु आहि कविलासु'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १३, बी० ९३-९५।

शीर्षक—मै० सिफते कसरहाय राय महर गोयद।

पाठान्तर—(१) १ बी० हौ कहौ। २ मै० धौराहर। ३ बी० हीगुर। ४ बी० ढरि किही। (२) १ बी० पिन। २ बा० अनअन। ३ मै० सात। ४ बी० भड वहु। (३) १ बी० अस। २ बी० की। ३ मै० सात। ४ मै० मे नही है। ५ बी० सुवानी। (४) १ मै० मे नही है। २ मै० अती। (५) १ बी० जानौ। २ बी० जरे। ३ बी० जानौ तरियर। (६) १ मै० दुहु तूलइ। २ बी० अछै। ३ मै० सुहावनि। (७) १ बी० सभ। २ बी० सुप ही आई विलासु।

अर्थ—(१) पुन (इसके अनन्तर) मै धवल-गृह (राज-प्रासाद) की बात कह रहा हूँ, जो हिंगुल का पानी ढाल कर राता (लाल) किया हुआ था। (२) उसका सतषडा (सप्तभौमिक प्रासाद) अनोखी भॉति से पाटा हुआ था, और उसमे सात चौखण्डियाँ थी जिनकी पक्तिया [वनी] हुई थी। (३) ऐसी रचना किस विज्ञानी [विश्वकर्मा] ने की थी ? (सातो चौखण्डियो पर) साठ कलश ले (बना) कर रखे हुए थे, जो सोने का पानी किए हुए थे। (४) [महर की चौरासी रानियो के लिए] चौरासी [सदन] सुन्दर (?) भॉति से उठाये हुए थे, जिनमे अत्यधिक सुहाई देररिएँ (धारियाँ ?) लिखी (खिची ?) हुई थी। (५) सोने के खम्भ माणिक्यो से जटित होकर रखे हुए थे, जो ऐसे जगमगाते थे जैसे वे तारिकाओ से भरे हुए हो। (६) अगुरु, चन्दन तथा उपटने (?) की मुहावनी वास [उनमे] वनी रहती थी। (७) देवलोक [के प्राणी] ऐसा कहते थे कि "कही यही तो कैलास (शिवलोक) नही है ?"

(३१)

गाइ महर रानी 'चउरामी'। इक इक के 'तर' चेरि 'इकासी'।
'व्रगर' वेगर 'होड जेवनारा'। वेगर मदिर सेज सवारा।
पाट 'महादे' फूला रानी। सबइ 'अचेति वह अही' मयानी।

अगर चदन फूल 'अउ' पानू । कूकू मेद न 'वेरसहि ५
रचे हिडोला झूलइ नारी । गावहि अपर सव जोबन बारी ।
अरथ दरव 'घोर अउ हस्ति(हस्ती)' गिनत न आवइ काउ ।
अन धन पाट 'पटोर भल' 'कउतुक भूला' राउ ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १४, वी० ६६-६८ ।

शीर्षक—मैं० सिफते हरमा राय महर किहश्ताद व चहार बूदद ।

पाठान्तर—(१) १ वी० चौरासी । २ वी० कै घर । ३ बी० यीक्यासी । (२) १ वी० वेग । २ वी० हैइ ज्यौनारा । (३) १ मैं० महादेवि । २ वी० अचेती उहै । (४) १ वी० औ । २ वी० कवरि तन वानू । (५) वी० मे यह पक्ति हाशिए मे मूल प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति द्वारा इस प्रकार दी हुई है चरे (रचे ?) हिंडो [ला] उवरै ना [री] गावहि गी[त] सव जो[व]न वारी । (६) १ वी० औ घोर वर । (७) १ वी० पटोरा हस्नी । २ वी० तीस कौअर ।

अर्थ—(१) राजमहर की चौरासी रानियाँ थी, और एक-एक (रानी) के नीचे (साथ) इक्यासी-इक्यासी चेरियाँ थी । (२) उनके ज्यौनार अलग-अलग होते थे, और अलग-अलग मन्दिरो (भवनो) मे उनकी शैयाएँ सँवारी जाती थी । (३) पट्ट महादेवी फूला रानी थी, और सब रानियाँ अचेत (मुग्धा) थी, एकमात्र वही सयानी (प्रौढा) थी । (४) अगुरु, चन्दन, पुष्प, सज्जित तावूल, कुकुम और मेद का भोग वही करती थी, अन्य [रानियाँ] नही करती थी । (५) हिंडोले रचे हुए थे, जिन पर नारियाँ झूलती थी, अन्य सव यौवनवती वालिकाएँ गीत गाती थी । (६) महर के अर्थ, द्रव्य, घोडो और हाथियो को कदापि नही गिना जा सकता था । (७) राजा (राजमहर) अन्न, धन, पाट (रेशम), अच्छे और पट्टकूल (रेशमी वस्त्र) के कौतुक मे भूला रहता था ।

३. चांदा-जन्म एवं विवाह खण्ड

(३२)

सहदेव मदिर चाद 'अवतारी' । धरती सुरगि भई उजियारी ।
'पहिलिइ' घरी 'भएउ' अवतारू । 'दुइ रातन(नि) जानौ' 'सयसारू' ।
'सातव' चद्रु नखत भा मागा । जानौ सूरु दिपइ 'तिसु' आगा ।

भई सपूरन 'चउदसि' राती । चाद महर 'धिय पदुमिनि' जाती ।
राहु केतु 'दुइ' सेव कराही । 'सूकु' 'सनीछरु' 'पहरइ' जाही ।
'अउर' नखत 'ओरगावन' आछहि 'पवरि' दुवारि ।
चाद चलत नर 'मोहहि' जगत 'भएउ' उजियार ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १५, वी० १०३-१०५ ।

शीर्षक—मै० · तवल्लुद शुदने चादा दर खान-ए-महर व खिदमत करदने हमह सितारगान ।

वी० जिस पृष्ठ पर यह कडवक आता है, उसके ऊपरी हाशिए मे मूल प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति की लिखावट मे लिखा हुआ है "चादा कौ जनमु ।" प्रसग एक कडवक पूर्व प्रारम्भ होता है, जो (३१ अ) के रूप मे परिशिष्ट मे दिया गया है, और वह कडवक प्रति मे पूर्ववर्ती पृष्ठ पर है, यह भी विचारणीय है ।

पाठान्तर—(१) १ वी० औतारी । (२) १ वी० पहली । २ वी० भयो । ३ मै० दूज क चाद जानु । ४ वी० ससारू । (३) १ वी० सातवै । २ मै० चह । (४) १ वी० चौदसि । २ वी० घरि पदमनि । (५) १ वी० दोउ । २ वी० शूकु । ३ मै० सनीचर । ४ वी० पहरै । (६) १ वी० और । २ वी० उरगावन । ३ वी० पौरि । (७) १ वी० मोहे । २ वी० भयो ।

अर्थ—(१) सहदेव के घर मे चाद ने अवतार लिया तो धरती और स्वर्ग (आकाश) मे उजाली (चादनी) हो गयी । (२) [रात्रि की] प्रथम घडी मे ही अवतार हुआ था, इसलिए संसार मे मानो दो रातें हुई थी । (३) उसकी माँग मे सप्तमी का चन्द्र नक्षत्र [-वत्] हुआ, और उसके अग (शरीर) मे मानो सूर्य दीप्त हो रहा था । (४) [इस प्रकार] रात्रि सम्पूर्ण रूप से चतुर्दशी की हो गई, और पद्मिनी जाति की महर की वह कन्या [उसका] चाद हुई । (५) राहु तथा केतु दोनो उसकी सेवा कर रहे थे और शुक्र तथा शनैश्चर पहरे पर जा बैठे थे । (६) अन्य नक्षत्र उसकी सेवा मे [उपस्थित होकर] उसकी पौरी के द्वार पर थे । (७) चाद से [उसको देख कर] मार्ग चलते हुए लोग मुग्ध हो जाते थे, और जगत् [उससे] प्रकाशित हो गया था ।

(३३)

'पाचउ' दिवसु छठी भइ राती । 'नेउता' गोवर 'छतीसउ' जाती ।
घर घर 'कह कर टेका' आवा । 'अउ' तेहि 'पाढे (पाछे)' 'बाज बधावा'।
महरी सहस 'सात' इक 'आई' । आग मूड 'सेदुर अन्हवाई' ।
वाभन सभा आइ 'जो' बईठी । काढि पुरानु रासि गनि दीठी ।
'छठी क' आखरु 'दीख लिलारा' । 'उरधइ सो जाइहि' 'जम बारा' ।
अगिनि 'पुरगु भा चादहि' 'औ (अउ)' कट 'छुई' न जाइ ।
जस उजियारे 'फतिगा' 'मरिहहि' राइ उडाइ ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १६, वी० १०६-१०८ ।

शीर्षक—मै० रोजे पजुमे शशमी शवे जियाफते रवादा करदन व दीदन जुन्नार दा (दारा) तालअ ।

पाठांतर—(१) १ वी० पाँचवो । २ वी० न्यैता । ३ वी० छतीसै । (२) १ मै० सभ कर नेउना । २ वी० औ । ३ मै० ऊपर । ४ वी० वाजि वजावा । (३) १ वी० तीस । २ वी० आनी । ३ वी० सव सिदुर अन्हवानी । (४) १ वी० जु । (५) १ वी० छठि का । २ वी० लिप्या लिलारू । ३ वी० उधरै सो जाइहै । ४ वी० जमवारू । (६) १ वी० वरनु भया चादेहि । २ मै० अउर । ३ वी० छुवन । (७) १ वी० फनका (फतिगा—फा०) । २ वी० मरिहै ।

अर्थ—(१) पाँचवे दिन को ही रात मे [जब चादा के जन्म की छठी रात थी] उसकी छठी हुई, गोवर की छत्तीसो जातियाँ आमन्त्रित हुई । (२) [निमन्त्रण के उत्तर मे] घर-घर का कर-टेका (नमस्कार) आया, और उसके वाद [उनके] वधावे वजे । (३) [तदनन्तर] लगभग सात सहस्र महरियाँ आई, जो अग तथा शिर मे सिन्दूर से स्नात थी । (४) ब्राह्मणो (पडितो) की सभा जो आकर वैठी, उसने पुराण (ज्योतिप-ग्रथ) निकाल कर उसकी राशि गिन कर देखी । (५) [उन्होने कहा,] "[इस कन्या के] ललाट मे छठी का यह अक्षर (लेख) दिखाई पड रहा है कि ऊर्ध्व (अपने जीवन के सर्वोच्च समय) मे ही यह यम-द्वार को जाएगी । (६) चादा को अग्नि का पुटक (आच्छादन) हो गया है, और उसकी कट (शरीरयष्टि) [इस कारण] छुई नही जा सकती है । (७) जिस प्रकार [दीपक के] प्रकाश के लिए पतिंगे, उसी प्रकार [इसके रूप के लिए] राजा-गण उड-उड कर आएँगे और मरेंगे ।"

(३४)

'वरहे' मांस 'देसि' गई बाता। धौर समंद 'माबर' गुजराता।
तिरहुति अवधि 'बदाऊ जानी'। चहू भुवन 'असि' बात बखानी।
'गोवर हि' आहि महर 'कइ धिया'। 'चाद नाउ' धौराहर 'दिया'।
'असि तिरिया' 'जउ मागे पाइय'। अरथ लाइ 'कइ' 'व्याहइं जाइय'।
'राजा' के नित 'वरउत' आवहि। बहुरि जाहि 'पइ' उतरु न 'पावहि'।
महरु 'कहइ' को 'मोरे जोगित' 'कासो करउ बिबाहु'।
टिकइतु 'मित सब को आहइ' जाति न 'देखउ काहु'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १७, वी० १०६-१११।

शीर्षक—मै० सिफते जमाल सूरते चादा दरहम शहरहा मुश्तहिर शुद।

पाठांतर—(१) १ वी० वरहैं। २ मै० मे नही है। २ वी० मारव। (२) १ वी० चाद उजियानी। २ वी० अस। (३) १ वी० गोवर। २ वी० की धीया। ३ वी० सरग चाद। ४ वी० दीया। (४) १ वी० अस तिरियौ। २ वी० मागे जौ पइयहि। ३ वी० कै। ४ वी० जाइ विवाहहि। (५) १ वी० राजे। २ वी० परियत। ३ वी० पै। ४ वी० पावैंहि। (६) १ वी० कहै। २ वी० मोरि जुगति। ३ वी० का तासौ करै विहाउ। (७) १ वी० परयतु कोय को देपो। २ वी० देषौं काउ।

अर्थ—(१) बारहवे महीने मे [यह] बात देश मे फैल गयी—वह धुर समुन्द (द्वार समुद्र), माबर (दक्षिण भारत का पूर्वी समुद्र तट) और गुजरात [तक] जा पहुँची, (२) तिरहुत, अवध तथा बदाऊँ ने यह बात जानी और चारो भुवनो मे यह बात इस प्रकार बखानी गई (वर्णित हुई), (३) "गोवर मे ही महर की एक कन्या है, जिसका नाम चादा है और जो [महर के] धवल-गृह (प्रासाद) का दीपक है। (४) ऐसी स्त्री यदि माँगने से पा सकिए, तो अर्थ (संपत्ति) लगा कर उसे व्याहने के लिए जाइए।" (५) राजा (महर) के पास नित्य वर होने के आकाक्षी आते थे, वे लौट जाते थे किन्तु उत्तर नही पाते थे। (६) महर कहता था, "मेरी योग्यता (जोडी) का कौन है जिससे मैं (कन्या का) विवाह करूँ? (७) टिकइत (तिलकधारी) तथा मित्र सभी कोई (बहुतेरे) है, किन्तु [उनमे से] किसी मे [अपनी] जाति नही देख रहा हूँ।"

(३५)

'चउथे बरिसि धरिसि' जउ पाऊ। 'जइत' बोलावा बाभन 'नाऊ'।
दीन्हि सुपारी 'मोतिन्ह' हारू। 'कहिहु' महर 'सो' मोर 'जुहारू'।
'अउ अस कहेहु' 'मोर तू' भाई। 'राजा नइ कइ करहु' सगाई।
'औ' जस 'जानि[सु]' 'कहिसु' सवारी।
'जइसइ वर घर मुनी(नि) रे सकारी'।
महर 'कै राध' 'गवनहु पइ' आजू। हम चाहत 'सु(सो) कीजै' काजू।
'एत कही कइ' वाभन नाऊ 'दोऊ' 'दीत' चलाइ।
वरी चाद वावन 'कहु' वेगि 'कहउ' मोहि आइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १८, वी० ११२-११४।

शीर्षक—मै० फरिस्तादन राए जैत बरभन व हज्जाम रा वर महर वराए पैगाम वावन रू।

पाठान्तर—(१) १ वी० चौथे वरसि धरसि। २ वी० ज्योतिषि। ३ वी०' '' न्हाउ। (२) १ वी० मोतिका। २ वी० कहसि। ३ वी० मौ। ४ वी० छुहारू। (३) १ वी० औ अस कहौ तु। २ वी० तु मोर त। ३ वी० मोसैं नवि करि करीहु। (४) १ मै० और। २ वी० जानौहु। ३ वी० कहहु। ४ वी० जैसे पुरपु न पावहि गारी। (५) १ मै० कहेसि। २ वी० कहौन। ३ मै० हहिं आपन। (६) १ वी० अस करि करियहि। २ वी० दाउ। ३ मै० दीन्ह। (७) १ वी० कौहु। २ वी० कहहु।

अर्थ—(१) जव उस (कन्या) ने चौथे वर्ष मे पैर रखा, जैत ने ब्राह्मण तथा नाई को वुलाया। (२) उन्हे [उसने] सुपारी दी तथा मोतियो का हार दिया और कहा, "महर से मेरा जुहार कहना, (३) और ऐसा कहना, 'तुम मेरे भाई (जाति के) हो, इसलिए हे राजा, तुम मुझसे नमित होकर सगाई (सवध) कर लो।' (४) और भी जैसा-कुछ जानना, सवार कर कहना और जिस प्रकार से भी वर तथा घर [का वखान] सुनकर वह [प्रस्ताव को] सकारे, [उस प्रकार से कहना]। (५) महर के निकट, हो न हो, आज ही जाओ, और हम जो कार्य चाहते है, उस कार्य को करो।" (३) इतना कहकर उसने ब्राह्मण तथा नाई दोनो को चला दिया, और कहा, "चादा ने वावन को वरण किया, यह वात तुम शीघ्र आकर मुझसे कहा।"

(३६)

'बांभन' नाऊ 'गए सीह' बारू। देखि महर 'दुहु' कीन्ह जोहारू।
महर कहा 'कित' पांडे आवा। 'ओहट लहि अवधारिय' पावा।
सुनहुं 'देउ' हम 'जइत' पठाए। धरम लागि 'तुम बिनती' आए।
वोहू आहि 'तुम्हारेउ' भाई। राजा 'नइ कइ' करहु सगाई।
धरम राज 'तुम जुग जुग पावहु'। हम 'दिए' 'बेटी' बोलु सुनावहु।
जाति करम 'गुन' आगर देस मान सभ लोग।
'सुनइ बोल जउ दीजइ बेटी' बावन जोगु॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १९; बी० ११५-११७।

शीर्षक—मैं० आमदने बरभन व हज्जाम बर महर व अरज करदने पैगामे बावन।

पाठांतर—(१) १ बी० बभन। २ बी० जु गयो दुवारू। ३ बी० तिन्ह। (२) १ बी० कत। २ बी० औहट तौ अवधौरे। (३) १ बी० देव। २ बी० जैह। ३ बी० अस बीनति। (४) १ बी० तुम्हारा। २ बी० नवि करि। (५) १ बी० तुम्ह जाग जु पावोहु। २ बी० दे। ३ मैं० बेटी। (६) १ बी० कर। (७) १ बी० सुनै बोल जौ बेटी दीयहि।

अर्थ—(१) ब्राह्मण और नाई [सहदेव महर के] सिंह-द्वार पर गए, और महर को देखकर दोनो ने जुहार की। (२) महर ने कहा "पाडे (पडित), तुम कहाँ (किस प्रयोजन से) आए हो? ओहट (दूर) से [निकट] पैर अवधारो (रक्खो)।" (३) [पडित ने कहा,] "हे देव, सुनो, हम जैत के भेजे हुए है, और धर्म [के कार्य] के लिए तुम्हारे पास विनती [करने] आए हुए हैं। (४) वह भी तुम्हारा भाई है, हे राजा, [अत] तुम [उससे] नमित होकर सगाई (सवध) कर लो। (५) तुम युगयुगान्तर तक के लिए धर्म का राज्य पाओ; 'हमने कन्या दी'—यह वचन सुनाओ। (६) जाति, कर्म तथा गुणो मे वह अग्र (वढ़ा-चढा) है और देश मे सभी लोग उसको मानते है (उसका सम्मान करते हैं)। (७) [हमारी विनती है कि] वह यह वात सुने कि आप वावन की जोड़ के लिए अपनी वेटी दे रहे है।"

(३७)

सुनु साधू तू पडित सयानां। 'गनित कार' कस 'होसि' अयानां।
छठि 'आठइं कइसे' जुर रासी। 'घरी धरसि अउ' गनत भुलासी।

अस फुनि 'असकिति' करी न जाई। 'पाछे रहइ न तोरि' बडाई।
नेह सनेह 'जउ पुरत न' होई। 'कहा क पुरुखु' 'कहा कइ' जोई।
'दइय क लिखना जो पइ आहा'। 'ताको हम तुम करिहहि काहा'।

तोर कहा 'हउ कैसे मेटउ' सुनि 'कइ रहउ' लजाइ।
'गनत रासि जनि भूलहि' 'पाछे' होइ 'पछिताइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २०, वी० ११८-१२०।

शीर्षक—मैं० जवाव दादने वरभन व हज्जाम का अज तालअ चाँदा व वावन।

पाठान्तर—(१) १ वी० गनतकार। २ वी० होइ। (२) १ वी० आठै कैसे। २ वी० परी (घरी—फा०) धरत औ। (३) १ वी० असगति। २ वी० पाछौ रहै न तोर। (४) १ वी० जौ न पै। २ वी० कत कर पुरिखु। ३ वी० कहो कर। (५) १ वी० दई कर लिखा जो रु पै अहा। २ वी० तिह कउ हउ तू कहिहैह कहा। (६) १ वी० हौ कैसै मेटौ। २ वी० कै रहो। (७) १ वी० गिनतकार जिनि भूलहु। २ वी० पाछै। ३ वी० गुहराइ।

अर्थ—(१) [सहदेव महर ने कहा,] "ऐ साधु (सज्जन पुरुष), सुन, तू सज्ञान पडित है, तू गणित करने वाला है, [फिर] तू कैसे अज्ञ हो रहा है? (२) छठी (कन्या) तथा आठवी (वृश्चिक्) राशियाँ कैसे जुड सकती है? तू घडी का निर्धारण कर रहा है और गणना करते हुए भूल रहा है? (३) पुन., ऐसी असत्कृति की नही जाती है, क्योकि [ऐसा करने से] पीछे तेरा बड़प्पन न रहेगा। (४) यदि नेह-स्नेह पूरा न पडता हो, तो कहाँ का पुरुष [रहा] और कहाँ की स्त्री [रही]? (५) दैव का लिखा जो भी है, उसको हम और तुम क्या कर सकेगे? (६) तेरा कथन मैं कैसे मिटाऊँ? [किन्तु] उसे सुन कर मैं लज्जित हो रहा हूँ। (७) राशियो की गणना करते हुए तू भूल न कर कि पीछे पछतावा हो।"

(३८)

'बाभन' टेक बोल 'कइ' पाई। 'बरउ' चाद 'रह' 'मोरि' वडाई।
'तू नरिंद' देस 'कर' राऊ। तो कहु 'बुरह न आवइ' काऊ।
रासि 'गनित कर' नाउ न 'लीजा'। 'दइ[य]आनि बिचि' बेटी 'दीजा'।

'दइय' लागि काजु जो करा। 'ता कहु' धरमु दुहू जगि धरा।
बाभन बोलु महर 'जउ' मानां। 'गूवक बिरचि' देवाए पाना।
सेदुर फूल 'चढाए' 'अउ मोतिन्ह' 'गै (गिय) हार'।
दीत 'चादा वावन कह' तीरि लाउ करतार॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २१, बी० १२१-१२३।

शीर्षक—मैं० बाज नमूदने जुन्नारदार पैगामे वावन व कबूल करदने महर व दहानीदने नेग।

बी० मे बाएँ हाशिए मे इस कडवक के सामने मूल प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति का लिखा हुआ है 'चादा बादनै दीन्ही'।

पाठान्तर—(१) १ बी० बाभनि। २ बी० की। ३ बी० वरौ। ४ बी० रहि। ५ बी० मोर। (२) १ बी० तू नर्यद। २ बी० कौ। ३ बी० बुरा न आवै। (३) १ बी० गिनतकरा। २ बी० लीया। ३ मैं० देइय जइत घर। ४ बी० दीया। (४) १ बी० दइ। २ मैं० ताकर। (५) १ बी० जौ। २ बी० गोवा (गूवा—फा०) परच। (६) १ बी० चरावा। २ बी० अव मोती। ३ मैं० गलहार। (७) १ बी० चाद वावन कै।

अर्थ—(१) ब्राह्मण को बोलने के लिए टेक मिल गई और उसने कहा, "आप चाँद का वर (व्याह) दे तो मेरी बडाई रहेगी। (२) आप नरेन्द्र है और देश के राजा है, आपको कोऊ बुरा (अनिष्ट) कदापि न आएगा। (३) राशि-गणना का नाम न लीजिए, दैव को बीच मे ला कर अपनी कन्या दीजिए। (४) दैव के सहारे से जो कोई भी कार्य करता है, उसको (उसके लिए) धर्म दोनो जगत् मे रक्खा (सुरक्षित) रहता है। (५) जब महर ने ब्राह्मण का वचन मान लिया, उसने [जइत की भेजी हुई] गूवा (सुपारी) का सत्कार कर [सम्बन्ध-स्वीकार-सूचक] पान दिलाया, (६) उस पर सिन्दूर और फूल चढाए तथा मोतियो का एक गलहार [उसे दिया]। (७) उसने चाँदा वावन को दी और कहा, "सृष्टिकर्त्ता [इस सकल्प को बाधाओ के समुद्र से खेकर] तट से लगाए।"

(३९)

तेल फुलेल 'दुवउ' अन्हवाए। 'अपुरुव वस्तर काढि फिराए'।
'महर' मदिर 'जेएन्हि जेवनारा'। 'प(पा)ए' पान भए असवारा।

दिए असीस फिराए 'बागा'। रहसत चले बोलु 'भल' लागा।
जाइ 'जइत' घरि 'दीति' बधाई। बरी चाद बावन कहु पाई।
'बिहफइ निसि अधियारि बिहावा'। करहु बियाहु चाद घरि 'आवा'।
'जइत बुलाए' लोगु 'कुटुब' जन सुनहु एक मति आइ।
'महर' दीति बावन 'कह' चादा 'चलहु बियाहइ' जाइ ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २२, बी० १२४-१२६।

शीर्षक—मै० वाज गश्तन जुन्नारदारा व हज्जाम व वाज गुफ्तन कैफियत निकाह वर जैत।

पाठान्तर—(१) १ बी० दोउ। २ बी० अपुरब वस्त्र लेइ पहराये। (२) १ बी० महरि। २ बी० जेये ज्यँनारा। ३ मै० लीन्ह। (३) १ बी० पागा। २ बी० टलु। (४) १ बी० जैतु। २ बी० दीन्ह। (५) १ बी० विम्रहि निसि अधियार न भावै। २ बी० आवै। (६) १ बी० जैत बुलावा। २ बी० मे नही है। (७) १ बी० महरि दीत। २ बी० कौ। ३ बी० चलौहु विवाहि।

अर्थ—(१) महर ने दोनो को तेल-फुलेल से नहलवाया (स्नान कराया) और अपूर्व वस्त्र निकलवा कर दोनो को पहनवाए। (२) महर के मन्दिर (प्रासाद) मे [दोनो ने] ज्योनार जेई, पान ग्रहण किए और वे [लौट कर जाने को] सवार हुए। (३) [उन्होने महर को] आशीर्वाद दिया और बागा पहना, [तदनन्तर] वे हर्षित होते हुए चल पडे, क्योकि उन्हे [महर का] वचन भला लगा। (४) जैत के घर जा (पहुँच) कर [उन्होने] बधाई दी और कहा, "चाँदा ने बावन को प्राप्त कर उसका वरण किया। (५) [वार-विशेष तथा चाँदा की धाय] वृहस्पति और अँधेरे पक्ष की रात्रि को छोड कर ब्याह करो तो चाँद (चाँदा) घर आ जाएगी।" (६) जैत ने अपने आत्मीयो तथा कुटुम्बी-जनो को बुलाया और कहा, "आ कर एक मति (विचारणीय बात) सुनो, (७) महर ने चाँदा बावन को दी है, चलो जा (चल) कर उसे ब्याह लाएँ।"

(४०)

भार सहस 'दुइ' लाडू 'लावन'। 'जाजर पापड भए पकावन'।
'कीत' 'खिरउरा अउ' कुसियारा। बहुल 'क(ख)डौर भए' असभारा।

चीर पटोर फिराए बागा। 'टाका लाख सौं' अभरन लागा।
डाडी असी नवै इक 'चली'। इक इक 'चाहि सो' इक इक 'भली।'
सात आठ सै घोर पलाने। भए असवार राइ 'अउ' राने।
'जस' बसत रितु टेसू 'फूलें' चहु 'दिसि देखिय' रात।
भाट 'कलावत' भररिया 'तुरिया' तस होइ चली बरात॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २३, बी० १२७-१२९।

शीर्षक—मै० रवाँ करदन जैत बराय निकाह् बर करदन दरख़ान राय महर।

बी० मे बाये हाशिए मे इस कडवक के सामने कदाचित् भिन्न व्यक्ति के हस्तलेख मे लिखा हुआ है बरात चाली।

मै० मे (२)।२ मे 'कडौर' शब्द बाद मे और कदाचित् प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति द्वारा बढाया गया है।

पाठान्तर—(१) १ बी० दोइ। २ बी० लवाना। ३ बी० चाचर (जाजर—फा०) पापर भये पकवाना। (२) १ मै० कीन्ह। २ बी० षिरौरा औ। ३ बी० लाद सिविलड। (३) १ बी० टका लाखु सैं। (४) १ बी० चाली। २ बी० चैहि स। ३ बी० भाली। (५) १ बी० औ। (६) १ बी० जैसैं। २ बी० मे नही है। ३ बी० दिस दीसैं। (७) १ बी० विदावत। २ बी० मे नही है।

अर्थ—(१) दो सहस्र भार (बैलो के बोझ ?) लावन (लावण्य पूर्ण) लड्डू, जर्जर (ख़स्ता) पापड तथा [अन्य] पक्वान्न हुए। (२) खिरौरे (दूध के लड्डू) और कुसियारे (गोझे) किये (बनाये) गए, खडौर (?) तो इतने अधिक हुए कि वे संभाले नही जा रहे थे। (३) बरातियो को चीर (सूती वस्त्रो) तथा पटोर (रेशमी वस्त्रो) के बागे पिन्हाए गये, सौ लाख टको के आभरण [उनकी सज्जा मे] लगे हुए थे। (४) अस्सी-नव्वे के लगभग डाँडियाँ (पालकियाँ) चली, और वे एक से एक अधिक सुन्दर (सुसज्जित) थी। (५) सात-आठ सै घोडो पर पलाने पडी, [जिन पर] राजे और राने सवार हुए। (६) जिस प्रकार वसन्त ऋतु मे टेसू (किशुक-पुष्प) के फूलने से चारो दिशाएँ लाल दिखाई पडती है, (७) उसी प्रकार भाटो, कलावन्तो, भरटा बजाने वालो तथा तुरही बजाने वालो से [सज्जित] होकर बारात चल पडी।

(४१)

जहा 'महर' 'पटसारि' सवारी। आनि बरात 'तहा बइसारी'।
'छीपर' नेत पटोर बिछाए। 'कुसुभी' 'एक रग खडि' लाए।
'दीया' सहस 'चहू दिसि बारा'। 'घर वाहेर सभ भा' उजियारा।
मानुस बहुत 'सो देखत' अहा। 'को कहइ' रात दिवस 'कोइ' कहा।
भइ 'जेवनार' फिराए पाना। वेद भनहि 'बाभन' परधाना।

लाइ 'बरहि' बावन 'कह' चादा आरति 'दीन्हि उतारि'।
जाति 'सरागति देखउ नाही' 'पटुवा भुइहर बारि'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २४, बी० १३०-१३२।

शीर्षक—मैं० निशानीदने जैत रा दर खान व ख्वानदन निकाह मियान वावन व चाँदा।

पाठान्तर—(१) १ बी० महरि। २ बी० पटसार। ३ बी० तही वैसारी। (२) १ बी० छीवर। २ बी० कसूभी। ३ बी० मक खडी तर। (३) १ मैं० दिया। २ बी० दिसह सँवारा। ३ बी० रात पटोर होय। (४) १ बी० देखतह। २ बी० का कहि। ३ बी० को। (५) १ बी० जिवनार। २ बी० वभन। (६) १ बी० वरी। २ बी० कों। ३ बी० महर उतार। (७) १ बी० सरभरि नाहिन देषत। २ बी० तीर लाउ करतार (तुल० पूर्ववर्ती ३८ ७)।

अर्थ—(१) जहाँ पर महर ने पटशालिका (शामियानी) सँवार (निर्मित कर) रक्खी थी, वही पर बारात लाकर विठाई गई। (२) छपहुले नेत्र और पटोर वहाँ विछाए गए, जो वहाँ एक ही—कुसुभी—रग के फाड-फाड कर लगाये गए थे। (३) एक सहस्र दीपक चारो ओर जलाए गए थे, जिससे घर मे तथा बाहर प्रकाश हो रहा था। (४) [इस प्रकाश को] वहुतेरे मनुष्य देख रहे थे, कोई कहता था कि रात थी, और कोई कहता था कि दिन था। (५) ज्यौनार हुई और सज्जित तावूल घुमाए गए, प्रधान ब्राह्मण वेद-पाठ कर रहे थे। (६) वर बावन को लगा (लक्ष्य) कर चाँदा ने आरती उतार दी। (७) कौन-कौन सी जातियाँ और जमाते [दर्शको की भीड मे] थी, यह नही दीख पड रहा था, [यथा] बुनकर थे, भूमिघर थे और वारी थे।

(४२)

'गांउ तीस भल' दइजे पाए। 'भैंस' साठि 'एक' दरबि भराए।
घोर पचास आनि 'किए' ठाढे। टका लाखु 'लखु' 'अहहि' ते बाधे।
चेरी चेर सहस 'एक पावा'। गाइ 'भइसि' नहि गिनतिन आवा।
कापर जाति 'वरन गुन काहा'। हीरा 'मोति लाग जिन्ह आहा'।
सेज 'सउर' कर नाउ न 'जानउ'। कहा 'सेजि असि' काह वखानउ।

'चाउर' कनिक खाड घिउ 'लोनु' तेल विसवार।
लादि टाड 'मोकरावा' 'बरदी भई' असभार॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २५, वी० १३३-१३५।

शीर्षक—मै० सिफते जहेज चाँदा गोयद।

वी० मे बाएँ हाशिए मे इस कडवक के सामने कदाचित् किसी भिन्न व्यक्ति द्वारा लिखा हुआ है बीवाह हुवौ।

पाठान्तर—(१) १ वी० गाव तीस ईक। २ वी० उट। ३ वी० यक। (२) १ वी० कै। २ मै० मे नही है। २. वी० लहहि। (३) १. वी० यक पाया। २ वी० म्हैसि। (४) १. वी० वरगै (बरन गुन—फा०) कहा। २ वी० मोती सव लागे अहा। (५) १ वी० सैर। २ वी० जानौ। ३ वी० सेज कस। (६) १ वी० चावर। २ वी० लूनु। (७) १ वी० मुकरावा। २ वी० वरदे भये।

अर्थ—(१) तीस अच्छे गॉव जइत ने दायज मे प्राप्त किए और उसने साठ-एक भैंसे द्रव्य मे भराए। (२) पचास घोडे ला कर खडे किये [गये], वे लाख-लाख टके [हुमेल आदि के रूप मे] बाँधे हुए है (थे)। (३) सेविकाएँ और सेवक एक सहस्र प्राप्त हुए, गाये भैंसे तो गिनती ही मे नही आती थी। (४) कपडो की जातियो और वर्णो को क्या गुना जाये, जिनमे हीरे-मोती लगे हुए थे? (५) शैयाओ और सौरों के नाम नही जानता हूँ, कहाँ पर ऐसी शैयाएँ है और [उनका] क्या वर्णन करूँ? (६) चावल, आटा, खाँड, घी, नमक, तेल, ममाले—(७) इनका टाँडा लाद कर मुक्त (रवाना) किया गया, तो इनकी बरदियाँ वेसँभाल हुई।

४. चांदा-पितृगृह-आगमन खण्ड

(४३)

'वरिख' दुवादस 'भएउ बियाहू' । 'चादा' तिरी 'सूक' जस नाहू ।
'उनत' जोबनु 'भइ' चादा रानी । नाहु छोटु 'अउ अखियउ' कानी ।
'जाकह सिउहर बोलइ' लोगू । 'सो लइ चादइ दीन्हेउ' भोगू ।
हाथु पाउ मुख 'जरमि' न धोवा । औ 'तेहि' ऊपर सगि न सोवा ।
'दइया कवनि मइ कीन्हि' बुराई । 'सरई कचोरइ बूडउ' आई ।
रात दिवस मनि 'झुरवइ' 'ऊभि सास कइ रो[व?]इ' ।
चाद 'धौराहर' ऊपरि बावन धरती 'सो[व?]इ' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २६, बी० १३६-१३८।

शीर्षक—मै० दुवाज दहुम साले शुदन निकाह चाँदा वा बावन व नजदीक न आमदने बावन ।

पाठान्तर—(१) १ बी० वरप । २ बी० भयो विवाहू । ३ बी० चाँद । ४ बी० सुक्र । (२) १ बी० उमत । २ बी० भयो । ३ बी० इक अपि है । (३) १ बी० जाकौ सहुरव बोलै । २ बी० सो लौ चाद दीन्ह अस । (४) १ बी० जनमि । २ बी० तिहि । (५) १ बी० दइ कौंन मैं कीन्ह । २ बी० सर कजैरै बूडौ । (६) १ बी० झूरवै । २ बी० उभ सास लै रोई । (७) १ बी० धौरहर । २ बी० सोइ ।

अर्थ—(१) बारह वर्ष की अवस्था मे विवाह हुआ, किन्तु चादा स्त्री का शुक्र जैसा काना स्वामी था। (२) जिस समय चाँदा रानी उनन्त यौवन मे हुई, उस समय उसका स्वामी छोटा तो था ही, उसकी एक आँख भी कानी थी। (३) जिसको लोग सिउहर कहते थे, वही ले कर चादा को भोग के लिए दिया गया था। (४) वह [गन्दा इतना था कि] हाथ-पैर और मुख वह जन्म भर भी न धोता था, इसके अतिरिक्त वह चाँदा के साथ सोता भी न था। (५) [चाँदा कहती,] "हे दैव, मैंने कौन सी बुराई की [थी] कि शराब और कच्चोल मे मैं यहाँ आकर डूब रही हूँ ?" (६) वह रात-दिन मन मे सन्ताप करती और ऊँची श्वास करके रोती। (७) चाँदा धवल-गृह के ऊपर (ऊपरी खण्ड मे) सोती और बावन धरती पर (भूमि-तल के खण्ड मे) सोता।

(४४)

'वरिसु दिवस' 'भा' चाद बियाहे। सूरु न देखी 'आछिइ छाहे'।
पिउ 'अनतिइ' निसि सेज दुहेली। 'सो धनि कइसे जियइ' अकेली।
वावन 'काउ पूछ नहि' बाता। 'हउ रे न चीन्हउ' कार कि राता।
'एकउ' साधि न हिए वुझानी। 'मुइउ' पियास नाक 'लहि' पानी।
'एहि' परिहसि उठि 'मइके जाऊ'। 'तिय सो राध सुहागिनि नाऊ'।
ननद वात 'सभ' सुनि 'कइ' कही महरि 'सो' जाइ।
'दीदी' जाइ मनावहु चादा 'चली' कुहाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २७, वी० १३६-१४१।

शीर्षक—मैं० गिरिय. व जारी करदन चाँदा अज दूर मानदन वावन शुनीदन ननद।

मैं० मे (५) मे 'राड' था जिसे वाद मे 'राध' वनाया गया है।

पाठान्तर—(१) १ वी० वरसु द्यौस। २ वी० भया। ३ वी० आछै छाहा। (२) १ वी० अनतीड। २ वी० सा घन कैसे जिवै। (३) १. वी० काह न पूछै। २ वी० है का चीन्हौ। (४) १ वी० येको। २ वी० मुयो। ३. वी० लिहि। (५) १ वी० यै। २. वी० मरि करि जाउ। ३ वी० पिय स्यै राड सुहागनि नाउ। (६) १ वी० तस [हाशिए मे है]। २ वी० कै। ३ वी० सौ। (७) १. वी० देदे (दीदी—फा०)। २ मैं० मे यह शब्द नही है।

अर्थ—(१) चाँदा के ब्याह के एक वर्ष के दिन हो गए, किन्तु सूर्य (पति) ने उसे अच्छी छाया (भावना) से [कभी] न देखा। (२) [उसने कहा,] "जिसका प्रिय अन्यत्र रहता हो और जो रात्रि मे शैया मे दु खित रहती हो, वह स्त्री अकेली [रह कर] कैसे जी सकती है? (३) वावन कभी मुझ से वात नही पूछता है और मैं नही पहिचानती (जानती) हूँ कि वह काला (कुरूप) है या राता (सुन्दर)। (४) [विवाहिता होते हुए भी] हृदय मे (की) मेरी एक भी माध (आकाक्षा) न वुझी, [मानो] नाक के वरावर पानी होते हुए भी मैं प्यामी मर गई। (५) इस परिहास से [अच्छा तो यही होगा कि] उठ कर मैं मायके चली जाऊँ, मेरा 'स्त्री' की अपेक्षा सुहागिनी (मात्र) नाम श्रेष्ठतर होगा। (६) उसकी ननद ने सारी वाते सुनकर महरी ने जाकर कहा, (७) "दीदी को जाकर मनाओ, चाँदा रूठ कर जा रही है।"

(४५)

सुनि 'कइ' महरि चाद पहि आई। काहे बहुवरि चलिसि कुहाई।
दूध दात 'हसि' बिटिया बारी। 'तू का जानसि पुरुष' रिहारी।
तू 'अचेति' पुरुपहि का जानसि। बिनु पानी सातू 'कस' सानसि।
सोन रूप भल पहिरि फिराई। दिन दिन 'पहिरहि चीर धोवाई'।
'जउ' लहि बावन 'होइ सजोगा'। पान फूल 'रस करही भोगा'।

'जउ तुम्ह' राइ महर 'कइ' वेटी 'आछहि कुर न लजाइ'।
तात दूध 'औटहु दहु(हु)' चादा पियहु 'सिराइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २८, बी० १४२-१४४।

शीर्षक—मैं० आमदन ख़ुशूअ व तहफीम करदन चाँदा रा।

मैं० मे (७) का 'वह' वाद मे बढाया हुआ है।

पाठांतर—(१) १. बी० कै। (२) १ मैं० तू। २ बी० तू को चीन्हसि पुरुष। (३) १ बी० अचेत। २. बी० का। (४) १ बी० पहिरो चीर स(?) वाई। (५) १. बी० परु। २ बी० होय सजोगू। ३. बी० औ करियो भोगू। (६) १ बी० जै तहु। २ बी० की। २ बी० आछै कुरह लजाई। (७) १ बी० दुहु वोटाह। २ बी० सिरायी।

अर्थ—यह सुनकर महरी चाँद के पास आयी, [और उसने पूछा,] "ऐ वहू, तू क्यो क्रुद्ध होकर जा रही है ? (२) तू, ऐ वेटी, [अभी] दूध (जन्म) के दाँतो वाली वालिका है, तू क्या जाने कि पुरुष की रेखा (कार्य-शैली ?) कैसी होती है ? (३) तू अभी मुग्धा है, तू पुरुष को क्या जाने ? विना पानी के सत्तू तू कैसे सान रही है ? (४) सोना-चाँदी खूब पहने तथा चीर दिन-प्रतिदिन धुलाकर धारण करे। (५) जव तक कि वावन सयोग्य हो, तू पानो फूलो के रस का [ही] भोग करे। (६) यदि तू राजमहर की कन्या है, तो तू (उसके) अच्छे कुल को लज्जित न करे। (७) दूध को तप्त भले ही औटो, उसे, ऐ चाँदा, ठण्डा करके ही तो पीती हो।"

(४६)

'तुम्ह हू सासु एतनेहि को' आनी। राखहु दूध 'पियावहु' पानी।
दही न देहु खाउ 'जेहि' लाई। महियरि 'केहू परे' अडाई।
सोन रूप का 'हमरे' नाही। 'जना' सहस 'जेवनारिहिं' खाही।

'तुम्हरी धिय' 'जो ससुरे' आहा । 'पीउ न पूछ त' बोलहु काहा ।
अव लहि 'मइ' कुरु आपनु धरा । 'काम लुबुधु बिरहइ' तनु जरा ।
निसि अधियारि नीरु घन 'बरसै(सइ)' 'बीजु लवइ' भुइ लागि ।
'सेजि' अकेलि फाटु 'मोर' 'हियरा' 'जउ जउ देखउ' जागि ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६, बी० १४५-१४७ ।

शीर्षक—मैं० जवाव दादने चादा खुशूअ रा ।

पाठान्तर—(१) १ बी० तुम्हि हौए सासु अति कै । २ बी० पिलावहु । (२) १ बी० जिहि । २ बी० करि तुह्म परैं । (३) १ बी० मोरै । २ बी० जने । ३ बी० जिवनारै । (४) १ बी० तुह्मरी धीय । २ बी० जु मुसरै । ३ बी० जौ पिउ न चहै तौ । (५) १ बी० मै । २ बी० कम लवधू विरहै । (६) १ मैं० मे नही है । २ बी० बिजु लेवै । (७) १ बी० सेज । २ बी० मोरौ । ३ मैं० हिरदै । ४ बी० ज्यै ज्यै देषौ ।

अर्थ—(१) [चाँदा ने उत्तर दिया,] "ऐ सास, तुम भी मुझे इतने ही के लिए लायी कि दूध रख छोडो और पानी पिलाओ । (२) दही [भी] नही देती हो कि जिसे लगाकर मै [जो-कुछ रूखा-सूखा मिलता है उसे] खा सकूं, मही-तल (भूमि) पर पड़े-पड़े वह कितना भी अडाता (गिरता) रहे । (३) सोना-चाँदी क्या मेरे [घर पर] नही है ? एक सहस्र मनुष्य [प्रतिदिन हमारी] ज्योनार मे खाते है । (४) तुम्हारी कन्याएँ जो अपने सासुरो (श्वसुर-गृहो) मे है, यदि [मेरी ही भाँति] उन्हे [भी] उनके पति न पूछे, तो क्या कहोगी ? (५) अव तक मैने अपनी कुल-मर्यादा को धारण किया है और काम-लुब्ध होकर विरह मे [मेरा] शरीर जलता रहा है । (६) अधेरी रातो मे जव घना पानी वरसता होता है, और विजली भूमि से लगकर लपलपाती है, (७) शैया मे अकेली होने के कारण जव-जव मै जाग कर यह देखती हूँ, मेरा हृदय फटता है ।"

(४७)

'तोरी आधि मइ तहिया' जानी । वात 'कहत तू मोहि' न 'लजानी' ।
तो 'कहु' 'चाही कीनर' पीऊ । विनु दहि मथे 'कि' 'निसरइ' घीऊ ।
वावन मोर दूध कर 'फोवा' । 'तिसु कत पावउ' तो मग सोवा ।
'न उभरैन्नि' नहि देखिमि काहू । विनु 'धाठें' 'कस' नवइ 'कयाहू' ।
'जउ' लहु वावनु होइ मियाना । 'अउर वियाह कइ' तोही आना ।

'जउ तू जइहसि मइके' अब ही 'पठउ' सदेस ।
'कहा केरि' तू बागरि 'बिटिया' 'जारउ' सोई देसु ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३०, बी० १४८-१५० ।

शीर्षक—मैं० गुस्स करदने खुशूअ वर चाँदा व रजा दादन बराय वहर रफतन ।

पाठान्तर—(१) १ वी० तेरी आदि मैं तैही । २ वी० कहतु तू मुहि । ३ बी० लजानी । (२) १ मैं० को । २ बी० चहिये गोवर । ३. मैं० की । ४ वी० निकरै । (३) १ मैं० पोवा । २ बी० सो कत पाउ । (४) १ बी० तू अकरी । २ वी० धाठी । ३ बी० वरु । ४ वी० किवाहू । (५) १. वी० परु । २. बी० और वियाहि कि । (६) १ वी० जइ तुम जइहहु माइकै । २ वी पठवौहु । (७) १ वी० जाहि भई । २ वी० चिटिया (बिटिया-नागरी) । ३ वी० जारौ ।

अर्थ—(१) [सास ने कहा,] "तेरी आधि (मानसिक व्यथा) मैंने तभी जान ली जव तूने वाते कहते हुए मुझसे लज्जा नही की । (२) तुझको [तो] किंनर [जैसा सुन्दर] पुरुप चाहिए, [किन्तु] दही को मथे विना भी क्या घी निकलता है (विना कुछ किए कुछ होता है) ? (३) मेरा बावन तो दूध का फाया (दूध मे डुबोया हुआ रुई का फाया) है, उसे तेरे साथ मे मैं-कैसे सोया हुआ पाऊँ ? (४) तू ऐसी उभरैल (उठ भागने वाली) है कि तूने स्वय किसी को (वावन को) देखा नही, बिना ढाठा (मुँह-बन्द) लगाए कयाह (घोडा) कैसे नमित हो सकता है ? (५) जब तक वावन सयाना हो, वह दूसरे को व्याहे या तुझे ही लाए । (६) यदि तू मायके जाएगी, तो तू अभी [मायके को] सन्देश भेज । (७) तू कहाँ की वक्र (कुटिल) वेटी है ? उस देश को मैं जला दू ।"

(४८)

'चादहि करुव' 'भएउ' घर बारू । चेरी 'बाभनु' जाइ हकारू ।
आइ 'सो बाभनु दीन्ह' असीसा । चाद 'बरन' मुखु 'भेभरु' दीसा ।
परिहसु 'कही(हि)' सदेस 'पठावा' । बोलु 'थाक हिय' गहबरि आवा ।
नैन 'सीप' 'जस मोतिन्ह भरे' । 'रोएसि चाद आसु तस ढरे' ।
'चोली' चीरु भीजि गा पानी । 'जनु अभरन सउ' 'गाग नहानी' ।

बाभन कहसि महर 'सो' 'मोरे' दुख 'कइ' बात ।
भाइ कहारु सुखासनु बेगि 'पठउ' परभाति ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३१, बी० १५१-१५३ ।

शीर्षक—मै० तलबीदने चादा जुन्नारदार रा व फरिस्तादने अखबार दुश्वारी बर पिदर ।

पाठान्तर—(१) १ बी० चादेहि करू । २ बी० भयो । ३. बी० बभनु । (२) १ बी० सुबभन देइ । २ मै० चद्र बदन । ३ बी० भ्यभरु । (३) १ बी० कहै । २ बी० न पावा । ३ बी० थाकि मनु । (४) १ म० सीत । २ बी० अस मोत्यैहु भरी । ३ बी० रोय सासु लै तह आसु ढरी । (५) १ बी० चोरी । २ बी० जानु अभरन सौ । ३ बी० गगा न्हानी । (६) १ बी० स्यौ । २. बी० मोरैं । ३ बी० की । (७) १ बी० पठवो ।

अर्थ—(१) चाँदा को घर-बार कटु हो गया, [उसने कहा,] "ऐ चेरी, जाकर ब्राह्मण को बुला ला ।" (२) ब्राह्मण ने आकर आशीर्वाद दिया, उसे दीखा कि (चाँदा का) चन्द्र-वर्ण का मुख भेंभर (तमतमाया हुआ) है । (३) [अपनी] परिहास [-पूर्ण स्थिति] कह कर [चाँदा ने] सन्देश भेजा; उसके बोल थक थे और उसका हृदय व्यथा से पूरित हो गया था । (४) उसके सीप जैसे नेत्रो मे मोती [जैसे आँसू] भर गये, चाँदा रो पडी और इसलिए [उसके नेत्रो से] अश्रु गिरने लगे । (५) [उसके] चोली और चीर पानी (अश्रु) से [इस प्रकार] भीग गए मानो आभरणो के साथ [उसने] गगा मे स्नान किया हो । (६) [उसने कहा,] "ऐ ब्राह्मण, तुम [जाकर] महर से मेरी दु:ख की वार्ता कहना, (७) और कहना—'भाई, कहार और सुखासन (डोली) [कल] प्रभात मे शीघ्र ही भेजो" ।

(४९)

'बाभन' जाइ महर 'सो' कहा । हिए लागि 'दौ' जरि तनु रहा ।
जस मछरी 'देखिय' विनु पानी । तपत महर सभ 'रइनि' बिहानी ।
'भानु' मझान न कीत 'पियारू' । 'कैसे आहि सो' चाद दुलारू ।
दीत सुखासन चले कहारा । नाती पूत भए असवारा ।
धानुक पाइक 'आगे' भए । 'जइत महर कह बाखरि' गए ।
काढि चाद 'बइसारि' सुखासन तुरत वेगि 'लइ' आइ ।
'बी (वा) रने होइ महर गए' चूबि चाद 'के' पाइ ॥

संदर्भ—मैं० ३२, बी० १५४-१५६।

शीर्षक—मैं० : बाज नमूदने वरभन वर महर व आरानीदने महर चादा रा व दाश्तन दर खान ।

बी० मे बाए हाशिए मे 'चाद ने लेन गया' सकेत लिखा हुआ है, किन्तु वह प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति का लिखा लगता है।

पाठान्तर—(१) १ बी० बाभनि । २ बी० स्यौं । ३ बी० दैं । (२) १ बी० देपै । २ बी० रैनि । (३) १ बी० भोर । २ बी० बियारू । ३ बी० कैसै आहिसि। (५) १ बी० आगैं । २ बी० जैत महर कर बाखर । (६) १ बी० बैसारि । २ बी० लै । (७) १ बी० वरने महरि होगी । २ बी० कैं ।

अर्थ—(१) ब्राह्मण ने जाकर [जब चाद की दुःख वार्ता] महर से कही, तो उसके हृदय मे दावाग्नि लग गई और उसका शरीर जलने लगा। (२) जैसे आप मछली को पानी के अभाव मे देखते है, उसी प्रकार महर को तपते (सतप्त होते) समस्त रात्रि व्यतीत हो गई। (३) [उसने कहा], "मध्यान्ह (तरुणावस्था) मे भानु (उसके प्रिय) ने जिसे प्यार नही किया, वह [मेरी] दुलारी चाद (चादा) कैसी होगी ?" (४) उसने सुखासन दिया और कहार चल पड़े, [साथ मे] उसके नाती-पुत्र [घोडो पर] सवार हुए। (५) धानुष्क और पदातिक आगे-आगे हुए और वे सब जैत महर की बाखर को गए। (६) चादा को [उसके श्वसुरालय से] काढ (ले) कर और उसे सुखासन पर बिठाकर वे तुरत और वेग-पूर्वक [गोवर] ले आए। (७) चादा के पैरो को चूमकर महर उस पर वारने (न्यौछावर) हो गया।

(५०)

कूकू 'मरदि चाद अन्हवाए'। 'सिंदुरी' चीरु काढि 'पहिराए'।
माग 'चीरि' सिर सेंदुर पूरा। 'जानहु' चाद बहुरि 'औतरा'।
सखी सहेली 'देखुन आईं'। 'हसि हसि चाद फेरि गिय लाई।
सेज पिरम रस 'पूछ' सुहागू। 'पिरिति पियार भुगुति कस' भागू।
आंग 'पेट' देखहि चहु पासा। 'कहु न चाद कस' कीन्ह बिलासा।
'चाद सहेलिन पूछहिं' 'रस धरि रहरा' लाइ।
'सपत आहि जुन(जु न) फिरि कहु कैसै रह्यो (रहिउ) ज माइ' ॥

सन्दर्भ—मैं० ३३, बी० १५७-१५६ ।

शीर्षक—आमदने चादा दर खान-ए-मादर व पिदर व रसीदन सहेलियान चादा रा ।

पाठान्तर—(१) १ बी० मरदनि चाद न्हवाइ । २. बी० सेंदुर । ३ बी० पहिराइ । (२) १ बी० चीरु सिर सेंदुरी भरा । २ बी० जानौ । ३ मैं० औतरी (औतरा-नागरी) । (३) १ बी० देपैं आइ । २ बी० हसि कैं चाद बिहसि गै लाइ । (४) १ बी० पूछी । २ बी० पिरति पियार भोगु कैसें । (५) १ बी० पूठि । २ बी० देपैंहि । ३ बी० कहू भोगु कैसें । (६) १ बी० चादहि पूछ सहेलीया । २ बी० रसि धरि हियरैं । (७) १ बी० अपतु आहि न फिर कहु । २ मैं० कैसे रैनि बिहाइ ।

अर्थ—(१) [सेविकाओ ने] कुकुम का मर्दन कर चादा को स्नान कराया और [भाडार से] निकाल कर उसे सिन्दूरी चीर पहनाया । (२) उन्होंने [बालो मे] माग चीर (निकाल) कर उसे सिन्दूर से भरा, तो [ऐसा लगा] मानो चद्र पुन अवतरित हुआ हो । (३) सखिया-सहेलिया उसे देखने को आई । तब उन्होंने चादा को हँस-हँस कर गले लगाया । (४) उन्होंने गैया के प्रेम का रस तथा सुहाग पूछा, [उन्होंने कहा,] "प्रीति-प्यार और भुक्ति (भोग) तुम्हे भाग्य मे कैसे मिले ?" (५) वे उसके अगो और पेट को चारो पार्श्वो से देखने लगी, [और कहने लगी,] "चादा, कहो न कि तुमने कैसा विलास किया ?" (६) चाद से उसकी सहेलियाँ [प्रश्न मे] रस लेती हुई विनोद सुख के लिए पूछती हैं, (७) "तुम्हे शपथ है यदि तुम फिर भी यह न कहो कि ऐ सखी, तुम [वहा] किस प्रकार से रही ।"

(५१)

'जो(जउ) मोहि' पूछहु 'तौ(तउ)' 'हउ कहउ' ।
कुर 'कइ' कानि 'लजाती अहउ' ।
माह मासि 'मोएउ' धुधुवाई । 'लागइ' सीउ न 'पिउ बिनु' जाई ।
'रइनि' छमामी 'परइ' तुसारू । हिए 'अगीठी बर' असरारू ।
बरसइ नैन न आगि 'बुझाई' । 'सउरि सुपेती' जाडु न जाई ।
अस 'कइ' मखी 'बिगूतिउ नाहा' । सेजि बही निसि जलहर माहां ।
'जस (जइस ?) परे दह बारी हीनेउ सहरी सुखाइ' ।
पिउ बिरहे 'मोर' जोबनु फूल जइस 'कु(कु)बिलाइ' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३४, बी० १६०-१६२ ।

शीर्षक—मैं० जवाव दादन चादा वा सहेलियाने खुद चहार माहे जमिस्ता ।

पाठान्तर—(१) १ मैं० जस तुम्ह । २ मैं० तस । ३ बी० हैं कहौं । ४ बी० की । ५ बी० लजावति रहौं । (२) १ बी० मोयौं । २ वी लागै । ३ बी० पिय वीनु । (३) १ बी० रैनि । २ बी० परै । ३ बी० अगीठि वरै । (४) १ बी० बुझाही । २ बी० सौरि सपेती । (५) १ बी० कै । २ बी० वेगित्यौं नाही । ३ वी भइ सर जलहर माही । (६) १ बी० जस प्रपनि दहि ही मरै हो वत रहै सुकाइ । (७) १ बी० मोरा । २ मैं० कुमिलाइ ।

अर्थ—(१) [उसने उत्तर दिया,] "क्योकि तुम मुझसे पूँछ रही हो, इसलिए मैं कह रही हूँ, [यद्यपि मैं ऐसा करते हुए] कुल की कानि के कारण लज्जित हो रही हू । (२) माघ मास को मैंने धुँधुँआते हुए (गीली लकडी के सामान धुआ देकर धीरे-धीरे जलते हुए) मुक्त किया (विताया), जो शीत लगता था वह प्रिय (पति) के विना नही जाता था । (३) जैसे उसकी छ मासी (छ मास की जैसी लवी) रातो मे तुषार पडता था, मेरे हृदय की अगीठी वैसे ही निरतर जलती भी रहती थी । (४) नेत्र वरस रहे थे इसलिए वह अग्नि नही बुझती थी और सौर (गद्दे) तथा सुपेती (चादर) से शीत नही जाता था । (५) इस प्रकार से मै स्वामी के द्वारा तिरस्कृत हुई कि रात्रि मे [मेरी] शैया आसुओ के जलाशय मे बह निकलती । (६) जैसे ह्रद मे पडने पर [भी] वारि (जल) के हीन होने पर मछली सूख जाती है, (७) उसी प्रकार प्रिय के विरह मे (उसके द्वारा परित्यक्ता होने के कारण) मेरा यौवन फूल की भाति कुम्हलाता रहा ।

(५२)

जेठ का(क) घामु सहै(हइ) को बारा (पारा) ।
तपहि बुजासन (बजासनि) परैहि (रहि) अ(अ)गारा ।
पिय की(कइ) छाव न बैठौ (बइठउ) काऊ ।
जरत हि भानु धरौ(रउ) भुइ पाऊ ।
जौ(जउ) चदनु लाउ (लावउ) थनहारा ।
अधिकी उठे (ठइ) पिरम की (कइ) झारा ।

पान　फूल　कस　षैर　सुपारी ।
भोगु　न　जानो　(नउ)　बिरहै　मारी ।
जौनु (जानु ?)　लुवारी　तपौ　(पउ)　अकेली ।
नाह [न] सेज कैसै　(कइसें) सोउ (सोवउ)　सहेली ।
सुषु　तिल　येकु न जानियो　बूडो　दुप की(कइ)　गाग ।
चाद लीत है　(हइ)　गहनै　(नइ)　सुकु　बैठा　जौ　मांग ।।

सन्दर्भ—वी० १६३-१६५ । मैं० मे पिछले कडवक के साथ जो चित्र है, वह वाजिर-मूर्छा प्रसग का है और कडवक ५५ का ज्ञात होता है, इससे प्रकट है कि वह इस स्थान पर त्रुटित है । प्रसग से भी इस तथा परवर्ती कडवक की आवश्यकता प्रकट है ।

अर्थ—(१) ज्येष्ठ मास का घाम कौन सहन कर सकता था ? जैसे ब्रजाशनि तप रहा था, और अगारे पड रहे थे । (२) किन्तु प्रिय (पति) की छाया मे मैं कभी न वैठ पाई, और तप्त होते हुए भानु [की ज्वाला] मे ही मैं भूमि पर पैर रखती थी । (३) [अपने] भारी स्तनो मे मैं चदन लगाती थी, तो प्रेम (काम) की ज्वाला अधिकाधिक उठती थी । (४) मेरे लिए पान-फूल तथा कत्था-सुपारी कैसे थे ? विरह से मारी हुई मैं भोग जानती ही नही थी । (५) मैं तो मानो [जेठ की] लुवार (लू) मे अकेली हो कर तपती थी, शैया मे स्वामी के न होने के कारण, ऐ सखियो, मे कैसे सो सकती थी ? (६) सुख मैंने तिल-एक भी नही जाना, और मैं दु ख की गगा मे डूब गई । (७) चाद को तो ग्रहण ने ले लिया था—उसका ग्रहण हो गया था, क्योंकि उसकी माग-मे सौभाग्य के स्थान पर शुक्र (काना वावन) वैठा हुआ था ।"

(५३)

भादौ　(दउ)　मास　देव　घरराइ(ई) ।
नैन　नदी　देउ　(दीनिउ?) मु(मो)कराइ(ई) ।
विनु　करिया　मोरि　डोलै(लइ)　नावा ।
नीगुन　गारा　(करिया?)　कत　न　आवा ।
कोइल जैस (जइस)　फिरै(रइ)　अति　रूखा ।
पिउ　पिउ　करत　जीभ　मोर　मूपा ।

षिन तरफौ (फउ) बरसै अति वानी।
सेज सून(नि) हौ(हउ) सरगि लुकानी।
कत हौ कहा सु बावन बीरू।
जस जरमी तुसु (तसु) आहि सरीरू।
नैनहु दीठे बोलते हिया बिरुधा(द्धा) तित्त।
जै (जइ) नैनहु औगुणु किया हिया बिरुधा(द्धा) कित्त॥

सन्दर्भ—बी० १६६-१६८, मै० यहाँ पर त्रुटित है (दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी)।

बी० मे किसी भिन्न व्यक्ति द्वारा राहिने हाशिए मे निम्न लिखित दोहा भी दिया हुआ है

जौ मै हौस न देषीयौ कूर कहु हु काहु।
सुपने (?) सेज न आवै मोरी कौन बरन सौ नाहु॥

इस दोहे के लिए अर्द्धालियो के बाद हस पद अकित हुआ है, किन्तु पूर्ववर्ती दोहा ज्यो का त्यो छोड दिया गया है, अत' यह स्पष्ट नही है कि यह दोहा अतिरिक्त है अथवा उसके स्थान पर है। पाठ के साथ दिया हुआ दोहा असगत और अन्य भाषा-शैली का लगता है। उसकी अपेक्षा॰ यह अधिक सगत और भापा-रूप के अनुसार अधिक सभव लगता है। फिर भी अनिश्चय की स्थिति वनी रह जाती है।

अर्थ—(१) भादो मास मे दैव गडगडाने लगा और उसने मेरे नेत्रो की नदी को मुक्त कर दिया। (२) बिना करिया (पतवारी) के मेरी नौका [उस अश्रु-नदी मे] डाँवाडोल होने लगी, फिर भी मेरा निर्गुण करिया (?)—मेरा पति—उस अश्रु-नदी से मुझे पार करने के लिए नही आया। (३) कोयल जैसे अत्यधिक वृक्षो मे भटकती है, मैं भी 'पिय-पिय' करती रही और [उसको रटते-रटते] मेरी जिह्वा सूख गई। (४) जव मेघ आत्यतिकता से वरसता था, किसी-किसी क्षण मैं (विद्युत् की भाँति) तडप उठती थी, और क्योकि मेरी शय्या सूनी थी, मैं उस आकाश (ऊपर की मजिल मे) छिप जाती थी। (५) मैं कहाँ थी और वावन वीर कहाँ था? दोनो भिन्न-भिन्न स्थानो पर रहते-सोते थे। फलत मैं जैसी जन्मी थी, मेरा शरीर उसी प्रकार अछूता रह गया। (६)-(७) पाठ अनिश्चित है।

५. बाजुर-मूर्च्छा खण्ड

(५४)

वाजुरु एकु 'कतहुं हुत' आवा। गोवर 'फिरइ' 'बिहाऊ' गावा।
घर घर भुगुति मागि 'लइ' खाई। खिन खिन राजदुवारेहि जाई।
दिन 'एक' चाद धौरहर ठाढी। 'झाकिसि' माथ 'झरोखइ' काढी।
'तिहि खिन' ब्राजुर मूड उचावा। 'देषी' चाद 'तवारा' आवा।
'देखतहि' जनु 'नौहारन्ह' लीन्हा। 'बरका' चाद झरोखा 'दीन्हा'।
धर 'हुत' जीउ न 'जानिय' कित गा कया भई बिनु सास।
सीतर नीरु 'देह मुह छिरकहिं' आए लोग चहुं पास॥

सन्दर्भ—भो० पत्र २२ (नवीन), मैं० यहाँ पर त्रुटित है—देखिए पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी, बी० १६९-१७१।

शीर्षक—भो० : आमदने बाजिर दर गोवर व गुजश्तने जेर कस्र चादा व दीदन व आशिक शुदन व उफ्तादन।

बी० : बाजुर आमद जेगी (जोगी ?); किन्तु यह शीर्षक बाए हाशिए मे लिपिकार से भिन्न व्यक्ति के द्वारा दिया हुआ लगता है।

पाठान्तर—(१) १ बी० कहू हूते। २ बी० फिरै। ३ बी० पहाऊ। (२) १ बी० लै। (३) १ बी० यक। २ बी देयसि। ३ बी० झगेषै। (४) १ भो० ततखिन। २ भो० देपिसि। ३. बी० झरोखइ। (५) १ बी० देपि। २ बी० नौहारेहि। ३ बी० बरि गई। ४ बी० दीना। (६) १ बी० हुतं। २. बी० जानौ। (७) १ बी० देहि महु छिरकैहि।

अर्थ—(१) एक बाजिर (कोई वाद्य बजा कर मागने-खाने वाला) कही से आया। वह गोवर मे चक्कर लगाता और विहाऊ (त्याग के गीत ?) जाता। (२) वह घर-घर से भुक्ति (भोजन) माँग कर उसे लेकर खाता और [इसलिए] क्षण-क्षण (बार-बार) राज-द्वार पर [भी] जाता। (३) एक दिन चादा धवल-गृह पर खडी थी और उसने मस्तक को झरोखे से निकाल कर देखा। (४) उस क्षण बाजिर ने सिर उठाया और चादा को देखा तो उसे तवारा (ताप) आ गया। (५) उसे देखते ही उसकी दशा ऐसी हो गई मानो उसे वधिको ने [पकड] लिया हो। चाद (चादा) ने अपने को [उसकी दृष्टि से] बचाया और झरोखे को बन्द कर दिया। (६) [बाजिर के] धड

से जीव न जाने कहाँ चला गया और उसकी काया बिना श्वासो की हो गई। (७) लोग उसके चारो ओर इकट्ठा हुए और वे शीतल जल उसके शरीर और मुँह पर छिड़कने लगे।

(५५)

साप डसा जस उठै(ठइ) न बारा।
हाथ पाउ सिरु कछु न सभारा।
कै (कइ) छरि गया कै (कइ) भया सनिपातू।
कै (कइ) इहि आइ मिरिगी(गि)या बातू।
पहर द्योस (दिवस) सूता जस जागा।
लोगु कहै(हइ) यह राषसु लागा।
आग मूड सब लागी षेहा।
हरद पीर (पियर) जसु हु है(हइ) देहा।
तिरि जौ (जउ) देषि लोगु जो (जउ) राधा।
उपर देषि झा(झ)रोषा बाधा।
नैन देषि भनु वेघा हिये चटपटी दाहु।
टूट करेज लोहू भा पानी कहौ (कहेउ ?) न बोलै काहु।।

सन्दर्भ—बी० १७२-१७४। मै० यहा पर त्रुटित है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी। किन्तु मै० पत्र ३४ के साथ अब जो चित्र है वह इसी कडवक का है, क्योकि उसमे झरोखे मे चादा नही है, और वह बन्द भी है, जैसा कि इस कडवक की पाचवी अर्द्धाली मे कहा गया है।

अर्थ—(१) [वे कहने लगे,] "यह बालक जैसे कोई साप से डसा हुआ हो, उसकी भाति नही उठ रहा है, और हाथ, पैर तथा सिर कुछ भी नही सँभाल रहा है। (२) या तो यह [किसी छल के द्वारा] छला गया है, या इसे सन्निपात हो गया है, या इसे मृगी की वात-व्याधि हो आई है।" (३) पहर-दिन सोने के जैसे पड़े रहने के उपरान्त [जब] वह जागा (चेत मे आया), तो लोग कहने लगे, "इसे कोई राक्षस लग गया है। (४) इसके शरीर तथा सिर मे धूल-मिट्टी लगी हुई है, और इसकी देह हल्दी जैसी पीली हो गई है। (५) यह नीचे देखता है तो उन लोगो को देखता है जो निकट [आगत] है, और ऊपर देखता है तो उस झरोखे को देखता है जो बद है। (६) ऐसा जान पडता है कि [चादा को] देखने के कारण ही इसके नेत्र

[उसके रूप से] विद्ध हो गए है, और इसके हृदय मे दाह की चटपटी (विकलता) हो रही है, (७) इसका कलेजा टूट गया है, और इसका रुधिर पानी हो गया है, [इसीलिए] यह कहने पर भी किसी से [कुछ] नही कह रहा है।"

(५६)

कहु बाजुर 'तोहि' बेदन काहा। लोगु महाजनु पूछत आहा।
पीर कहसि 'तउ सुनहु' बिनानी। 'ओखदु' मूरि देहि तोहि आनी।
'कइ' जुर जाड पेट कइ पीरा। 'कइ' सिरवाहि 'गूद' महि कीरा।
'कइ' खरि 'लागि' घाम 'कइ' झारा। 'पानि' पियत तू गा बिसभारा।
कइ दरसन काहू 'के' राता। पिरम भुलान कहसि नहि बाता।
'कइ तोहि' अरथ गवावा मारि लीन्ह बटपार।
'नाउ' कहसि नहि ताकर बाजुर मुरिख गवार।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३५, बी० १७५-७७।

शीर्षक—मैं० · पुरसीदने खलक बाजिर रा अज हाले बेहोशी ऊ।

पाठान्तर—(१) १ मैं० तोरि। (२) १ बी० तौ सुनौहु। २. बी० औषधु। (३) १ बी० कै। २ बी० की। ३ बी० गुदा। (४) १ बी० कै। २ बी० लाग। ३ बी० की। ४. बी० पानी। (५) १ बी० कै। (६) १ बी० कै तै। (७) १ बी० नाउ।

अर्थ—(१) "ऐ बाजिर," लोग (सामान्य जन) और महाजन पूछ रहे थे, "तुझे कौन सी वेदना हो गई है ? (२) ऐ विज्ञानी सुन, यदि [तू] हम से अपनी पीडा कहे, तो हम तुझे औषधि-मूल ला कर दे। (३) तुझे जाडे का ज्वर है, या पेट की पीडा है, या सिर की व्याधि है, या तेरी गुदा मे कीडे पडे हुए है, (४) अथवा तुझे धूप की झार (गरमी) प्रखर रूप से लग गई है कि पानी पीते ही तू बेसभाल हो गया है, (५) अथवा, तू किसी के दर्शनो पर अनुरक्त है, और उसके प्रेम मे भूला हुआ बातें नही बता रहा है, (६) अथवा तूने अपना अर्थ गवा दिया है, जिसे किसी बटपार ने तुझ से छीन लिया है ? (७) ऐ मूर्ख और गवार बाजिर, तू उसका नाम [क्यो] नही कह रहा है ?"

(५७)

लोगु 'कहइ' यहु मुरिखु अयाना। 'कहउ' हियारी बूझि सयाना।
'त्रिरिख' ऊचु 'फरु' 'लाग' अकासा। हाथ 'चढइ कइ' नांही आसा।

'कहु जोगित' को बाहु 'पसारइ' । तरुवर डारि 'धरइ को पारइ' ।
राति दिवस 'राखहि' रखवारा । 'नैनहु देखइ' जाइ सो मारा ।
'उरग डारि फरु देखेउ' रूखा । कवल फूल 'मोर' 'हिरदा' सूखा ।
'पियर' पात जस बिनु 'जीवा(उ)' 'रहेउ कोप' 'कु(कु)बिलाइ' ।
बिरह पवन 'जउ डोलेउ' टूटि 'परेउ' खहराइ ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३६, बी० १७८-१८० ।

शीर्षक—जवाब दादन बाजिर खल्क रा तरीके मुअम्मा ।

पाठान्तर—(१) १ बी० कहै । २ बी० कहौ । (२) १ बी० बिरख । २ मैं० फलु । ३ मैं० मे नही है । ४ बी० चरे की । (३) १ बी० कही जुगति । २ बी० पसारा । ३ बी० डार धरै को पारा । (४) १ बी० वहुत । २ मैं० नैन जो देषै । (५) १ बी० अरग डार फरु देष्यो । २ बी० मो । ३ मैं० हिरदै । (६) १ बी० पीर । २. मैं० जर । ३ बी० रह्यो डार । ४ मैं० कुमिलाइ । (७) १ बी० जब डोलै । २ बी० परै ।

अर्थ—(१) [बाजिर ने उत्तर दिया,] "लोग कहते है, 'यह मूर्ख और अज्ञ है', सयाने लोगो, मैं अपनी हियारी (हृदय की व्यथा) कह रहा हूँ, उसको समझो । (२) एक वृक्ष इतना ऊचा है कि उसका फल आकाश मे [लगा हुआ] है, और वह फल हाथ लगेगा, इसकी आशा नही है । (३) बताओ कि किसे ऐसी योग्यता है जो [उस फल को तोडते के लिए] बाहे पसारे ? उस तरुवर की डालो को कौन पकडे ? (४) रात-दिन रखवाले उसकी रक्षा करते हैं, और नेत्रो से भी जो उसे देख लेता है, वह मारा जाता है । (५) [पुन] जब उस वृक्ष की डालो और फलो पर सर्प मैंने देखे तो, कमल-पुष्प [जैसा] मेरा हृदय सूख गया । (६) पीले पत्ते-सा बिना जीव का हो मैं कोपल [जैसा तरुण] होते हुए [भी] कुम्हला रहा । (७) [तदनतर] विरह का पवन जो चला, मै खरहरा ('खडखड' करता) टूट पडा ।"

इस छन्द मे एक प्रहेलिका है जिसमे चादा ही ऊँचा वृक्ष, चादा के उरोज फल, उसकी बाहे डाले, उसकी लटें सर्प है । दोहे मे पीली पत्तिया इद्रिया है, कोपल प्राण है, पवन विरह का है ।

(५८)

'हउ मारिउ इहि गाउ' तुम्हारे । नैन बान हनि 'गई बिसारे' ।
रगत न 'आवा दीस न' घाऊ । हिए सालु 'मोर उठइ' न पाऊ ।

कत 'मइं देखि धौराहर' ठाढ़ी। हिए 'पइसि' जिउ 'लइ' गइ काढी।
'कउनु' बनिजु 'मोहि' 'आगे' आवा। लाभ न बिसवा मूरु गंवावा।
'हउ तुम्ह कहउं बोलु' पतियाहू। 'जेइं मारिउं तेहि कहउ(उं)' न काहू।
पूछि देखि 'तेहि घायल' 'राति' पीर जो जाग।
'कइसो (कइ सो)' जान जेहि 'मेला' 'कइ सो' जान 'जेहि' लाग॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३७, बी० १८१-१८३।

शीर्षक—मै० इस्तकहाम नमूदन बाजिर पेश खलके शहर गोयद।

पाठान्तर—(१) १ बी० हौ मार्‌या इहि गाव। २ बी० काढि वसारै। (२) १ बी० आव दीस नहि। २ बी० मोरौ उठै। (३) १. बी० मै देष धौरहर। २ बी० पैसि। ३ बी० लै। (४) १ बी० कौन। २ मै० मौरे। ३. बी० आगै। (५) १ बी० हौ तुम्ह बोलु कहौ। २. बी० जिहिं मार्‌यो तिहि कहै। (६) १. बी० तेहि घावलहि। २ बी० रत। (७) १. बी० कै सु। २. बी० जिहि मेलिहै। ३ बी० कैसि। ४. बी० जिहि।

अर्थ—(१) [उसने कहा,] "मैं तुम्हारे इसी गाँव मे मारा गया हूँ, वह [वधिक स्त्री] मुझे अपने विपाक्त नेत्र-बाण मार गई है। (२) किन्तु न रक्त आया और न घाव ही दिखाई पडा, [क्योकि] वह शल्य हृदय मे है, जिसके कारण मेरे पाव नही उठ रहे है। (३) धवल-गृह पर खडी हुई वह स्त्री मैंने देखी ही क्यो, कि वह [मेरे] हृदय मे प्रविष्ट हो कर [मेरे] जीव को निकाल ले गई ? (४) यह कौन-सा वाणिज्य मेरे आगे आया कि मैंने लाभ तो नही क्रय किया और मूल गवा बैठा ? (५) मैं तुम से कह रहा हूँ और तुम मेरे वचनो की प्रतीति करो कि जिसके द्वारा मे मारा गया हूँ, उसे मैं किसी को न बतलाऊँगा। (६) उस घायल [की व्यथा] को पूछ देखो जो रात भर पीडा के कारण जागता रहा है। (७) उसे या तो वह जानता हे जिसने वह पीडा डाली (दी) है, अथवा वह जानता है जिसे वह पीडा लगी है।"

(५९)

बाजुर 'कहा' 'मीचु' मोरि आई। गोवर तजि 'से (सइ)' जाउ पराई।
कहा 'दीख' मोहि नीद न 'आवइ'। 'भूख गई अन पानि' न भावइ।
'जउ मो तिरी' बहुरि 'दिखरावइ'। 'ओहट' मीचु 'नियर' होइ 'आवइ'।

महर 'पास जउ कह को जाई' । खिन 'एक' भीतरि 'घाल मराई' ।
'बडन्ह क कहा बिसेखइं कीजा' । 'अतिय बाचि' बरिसा 'सउ जीजा' ।
चला छाडि कइ वाजुर बसा 'अउर तह (ह)' जाइ ।
चांद रही मन 'भीतर' सवरि सवरि पछिताइ ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३८, वी० १८४-१८६ ।

शीर्षक—मैं० गुरीख्तने वाजिर अज शहर गोवर वतरसे राय महर ।

वी० के ऊपरी हाशिए मे इस कडवक के पृष्ठ पर प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति की लिखावट मे यह दोहा है

नीद न घटी तिह जिनी कह समन कौ ना(?)ह ।
अधक सनेही त्यौ (?) हरिणी बैर पटकै ताह ।।

पृष्ठ पर आए हुए समस्त कडवको के दोहे दिए हुए हैं, अत यह दोहा इस कडवक की अर्द्धाली २ के उदाहरण के रूप मे अन्यत्र कही से दिया हुआ लगता है ।

पाठान्तर—(१) १ मैं० देख। २ वी० मीच । ३ मैं० हउ । (२) १ वी० देपि। २ मैं० आवा। ३ वी० भूप गइ अनपान । (३) १ वी० जइ तु स धनी । २ वी० दिखरावा । ३ वी० उहिट । ४ वी० नियरै । ५ वी० आवा । (४) १ वी० घरहि को कहिहै जाइ । २. वी० यक । ३ वी० घालि मराइ । (५) १ वी० गुर कर कहा विसेष जु कीया । २ वी० अनी वाचि । ३ वी० सौ जीया । (६) १ वी० और ठौ । (७) १ मैं० भीतर ।

अर्थ—(१) वाजिर ने [मन मे] कहा, "मेरी मृत्यु आ गई है, [इसलिए] मैं स्वय गोवर छोड कर कही [अन्यत्र] भाग जाऊ । (२) मुझे ऐसा क्या दीखा कि नीद नही आती है, भूख चली गई है और अन्न-जल नही भाता है ? (३) यदि वह स्त्री पुन दिखाई पडी, तो दूर पर पडी हुई मृत्यु निकट हो आएगी । (४) और, यदि किसी ने महर के पास जाकर [यह बात] उससे कह दी, तो वह एक क्षण के भीतर मुझे मरवा डालेगा । (५) वडो का यह कहना विशेप रूप से करना चाहिए कि यदि अतियो से वचा जाए तो सौ वर्षो तक जीवित रहा जा सकता है ।" (६) [गोवर को] छोड़ कर वाजिर चल पडा, और अन्य स्थान पर जा कर उसने वास किया । (७) चादा उसके मन मे वनी रही, जिसे स्मरण कर-कर वह पछताया करता ।

६. चांदा-शृङ्गार-वर्णन खण्ड

(६०)

इक 'खड' छाडि 'आन' खडि जाई। 'मास एक' बाजुरु बाट खुटाई।
फुनि 'जउ' जाइ 'भएउ' पइसारा। 'बइठ पवरिया नगर' दुवारा।
वात पूछि 'सब' 'लीतेसि' नाऊ। 'भीखि मागि खाएउ यहि गाऊ'।
राइ रूपचद बाठ सरेखा। नगरु 'राजपुरु' बाजुर देखा।
दिवसु 'गएउ' निसि 'परी' अवेरा। 'बाजुर फिरि करि' लीत बसेरा।
'निमु ही राति सोहावनि' बाजुर 'ठोका' तार।
'गाई गीत चदरावलि' नगर 'भएउ' 'चमकार'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३६, बी० १८७-१८६।

शीर्षक—मै० रसीदन बाजिर दर शहरी व सुरूद करदने अन्दर शब व शुनीदन राय अज बाम।

वी० मे बाए हाशिए मे है बाजुर रूपचद के राजपुरी चाला (?), किंतु यह प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति की लिखावट मे लगता है।

पाठान्तर—(१) १. बी० षडि। २ बी० अवर। ३ वी० मासकु। (२) १. वी० जौ। २ वी० भयो। ३ वी० बैठि पौरिया पैरि। (३) १. बी० तस। २ वी० लीनसु। ३ वी० भीप मागि षौहो यत गाउ। (४) १ मैं० राज फिरि। (५) १ वी० गयो। २. मै० भएउ। ३ बी० बाजुरि फिरि कै। (६) १ बी० निसह रात सहावनी। २ वी० ठोके। (७) १ बी० गावहि गीत चरावरि। २ वी० भयो। ३ मै० झनकार।

अर्थ—(१) एक खड छोड कर वह अन्य खड मे जाता था और [इस प्रकार] एक मास मे वाजिर ने वाट समाप्त की। (२) [तदनतर] जब वह और गया और [एक नगर मे] उसका प्रवेश हुआ, [उसने देखा कि] नगर के द्वार पर एक पौरिया बैठा हुआ था। (३) उससे सारी बाते पूछ कर उसने अपना नाम लिया (बताया) [और कहा], "मै भीख माँग कर इस गाँव (नगर) मे खाता हूँ।" (४) [इस का] राजा रूपचद था, जिसका मत्री एक बाठ था, जो सूझ-बूझ का था। इस राजपुर नगर को वाजिर ने देखा। (५) जब चला गया और रात्रि मे [भी] देरी हो गई, वाजिर ने लौटकर [नगर-द्वार पर ?] बसेरा लिया। (६) निमु (बिल्कुल) सुहानी रात मे ही वाजिर ने ताल

ठोकी (दी)। (७) जब उसने चद्रावली का गीत गाया, नगर भर मे इसका चमत्कार हो गया (इसकी ख्याति हो गई)।

(६१)

दिन भा 'राजइ बाठु बोलावा'। आजु राति 'निसु ही केइ' गावा।
बाठ 'कहा इहु आक न होई' । होइ रजाइसु 'आनउ सोई'।
'चहु दिसि बाठइ' जन 'दौराए'। बाजुर 'हेरि तउहि लइ आए'।
'पूछा राउ कवन तोर' ठाऊ। 'सुसुर कठ तोहि' दीन्ह गोसाऊ।
आजु राति 'निसु' ही 'तइ' गावा। 'चदरावलि' मनु 'रहरा' लावा।
गीत नाद 'रस' कबित कहानी 'कथा कहि गावनिहार'।
'मोर मन रइनि दिवस सुखि राखहि' 'भूजसि गाउ कोठार'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४०, बी० १९०-१९२।

शीर्षक—मैं० दर रोज तलबीदन राव बाजिर रा व पुरसीदन कैफियत सुरूदे शव।

पाठान्तर—(१) १ बी० राजे बाठु बुलावा। २ बी० निसि ही को। (२) १ बी० कहँ यह वाक न होइ। २ बी० आनौ सोइ। (३) १ बी० वाठ चहू दिस। २ बी० दौरावा। ३ बी० हेरक ले तोहि आवा। (४) १ बी० राजा पूछै कोन तोरौ। २ बी० सुसर कठ तुहि। (५) १ बी० निसि। २ बी० तू। ३. बी० चादरवरि। ४ बी० रूहरे। (६) १ मैं० सुर। २ बी० किसा गावन हार। (७) १ बी० मनु मोरा सुपु राषसि। २ बी० भूचसि गाव कुठार।

अर्थ—(१) दिन हुआ तो राजा ने वाठ को बुलवाया [और पूछा,] "आज निसु (बिल्कुल) रात मे ही किसने गाया ? (२) वाठ ने कहा, "इस प्रकार से पहचान न हो सकेगी, राजादेश हो तो उसे ले आऊ।" (३) [राजादेश पा कर] वाठ ने चारो ओर जनो (सेवको) को दौडाया, [तो] वे ढूढ कर तभी (तत्काल) वाजिर को ले आए। (४) [वाजिर से] राजा ने पूछा, "तेरा कौन-सा स्थान है ? तूझे गुसाईं (ईश्वर) ने सुस्वर कठ दिया है। (५) तूने आज निसु (बिल्कुल) रात मे गाया, तो [तेरे] चद्रावली [के गीत] ने मेरे मन को सुख-लिप्त कर दिया। (६) गीत-नाद-रसपूर्ण कवित्व, कहानी तथा कथाए, ऐ गायक, तू [मेरे यहा रहता हुआ] कहे, (७) [उनके द्वारा] तू मेरा मन रात-दिन सुख मे रक्खे और तू [मेरे दिए हुए] ग्राम तथा कोठार भोगे।"

(६२)

'सवन क सुना कहउ हउ काहा' । 'बोली (लि)उ' सोइ 'जो देखिउ आहा' ।
'नगरु' 'उजी(जइ)नी' मोर अस्थानू । 'बिकराजीत' राजा धरमानू ।
'चारिउं भुवन फिरत हउ' आवा । 'गोवरु देखेउ' नगरु 'सोहावा' ।
'तहवा' चाद तिरी 'मइं' देखी । 'पाथर कीरि जइसि चित' लेखी ।
'मन हुत कैसेहु मेटि' न जाई । दिनु दिनु 'होई' अधिक सेवाई ।
'सहदेव' महर 'के (कइ)' 'धिय' चादा चहू भुवन 'उजियारि' ।
मानिक जोति 'जानु' 'परजरहि (ही)' नागरि चतुरि 'अपारि' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४१, बी० १६३-१६५ ।

शीर्षक—मैं० हिकायते दीदने चादा बयान करदन वाजिर पेश राव रूपचद ।

पाठान्तर—(१) १ बी० श्रवनक सुन कहौं है कहा । २. बी० बोल्यो । ३ बी० जु देषं अहा । (२) १. मैं० मे 'नगरु' का 'नग' त्रुटित है । २ मैं० उजैन । ३ बी० विक्रम राजा राव । (३) १ बी० चारि भुवन भीतरि जौ । २ बी० देष्या गोवरु । ३ बी० सुहावा । (४) १ बी० तिहि मैं । २. बी० मैं । ३ बी० पाथर की जस चित्तर । (५) १. बी० मन हते कैसैं मेट । २ बी देषां । (६) १ बी० सहदे । २ मैं० कर । ३ बी० धी । ४ बी० उजियार । (७) १ बी० मे नही है । २ बी० परजरिहै (परजरिही—फा०) । ३ बी० अपार ।

अर्थ—(१) [वाजिर ने कहा,] "कानो का सुना मैं क्या कहू ? मै वह कह रहा हू जो मैं देख चुका हू । (२) उज्जैन नगर मेरा स्थान है, विक्रमादित्य वहा के धर्मात्मा राजा है । (३) चारो भुवनो मे चक्कर लगाता मै [जब] आया, मैंने गोवर का सुहावना नगर देखा । (४) वहा पर मैंने चाद (चादा) स्त्री को देखा, जो पत्थर मे गडी हुई कील जैसी [होकर] मेरे चित्त मे जान पडी । (५) [अब] वह [प्रतिमा] मन से किसी प्रकार मिटाई नही जा रही है, दिन-दिन वह अधिक और अधिक ही होगी । (६) वह चादा सहदेव महर की कन्या है और चारो भुवनो मे प्रकाशित है; (७) [वह ऐसी लगती है] मानो माणिक्य की ज्योति प्रज्वलित हो रही हो; वह अपार [रूप से] नागरी तथा चतुरा है ।"

(६३)

सुनि कइ चादु राउ 'अगिराना'। बाजुर 'ओहट नियर धरि' आना।
जस 'कोइ सूत' 'बइस' उठि 'जागइ'। राजा हिये चटपटी 'लागइ'।
तुरी 'देइ' बाजुर 'कहु' आनी। पीठि घालि पाखर 'सोनवानी'।
'बाजुर' कवन 'देस' सो नारी। 'गाउ कहउ अरु ठाउ' बिचारी।
'लपन कहउ अउ करन' बिसेखी। 'कवन' रूप सो तिरिया देखी।

मारग 'कवन' 'कइस बेवहारा' 'लाबि छोटि कसि आहि'।
सहज सिगारु 'रूप रस' 'बिंदक'' पराकिरति कै (केइ) चाह(हि)'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४२, भो० पत्र ६० (नवीन), बी० १९६-१९८। भो० मे इस कडवक की पुरानी सख्या भी प्राप्त है, जो ६२ है।

शीर्षक—मैं० आशिक शुदने राव बर नाम चादा व अस्प दिहानीदन बाजुर रा।

भो० शुनीदने राव रूपचद नामे चादा व पुरसीदने बाजुर रा सूरतो ज़ेवाइए ऊ।

पाठान्तर—(१) १ बी० अगराना। २ बी० अहुट नीर हुइ। (२) १ मैं० को सूत, बी० कसीत। २ मैं० बइठ, बी० बैठि। ३ बी० जागै। ४ बी० लागै। (३) १ मैं० देहि, बी० देहु। २ बी० कौहु। ३. बी० सुनवानी। (४) १ भो० बाचिर। २ बी० दीय। ३ मैं० ठउर कहउ बरु तुमह, बी० ठाव कहसि औ लपिन। (५) १ बी० लपिन कहाँ परत। २ मैं० आछरि, बी० कौन। (६) १ बी० कौन। २ बी० कैस ब्योहारू। ३ बी० लाव छोट केस आह। (७) १ मैं० भोग। २ बी० चाद कै। ३ मैं० पराकीरति (पराकिरति) कइ चाहि, भो० पराकिरति कसि ताहि।

अर्थ—(१) चाद [नाम] सुनकर राजा ने अगडाई ली और बाजिर को जो ओहट (दूर पर) था, पकड कर अपने निकट ले गया। (२) जिस प्रकार कोई प्रसुप्त उठ कर बैठ जाए और जाग पडे, इस प्रकार की चटपटी (उतावली) राजा के हृदय मे लगने लगी। (३) सोने के वर्ण की पाखर जिसकी पीठ पर डाली हुई थी, ऐसा एक घोडा उसने ला कर (मगा कर) बाजिर को दिया। (४) [उसने पूछा,] "बाजिर, वह नारी किस देश मे है ? तुम उसका ग्राम तथा स्थान विचार कर कहो (बताओ)। (५) उसके लक्षण तथा विशेषता के साथ उसके करण (शरीर के अवयव) कहो, तुमने किस

रूप की वह स्त्री देखी है ? (६) [उसके देश का] मार्ग कौन-सा है और उसका व्यवहार कैसा है ? वह नारी लंबी है या छोटी—कैसी है ? (७) हे सहज शृंगार, रूप तथा रस के जानकार, उसकी प्राकृति तूने कैसी देखी है ?"

(६४)

'पहिले माग क कहउ सोहागू'। 'जेहि' राता जगु 'खेलइ फागू'।
माग 'चीरि सिर' सेंदुर पूरा। 'रेंगि चला जनु कानकेजूरा'।
'दीया' जोति 'रइनि जसि' बारी। कारे सीस दीस रतनारी।
'मइ वह मागि' चीर तर दीठी। उवत सूरु 'जनु' किरनि पईठी।
मोति 'पुरोइ जउ हि बइसारा'। 'सगरे देस' होइ उजियारा।

राउ रूपचद बोला बहुरि 'इहइ खड' गाउ।
माग सुनत मनु राता बाजुर 'करबि' 'बिपाउ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४३, बी० १९९-२०१।

शीर्षक—मैं० सिफते फरके चादा गुफ्तन बाजिर बर राव रूपचद।

पाठान्तर—(१) १ बी० पहलि माग का कहैं सुहागू। २ बी० जिहि। ३ बी० पलै पागू। (२) १ बी० चीर कै। २ बी० रीगि चिला जानौ कान खिजूरा। (३) १ मैं० दिया। २ बी० रैनि जैसी। (४) १ बी० जो सिर माड। २ बी० जानौ। (५) १ बी० परोइ जहाँ बैसारी। २ बी० मगरै द्योम। (६) १ बी० यही पडि। (७) १ बी० करौहु। २ बी० पसाउ।

अर्थ—(१) [वाजिर ने कहा,] "पहले मैं [उसकी] माग की सुभगता का वर्णन कर रहा हू, जिस [की रक्तिमा] से रक्त हो कर जग फाग खेलता है। (२) माग चीर (निकाल) कर उसने सिर मे सिंदूर पूर रक्खा है, [जो ऐसा लगता है] मानो कानकेजूरा रेंग रहा हो। (३) जैसे रजनी मे दीपक की ज्योति प्रज्वलित हुई हो, इस प्रकार काले सिर [के वालो] मे वह रतनारी (ललछौंही) माग दीखती है। (४) मैंने वह माग [उसके] चीर के नीचे देखी, [तो वह मुझे ऐसी लगी] मानो सूर्य के उदय होते समय की किरण [अन्धकार मे] प्रविष्ट हुई हो। (५) जब उस [माग] पर मोती पूर कर विठाए जाते है, तब समस्त देश मे प्रकाश हो जाता है।" (६) राजा रूपचद [इस वर्णन को सुनकर] वोला, "फिर तो [शृंगार-वर्णन का ?] यही खंड तुम गाओ। (७) उसकी माग [के वर्णन] को सुनकर [मेरा]

मन उस पर अनुरक्त हो गया है और, ऐ वाजिर, ऐसा लगता है कि तुम [यह सुना कर] मुझे बेपाय कर दोगे।"

(६५)

भवर वरन भइ देखे वारा। 'जनु बिसहर लुरि परे भडारा'।
लाब केस सिर पा 'धुरि' आए। जानु 'सेंदूरे' नाग सोहाए।
बेनी गूंदि 'जउहि ओरमावइ'। लहरि 'चढहि' बिसु 'मसतगि धावइ'।
'देखत' बिसु 'चढ' 'मत्रु न मानइ'। गारुरि 'तासु उतारु न' 'जानइ'।
'जूरा छोरि झार सो' नारी। 'दिवसेंहि राति' होइ 'अधियारी'।
डकु 'चढा' 'बिसु' 'राजा' 'परा लहरि मुरुझाइ'।
वात 'सुनत' 'जेहि बिसु चढ' गारुरि 'का सु' कराइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४४, वी० २०२-२०४।

शीर्षक—मैं० सिफते मुएहा चादा गोयद।

पाठान्तर—(१) १ वी० जैसैं बिरहर लहरि परैं भडारा। (२) १. बी० धरि। २ वी० सिदूरैं। (३) १ वी० जबहि उरिवावैं। २ वी० चरैं। ३ वी० मस्तकि धावैं। (४) १ वी० देपित। २ वी० चरि। ३ वी० मतरु न मानैं। ४ मैं० काह अनारी। ५ वी० जानौ। (५) १ बी० जूर छोडि कै झारि सु। २ वी० द्यौसे हि रात। ३ वी० उजियारी। (६) १ बी० चरा। २ मैं० सुनि। ३ वी० राजहि। ४ वी० अै जु लहरि मुरझाय। (७) १ मैं० कहत। २ वी० जिहि विसु चरगा। ३ मैं० काह।

अर्थ—(१) "उसके भ्रमरो के वर्ण के वालो को मैंने देखा [जो ऐसे लगते है] मानो [अमृत के] भाडार पर विषधर लोटने लग गए हो। (२) उसके लम्बे केश सिर से धुर पैरो तक आए हुए है, [और सिंदूरित होने के कारण ऐसे लगते है] मानो सुहावने नाग हो जो सिंदूरित किए गए हो। (३) अपनी [सर्पिणी जैसी] वेणी को गूंथ कर वह जभी लटकाती है, [दर्शक पर विष की] एक लहर चढ जाती है, और विप [उसके] मस्तक तक दौड जाता है। (४) उसे देखते ही विष ऐसा चढता है कि वह कोई मत्र नही मानता है, उस विष का उतार (उतारने का उपचार) [कोई] गारुडी (मत्रादि से सर्पविष दूर करने वाला) नही जानता है। (५) [जव] वह नारी अपने जूडे को खोल कर वालो को झाडती है, तब दिन मे ही अधेरी रात हो जाती है।" (६) [यह सुनकर] राजा को सर्प-दश का विप चढ गया और वह उसकी लहरो से मूर्छित होकर गिर पडा। (७) जिसकी वार्ता

सुनते ही विष चढ़ता है, [उस सर्प के दश के लिए] गारुडी [भला] क्या कर सकता है ?"

(६६)

देखि लिलार बिमोहे देवा । 'लोक' कुटुव 'तजि' 'कीतिहि' सेवा ।
'दूजि क' चादु 'जानु परगसा' । 'कइ खर सोवन कसौटी कसा' ।
वदनु 'पसेज वुद जो' आवहि । चाद 'माझ जनु नखत दिखावहिं' ।
'मनहु दिब सउह न देखी' जाई । सरग सूरु 'जनु' उदिनल आई ।
ससिहर रूप 'भई' अतिरेखा । 'मइ न अकेले' सब 'जगु' देखा ।
सूरु 'चढा' बिसु उतरा 'राजइ' करवट लीत ।
सुनि लिलारु उठि 'वैठा (बइठा)' 'बाजुर कचन' दीत ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ४५।१, वी० २०५-२०७ ।

शीर्षक—मै सिफते पेशानी चादा गोयद ।

पाठान्तर—(१) १ वी० लोग । २ बी० जु । ३ बी० कीन्ही । (२) १ वी० दूज का । २ वी० जानौ परगासा । ३ वी० कै षर सौन कसौटी कासा । (३) १ वी० पसीज वूद चुय । २ वी० मझ जस नषत दिपावैहि । (४) १ वी० मुह दिप देखैं सो भन (?) । २ वी० जानै । (५) १ वी० भयो । २ वी० मै न अकेलै । ३ बी० जगि । (६) १. वी० चरा । २ वी० राजा । (७) १ मै० वइठेउ । २ वी० बाजरि कनजप ।

अर्थ—(१) "उसका ललाट देखकर देवता विमोहित हो गए, और लोक तथा कुटुम्ब को छोडकर उन्होने उसकी सेवा की । (२) [वह ऐसा लगता है] मानो द्वितीया का चन्द्र प्रकाशित हुआ हो, अथवा कोई खरा सोना कसौटी पर कसा गया हो । (३) उसके मुख पर जो प्रस्वेद-बिन्दु आते है, वे चन्द्र मे मानो नक्षत्र दिखते है । (४) वह [ललाट] ऐसा लगता है मानो दिव्य (तप्त लौह) हो, [इसलिए] सामने से वह देखा नही जाता है, अथवा वह [ऐसा लगता है] मानो आकाश मे उदीयमान होकर आया हुआ सूर्य हो, (५) [अथवा] वह ललाट अतिरेक के साथ शशधर (चन्द्र) के रूप का हो गया है और ऐसा अकेले मैंने नही, समस्त जगत् ने देखा है ।" (६) सूर्य जव [आकाश मे] चढा, तव राजा पर चढा हुआ [चादा के केश-सर्पों का] विष उतरा और राजा ने करवट ली । (७) ललाट [का वर्णन] सुन कर वह उठ बैठा और उसने बाजिर को [पुरस्कार मे] खरा सोना दिया ।

(६७)

'भउह धनुक जनु दुइ कर' ताने । पनच 'बान बिष पैंचि सधाने' ।
बान बिसार सान 'दइ लावइ' । पारधि 'जइस अहेरइ आवइ' ।
'अरजुन धनुक सरग मइ' देखे । चाद 'भउह' गुन सोइ बिसेखे ।
सर तीखे 'जेहि मारि फिरावइ' । 'ठउर परइ सो पैग न जावइ' ।
'भौह बान धन (नि) अस गुन' अहा । मूठि न डोल 'चुकाइहि' कहा ।
वसकार 'छडि वाजिर' 'धानुक' भई 'सो' नारि ।
सहजि मिरिगु 'भा' 'राजा' भया मोहि 'गिय सारि' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ४५।२, वी० २०८-२१० ।

शीर्षक—मै० सिफते अज रूए चादा गोयद ।

पाठान्तर—(१) १ वी० भौह धनप जानौ देपि के । २ मै० नाहि गुन खीच सयाने । (२) १ वी० दे लावै । २ वी० जैसै अहेरै धावै । (३) १ वी० अरजन धुनप सरजि मैं । २ वी० भौह । (४) १ वी० जिह मा[र] फिरावै । २ वी० ठाव परै तिहि देष न आवै । (५) १ मै० चाद भउह गुन अइसइ । २ वी० चुकाउ । (६) १ वी० छिद बाजर । २ वी० धान[क] । ३. वी० सु । (७) १ वी० भया । २ मै० राजा राजा ३ वी० गई मारि ।

अर्थ—(१) "उसकी भौंहे [ऐसी लगती है] मानो [उसके] दोनो हाथो ने धनुष ताना हो, और उन्होने पनच (प्रत्यचा) पर विप-बाण खीच कर सधाने हो । (२) वह शान पर चढाकर [अपने] विपाक्त बाण [उन धनुषो पर] लगाती है, और पारधिक (बहेलिए) की भाँति आखेट करने के लिए आती है। (३) आकाश मे मैंने अर्जुन (?) के धनुप को [निकला हुआ] देखा है, वे ही (उसी के) गुण चादा की भौहो मे विशेपता के साथ [पाए जाते] हैं । (४) जिसे वह तीक्ष्ण [दृष्टि-] बाणो से मार कर गिराती है, वह उसी स्थान पर गिर पडता है, और एक पैग (पग) भी [आगे] नही जा पाता है । (५) उस कन्या (चादा) की भौहो का गुण इस प्रकार का है कि उसकी मूठ नही हिलती है, इसलिए वह [लक्ष्य-वेध] मे क्या (क्यो) चूके ? (६) वाजिर कहता है, वह [वधिक] नारी बसकार (बासरी) [का बजाना] छोड कर धानुष्क हो गई है ।" (७) [यह सुनकर] उसके माया-मोह [के पाश] मे गला डाल कर राजा सहज ही [वधिक का] मृग हो रहा ।

(६८)

नैन सुरूप सेत 'मकरारे' । खिन खिन बरन होहि रतनारे ।
अब फार 'जनु मोतिन्ह' भरे । ते 'लइ भउहन्ह' के तरि धरे ।
'डोलहि सहजि' 'जानु' मद पिया । 'कइ' निसि पवनि झकोरा दिया ।
उलटि 'समुद' 'जनौ मानिक' रहे । 'राइ' थाक कर 'गाहि' न गहे ।
नैन 'समुद' है (हइ) 'अति' अवगाहा । 'बोहिथ बूडि' न पावहि थाहा ।
'बहुतइ नैन चाद बस' 'औ (अउ) देखहु धौ (दहु) आइ' ।
सरगि जाइ 'चढि' 'चादा' बइसी 'राजा पूछौ (छउ) काइ' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४६।१, बी० २११-२१३.।

शीर्षक—सिफते चश्म हाए चादा गोयद ।

मैं० मे (३) के 'मद' को 'मधु' किया गया है ।

पाठान्तर—(१) मैं० मह कारे । (२) १ बी० जानै मोत्यो । २ बी० लै भौहनि । (३) १ मैं० सहजहि डोलहि । २ बी० जानौ । ३ बी० कै । (४) १ बी० समदि । २ मैं० मानिक भरि । ३ बी० राय । ४ मैं० गाठि । (५) १ बी० समद । २ मैं० अती । ३ मैं० बूडहि राइ । (६) १ बी० भीतरि चाद नैन बीसये । २ मैं० आइ देखु धौ आहि । (७) १ बी० चरि । २ मैं० मे नही है । ३ मैं० राजा पूछहु काहि ।

अर्थ—(१) "उसके सुरूप नेत्र जो श्वेत और मकरारे (कलछौहे) है, क्षणानुक्षण रतनारे (ललछौहे) होते रहते है । (२) [वे ऐसे लगते है] मानो आम की फाके हो जो मोतियो से भरी गई हो, तथा [तदनतर] ले कर भौहो के नीचे रख दी गई हो । (३) वे सहज ही डोलते रहते है, मानो उन्होंने मद-पान किया हो, अथवा [मानो वे जलते हुए दीपक हो जो] रात्रि मे पवन द्वारा झकोरे गए हो, (४) [अथवा मानो] वे समुद्र से उलटे [बाहर फेके] हुए माणिक्य हो, [उन्हे देख कर] राजा भी थक जाते है [क्योकि] वे हाथो से उन्हे पकडने का प्रयास करके भी पकड नही पाते है । (५) वे नेत्र अत्यधिक गहरे समुद्र है, जिनमे बोहित्थ डूब जाते है, और फिर भी [जिन का] थाह नही पाते हैं । (६) चादा के उन नेत्रो मे बहुतेरे [राजे] निवास करते है, और तुम इसे आ (जा) कर देख सकते हो । (७) आकाश मे जा कर वह चादा बैठी हुई है, ऐ राजा, उसे तुम क्या पूछते हो ?"

(६९)

मुह 'मह' नाक देस 'क' सिगारू । 'जनु' अभरन 'ऊपर गिय हारू' ।
'सहज ऊचि' पिरथमी जाना । 'अउ' सभ ताकर 'करहि' बखाना ।
सुवा 'नाक जो लोकि' सराहा । 'तेहू' चाहि अधिकु पै (पइ) आहा ।
तिल क फूल 'जस' फूल सुहावा । 'पदुमिनि' नाक 'भाउ तस' पावा ।
नाक सरूप अइस मइ कहा । 'जानहु' खरगु सोवन कर 'अहा' ।
'बेना परिमल' 'फूल कसतूरी' सभै (भइ) बास रसु लेइ ।
खिन मर खिन 'जिय' 'राउ' रूपचद अरथु दरबु 'सभु' देइ ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४६।२, बी० २१४-२१६।

शीर्षक—मैं० सिफते बीनीए चादा गोयद ।

मैं० के (२)। १ के पाठ मे 'पिरथमी' के आगे 'सब' बाद मे बढाया हुआ है।

पाठान्तर—(१) १ बी० मैं०। २ बी० कौ। ३ बी० जिहि। ४ बी० उपै गैहारू। (२) १ बी० साजै उचकुच। २ बी० औ। ३ बी० करत। (३) १ बी० नाक जानु लोगि। २ मैं० तेइ। (४) १ बी० अति। २ बी० पदमनि। ३ बी० भाव तसै। (५) १ बी० जानौ। २ बी० गहा। (६) १ बी० बीना परमल। २ मैं० सवइ। (७) १ बी० जिव। २ बी० राज। ३ मैं० सव।

अर्थ—(१) "उसके मुख [मंडल] मे नासिका-देश का शृङ्गार (सौन्दर्य) ऐसा है कि मानो आभरणो के ऊपर ग्रीवा का हार हो। (२) पृथ्वी मे सब नासिका को [शरीर मे] सहज ही ऊँची जानते हैं, और [इसलिए] सभी उसका बखान करते हैं। (३) लोक मे शुक-नासिका की जो सराहना की जाती है, हो न हो [उसकी नाक] उससे भी अधिक (बढ कर) है। (४) तिल का फूल जैसा सुदर फूल होता है, उस पद्‌मिनी की नासिका ने भी वैसा ही भाव (रूप-सौन्दर्य) पाया है। (५) उस नासिका के स्वरूप को मैं इस प्रकार कह सकता हूँ कि मानो वह सोने का खड्‌ग हो। (६) वीरण (खस) परिमल, फूल, कस्तूरी—सभी वासनाओ का रस वह ग्रहण करती है।" (७) [यह वर्णन सुनने पर] राव रूपचद किसी क्षण मरता तो किसी क्षण जीता और वह [वाजिर को] अर्थ, द्रव्य तथा सभी कुछ देता।

(७०)

राजा 'अवर त' अधर 'तरासे'। 'जनु मनुसइ के' रगत पियासे।
'ईगुर घोरि' 'दरेरइ' लिखे। रगत 'पियइ मनुसइ कर सिखे'।
सहज रात जनु सुरग पवारी। 'औ (अउ)' रगि राते पान सुपारी।
'हार डोर बहु तिन्ह' रग राता। 'तिन्ह रगि' बाजुरि कही 'सो' बाता।
'जानु तरासा' कुसु 'लइ' चीरा। खाड आनि 'तेहि' ऊपर बीरा।
अस 'कइ' अधर 'बरनि गए (?)' 'राजा भा' मन भोरु।
रगत धार दुहु 'नैनन्हि' रस 'धरि' मारा चोरु॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४७।१, बी० [२१७]–२२१, दो सख्याए बी० मे बीच मे छूट गई हैं।

शीर्षक—सिफते लबहाए चादा गोयद।

पाठान्तर—(१) १ बी० और ति। २ बी० निरासे। ३ बी० जनै मनस कर। (२) १ मैं० लखे दरेरइ (देखिए बाद की शब्दावली)। २ बी० दरेरे। ३ बी० पिये मानस कर सेपे। (३) १ मैं० अउर। (४) १ बी० हाथ दोर तिह ही। २. बी० तेहि रग वाजुरि कही। ३ बी० मे नही है। (५) १ बी० जानै निरासे। २ बी० लै। ३ बी० तिहि। (६) १ बी० कै। २ बी० वरगे। ३ बी० राज भया मनु। (७) १ बी० दौहु नैनाह। २ बी० धर।

अर्थ—(१) "और, हे राजा, उसके अधर ऐसे त्रास देने वाले है, मानो वे मनुष्य के रक्त के प्यासे हो। (२) [वे ऐसे रक्त वर्ण के है मानो] हिंगुल घोल कर [उसकी] धारिया लिखी (बनाई) गई हो, उन्होने मनुष्यो का रक्त पीना [ही] सीख रक्खा है। (३) वे सहज ही रक्त है, जैसे सुरग प्रवाल हो और पान-सुपारी [के रग] से [और भी अधिक] रक्त [वर्ण के] हो गए हैं, हारो की डोरी भी उनके रग से बहुत रक्त हो गई है और उन्ही के रग मे रग कर वाजिर यह वार्ता कह रहा है। (५) मानो वे त्रस्त करने वाले कुश को लेकर चीरे हुए हैं [इसलिए रक्तवर्ण के है] और उन पर खाड लाकर डाली (?) हुई है।" (६) वे अधर जब इस प्रकार वर्णित किए गए, तो राजा मन मे भूला (भ्रमित) हो गया। (७) उसके दोनो नेत्रो मे रक्त की धारा उमड़ पडी, और वह ऐसा हो गया मानो [अपने] रस (अनुराग) [के कारण ही] कोई चोर पकड़ कर मारा गया हो।

(७१)

चौक भीनु 'पानन्ह' रगि राता। 'अतरिन्ह' लागि रहे 'जनु' चाटा।
अधर 'विहरि' 'जउ हसइ' गुवारी। बिजुरी लौकि 'रइनि' अधियारी।
'मुख' भीतरि 'दीसइ' उजियारा। हीरा डसन 'करहि' चमकारा।
सोवन 'खा(खा)व जानु गढि धरे'। जानु 'सिगरि करि कोइला' 'भरे'।
'दारिउ' दात देखि रस आसा। भवर 'पखि' लागे चहु पासा।
'मूछा' राउ रूपचदु सुनि कइ बचन 'सुहाउ'।
भोजन 'जेवत राजहि लाग दात कर घाउ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४७।२, बी० २२२-२२४।

शीर्षक—सिफते ददान चादा गोयद।

पाठान्तर—(१) १ बी० पानि। २ बी० अतर। ३ बी० जानौ। (२) १ बी० विहसि। २ बी० ज्यो हसै। ३ बी० रैनि। (३) १ बी० मुहु। २ बी० देपौ। ३ बी० करै। (४) १ बी० काप जैसि घरि धरी। २ बी० कुईरि कुईला। ३ बी० भरी (?)। (५) १ बी० दार्यो। २ बी० पक। (६) १ बी० समझा। २ बी० सुहाई। (७) १. बी० जीवन मोर दिन वरौ चाद कै पाई।

अर्थ—(१) "उसके चौक (सामने के चार दात) भीने और पानो के रग से रगकर लाल है, वे [ऐसे लगते है] मानो अतडियो मे चीटे लग (चिपक) रहे हो। (२) वह ग्वालिन अधरो को एक-दूसरे से अलग कर जब हँसती है, तब [मानो] अधेरी रात मे बिजली कौंध जाती है। (३) उसके मुख के भीतर प्रकाश दिखाई पडता है, [क्योकि] हीरे [सदृश] दात [उसमे] चमत्कार करते [रहते] है (४) [वे दात ऐसे हैं] मानो सोने के खभे (?) गढ कर रक्खे हुए हो, [अथवा] मानो सिगडी [जला] कर [उसमे] कोयले रक्खे हुए हो [जो जल रहे हो]। (५) उसके दाडिम [जैसे] दातो को देखकर रस की आशा से भ्रमर तथा पक्षी उसके चारो ओर लगे [रहते] है।" (६) राजा रूपचद्र इन सुहावने वचनो को सुनकर मूर्च्छित हो गया, (७) [जिसके कारण] भोजन करते समय राजा को दातो का घाव लग गया।

(७२)

चाद 'जीभि मुख' 'अबिरित' बानी। पान फूल रस 'पिरम' कहानी।
पदुमिनि बचन नीद सुनि 'आवइ'। दुख 'बिसरइ सुख रइनि बिहावइ'।

'अविरित' कुड 'भएउ' मुख नारी । सहज बात रस 'बहइ सु नारी' ।
'कंवल' क फूल जीभि तेहि माहा । अधर पान 'करि आछइ' छाहां ।
पान 'कैधै (कइ दहु)' मुख 'जीभि' अमोला ।
फूल झरहि 'जउ हसि हसि' बोला ।
'छरगा' राउ रूपचद 'धरहु धरहु' चिललाइ ।
पान फूल 'अविरित जसि' चादा अब ही गइ 'दिखराइ' ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४८।१, बी० २२५-२२७ ।

शीर्षक—मैं० सिफते जुवान चादा गोयद ।

पाठान्तर—(१) १ बी० बचन सुनि (तुल० पक्ति २) । २. बी० अवृ० (अविरित) मैं० अमिरित। ३ बी० पेम। (२) १ बी० आवै । २. बी० बिसरहि सुप रैं नि विहावै । (३) १ बी० अम्रित (अविरित), मैं० अमिरित । २ बी० भई । ३ बी० भइ पियारी । (४) १ बी० कवर । २ बी० कै आछौ । (५) १ मैं० जैस । २ बी० जीभ । ३. बी० जौ हसि कै । (६) १. बी० छिरगा । २ बी० धरहर औ । (७) १ बी० अम्रित रस । २ बी० दिखाइ ।

अर्थ—(१) "चाद (चादा) के मुख मे [उसकी] जिह्वा पत्रो-पुष्पो के रसो तथा प्रेम-कथनो के कारण अमृत-वर्ण की हो रही है। (२) उस पद्मिनी के वचन [ऐसे होते हैं कि उन्हे] सुन कर नीद आती है, दुख विस्मृत हो जाता है और रात सुख से व्यतीत होती है । (३) उस नारी का मुख अमृत का कुड [बना] हुआ है, जिससे सहज वार्ता-रस की अच्छी नाली बहती रहती है । (४) उसमे जो जिह्वा है, वह [मानो] कमल का पुष्प है, वह जिह्वा अधरो का पान कर उनकी छाया मे रहती है, (५) अथवा उसके मुख की जिह्वा [उस नारी-लता का] पर्ण है, और जब वह हँस कर बोलती है, [उस लता के] फूल झडते हैं ।" (६) [इस वर्णन को सुनकर] राजा रूपचद [जैसे किसी छलना द्वारा] छला गया, और वह चिल्लाने लगा, "पकडो, पकडो, (७) पान-फूल और अमृत जैसी चादा अभी-अभी दिखाई पड कर [यहाँ से] गई है ।"

(७३)

'सवन' सीप 'चदन घसि' भरे। कूकू बरन 'अतिय' 'कोवरे' ।
'लाब न छोट थूल नहि तिए । कान कनक जनु झरकहिं दिए' ।

कवर 'क फूल बीरिय' अति 'लोने'। कौधा सरगि 'लवहिं दुहु कोने'।
'दुहु गालन्हि घिय कै' चिकनाई। 'जानिय अरसी दुहु दिसि' लाई।
'अबिरित' कुड झवकि 'करि' भरा। 'अइस न जानउ काहि कह' धरा।
अमर सबदु 'भय (भये)' चादा मुख 'अबिरित' धनि 'नारि'।
एत बोलु सुनि राजा फुनि उठ बइठ 'खखारि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ४८।२, बी० २२८-२३०।

शीर्षक—मै० सिफते गोशहाए चादा गोयद।

पाठान्तर—(१) १ बी० सोन। २ बी० जनौ चदन। ३ बी० अते। ४. बी० कूवरे। (२) १ बी० मे अर्द्धाली के लिए स्थान छोडा हुआ था, बाद मे सभवत प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति द्वारा वह इस प्रकार दी गई

लाव न छोट थुल नहि तेइ कान कनक जानै झरकै देई।

(३) १ मै० कपोल रूप। २ बी० लूने। ३ बी० लुवाहि जानौ कूने। (४) १ मै० गालह की अैसी। २ बी० कै अरसी लहि दहु दिस। (५) १ बी० अम्रित, मै० अमिरित। २ बी० कर। ३ बी० औस। अैसि (?) न जानौ काकौ। (६) १ मै० सो। २ बी० अम्रित, मै० अमिरित। ३ बी० धन। (७) १ बी० षधारि।

अर्थ—(१) "उसके कान उन सीपो के जैसे हैं जो घिसे हुए चदन से भरे हुए हो, वे कुकुम के वर्ण के और अत्यधिक कोमल है। (२) वे न लम्बे है न छोटे, न स्थूल है, और न पतले, वे कान कनक-दीपो के समान झलकते है। (३) उसके बीलक (कान के वीरे) अत्यधिक लावण्यपूर्ण कमल के पुष्प है, [वे ऐसे चमकते हैं मानो] आकाश के दोनो कोनो (छोरो) पर विजली लपलपा रही हो। (४) उसके दोनो गालो पर घृत की चिकनाहट है, मानो दोनो ओर [दो] आरसिया (आदर्शिकाएँ) लगाई हुई हो। (५) वे झवक कर (मुहामुह ?) भरे हुए अमृत-कुड है, और ऐसा मुझे ज्ञात नही है कि वे किसके लिए [अछूते] रक्खे हुए हैं। (६) उस के मुख मे अमृत है इसलिए उस चादा के शब्द अमर है, और वह नारी धन्य है।" (७) [अमृत की चर्चा से पूर्ण] इतने वचनो को सुन कर राजा पुन खखार कर [और चेत मे आकर] उठ वैठा।

(७४)

नैन 'सवन' बिच तिलु इकु परा। 'जानु' विरह मसि विदुका धरा।
मुख के 'सोहागु भएउ' तिल सगू। 'पदुम' पुहुप 'सिर' वइठ 'भुजगू'।

बास 'लुबुध' बइठेउ भल आई। 'काढि' रहा हरि 'जानु' उडाई।
तिल बिरहे 'बन' 'घुघुची' जरी। 'आधी' 'कारि' 'आधी रतफरी'।
'बिरह दगध हौ (हउ)' मरन स (स)नेहा।
रगत 'हीन' 'कोइला' भइ देहा।
तिल 'सजोग बाजुर सिर कीन्हेउ' ओहट भा 'परु' जाइ।
राजा 'हिए' आगि परजारी तिल तिल 'जरि न' बुझाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४६।१, भो० पत्र ३ (नवीन), बी० २३१-२३३।

शीर्षक—मैं० सिफते खाले चादा गोयद।

भो० सिफते खाले बेमिसाल मह पैकरे चादा मयान· जिस्म व गोश नुकत स्याह उफतादन।

पाठान्तर—(१) बी० श्रवन। २ बी० जानौ। (२) १ बी० कौ। २ बी० सुहाग भयो। ३ बी० पिरम। ४. बी० जानौ। ५ बी० भुवगू। (३) १ मैं० लुबुध तेहि वइठेउ आई, बी० लुबध बैठो फिहिराई। २ बी० मगडि। ३ बी० जैन। (४) १ बी० बिनु (बनु—फारसी)। २. बी० घुघुच, भो० घुगची। ३ भो० आधि। ४ बी० करि। ५ बी० अधी रातुरी। (५) १ मैं० तेहि विरहे तह। २ बी० नही। ३ बी० कुईला। (६) १ बी० सजोगि वाजुरि सिरु कीन्हा। २ बी० परि। (७) १ बी० हिये, मैं० हिए। २ भो० जरइ न, मैं० जरइ।

अर्थ—(१) "उसके [एक ओर के] नेत्र और श्रवण (कान) के बीच एक तिल पडा हुआ है, [जो ऐसा लगता है] मानो विरह का मसि-बिंदु रक्खा हुआ हो। (२) यह उसके मुख का सौभाग्य था कि उसको उस तिल का सग प्राप्त हो गया, [यह ऐसा हुआ मानो] पद्म-पुष्प के ऊपर भुजग (भ्रमर) बैठ गया हो, (३) और वह वास-लुब्ध होकर आकर भले ही बैठ गया हो किन्तु अव वह उडेगा, इसलिए अपनी वेडी (अपना बधन) निकाल फेंक रहा हो। (४) उस तिल के विरह मे वन की घुघुची जल गई, [इसीलिए] वह आधी काली और आधी रक्त-फला [हो गई] है। (५) उसके विरह के दग्ध (दाह) के कारण मुझे भी मरने का सन्देह हो रहा है, और मेरा शरीर [भी] रक्तहीन होकर कोयला [जैसा] हो रहा है।" (६) [जब उस धानुष्का ने] वाजिर के सिर पर इस तिल के सयोग (शस्त्रास्त्र) का प्रयोग किया था, वह दूर जा पडा था। (७) [अव उस तिल ने] राजा के हृदय मे वही अग्नि प्रज्वलित कर दी थी, जिससे वह भी तिल-तिल जल कर बुझ नही रहा था।

(७५)

राजा 'गिय कइ' सुनहु निकाई। 'जनु' कुभार धरि 'चाक' फिराई।
'फूकति नारि' 'कचोरा' लावा। पियत 'निरातर गह' दिखरावा।
देव सराहहि 'तेतीसउ' कोरी। 'गिय उचारि गहिलिहेसि' अजोरी।
'असि गिय' मनुसहि 'आथि' न काहू। ठासि 'धरा' 'जनु' 'चलइ' कियाहू।
का 'कहु' असि 'गिय' दई सवारी। 'को तेहि लागि' देय अकवारी।
हिय सिरान राजा कर 'सुनेसि कठ अकवारि'।
गोवरु मारि 'बिधासउ' 'आनउ' चादा नारि॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ४६।२, भो० पत्र ४ (नवीन), बी० २३४-२३७। बी० मे बीच मे एक सख्या छूटी हुई है।

भो० मे इस कडवक के पत्र पर पुरानी पत्र-सख्या ७५ पडी हुई है।

शीर्षक—मै० सिफते गुलूए चादा गोयद।

भो० सिफते मेहरहे मह पैकरे चादा मिस्ले औंद कुलाल गुज़ाश्तन।

पाठान्तर—(१) १ बी० गै की। २ बी० जानौ। ३ बी० चाकु। (२) १ बी० फुवकत नीर। २ भो० कचेरइ। ३ बी० ल्यावा। ४ भो० निरातर नहि, बी० नीर अन्तर। (३) १ मै० तहतीसउ, भो० तेतीस्यो। २ भो० केउ अपछरा कै लीन्हि, बी० गै विचारि फुनि कहसि। (४) १ भो० असि गिय, बी० अैसग। २ मै० मनुसहि दीखि, बी० मनसह आथि। ३ मै० धरे। ४ भो० मे नही है। ५ भो० चलत, बी० चलै। (५) १ बी० कौं। २ भो० गिय, बी० गै। ३ बी० कतिहि लाइ। (६) १. बी० सुनि कै कठ कीयाहि। (७) १ बी० विघसौ। २ बी० आनौ।

अर्थ—(१) "हे राजा, उसकी ग्रीवा की सुन्दरता सुनो, [वह ऐसी लगती है] मानो किसी कुम्हार के द्वारा चाक पर रख कर फिराई गई हो। (२) वह नारी [अधरो से] कच्चोल को लगा कर [पेय को] फूकती है, और तब जब वह उसे पीती है, वह ग्रहणीय (पेय) निरतर दिखलाई पडता है। (३) उसे तैंतीसो कोटि देवता सराहते है [और कहते है,] 'किससे उखाड कर उसने यह ग्रीवा जोड ली है?' ऐसी ग्रीवा मनुष्य मे कभी नही थी। [इस ग्रीवा के साथ वह ऐसी लगती है] मानो कोई चल रहा हुआ कयाह [हो, जिसका गला] ठास (कस) कर पकडा गया हो। (५) ऐसी ग्रीवा विधि ने किसके लिए निर्मित की है और कौन इससे लग कर अकपाली देगा? (६) राजा का हृदय शीतल हो गया, जब उसने कठ को अकपाली देने की

वात सुनी । (७) [उसने कहा,] 'मै गोवर [के जन-समुदाय को मार कर विध्वस्त कर दूगा और चादा नारी को लाऊगा' ।"

(७६)

'सुनहु' भुवा 'डड' 'केहि लइ लावउ' ।
'एहि जग जउ तस किछुव न पाएउ (पावउ)' ।
'कारि का गभ (केरि क गाभ)' 'देखउ' तस नाही ।
'जनु पउनारि बिसेखइ बाही' ।
'ईगुर जइस सिलौटै(टइ) पीसा' ।
'रगत अरगत' 'हथोरिन्ह' दीसा ।
कर 'पालउ जनु' धरि धरि 'सारे' ।
पेड 'सहित पालउ' सटकारे ।
'जउ रे' भुआ बर 'कर' 'बउसाऊ' ।
'एकउ' 'बीरु' न 'जीतइ' काऊ ।
'नखन्ह भालि रावत केइ' 'धरे फेरि 'खर' सान ।
'बड' छुरि 'लागि' अनियारे राजा 'दीत' परान ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ५०।१, बी० २३८-२४१; बी० मे बीच मे एक सख्या छूटी हुई है ।

शीर्षक—मै० सिफते दो दस्त चादा गोयद ।

पाठान्तर—(१) १ बी० सुनौहु । २ बी० डडु । ३ बी० कहि लै लाऊ । ४ बी० यह जग जो तिस कछू न पाउ । (२) १. मै० गरुर खभ । २ बी० देष । ३ बी० जानै पाउनारि विसेषै ताही । (३) १ बी० ईंगरु जैस सिलौटै । २ मै० अरकत बिरकत । ३ बी० हथोरी । (४) १ बी० पलव जानै । २ बी० सारे । ३ बी० सहत पलव । (५) १ बी० जौ रु । २ बी० करि बैसाऊ । ३ बी० येकौ । ४ मै० नियर । ५ बी० जीतै । (६) १ बी० नष भाल रावत कर । २ बी० बर । (७) १ बी० वरि । २ बी० लागहिगे । ३ मै० दीन्ह ।

अर्थ—"(१) अव उसके भुजदडो को सुनो, किस पदार्थ को लेकर [उनकी तुलना के लिए] लाऊ ? इस जगत मे वैसा कुछ नही पाता हू । (२) कदली के गर्भ को देखता हू तो वह वैसा नही है, वे वाहे मानो पद्म-नालो से

विशिष्ट ही है। (३) [उसकी हथेलिया ऐसी रक्ताभ है कि] जैसे हिंगुल को सिलौटे पर पीसा गया हो, (बल्कि) उसकी हथेलियो से (के समक्ष) वह आरक्त [हिंगुल] भी अरक्त (लालिमाहीन) दीख पडता है। (४) उसके कर [ऐसे हैं] मानो ले-ले कर सारे हुए पल्लव हो और [मानो] वे पल्लव पेड (शरीर) के साथ सटकारे (कोमल या सचिक्कण किए) हुए हो। (५) यदि वह [अपनी] श्रेष्ठ भुजाओ का व्यवसाय (प्रयोग) करे, तो एक भी वीर [उससे] कदापि नही जीत सकता है। (६) उसके नखो के भालो पर ऐ रावत (राजपुत्र), किसने फिरा कर खर शाण रक्खी है? (७) उनके वडे और अनियारे छल से लग कर (छले जाकर), ऐ राजा, मैंने प्राण दे दिये।"

(७७)

'सोवन थार' हिए 'जनु धरे'। 'रतन पदारथ मानिक भरे'।
'सहज सेंद(ध)उरा' सेदुर 'भरे'। थनहर फेरि 'कुदेरइ धरे'।
नारिग थनहर उठे अमोला। 'सूर न देखइ' पवनु न डोला।
समुद भंरा जनु लहरइ देई। पोइनि क रस जस भवरइ लेई।
अंब्रित 'हिरदेउ बेल उपाए'। 'साजि कचोरा हिरदेउ लाए'।
'कुसुम (कुसुभ ?) चीर' तरि 'देखेउ' 'फरे बेल' बहु भाति।
'राजहि घाय बिसरि गए' सुनि 'अस्थन' भइ साति॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ५०।१, वी० २४२-२४४।

शीर्षक—मै० सिफते पिस्तान चादा गोयद।

पाठान्तर—(१) १ वी० सुवन थारु। २ वी० भर धरा। ३ वी० मानिक हीर पवारी जरा। (२) १ वी० सहजि सिधौरा। २ वी० भरा। ३ वी० कडेरा धरा। (३) १ वी० सुर नर देष न। (४) १ वी० मे भिन्न पाठ की पक्ति है—

सोवन करस जानौ दोउ गढे सीसु दीत पय हाथि न चढे।

(५) १ वी० हिरदैं बेलि उपाई। २ वी० सजि कचोराह हिरदैं लाइ। (६) १ वी० कस्यौ चोरि। २ वी देष्यौं। ३ वी० फरी वेलि। (७) १ वी० हिय र सिरान राजा कर।। २ वी० अस्तन।

अर्थ—(१) "[उसके उरोज ऐसे है] मानो रत्नो, पदार्थों (वहुमूल्य पत्थरो) और माणिक्यो से भरे हुए सोने के थाल [उसके] हृदय पर रक्खे हुए हो। (२) वे सहज ही सिंदूर भरे हुए सिंदूर-पात्र [जैसे] हैं, [ओर वे चिकने ऐसे हैं मानो] उन भारी स्तनो को कुँदेरे ने [खराद पर] फेर कर

रक्खा हो। (३) वे भारी स्तन उठे (उभडे) हुए अमूल्य नारगे है, जिन्हे [वस्त्रो के आच्छादन के कारण] न सूर्य देख पाता है और न [जिनके निकट] पवन डोल पाता है। (४) [वे अपनी उठान मे ऐसे लगते है] मानो भरा हुआ समुद्र लहरें दे रहा हो, और [उन पर का काला भाग ऐसा लगता है] जैसे कोई भौरा पद्मिनी का रस ले (पी) रहा हो। (५) [पुन वे ऐसे लगते है मानो] उसके हृदय ने अमृत के वेल उत्पन्न किए हो, अथवा उसने कच्चोल सजा कर रक्खे हो। (६) उसके कुसुभी चीर के तले मैंने देखा कि वे वेल वहुत भाति से फले हुए थे। (७) [अमृत-युक्त] स्तनो [के इस वर्णन] को सुन कर राजा को [विरह के] घाव विस्मृत हो गए और उस को शाति मिली।

(७८)

पेटु 'कहउ सुनु तू जग' राजा। 'आपुइं बान कवन पर' साजा।
पूरन 'खाड' सपूरन 'पूरे'। 'जहवां दीसहिं तहवा कूरे'।
'जानु' सोहारी 'घिरित' पकाई। देखत पान फूल पतराई।
नाभी कुड 'जउ देखइ' 'बीरू'। 'देखतहि बूड न पावइ' तीरू।
जानौ आत पेट महि नाही। 'अतरिक(ख)' चाद 'दीस' परछाही।
अति 'अवगाह' 'पेट' अस बाजुर ता महि सूझ न नीरु।
सुनि 'कइ' 'राउ' दौरि 'धसि लीते' 'बूडि न पावइ' तीरु॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ५१।१, वी० २४५-२४७।

शीर्षक—सिफते शिकम चादा गोयद।

पाठान्तर—(१) १ वी० कहौ सुनु भोकर। २ वी० औपन सजि कैन पैं साजा। (२) १ वी० खड। २. वी० पूरी। ३ वी० जुहुवा दैषौ तहुवा कूरी। (३) १. वी० जानौ। २ वी० घीरत। (४) १ वी० देषि जउ। २ वी० चीरु। ३ वी० देषत बूड न पावहिं। (५) १ वी० अतरकि। २ वी० दीठ। (६) १ वी० औगाह। २ मैं० वोल। (७) १ वी० कै। २. वी० राउ। ३ वी० धस लीन्ही। ४ वी० बूड न पायो।

अर्थ—"(१) [अव मैं उसके] पेट का कथन कर रहा हू, ऐ जगत् के राजा, तू उसे सुन। उसने किसको लक्ष्य करके अपने-आप वाण-सज्जा की है ? (२) उसका पेट सम्पूर्णत खाड से भरा हुआ पूर (पुज या ढेर) है, जो जहा पर भी दिखाई देता है, वहा पर वही कूट ही दिखाई देता है। (३) वह

मानो घी मे पकाई हुई सौहारी (पूडी) है और देखने मे पान-फूल का (जैसा) उसका पतलापन है। (४) यदि कोई वीर [भी] उसके नाभि-कुड को देखे, तो वह उसे देखते मात्र मे उसमे डूब जाए, और तट (किनारा) न पाए। (५) [उसका पेट इतना पतला है कि] मानो उसमे आते नही है, [इसीलिए] अतरिक्ष के चद्र की उसमे से प्रतिच्छाया दिखाई पडती है। (६) और, वह पेट इतना अधिक गहरा है, वाजिर कह रहा है, कि उसमे [का] जल नही सूझता है।" (७) यह सुन कर राजा ने दौड कर उसमे धम लिया (उसमे डुबकी लगाई) और वह उसमे ऐसा डूब गया कि वह तट नही पा रहा था।

(७६)

'घोटिहि घोटि' पीठि 'बइसारी'। 'कइ रे' बिनानी 'साचइ' ढारी।
करि 'जनु हीन पाट कर' डोरा। 'पेट' ठाउ सहस 'इक' मोरा।
लक बार 'जसि दीठि न आवइ'। चाद चीर महि भरम 'दिखावइ'।
'बररइ' लक 'बिसेषइ' धना। 'अउरु लक पातरि को' गुना।
फूकत टूटि 'होत दुइ' आधा। नैनि देखि मनि 'उपजइ' साधा।
मूरिखु होइ जो 'तिरइ न जानइ' 'छीलरि बोडै(डइ)' पाउ।
करि गुन 'गहे' 'बइठ भा' बूडत 'काढा' राउ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ५११२, बी० २४८-२५१, बी० मे एक सख्या बीच मे छूट गई है।

शीर्षक—सिफते पुश्त चादा गोयद।

पाठान्तर—(१) १ बी० घूटि न घूटि। २ बी० बैसारी। ३ बी० कै रि। ४ बी० साचै। (२) १ बी० जनु हीन पाट के, मैं० जु रे हीर पाट कर। २ बी० हसत हसत। ३ मैं० दुइ। (३) १ बी० जस दीठ ना आवै। २ बी० दिखावै। (४) १ बी० बररी। २ बी० बिसेषे। ३ बी० औरु लक पातु कै। (५) १ बी० होय दोय। २ बी० उपजै। (६) १ बी० तिरि ना जानै। २ मैं० चाहइ पौरइ। (७) १ मैं० भए। २ बी० विधाता। ३ बी० काढै।

अर्थ—"(१) उसकी पीठ या तो घोट-घोट कर बिठाई हुई है, और या तो किसी विज्ञानी (कुशल कारीगर) द्वारा साचे मे ढाल कर निर्मित की हुई है। (२) उसकी कटि मानो हल्के पाट (रेशम) का डोरा (धागा) हो, पेट के स्थान पर उसमे एक सहस्र मोड है। (३) बाल के जैसी उसकी

लक ऐसी पतली है कि वह दृष्टि मे नही आती है, वह उसके चद्र चीर मे भ्रम [जैसी] दिखाई पडती है। (४) उस स्त्री की लक (कटि) वर्र की लंक से भी अधिक वैशिष्ट्य-युक्त है, [उसकी तुलना मे] दूसरी [लको] को कौन पतली गुन सकता है? (५) फूक [लगने] से ही वह टूट कर दो आधो मे [विभक्त] हो जाएगी, नेत्रो से देखने पर मन मे [उसे प्राप्त करने की] आकाक्षा [अनायास] उत्पन्न होती है। (६) वह मूर्ख होगा जो तिरना (तैरना) न जानता हो और [फिर भी] झील के जल मे अपने पैर डाले।" (७) [इस वर्णन को सुन कर] राजा [उस स्त्री-नौका की] कटि-करिया का आसरा लेकर वैठ रहा, [इसीलिए] वह राजा [उस सौन्दर्य-सरोवर मे से] डूवते-डूवते निकाला जा सका।

(८०)

'गरुर खभ' 'दुइ' चीरि फिराए। चाद 'चलन' अपुरब 'घडि' लाए।
'अउ' समतूल 'दीखि असि' धारा। 'देखि' बिमोहे सुरंग पवारा।
'देखत मोर मनु तस 'कइ' लागा। सिर भुइं 'धरेउ' घालि 'गिय' पागा।
'जउ ओहि चलन' देखि 'पा लागहि'।
पाप 'केत पुरुसन्ह कर भा(भा?)गहि'।
रूप 'पुतरि घडि' दस नख लावा। 'तरुवन्ह' रगत फूटि 'चलि' आवा।
पाइ 'परउ' मुख 'जोवउ' 'सो धनि' उतरु न देइ।
'सुनत' राउ 'विसभरि' गा मरि मरि 'सासइ' लेइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ५२।१, वी० २५२-२५४।

शीर्षक—सिफते रानहा व रफतार चादा गोयद।

पाठान्तर—(१) १ वी० केरि का गभ। २ वी० दोय। ३ वी० चरन। ४ वी० गढि। (२) १ वी० अै। २ वी० हेम अस। ३. वी० नैन। (३) १ मै० देखि खभ मोर मन तस। २ वी० धरौ। ३ वी० गै। (४) १ वी० जै वह चपित (?)। २ वी० पर लागै। ३ वी० कीन्ह वरसह (केत पुरुसन्ह—फारसी) कर भागै। (५) १ वी० पतरि घरि। २ वी० तरुवा। ३ वी० वहि। (६) १ वी० परै। २ वी० जोवै। ३ वी० सा धन। (७) १ वी० सुनि कै। २ वी० विसिभरि। ३ वी० सासै।

अर्थ—"(१) जैसे किसी गरुड-स्तभ को दो मे चीर कर उसे उलट दिया गया हो, चादा के चरण इस प्रकार अपूर्व रीति से गढ कर लगाए हुए है। (२) [उन चरणो की] धारा (वर्ण-आकृति आदि) समतुल्यता मे ऐसी

दीखी कि उन्हे देख कर सुन्दर रगो वाले प्रवाल विमोहित हो गए। (३) उन खभो (चरणो) को देख कर मेरा मन [उनमे] ऐसा लग गया कि मैने गले मे पाग डाल कर सिर [उनके समक्ष] भूमि पर रख दिया। (४) यदि उन चरणो को देख कर लोग उसके पैरो से लगे, तो उनके कितने ही पूर्व-पुरुषो के पाप भग (नष्ट) हो जाए (५) [उसके चरणो के नख ऐसे सुन्दर है मानो] उम रूप की पुतली को गढने के अनतर उन दस [सुदर] नखो को [विधाता ने] लगाया हो, और उसके तलवे ऐसे [कोमल] है कि [मानो] रक्त उनसे फूट कर चला (निकला) आ रहा हो। (६) मैं उसके पैरो मे पडता और उसके मुख को देखता रह गया, किन्तु वह स्त्री उत्तर नही दे रही थी।" (७) यह सुनते ही राजा वेसभाल हो गया, और [मानो] मर-मर कर साँसे लेने लगा।

(८१)

हस गवनि ठम ठमकति 'आवइ'। 'झमक झमक' धनि 'पाउ उचावइ'।
'जमक जमक पउ' धरती धरा। छनक छनक 'जनु पगति' भरा।
'मेलि मेल्हाति' 'सो' चादा'आवै (वइ)'। 'जानउ गयबरु पैग' 'उचावइ'।
सिर भुइ 'धरउ' चाद 'धर' पाऊ। 'पा तर हुते' न 'काढउ रे' काऊ।
'पा कइ' धूरि नैन भरि 'आजउ'। जीभ काढि 'दोइ' तरुवा 'माजउ'।
'चलत(न) चाद चितु' लागा 'मन हुत' उतर न काउ।
पा लहु हाथु न 'सचरै(रइ)' 'परिहसि' 'रोवइ' राउ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ५२।२, वी० २५५-२५७।

शीर्षक—मैं० सिफते पाय व रफ्तार चादा।

पाठान्तर—(१) १ वी० आवै। २ मैं० जमकि जमकि। ३ वी० पौरु उचावै। (२) १ वी० छिमक छिमक पाउ। २ वी० पाउ कत। (३) १ वी० माल्हि मल्हिति। २ वी० सु। ३ मैं० आई। ४ वी० जानौ गैवरु पाउ। ५ वी० उचावै। (४) वी० धरौं। २ वी० धरि। ३ वी० पा हुति तरे। ४ वी० काढै। (५) १ वी० पाव की। २ वी० आजौ। ३ वी० दोय। ४ वी० माजौ। (६) १ वी० चाद चरन मनु। २ वी० चित हुतेहि। (७) १ मैं० पहुचइ। २ मैं० हसि हसि। ३ वी० रोवै।

अर्थ—"(१) वह हस-गमनी ठुमठुम करती हुई (ठुमकती हुई) आती है, और वह स्त्री झमक-झमक कर पैर उठाती है। (२) जमक-जमक कर वह धरती पर पैर रखती है, और छनक-छनक कर मानो [पग-] पक्ति भरती है।

(३) मेल्हती-मेल्हाती (झूमती हुई) वह चादा [इस प्रकार] आती है, मानो कोई श्रेष्ठ गज पैग उठा रहा हो। (४) [मैंने सकल्प किया कि] जहाँ पर चादा पैर रक्खेगी, मै भूमि पर सिर रखूगा, और उसे उसके चरणो के नीचे से [उसे] कभी न निकालूगा, (५) मैं उसके पैरो की धूल नेत्रो मे भर कर उसका अजन करूगा और [अपनी] जिह्वा को निकाल कर उसके दोनो तलवो को मार्जित (साफ) करूगा। (६) चादा के चरणो मे मैं [मेरा] चित्त ऐसा लगा कि वे कभी भी मन से न उतरे।" (७) [यह सुनने के अनतर] उसके पैरो तक राजा के हाथ नही सचर सकते थे, इसी परिहस (परिहासपूर्ण स्थिति) के कारण वह रो रहा था।

(८२)

लग 'जैसे लहरि लहरि' सटकारी। चदन 'जइफर मेरइ सवारी'।
सरग 'पवान' लागि 'जनु' आई। 'चाहति अइसइ' जाइ उडाई॥
वास 'पोर हुत जनु धरि' काढी। 'आछरि' जइसि देखि 'मइ' ठाढी।
'करी पुहुप तस अग गधाई'। रितु बसत चहु दिसि फिर आई।
अग बासु नौ खड 'गधाने'। 'कुस(सु)म' केतकी भवर 'लुभाने'।
'यदु (इदु) गोयदु (गोइदु)' 'चदु अरु दिनियरु' 'बरभा बिसुन' मुरारि।
गन 'गध्रप' रिखि देवता 'देखि' बिमोहे नारि॥

सन्दर्भ—मै० ५३।१, बी० २५८-२६०।

शीर्षक—सिफते कदो कामदे चादा गोयद।

पाठान्तर—(१) १ बी० जैसी लहलह। २. बी० चिरिया गढी सुनारी। (२) १ बी० विवानि। २ बी० भुइ। ३ बी० चाहत अैसी। (३) १ बी० परि जानौ धर हते। २ बी० अछरि। ३ बी० हम। (४) १ बी० नहु नहु करी किरलि फुलि छाई। (५) १ बी० गधाये। २ मै० वास। ३ बी० लुभाए। (६) १ मै० इन्द्र गोइद्र। २ मै० चदरावलि। ३. बी० ब्रह्मा बिश्नु। (७) १ बी० गधर्व। २ मै० रूप।

अर्थ—"(१) उसका शरीर ऐसा है, जैसे सटकारी (चिकनी या कोमल) लहर ही लहर हो, जो चदन तथा जायफल मिला (लगा) कर सवारी गई हो। (२) वह मानो स्वर्ग (आकाश) तक आ लगती थी, और [लगता था कि] इसी प्रकार वह उड जाएगी। (३) वह ऐसे छरहरे बदन की थी, [मानो] बास की पोर मे से पकड कर निकाली गई हो और मैंने उसको

अप्सरा की जैसी खडी देखा। (४) पुष्प-कलिका के सदृश उसका शरीर महक रहा था, [और उससे ऐसा लगता था कि जैसे] चारो ओर वसन्त ऋतु लौट आई हो। (५) उसके अग की सुवास से नौ खड महक उठे थे, और उस केतकी कुसुम पर भौरे लुब्ध थे। (६) इन्द्र, गोपेन्द्र (गोविन्द), चद्र, दिनकर (सूर्य), ब्रह्मा, विष्णु, मुरारि, (७) गण, गधर्व, ऋषि और देवता—[सभी] उस नारी को देख कर विमोहित हो गए है।"

(८३)

'सुनहु चीरु कस पहिर गोवारी। फुदिया 'राधि सेदुरिया' सारी।
'पहिर मेघवना' अउ 'कुसियारा'। 'जुगिया' चीर 'चौकडिया' सारा।
मुगिया 'पत्तलि अग चढाई'। 'मडिला छुदरी फिरि पहिराई।
'सावन' चाद 'कसुभी' राती। इक खड छाप सो 'सोह' गुजराती।
'डोरिया' 'चदरौटा' 'औ अबजारू'। 'साज' 'पटोरइ बहुल' सिंगारू।
'चोला चीर पहिरि जउ चाली' 'जानउ जाइ उडाइ'।
'देखत रूप देवता बिमोहे' कत हुते आछरि आइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ५३।२, शि०, बी० २६१-२६३।

शीर्षक—मैं० सिफते किसवत चादा गोयद।

शि० मे शीर्षक तथा (३) तथा (६) भी (७) अपाठ्य है।

पाठान्तर—(१) १ बी० सुनैहु चीरु कसि पहरि गुवारी। २ बी० राति सिदुरिया। (२) १ बी० पहरि मघौना। २ बी० कसियारा। ३ मैं० चिकवा। ४ शि० चौकडी, बी० जुगौटी। (३) १. बी० पहरैं अगि फिराई। २ बी० सब लावनि कै अते सुहाई। (४) १ शि० सावन। २ बी० कसूभै। ३ बी० सोहै। (५) १ बी० डुरिया। २ शि० चदौटा, बी० चीरु। ३ मैं० औ वन जारू, बी० अते अबिचारू। ४ शि० साच, बी० साझ। ५ बी० पटोरैं सभै। (६) १. बी० चोरा चूनरि पहरि जु चादा। २ बी० जानौ जाय उडाय। (७) १. बी० देषि देवता सभ ही मोहे।

अर्थ—"(१) वह ग्वालिन कैसा चीर पहनती है, [अब] यह सुनो। फुदिया से मिली हुई उसकी सिंदूरी साडी होती है। (२) वह मेघवना और कुसियारा पहनती है तथा जोगिया और चौकडिया चीर सारती (पहनती ?) है। (३) पतली (झीनी) मुगिया वह अपने सिर पर चढाती है, पुन वह मडिला तथा छुदरी (चूदरी) पहनती है। (४) सावन मे चादा कुसुभी चीर

से रक्त (सुदर) वनी रहती है। [उसके शरीर पर] एकखडे छापे की गुजराती साडी शोभा देती है। (५) डोरिया, चद्र-पट्टक, अवजारे तथा पट्टकूल से [उसका] शृगार वहुत होता है। (६) चोला (चोली) और चीर धारण कर जब वह चलती है, तो लगता है कि वह उड जाएगी। (७) उसके रूप को देख कर देवता विमोहित हो उठे, [और सोचने लगे] 'कहां से यह अप्सरा आई हुई है' ?"

(८४)

कुडर सुवन जरे 'लइ' हीरा। चहु 'दिसि वइठ' पदारथ बीरा।
अरु दुइ खूटि सरग जनु तारा। टूटि 'परहि तस होइ' उजियारा।
'उवइ' अगस्ति नाक 'कइ' फूली। नखत 'वारि सूरिजु गा भूली'।
हार डोर 'अउ सकरी' पूरी। अभरन भार 'परइ जनु' चूरी।
दस 'अंगुरिन्ह' अगूठी 'पगवाई'। कर 'कंगन' 'भर पहिर कलाई'।
चूरा 'नेवरु' 'पायर' 'पेजनि' गोवर 'होइ' झनकार।
नखत चाद कर अभरन अभरन चाद सिगार॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ५४, वी० २६४-२६७; वी० मे वीच मे एक सख्या छूट गई है।

शीर्षक—सिफते जरीनहा चादा गोयद।

पाठान्तर—(१) १ वी० लै। २ वी० दिस रतन। (२) १ वी० परत जस होइ। (३) १ वी० उया। २ वी० की। ३. बी० सुरिजु दोय देपे। (४) १ वी० अैसै कर। २ वी० परै जैसे। (५) १ वी० अगुरी। २ वी० वकवाई (पगवाई—फा०)। ३ वी० ककन। ४. वी० भल पहरि कराई। (६) १ मैं० मे नही है। २. मैं० पायल। ३ वी० पैजन। ४ वी० होय।

अर्थ—"(१) उसके जो सुदर वर्ण के कुडल है, वे हीरे लेकर जडे हुए हैं तथा उसके वीरो (कर्णाभरण-विशेष) मे चारो ओर पदार्थ (वहुमूल्य पत्थर) वैठे हुए है। (२) [उसके कानो मे] दो खूट [भी] हैं, जो ऐसे हैं मानो आकाश के तारे हो, उनका प्रकाश ऐसा होता है मानो वे टूटे पड रहे हो। (३) उसकी नाक की फुल्ली उदित होता हुआ अगस्त है, नक्षत्रो को [उस पर] वार कर सूर्य [अपने को] भूला रहता है। (४) उसने [गले मे] हार-डोरें और सकरिया पहन रक्खी है, और [उन] आभरणो का भार ऐसा है

मानो उससे वह टूटी पड रही हो। (५) दसो उगलियो मे उसने अगूठिया डलवा (?) रक्खी है, और अपने करो मे वह भारी कगन तथा कलाइया पहन रही (पहने हुए) है। (६) [उसके पैरो मे] जो चूडे, नूपुर, पायल तथा पैंजनियाँ हैं, उनकी झकार गोवर भर मे होती [रहती] है। (७) [ऐसा लगता है मानो] जो नक्षत्र [आकाश मे] चाद के आभरण थे, वे [अब] चादा के शृगार के आभरण [हो रहे] है।"

(८५)

चाद चलन जौ पयकु (पैगु) उचावै।
पाई चमाउ(ऊ) लटकतु आवै।
जिउ अस कहै क (कि) देषत रहिये।
लागै पाउ सीस धौ छुहिये।
काहु करौ मोहि हाथु न देई।
पाउ ठेलि अ टी करि लेई।
अडसै कहौ कि कबही पाउ।
तेहि चरण (चलन) लै हिरदै लाउ।
देखत चरण (चलन) परै जौ पाई।
तब मो अग ई।

दाउद अभरन सभ पहराइसि छाडिसि पाव उघारि।
महमद घाइ (पाइ ?) चमऔ (चमाऊ) दीती रहसि बाहुरि तब नारि॥

सन्दर्भ—बी० २६८-२६९। बी० मे चौथी तथा पाचवी पक्तिया बाए हाशिए मे लिखी गई है और उक्त हाशिए का ऊपर का कोना चूहे के द्वारा काटा हुआ है इसलिए दोनो के कुछ अक्षर अब निकल गए हैं। मै० यहाँ पर त्रुटित है अथवा नही, यह उसमे उसके ५५वे पत्र पर दिए हुए चित्र से स्पष्ट नही है।

अर्थ—"(१) चांदा पैग [भरने] के लिए जब चरण उठाती है, तब उसके [पैरो मे पडी हुई] चमाऊ (चमडे की) पाई (पादत्री) उनसे लटकती आती है। (२) जी ऐसा कहता है कि उन्हे देखते ही रहिए, और उसके पैरो मे लग कर सिर उन्हे छूए। (३) मैं [उसके हाथो को लेकर] क्या करता ? भले ही वह [अपने] हाथ मुझे न देती, [केवल] मुझे वह पैरो से

ठेल कर अ····· टी कर लेती। (४) मै [मन मे] ऐसा कह रहा था कि कब मैं पा जाऊ, और उसके चरणो को लेकर हृदय से लगा लू। (५) उसके चरण देखते समय यदि उसकी पादत्री पड जाती, तब मेरे अग········· ·· जाते। (६) दाऊद कहते है, उसने समस्त आभरण [अपने विभिन्न अगो को] पिन्हाए थे, [केवल] पैरो को उसने खुला रक्खा था। (७) उसने, ऐ मुहम्मद, चमडे की पाई (पादत्री) मात्र [उनमे] दे रक्खी थी और तब वह नारी हर्षपूर्वक लौट गई।"

७. गोवर-चढ़ाई खण्ड

(८६)

'सभ' सिंगारु 'बाजुर जउ' कहा। राजा नैन नीर नै (नइ) बहा।
राइ कहा 'सुनु बाठा' आई। राज कुरी फिरि देहु दुहाई।
'राउत' पाइक साहन बारी। छत्तिस 'कुरि' लइ आउ हकारी।°
जावत देस 'फिरइ' मोरि आना। तावत 'जाइ पठउ' परधाना।
'जह लगि बाधइ जानइ' काछा। मारि 'पबारउ' 'जउ' घरि आछा।
'राजा चरै(डै ?) गोवर कहु(हु)' 'साभर लेइ' सजोइ।
आगे 'दइ' 'लै(लइ) चालहु' 'पाछे रहइ' न कोइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ५५, बी० २७०-२७२।

शीर्षक—मै० तमाम करदने सिफते चादा व इस्तअदाद कूच करदने।

पाठान्तर—(१) १ बी० सो (सब—नागरी)। २ बी० बाजुरि जौ। (२) १ बी० बाठ सुनु। (३) १ बी० रावत। २. मै० कुरि। (४) १ बी० फिरै। २ बी० जयहु पठवोहु। (५) १ बी० जा लगु जानौ बाधै। २ बी० विपारौ (पबारौ—फारसी)। ३ बी० जौ। (६) १ मै० चला बरइ कह। २ बी० सापरि लेहु। (७) १ बी० दे। २. मै० कइ चलावहि। ३ बी० पाछै रहै।

अर्थ—(१) बाजिर ने जब सारा शृगार [चादा का] कह डाला, राजा [रूपचद] के नेत्रो से आसुओ की नदी बह चली। (२) राजा ने कहा, "वाठा, आकर सुन, राज-कुलियो मे फिर कर दुहाई दे। (३) जो रावत (राजपुत्र), पदाति, साधन (सैन्य) और वारी (सेवक) है, छत्तीसो कुल वालो को वुला। (४) जितनी दूर तक देश मे मेरी आन फिरती है, उतनी

दूर तक तू जा कर प्रधान को भेज। (५) जहाँ तक भी (जितनी आयु तक के भी) कच्छा बाँधना (धोती पहनना) जानते है, यदि वे घर रह जाते है तो मैं उन्हे मार कर फेंक दूगा। (६) [कहना कि] राजा गोवर के लिए चढाई कर रहा है, इसलिए वे शबल और सयोग (शस्त्रास्त्र) ले ले [और उसके साथ हो जाए]। (७) [इस प्रकार] उनको आगे दे (रख) कर तू चले, जिससे कोई पीछे न रह जाए।"

(८७)

ठोके तबल मेघ 'जनु' गाजे। घर घर सब ही 'राउत' साजे।
'अगनित बीर' 'बहुल धनुकारा'। 'सत्तरि' 'सहस चले' कुतकारा॥
'नव्वे सहस घोर' पाखरे। 'तारू' तरुवा 'लोहइ' जरे।
'चढे आएनि' लाखु असवारा। लाखु 'कुवान अउर बडवारा'।
एक सहस 'भेरिकार' चलावा। 'तूरा' सीगा अतु न पावा।
राहु केतु घरि 'आठए' 'दिसा' सूरु 'भा' आइ।
सूक 'सउह उतरापथि' जोगिनि 'बाहेर मेलइ जाइ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ५६, बी० २७३-२७५।

शीर्षक—मै० सिफते दर इस्तअदाद गोयद।

बी० रूपचद वाठा आया, किन्तु यह सकेत उसमे ऊपर के हाशिए मे कदाचित् अन्य व्यक्ति द्वारा दिया हुआ है।

पाठान्तर—१ बी० जानौ। २ बी० रावत। (२) १ बी० अगिनत फरी। २ बी० वहुत धनकारा। ३ मै० सात। ४ बी० सहस सवहे। (३) १ बी० नवै सहस यक हय। २ बी० तार्यो तरवा लोहे। (४) १ बी० भरे उवीने (आवइ—फारसी)। २ बी० गवाने औ बरवारा। (५) १ बी० भरि कहार। २ बी० तुरिया। (६) १ बी० आठवैं। २ बी० दसा। ३ बी० भया। (७) १ बी० सनीसरु उतर पथी। २ बी० दाहिनि दिसाई।

अर्थ—(१) तबल (बडे ढोल) ठोके गए, जो इस प्रकार गर्ज उठे मानो मेघ हो। सभी रावतो (राजपुत्रों) ने घर-घर मे सज्जा की। (२) अगणित वीर, बहुतेरे धानुष्क, तथा सत्तर सहस्र कुतकार (भाले वाले सैनिक) चले। (३) नव्वे सहस्र घोडे पाखरित हुए, जो तालु से लेकर तलवे तक लौह से मढे हुए थे। (४) एक लाख सवार चढे हुए आ पहुचे, एक लाख कुवान

(हीन वर्ण के) और एक लाख बडवार (ऊचे वर्ण के) सैनिक भी थे। (५) एक सहस्र भेरीकार चलाए गए, तूर्य और सिंगे वालो का [तो] अन्त नही मिलता था। (६) [उस समय] राहु तथा केतु आठवे 'घर' मे थे और दिशा-शूल आया हुआ था, (७) शुक्र सामने था और योगिनी उत्तरापथ मे थी, इसी समय [रूपचद और उसकी सेना रण-यात्रा पर] बाहर निकले।

(८८)

'अनवन' भाति दीख केकाना। 'अगुरा दुइ दुइ तिन्ह के' काना।
सेत कियाह कार 'जनु' रीठा। 'हरीयात' मुख 'झमकत' दीठा।
'गाल्ह सकोचे' लोह चबाही। 'समुद लाघि जनु' 'लका' जाही।
नैन 'मिरिघ जिन्ह पाय' पखारे। पवन पख देखत 'हरियारे'।
'घात चढिय' मुख धाठी दीजा। 'तुग बिसार पेट' धरि लीजा।
'कइ रे' 'समुद हुत' काढे 'कइ यह बाइ बियाने'।
'सोवन पाखर धालि कइ' आने 'सबइ पलाने'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ५७, बी० २७६-२७८।

शीर्षक—मै० सिफते असबाब अरबी, ताजी राव रूपचद।

पाठान्तर—(१) १ बी० अन अन। २ बी० आगुर दोइ दोइ तिन्ह। (२) १ बी० जिन्हि। २. बी० हरे पाट। ३ बी० चमकत। (३) १ मै० गाढ संकोचे, बी० गाल्ह सकोचै। २ बी० समदु लघि जानौ। ३ मै० लकहन। (४) १ बी० मिरचहु पाव। २ बी० हतियारे। (५) १ बी० षाट चरे। २ बी० टका लाषु लाषु। (६) १ बी० कै रु। २ बी० समदतहि। ३. बी० कै यह माइ वियान। (७) १ बी० घालि पीठी सोवन पाखर। २ बी० सभै पलान।

अर्थ—(१) [उसकी सेना के] कैकान (घोड़े) अद्भुत भातियो के दीखते थे, उनके कान दो-दो अगुलो [तक] के थे। (२) श्वेत घोडे थे, कयाह थे, जो रीठे के समान काले (कलछौंहे) थे, हरिए (सब्जे) थे, जिनके मुख झमकते हुए (अस्थिर) दिखाई पडते थे, (३) वे गालो को सिकोडे हुए [मुह मे दिए हुए] लौह को चबाते रहते थे और लगता था मानो समुद्र को लाघ कर लका जाना चाहते हो, (४) जिनके नेत्र मृगो के [जैसे] और पैर प्रक्षालित [जैसे] थे, और जिन्होने [जैसे] हवा के पखे लगा रक्खे थे, ऐसे वे हरिए (सब्ज़े) दीखते थे, (५) घात से ही उन पर चढा जाता था, और उनके

मुखो मे ढाठी (मुहबद) देनी पडती थी, तथा वे इतने ऊचे तथा विशाल (वडे) थे कि पेट के सहारे ही उन्हे लिया (उन पर चढा) जा सकता था। (६) [ऐसा लगता था कि] या तो वे समुद्र से निकाले हुए थे, अथवा यह हो कि वे वायु की सतान थे। (७) सोने की पाखरे डाल कर सव [अश्व] पर्याणित करके लाए गए थे।

(८६)

'पखरे' हस्ति दात 'बहिराए'। धानुक 'लइ ऊपर वइसाए'।
वनखड 'जइस चले अति कारे'। उनए 'जानु मेघ अधकारे'।
चलन 'लाग जनु चलहि पहारा'। छाह 'परइ' जग 'भा' अधियारा।
'झुकरहि जउ तिन्ह' अकुसु 'लागइ'। 'पर दरि कोस सहस इक भागइ'।
'जउ कोपहि' तउ राइ सघारहि'। बन 'तरुवर जरि मूरि उपारहि'।
मैंगर 'पाइ पानि उठ' 'डरइ [कि ?] कादव होइ।
राउ रूपचदु कोपा 'टेकि न पारइ कोइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ५८, वी० २७९-२८१।

शीर्षक—सिफते पीलाने राव रूपचन्द गोयद।

पाठान्तर—(१) १ वी० पाखर। २ वी० पहराये (वहिराए—फारसी)। ३ वी० गुनी आनि वैसाये। (२) १ वी० जैस चरे अति कारा। २ वी० मेघ जानौ अधियारे। (३) १ वी० लगि जानौ चलैहि। २ वी० परैहि। ३ वी० भया। (४) १ वी० चिघरैं जो तिसु। २ वी० लागैं। ३ वी० परदर कोस सहस यक भागैं। (५) १. वी० जा कौपैं तौ राय सघारैहि। २ वी० तरवर जर मूल उपारैहि। (६) १ वी० पाय तपत यत। २ वी० दरमहि कादौ होय। (७) १ वी० टेक न पावै कोय।

अर्थ—(१) पाखरे हुए हाथी दाँत वाहर किए हुए थे, उन पर धानुष्को को ले कर विठाया गया था। (२) वे अत्यधिक काले वर्ण के [हाथी] वनखड की भाँति चल पडे थे, [अथवा वे ऐसे लगते थे] मानो अधकारपूर्ण मेघ अवनमित हुए हो। (३) [उनका] चलना [ऐसा लगता था] मानो पहाड चल रहे हो। उनकी जो छाया पडती थी, उससे जगत् मे अन्धकार हो जाता था। (४) उन पर जव अकुश लगता था, तव वे झुकरते (चीत्कार करते) थे, और पर (शत्रु) के दल मे वे एक सहस्र कोस पर्यन्त भाग जाते थे। (५) वे जव कुपित होते थे, तव राजाओ का सहार करते थे, और वनो के वडे-वडे

तरुवरो को जड-मूल से उखाड देते थे। (६) इन मदगलितो के चरणो से पानी डर कर उठ पडता था कि वह कर्दम हो जाएगा। (७) राजा रूपचन्द्र [इस प्रकार] कुपित हुआ था कि उसे कोई टेक नही सकता था (उसके आक्रमण का सामना नही कर सकता था)।

(९०)

'सबही गज दल (द) भएउ' पयानां। ठोके तबल 'दइउ अगिराना'।
'एक छिति' फौज चले असवारा। 'कोस बीस लगि भएउ' पसारा।
'आगे परइ' नीरु 'खरु पावइ'। 'पाछे रहइ सो' धूरि 'बुकावइ'।
'सगरइ देस अइस डर' छावा। 'सभइ तुराइ' राउ चलि आवा।
'उठइ खेह' दर सूझ न 'बागा'। 'जानु' सुरग धरती होइ लागा।
महते साथि बाठु 'लइ' राजा 'दीत' पयान।
'तुरिय टाप बासुगि खरभरई' 'अबरि सूरु' लुकान॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ५६, बी० २८२-२८४।

शीर्षक—सिफते कूच कर्दने राव वा लश्करे काहिरह।

पाठान्तर—(१) १ बी० सवहे (ही—फा०) गजदर भयो। २ बी० राउ अगराना। (२) १ बी० येकहि। २ बी० तीस कोस लहि भयो। (३) १. बी० आगै परिहि सु। २ मैं० खीरु पावइ, बी० खरु पावहि। ३ बी० पाछै रहहि। ४. बी० बुकावैहि। (४) १ बी० सगरे छात अनदरि। २ बी० भइ वडाइ। (५) १ बी० ऊठि देष। २ बी० पागा (बागा—फारसी)। ३. बी० जानै। (६) १ बी० ले। २. मैं० दीन्ह। (७) १ बी० धरती वासिगु षरहर्‍यो। २. मैं० सूरुज गएउ।

अर्थ—(१) समस्त गज-दल का प्रयाण हुआ, तवल (वडे ढोल) पीटे गए तो [ऐसा लगा मानो] दैव (इन्द्र) ने अगडाई ली है। (२) फौज (सेना) एक क्षिति मे (एकट्‌ठी ?) हुई और सवार चल पडे, तो बीस कोस तक [उनका] प्रसार हो गया। (३) आगे (पहले) जो पडता, वह तो खरा जल पाता था, [किन्तु जो] पीछे पडता था, वह धूल चावता था। (४) सारे देश मे ऐसा भय छा गया कि सभी शीघ्रता करने लगे, क्योकि राजा [रूपचन्द] चलकर आ रहा था। (५) [ऐसी] धूल उठने लगी कि दल मे [घोडो की] लगामे नही सूझती थी, [ऐसा लगता था कि] मानो आकाश धरती से मिल रहा हो। (६) महता (महामात्य ?) वाठ को साथ लेकर

राजा [रूपचद्र] ने प्रयाण दिया (किया) । (७) घोडो की टापो से वासुकी खलबला उठा और आकाश मे सूर्य छिप गया ।

(९१)

'सूके' रूख काग 'रिरियाए'। जोगी 'आवा' भसभ 'चढाए'।
'दहिनी दिसि हुत' भररा आवा। 'डवरू बाए हाथ बजावा'।
उवत 'सूर दिसि फेकर' सियारी। 'दर' भुइ रगत 'दीस' रतनारी।
'कुसगुन 'होहि नजु (निजु) न चलै(लइ)' राऊ।
'नहि बहुरइ' 'न(नहि) देखेउ' काऊ।
'महतइ' जाइ राउ 'समुझावा'। कुसगुन 'भएउ कत आगे जावा'।
चाद सनेह काम 'रस बेधा' राजा 'गा बउराइ'।
'एकउ सगुन' न 'मानइ' गोवर 'छेकेसि' जाइ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र ६०, बी० २८५-२८७ ।

शीर्षक—मै० दर राह फाल नजिस आमदन पेशे राव रूपचद व मनअ करदन महत ।

पाठान्तर—(१) १ बी० सूकै। २ बी० कुरराये। ३ बी० आया। ४ बी० चराये। (२) १ बी० दाहिनि दिस तेहि। २ बी० मत्रु वोलि औ डाक वजावा (विसहर खड मे यही शब्दावली गारुडी के विषय मे प्रयुक्त है)। (३) १ बी० सूरु दिस फिरक। २ बी० डर। ३ मै० दीख। (४) १ मै० भए न बहुरहि। २ बी० पाडँ जैति। ३ बी० न देषो। (५) १ बी० महतें। २ बी० समुझाये। ३. बी० होहिं न आगे जाये। (६) १ बी० गुन वीघा। २ बी० गौ बौराई। (७) १ बी० येको सुगनु। २ मे० माइन राजा। ३ बी० छेकिस।

अर्थ—(१) [इसी समय] सूखे वृक्षो पर काग रिरियाने (शब्द करने) लगे, एक योगी भस्म लगाए हुए आ उपस्थित हुआ। (२) दाहिनी दिशा से एक भरडा (शैव साधु-विशेष) आया, जो वाए हाथ मे [लेकर] एक डमरू वजा रहा था। (३) उदय के समय सूर्य की ओर मुख कर एक शृगाली फिकर (चिल्ला) रही थी, दल (सेना) की भूमि रक्त से लाल दिख रही थी। (४) "इन अपशकुनो के होने पर हे राजा, नही चला जाता है" [लोगो ने कहा,] "और कोई न लौटता हो, ऐसा हमने कभी नही देखा है। (५) महता (महामात्य ?) ने जा कर राजा को समझाया, "जव [अप-]

शकुन हुआ है, तो क्यो आगे जाया जाए ?" (६) [किन्तु] चादा के स्नेह मे काम-रस से विद्ध राजा वावला हो गया था। (७) एक भी [अप-] शकुन वह नही मान रहा था, और जाकर उसने गोवर को छेक (घेर) लिया।

(६२)

चहु दिसि छेका 'गाढ' फिरावा। 'खूटहि खूटहि' जोरि 'गर लावा'।
'तोरियहि' पान बेलि पनवारी। 'कटियहि खेत रूख फुलवारी'।
'ढहियहि' मढ देवर अबराई। 'पटियहि' तारा पोखर बाई।
काटे चहू पास 'अबराऊ'। तार खिजूरि 'जामु लखराऊ'।
काटी बारी 'महर कइ' लाई। 'नरियर' गूवा अउ फुलवाई।
'महर' मदिर 'चढि' देखा बहुल हस्ति असवार।
'ओडन' फरी न 'सूझइ' 'खाडहि' होइ चमकार॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ६१, बी० २८८-२९०।

शीर्षक—मै० · गिर्द करदन राव रूपचद शहर गोवर रा व दर हिसार मानदन महर।

पाठान्तर—(१) १ बी० करा। २ बी० षूटै पूटा। ३ बी० गमावा। (२) १ बी० तोरियेहि। २ बी० काटियेहि उष षेत कसियारी। (३) १ बी० ढहियेंहि। २. बी० पटियेंहि। (४) १ बी० अवराई। २ बी० जामनि लषवाई। (५) १ बी० रायकी। २ बी० नारिंग। (६) १ बी० महरि। २ बी० चरि। (७) १ बी० वोडन। २ बी० सूझै। ३ बी० खाडे।

अर्थ—गोवर के चारो ओर [राजा रूपचद्र ने] प्रगाढ छेका (घेरा) फिराया (डाल दिया) और खूँट से खूँट (एक छोर से दूसरे छोर) को जोड कर उसने गरगच (?) लगाया। (२) [सैनिक] पनवारियो मे पानो की वेलो को तोडने लगे, तथा खेतो और फुलवाडियो के वृक्षो को काटने लगे। (३) उन्होने मठो, देवालयो और अमराइयो को ढहाना और तडागो, पुष्करो और वापियो को पाटना शुरू किया। (४) उन्होने चारो ओर के आम्राराम काट डाले और ताड, खजूर, तथा जामुन के लक्षाराम [काट डाले]। (५) उन्होने उस वाटिका को काट डाला जो महर की लगाई हुई थी, और उन्होने [उसमे लगे हुए] नारियल, गूवा और पुष्पो के वृक्षो को काट डाला। (६) महर ने मदिर (धवलगृह) पर चढ़कर देखा कि वहुतेरे हाथी-सवार थे।

(७) ओडनो और फरियो की सख्या सूझ न पडती थी और खड्गो की चमक हो रही थी ।

(९३)

बाधी 'पवरि' भई हटतारा । 'बापहि' पूत न 'कोउ' सभारा ।
'महर' लोगु सबु झारि 'हकारे' । 'माझे जेत' मते 'बइसारे' ।
'गाइ भइसि' बाधी 'रिरियाई' । राधा भातु न 'कोऊ' खाई ।
'रोवन' 'होहि' करि [अ] 'अब' 'काहा' । गब्भ निगाभु 'सरापत आहा' ।
'छेकि गाउ अबराउ कटावहि' । 'पठइ बसीठ' उतरु 'कस' पावहि ।
'पठइ' 'बसीठु' तुरी 'दइ' 'राजा कह दहु' काह ।
'केहि औगुन' हम छेके 'कवनु रजाएसु आहि' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ६२, बी० २९१-२९३ ।

शीर्षक—मै० हैबत उफ्तादन दर शहर व फिरिस्तादने महर रसूलान रा बर राइ रूपचद ।

पाठान्तर—(१) बी० पौरि । २ बी० मायेहि । ३ बी० कोइ । (२) १ बी० महरि । २ बी० हकारा । ३ बी० माझी जैत । ४ बी० बैसारा । (३) १ बी० म्हैसि । २ बी० डिडियाई । ३ बी० कोइ । (४) १ बी० रोवना । २ मै० होहि । ३ मै० व । ४ बी० कहा । ५ बी० सखती अहा । (५) १ बी० छोकि राय अवराय कटावैहि । २ मै० पठइ वसीट, बी० पठवो बसीठ । ३ बी० कहा । (६) १ बी० पठय । २. मै० बसीट । ३ बी० दे । ३ बी० उतरु कह घौं । (७) १ बी० किहि औगन । २ बी० कौनु राजयसु आह ।

अर्थ—(१) नगर की पौरी बाध दी गई (बद कर दी गई) और हडताल हो गई (काम-काज बद हो गया), कोई पिता-पुत्र [एक-दूसरे को] नही सभाल रहे थे । (२) महर ने समस्त लोक को सम्पूर्ण रूप से बुलाया और जो भी माझे (मध्य वयस्क ?) थे, उन्हे उसने मत्रणा करने के लिए बिठाया । (३) [उन्होने कहा,] "गाए-भैसे बधी हुई रे-रे कर रही है, पकाया हुआ भात (भोजन) कोई नही खा रहा है । (४) लोग रो रहे है और कहते है, अब क्या किया जाए, गब्भ-निगब्भ (?) शाप दे रहे है (कोस रहे है) । (५) [शत्रु के सैनिक] गाव को घेर कर आम्रारामो को कटा रहे है, [अत] बसीठ भेजिए और देखिए कि कैसा उत्तर पाते है । (६) घोडे देकर

वसीठो को भेजिए; पता नही कि राजा क्या कहता है, (७) कि किस अवगुण (अपराध) के कारण उसने हमे छेका (घेरा) है और उसका कौन-सा राजादेश है।

(९४)

'वसीठ' 'जाइ' कटक 'नियरावा'। 'रा कर' वाठा 'आगे' आवा।
राइ 'के' पाय 'बसीठ' लइ लाए। तुरी भेट 'आगे लइ आए'।
फुनि 'बसिठेहि' सिरु भुइ 'लइ' लावा। 'कउनि रीसि' राजा चलि आवा।
जो मनि होइ सो ऊतरु 'दीजा'। 'जो तुम्हं चहियइ अव ही लीजा'।
दरब 'कहउ' तउ भैंस भरावहि। घोर 'कहहु' अब ही 'लइ आवहि'।

राजा 'देहु रजाएसु' माथे 'परि हम' लेहि।
'इन्ह मह जो तुम्हं चाहिय' आजु 'कालि कइ' देहि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ६३, वी० २९४-२९६।

शीर्षक—रफ्तन रसूलान पेश राव रूपचद व वाज नमूदन सुख़नी राव महर।

पाठान्तर—(१) १ मैं० वशिट। २ वी० जाय। ३ बी० नेरावा। ४ राइ कर। ५ वी० आगैं। (२) १ वी० के। २ मैं० बशिट। ३ वी० लैं आगैं जाये। (३) १ मैं० वशिटहि। २ वी० ले। ३ वी० कौन रीस। (४) १ वी० दीजैं। २ वी० जो रु वस्तु चहिये सो लीजैं। (५) १ वी० कहौ। २ वी० कहौ। ३ वी० लैं आवह। (६) १. वी० देह रजाइसि। २ मैं० चर चढि। (७) १ वी० यह मह जो कछु चाहौहु। २ वी० काल्हि करि।

अर्थ—(१) वसीठ जाकर कटक के निकट पहुँचे, तो राजा का वाठा आगे आया। (२) राजा [रूपचद] के पैरो को लेकर वसीठो ने [सिर से ?] लगा लिया और घोडो की भेट उन्होने आगे ला कर प्रस्तुत की। (३) वसीठो ने पुन अपने सिर भूमि से लगाए, [और कहा,] "किस रोष के कारण, हे राजा, तुम चलकर यहाँ आए हो ? (४) जो मन मे हो, वह उत्तर दो और जो तुम्हे चाहिए हो, वह [हम से] अभी लो। (५) यदि द्रव्य कहो तो भैसे भरा दें, घोडे कहो तो उन्हे अभी ले आए। (६) हे राजा, राजादेश दो और हमारे मस्तक पर चढ कर [उसे करा] लो। (७) इनमे से जो भी तुम्हे चाहिए, आज अथवा कल हम उसे कर के दे।"

(९५)

सुनु परधान बोलु तू मोरा। 'कहसि तउ छाडि जाउ' गढु तोरा।
डडु तोर 'हउ लइहउ' नाही। घोर लाख 'दुइ' 'मोहि' तुलाही।
'जाइ कहहु तुम्ह अरथ' दिवाऊ। 'नौ कइ' गोवरु आजु बसाऊ।
हम 'तुम जरम करहि' 'हो' राजू। चाद 'बियाहि' देहु मोहि आजू।
जउ' सुखु देहु 'तउ' पाटु 'बइठाऊ'। 'बरु कइ' लेउ 'तउ' पानी भराऊ।
'जउ' तुम्ह 'दुइ दर' राखहु चाद बियाहे देहु।
जो 'रुचि राही' मागौ(ग)हु, 'सो' 'तुम्ह' अब ही लेहु ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ६४, बी० २९७-२९९।

शीर्षक—मै० जवाव दादन राव वर रसूलान रा।

पाठान्तर—(१) १ बी० कह त जाउ छडि। (२) १ बी० मै लेउ न। २ बी० दोय। ३ बी० मोरि। (३) १ बी० कहसि त तोकहु दरबु। २ बी० नव करि। (४) १ बी० तुम्ह जरमि करी। २. मै० जग। ३ बी० विवाहि। (५) १ बी० जौ। २ बी० तौ। ३ बी० वधाऊ। ४ बी० वैरु के। ५ बी० तौ। (६) १ बी० जो। २ बी० दोय कुर। (७) १ बी० रुच राये। २. मै० माग। ३ बी० तुम।

अर्थ—(१) [राजा रूपचद ने उत्तर दिया,] "ऐ प्रधान, तू मेरा बोल (वचन) सुन, यदि तू कहे तो तेरा गढ छोड कर मै चला जाऊ। (२) तेरे [बताए हुए] दड मै नही लूगा, दो लाख घोडे मेरे [आदेश पर] तैयार हो जाते है। (३) [महर से] जा कर [मेरी ओर से] कहो, 'तुम्हे अर्थ-द्रव्य दिला दू, गोवर को नया (नवनिर्मित) कर आज ही बसा दू, (४) हम और तुम जीवन भर राज्य करे, [केवल] तुम मुझे चादा को आज ब्याह दो। (५) यदि तुम [यह वचन] सुखपूर्वक दे दो, तो मैं तुम्हे सिंहासन पर बिठा दू, [किन्तु] यदि मैं बलपूर्वक उसे लूगा तो तुम से पानी भराऊगा। (६) यदि तुम दोनो (अपने और मेरे) दलो को [सुरक्षित] रक्खो (रखना चाहो), तो चादा को विवाह मे दे दो, (७) और जो कुछ तुम्हे [अपनी] रुचि से अभीप्सित हो, वह तुम [मुझसे] अभी माग लो।"

(९६)

तू नरिंद देस 'कर' राजा। 'अइस' बोल तोहि 'कहत' न 'छाजा'।
'जेहि धिय होइ सो नाउ न लेई। पर पुत्रिहि अस गारि न देई'।

'जो पर पुत्रिहि माइ 'वोलावा' । सो राजा 'गारी कस पावा' ।
'जउ रे' महरु गारी सुनि 'पावइ' । आगि लाइ पानी कहु 'धावइ' ।
चाद 'अउर कहु दीत' वियाही । 'कवन' उतरु अब 'दीजइ' ताही ।
'बरु' हम मारि 'पवारहु' पुनि उठि 'जारहु गाउं' ।
चादहि धूरि न 'सपरै(रइ)' लेइ पार 'को' नाउ ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ६५, वी० ३००-३०२ ।

शीर्षक—मै० . जवाव दादन रसूलान बर राव रूपचद रा ।

पाठान्तर—(१) १ वी० कौ । २ वी० अैसे । ३ वी० कहि । ४ वी० साजा । (२) १ वी० जो धीय होय सु गारि न देई · पर पुत्री कर नाउ न लेइ । (३) १ वी० जौ पुत्रीयहि । २ वी० बुलावै । ३ वी० कैसे गारी पावैं । (४) १ वी० जो रु । २ वी० पावैं । ३ वी० धावै । (५) १ वी० औ कहू दीन्ह । २. वी० कौन । ३ वी० दीजै । (६) १ वी० बरि । २ वी० पियारौहु (पवारहु—फारसी) । ३ वी० जारौहु गाव । (७) १ मै० लागइ । २ वी० कौ ।

अर्थ—(१) [वसीठो ने कहा,] "तू, हे नरेन्द्र, देश का राजा है, [इसलिए] ऐसा वचन कहते हुए तुझे शोभा नही देता है । (२) जिसके [घर मे] कन्या होती है, वह [ऐसी वातो का] नाम नही लेता है और दूसरे की पुत्री को ऐसी गाली नही देता है । (३) जो पराई पुत्रियो को माता कह कर बुलाता है, वह, हे राजा, ऐसी गाली कैसे (क्यो) पा रहा है ? (४) यदि महर [यह] गाली सुन पाए, तो वह आग लगा कर पानी के लिए दौड़ने लगे (तहन-नहस करने लगे) । (५) चादा को अन्य-कही ब्याह दिया गया है, अव (ऐसा कार्य करने पर) उस व्यक्ति को कौन-सा उत्तर दिया जाएगा ? (६) भले ही हमे मार कर फेंक दो, और तदनन्तर उठ कर गाव (नगर) को जला दो, (७) चादा को धूल नही लगेगी । कौन उसका नाम ले सकता है ?"

(९७)

अवहि धीठ तोहि मारि 'पवारउ' । खिन 'इक' भीतरि गोवरु 'जारउ' ।
मूड काटि 'कइ' कुवइ भरावउ । खाल काढि 'कइ' रूखि 'टंगांवउ' ।
'चील्हनि कहउं मास 'लइ' जाही । 'कुकुरन्ह कहउं रगतु सबु खांही ।
'तोहि का जोगित' करसि धिठाई । जस 'हउ कहउ तइस कहु' जाई ।
जाइ वेगि चादा 'लइ आवहु' । मोखु दुवारु 'तउहि पै पावहु' ।

'करिबउ' तस 'जस वोलेउ' नाउ 'वसीठ' 'कर आहु' ।
वेगि चाद 'लइ' आवहु 'तउ इहवा हुत' जाहु ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ६६, वी० ३०३-३०५ ।

शीर्षक—मैं० वर गुस्सह शुदन गव रूपचद वर रसूलान व ख़ामोश मानदने ईशा ।

मैं० मे पत्र-सख्या ६७ नही है, पुन ६८ से लेकर ८७ तक के उसके पन्ने वहुत अस्त-व्यस्त है, वहुत कम कडवको के सामने मिलने वाले चित्र उनके अपने है । इससे ज्ञात होता है कि मैं० मे वर्तमान पत्र-सख्या उस समय डाली गई जव वह त्रुटित हो गई थी और उसके इस अश के पन्ने अस्त-व्यस्त हो गए थे ।

पाठान्तर—(१) १ वी० विपारौ (पवारौ—फारसी) । २ वी० यक । ३ वी० जारौ । (२) १ वी० कै । २ वी० कुवा भराऊ । ३ वी० कै । वी० टगाऊ । (३) १ वी० चील्हह कहौ । २ वी० लै । ३ वी० कुकरह कहौ । (४) १ वी० तुम्ह का जिगति । २ वी० हौ कही करौहु तैसै । (५) १ वी० लै आवोहु । २ वी० तवैहि तुम [पा] वौहु । (६) १ वी० करत्ये । २ वी० ज्यो वोल्यो पर । ३. मैं० वशिट । ४ वी० कौ आहु । (७) १ वी० लै । २ वी० तौ इयहा तेहि ।

अर्थ—(१) [रूपचन्द ने कहा,] "ऐ धृष्ठ [वसीठ], तुझे मैं अभी मार कर फेक देता हू और एक क्षण के भीतर गोवर को जला देता हूँ । (२) तेरा सिर काट कर मैं कुए मे भरा (डलवा) देता हूँ और तेरी खाल निकलवा कर वृक्ष मे लटकवा देता हूँ । (३) चील्हो को कह देता हूँ कि वे तेरा मास ले जाए और कुत्तो से कह देता हूँ कि वे तेरा समस्त रक्त खा (पी) जाए । (४) तुझमे इस प्रकार की कौन-सी योग्यता है कि तू धृष्ठता करता है ? जैसा मैं तुझसे कह रहा हूँ, वैसा ही तू जाकर [वहाँ] कहे । (५) तू जाकर शीघ्र ही चादा को ले आ, तभी तू मुक्ति का द्वार पाएगा । (६) जैसा मैंने कहा है, तुझे वैसा ही करना चाहिए, क्योकि तेरा नाम ही 'वसीठ' का है । (७) चादा को शीघ्र ले आ और तब तू यहाँ से जा ।"

(६८)

राजा 'पुलकि करि' देहु 'रजाएसु' । सुनि 'कइ' 'मारिसु कइ रे छडाइसु' ।
'अस तू राजा केउ बउराएहु' । चाद सबदु सुनि गोवर 'धाएहु' ।
गोवरु 'समुद अतिय अवगाहा' । वूडहि 'राइ' न पावहि थाहा ।

राजा 'जउ र(रे) सरग चढि' धावहु । तउ न धूरि चादा 'कइ' पावहु ।
राजा नखत 'जो' सरगि भवाही । चाद 'निहारइ सभ निसि' जाही ।
गगन 'चढे' 'जउ देखिय' 'जानिय इहवा' आहि ।
थाह न 'पइयहु' राजा बूडि 'मरहु औ(अव)गाहि' ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र ७५, बी० ३०६-३०८ ।

शीर्षक—मै० रजा तलबीदने रमूलयान बराए बाज गुजश्तन खुद अज राय ।

पाठान्तर—(१) १ बी० बोलकी । २ बी० रजाईसि । ३ बी० कै । ४ बी० मारसि कौन छुडायसि । (२) १ बी० असकै राकै राह बोरायहु । २ बी० धायहु । (३) १ बी० समदु अते औगाहा । २ बी० राव । (४) १ बी० जौ रु सरगेहि चरि धावौहु । २ बी० की । ३ बी० पावौहु । (५) १ बी० जु । २ बी० पहर निसि जागत । (६) १ बी० चरे । २ बी० जौ देषौ । ३ बी० जाने अहन । (७) १ बी० पावहु । २ मै० मरियहु काहि (गाहि) ।

अर्थ—(१) [वसीठो ने कहा,] "ऐ राजा [रूपचद], तू पुलकित होकर राजाज्ञा दे, हमारी बाते सुन कर हमको [चाहे] मारे (मरवाए) या छुडाए (छुडवाए) । (२) तुझे, ऐ राजा, इस प्रकार किसने बावला किया कि 'चाद' का शब्द (नाम) सुन कर तू गोवर के लिए दौड पडा ? (३) गोवर एक अत्यधिक गहरा समुद्र है, इसमे राजे डूब जाते हैं और इसकी थाह नही पाते है । (४) हे राजा, यदि तू आकाश पर चढ कर दौडे, तो भी चादा की धूल नही पाएगा । (५) हे राजा, जो नक्षत्र आकाश मे चक्कर लगाते रहते है, वे सारी रात चाद को निहारते रहते है जब वे जाते (चक्कर लगाते) हैं । (६) आकाश पर चढ कर यदि तुम देखो और यह जानो (समझो) कि [वह] यहाँ है, (७) तो भी, हे राजा, तुम्हे थाह न मिलेगी, भले ही तुम [चादा की] थाह लेते हुए डूब मरो ।"

(९९)

वात सजोगु 'बसीठे (ठइ)' कहा । 'नाइ मूड सुनि' राजा रहा ।
'वसीठ' वचन बिस भरे 'सुनाए' । 'राजइ' ठग के 'लाडू' 'खाए' ।
गा 'असरौ मन हुत जो सजोवा' । भा निरासु चित भीतरि रोवा ।
सरगि चाद 'मकु पाइय' नाही । 'बसिठन्हि' उतरु 'देउ' 'उठि' जाही' ।
आजु माझ 'जउ' चाद न 'पावउ' । पहर राति तुम्ह सरगि 'चलावउ' ।

जीउदानु 'जउ चाहहु' 'पठवहु' चाद दिवाइ ।
'नत' सूर उवत गढु 'तोरउ' 'कहहु' महर 'सेउ जाइ' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ७६, का० बी० ३०९-३११ ।

शीर्षक—मैं० . नाउम्मीद शुदन राव अज सुखने रसूलान व गदानीदने ईशा रा ।

का० जवाव दादन राव रूपचद भोलान रा ।

पाठान्तर—(१) १ मैं० बशिट (बसिट) जउ, का० बसीठ जउ । २ बी० नैन मूदि सो । (२) १ मैं० बशिट (बसिट) । २ का० सुनावा । ३ बी० राजा । ४ का० जनु ठग लाडू । ५ का० खावा । (३) १ बी० असूरु मनौ हुति जु सोवा । (४) १. मैं० मइ पाइय, बी० मोकौ पइये । २ मैं० बसिटउ, बी० वसीठा । ३ बी० दै । ४ का० चलि । (५) १ बी० जौ । २ बी० पाऊ । ३ बी० चलाऊ । (६) १ बी० जौ चाहौहु । २ मैं० पठवउ, बी० पठवोहु । (७) १ मैं० नतरु, बी० मे नही है । २ बी० तोरा । ३ मैं० कहु, बी० कहौहु । ४ मैं० सो जाइ, बी० स्यौ जाय ।

अर्थ—(१) जब सयोग (रण-सज्जा) की ये बातें बसीठ ने कही, तो सिर नमित कर राजा ने इन्हे सुन लिया । (२) बसीठो ने जब ये विषपूरित वचन [राजा को] सुनाए, तो [ऐसा लगा कि] मानो राजा ने किसी ठग के [दिए हुए] लड्डू खा लिए हो । (३) मन मे जो आसरा सजोया रक्खा था, वह चला गया, वह निराश हो गया और चित्त के भीतर रोने लगा । (४) [उसने मन मे कहा,] "चन्द्रमा आकाश मे है, सभव है उसे मैं प्राप्त न कर पाऊँ, वसीठो को उत्तर दे दू कि वे उठ कर जाए ।" (५) [उसने प्रकट कहा,] "यदि आज सध्या को चाद को न पाऊगा तो एक पहर रात गए ही तुम्हारे स्वर्ग [तुल्य राज-प्रासाद] पर सेना को चला दूगा । (६) यदि तुम जीवन-दान चाहते हो, तो चादा को [अपने स्वामी से] दिला कर भेजो । (७) नही तो, सूर्य के उदय होते-होते गढ को तोड दूगा, ऐसा महर से जा कर कह दो ।"

(१००)

'बसीठ' 'बहुरि' गोवर महि आए । महर देखि 'जनु' आगे धाए ।
'पूछा' महर 'कुसर सो आएहु' । 'काह कहिहु' कस ऊतरु पाएहु ।
जस 'पूछा तस' 'बसीठैं(ठइ)' कहा । सुनइ न राजा 'कोह' कइ रहा ।

हस्ति घोर धनु दरबु न' मानइ' । चाद माग 'जिहि' सूरु न 'जानइ' ।
'जउ जउ' चादा बीचहि दीन्हां । 'तउ तउ राउ' चाह जिउ लीन्हा ।
'कइ मति जसि तुम्ह उपजइ' राजा 'कीजइ सोइ ।
उवत सूर 'गढु तोरे' फुनि 'पछितावा' होइ ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ७७, वी० ३१२-३१४ ।

शीर्षक—मै० बाज आमदन रसूलान वर महर व बाज नमूदने अरजे राव रूपचद ।

पाठान्तर—(१) १ मै० वशिट (बसिट) । २. वी० फिरे । ३ बी० जनौ आगै । (२) १. बी० पूछहि । २. बी० सकोसर (सकूसर—फारसी) आयहु । ३ वी० कहहु कहा । (३) १. बी० पूछै तसै । २. मै० वशिटउ । ३. वी० गहु । (४) १. बी० मानै । २. मै० जनु । ३ बी० जानै । (५) १ वी० ज्यो ज्यो चाद नई छाह । २ बी० त्यो त्यो राइ । (६) १ बी० कै जस मति तुम्ह अनते (उपनइ ?—फारसी) । २ बी० कीजै । (७) १ वी० गरु तोरिवि । २. बी० पछितावो ।

अर्थ—बसीठ लौट कर गोवर मे आ गए तो महर उन जनो को देख कर आगे दौड कर गया । (२) महर ने पूछा, "कुशलपूर्वक तो आ रहे हो ? तुमने क्या कहा और कैसा उत्तर पाया ?" (३) राजा ने जैसा कुछ पूछा, वसीठो ने वैसा बताया, [उन्होने कहा,] "राजा [रूपचन्द] सुन नही रहा है, उसने क्रोध कर रक्खा है । (४) वह हाथी-घोडा, धन-द्रव्य नही मान (स्वीकार कर) रहा है, वह तो चाद ही को माग रहा है, जिसको सूर्य [तक] नही जानता है (जो असूर्यम्पश्या है) । (५) जब-जब भी हमने चादा [की प्राप्ति] मे अतर किया (बाधा बताई), तब तब ही उस राजा ने [हमारे] जीवो (प्राणो) को लेना चाहा । (६) अथवा जैसी मति तुम्हे उत्पन्न हो, हे राजा, वही (वैसा ही) तुम करो, (७) [अन्यथा] सूर्य के उदित होते-होते उसके गढ तोडने पर तुम्हे पछतावा हो ।"

(१०१)

'महरइ मुख कुवरन्ह कर चाहा' । 'छतिस कुरी दहु बोलिय काहा' ।
'वहुतन्ह' कहा चांद 'जउ' दीजइ । 'इक मुखु' होइ राज फुनि 'कीजइ' ।
'अउर कहा वरु निकरि पराइय' । 'दिवस' चारि 'बाहेर गै आइय' ।
'कुवरू धवरू दीते' गारी । 'जेइ जरमेन्हि' सो 'माइ' सियारी ।
'भूजहि' 'सासन' 'पाटन' गाऊ । अब जिउ देहिं चाद 'के' ठाऊ ।

'जउ' लहि सास पेट महि 'तउ' लहि 'करिहइ मारि'।
पुनि 'सर रचि सभ बरिहहिं' 'जइस' होइ 'उजियारि'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ७०, बी० ३१५-३१७।

शीर्षक—मैं० मशावरत करदने महर बा लश्कर मान मकरब ख़ुद।

पाठान्तर—(१) बी० महरि मुषक अवरा का चहा। २ बी० छतीसौ कुरिधौ कौ कहा।। (२) १ बी० बहुते। २ बी० जै। ३ बी० इकु सुखु। ४ बी० कीजै। (३) १ बी० और करहि बर नगर पराये। २ बी० द्योस। ३. बी० वाहरि गै आये। (४) १ बी० कवरू घवरू दी उठि। २ बी० जे जनमे। ३ बी० मा माय। (५) १. बी० भूचहि। २ मैं० बइठे। ३ बी० पटियहि। ४ बी० कर। (६) १ बी० जब। २ बी० तौ। ३ बी० करिस्योह मार। (७) १ बी० रु उठि जौहरि जरहि। २ बी० जैस। ३ बी० उजियार।

अर्थ—महर ने कुमारो (कुमारभुक्तो—गुजारेदारो) का मुख देखा—[और पूछा,] "छत्तीस-कुली [सामत गण], आप क्या कहते हैं ?" (२) बहुतो ने कहा, "यदि चादा को दे दीजिए, तो एक मुख होकर राज्य कीजिए।" (३) औरो ने कहा, "इससे अच्छा यह होगा कि निकल भागिए, और चार दिन वाहर हो आइए।" (४) कुँवरू और धँवरू ने [यह सब कहने वालो को] गाली दी। [उन्होने कहा,]" [इन मे से] जिन्होने भी जन्म लिया है, [वस्तुत] स्यारनी के पेट से जन्म लिया है—इनकी माता स्यारनी होगी। (५) हम शासनादेश से प्राप्त पत्तन (महानगर) और ग्रामो का भोग कर रहे है, तो अब चादा के स्थान पर अपने प्राण [भी] देंगे। (६) जब तक हमारे पेट मे श्वास है, तब तक हम मार (युद्ध) करेगे। (७) तदनतर हम सभी शर (चिता) रच कर जलेगे, जिससे [हमारी कीर्त्ति मे] उज्वलता हो।

८. गोवर-युद्ध खण्ड

(१०२)

'राइ' रूपचदु 'गढ होइ' 'बाजा'। 'राउ' 'महर दर आपन' साजा।
'पहिरि सजोइ' बाठु हथवासा। कुवरू 'आगे' 'पाउ हुलासा'।
'बाठ कहा अरे तू' को आही। बिथा 'मरेसि उद्वि' घर जाही।
'कुवरू तरपि' खाड 'लइ' 'काढे'। छतीस कुरी 'सभ' 'देखइ ठाढे'।
'बाठइ ताकि' 'खरग गै' 'मारा'। फरी 'लागि' धर 'किएउ अपारा'।

'दीठि भुलानि खरगु जउ' 'चमका' 'फरि लै(गै) हाथ हुत' छूटि।
लाग 'खाड' 'बाठा कर 'कुवरू गा' भुइ 'टूटि' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ७१, भो० पत्र ६३ (नवीन), वी० ३१८-३२०।

शीर्षक—मैं० नमूदार शुदने हर दू फौज हा व जग करदन कुवरू वा वाठा व गुश्त शुदने ऊ।

भो० रोज दुवम राव रूपचद कस्दे हिसार करदन व वेरू आमदने महरा जग करदन उफ्तादन।

मैं० मे इस कडवक के सामने जो चित्र है, वह इसका नही है, जिससे ज्ञात होता है कि इस स्थल पर उसमे पत्रे अस्त-व्यस्त हैं। यह वी० से उसकी कडवको की क्रम-भिन्नता से भी प्रकट है।

भो० मे इस कडवक के पत्र पर जो संख्या है वह फिर से वनाई हुई है, एक १०२ है, दूसरी ११२, कहा नही जा सकता है कि पहले कौन-सी है।

पाठान्तर—(१) १ भो राव, वी० राय। २ वी० गिरवै। ३ मैं० मे शव्द नही है। ४ भो०, वी० राइ। ५ वी० महरि घरि आपनु। (२) १ वी० पहरि सजोउ। २ वी० कवरू, भो० धवरू। ३ वी० आइ तुलासा। (३) १ वी० वाठा कहै अरत। २ वी० मैंरे सो उठि। (४) १ वी० कवरू तरप। २ वी० लै, भो० गै। ३ वी० काढी। ४ वी० सभि, मैं० सव। ५ वी० देषै ठाढी। (५) १ वी० खाड उभारै, भो० वाठइ हिये। २. वी० मारै। ३. वी० पारी। ४ भो० मादि, वी० काट। ५ वी० आपु उवारी। (६) १ वी० दिठि भुलान षरगु जौ। २ भो० चमका। ३ भो० हाथहि वहुरइ, वी० हाहू तेहि। (७) १ मैं० खाड गै रे। २ वी० वाड। ३ वी० कवरु गया। ४. भो० लूटि।

अर्थ—(१) राजा रूपचद गढ पर हो पडा, तो राजमहर ने अपना दल सज्जित किया। (२) [कवच] पहन कर हाथो मे वाठ ने सयोग (शस्त्रास्त्र) लिए और उसने कुवरू को [अपने] आगे उल्लसित पाया। (३) बाठ ने कहा, "अरे, तू कौन है ? व्यर्थ ही मरेगा, उठ कर घर जा।" (४) कुवरू ने [यह सुनकर] तड़प कर खड्ग निकाल लिया, समस्त छत्तीस कुली खडे हुए देख रहे थे। (५) वाठा ने लक्ष्य कर और जा कर उस पर खड्ग चलाया, तो उसने फरी लेकर अपार वरा की (युद्ध किया)। (६) किन्तु उसकी दृष्टि भ्रमित हो गई जव [वाठा का] खड्ग चमका और फरी उसके हाथ से छूट पडी। (७) वाठा का खड्ग लगा और कुवरू भूमि पर टूट पड़ा।

(१०३)

धवरू 'देखा' 'कुवरू' परा । रोहितासु 'जैसे' परजरा ।
हाथि सागि 'मारेसि तस' आई । फरी लागि धर 'गएउ' चुकाई ।
फुनि काढिसि 'बिजुली' 'करवारा' । डाक 'देइ गै हनेसि' कटारा ।
टूटि खाड टाटर महि आवा । बाठ कहा 'हउ एहि पइ' खावा ।
फुनि 'लीन्हति' काढिसि 'तरुवाई' । 'तउ हति' बाठा चला पराई ।
'खेदत अढुका धवरू' परा 'दाबि' सहराइ ।
'पलटि' बाठ 'जउ देखा' 'तउ' फिर 'मारेसि' आइ ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ८०, बी० ३२१-३२३ ।

शीर्षक—मै० जग करदने धवरू व बाठा गुश्त शुदने धवरू ।

पाठान्तर—(१) १. बी० देष्या । २ बी० कवरू । ३ बी० अैसे । (२) १ बी० ले मारिसि । २ बी० गयो । (३) १ बी० बिजुरी । २ मै० तरवारा । ३ बी० देयकै हनसि । (४) १. बी० हैं इहै पै । (५) १ बी० लीन्हसि । २ बी० ताराई । ३ बी० तौ लहि । (६) १. बी० देषत देषत अधिका (अढुका—फारसी) । २. बी० दाउ । (७) १. बी० लवटि । २ बी० जो देषौ । ३ बी० तौ । ४ बी० मारसि ।

अर्थ—(१)—धवरू ने देखा कि कुवरू [रण-क्षेत्र मे] गिर गया, तो वह [इस प्रकार क्रुद्ध हुआ] जैसे रोहिताश्व (अग्नि) प्रज्वलित हुआ हो । (२) उसी समय उसने हाथ मे साग [लिए हुए आकर बाठ पर] चलाया, किन्तु वह उसकी फरी पर पडी और चूक कर धरा मे जा लगी । (३) तब उसने बिजली तलवार निकाली, और डाक (डका) देकर और जाकर वह कटार [बाठ पर] चलाई । (४) वह खड्ग टूट गया जब वह टाटर मे आया, और बाठ ने कहा, "मैं, हो न हो, इसके द्वारा [अब] खाया गया । (५) धवरू ने तदनतर ले कर तरुवाई निकाली, तो बाठ उसे मार कर (आहत कर) भाग चला । (६) उसका पीछा करते हुए धवरू अढुका और [विपक्षियो को नीचे] दबाते हुए तथा [उनका] सहार करते हुए गिर पडा । (७) बाठ ने लौट कर यह देखा, तो उसने आकर उसे मार दिया ।

(१०४)

'बाजे तार' दुवउ जन मारे । 'अउर कुवर' 'महरइ' के हारे ।
'दूवउ आने पाधर घिसियाई' । पायक 'बइठे करहि बडाई' ।

रगत दुहू 'के' सरवरु भरा। 'एकउ कुवर' न 'आगे' सरा।
'जिन्ह देखा' 'तिन्ह गएउ पराना'। दर महि 'कोउ न करइ पयाना'।
जे 'महरइ' 'जेवनारि' जिवाए। संकरी वार 'निकाजइ' आए।

'भाट कहा महर सेउं' 'तउ पै पावहि' तीरु।
बेगि हकारि 'पठावहि' लोरिकु बावनु बीरु॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ८१, वी० ३२४-३२६।

शीर्षक—मै०. शादमान ज़दन दर लश्करे राव रूपचद अज हिरवते फौज।

पाठान्तर—(१) १. वी० बीजे (वाजे—नागरी) तार दोऊ। २. वी० और कवर। ३ वी० महरन्हि। (२) १. वी० दोउ अनी (आने—फा०) पाधरि पिसिआई (घिसिआई—फा०)। २ वी० बैठे घरह पराइ। (३) १ वी० कँ। २ वी० येको वीरु। ३. वी० आगै। (४) १. वी० जिहि देखे। २ वी० तिह गये पराना। ३ वी० रहै न कोय न जाना। (५) १. वी० महरे जिवनार। २ मै० वीर। ३ वी० काजि नहि। (६) १. वी० भाटि कहा तव राइ स्यो। २ वी० तो पहि पाउ। (७) १ बी० पठावहु।

अर्थ—(१) [शत्रु-दल मे] ताली वज गई जव [महर के] वे दोनो ही जन (कुवरू और धवरू) मारे गए, तथा [महर के] अन्य कुमार (कुमार-भुक्त, गुजारेदार) भी हार गए। (२) वे दोनो पाधरो (रण मे अप्रवृत्त लोगो) द्वारा घसीटते हुए लाए गए, [महर के] पदाति वैठे हुए उनकी वड़ाई कर रहे थे। (३) दोनो के रक्त से सरोवर भर गया और एक भी कुमार (कुमारभुक्त) [तदनतर] आगे न वढा। (४) जिन्होने भी यह देखा, उनके प्राण निकल गए और [महर के] दल मे कोई भी [आगे] प्रयाण नही कर रहा था। (५) जिन्हे महर [अपनी] रसोई मे जिमाया करता था, [इस] सकट के समय मे वे भी काम न आए। (६) भाट ने महर से कहा, "[सकट-सरिता से] तू तव तीर (तट) पाएगा (७) [जव] तू तुरत लोरिक तथा वावन वीरो को वुला कर [रण मे] भेजेगा।"

(१०५)

भाट गोसाई 'तुम ही धावहु'। आगे 'दइ' लोरिक 'लइ' 'आवो(व)हु'।
'चढि' तुरग भाटु 'दउरावा'। लोरिक जाइ जुवा 'फर' पावा।
'कहवा भाट घोर दउराएहु। काकर पठए कहा तुम्हं आएहु'।

ओर 'महर' तुम्ह बेगि 'हकारे'। 'कुवरू धवरू बाठइ मारे'।
जा 'रबि' गोवरु लागि गुहारी। 'लइ (लेइ) अब' चाद 'होइ' अधियारी।
उठा लोरु सुनि 'नाखा परलै' 'महर' भया अवसान।
आजु बाठु 'रन' 'मारउ' 'देखउ राइ' परान॥

सन्दर्भ—मै० ८२, बी० ३२७-३२९।

शीर्षक—मै० आमदन भट बर लोरिक अज़ फिरिस्तादन महर।

पाठान्तर—(१) १ मै० तुम्ह गढ धावसि। २ बी० दै। ३ बी० लै। ४ मै० आवसि। (२) १ बी० चरि। २ बी० दौरावा। ३ बी० महि। (३) १ बी० मे यह पक्ति छूटी हुई है। (४) १ बी० जाहु। २ बी० हकारै। ३ बी० कवरू धवरू वाठैहि मारै। (५) १ बी० रिबि। २ बी० ली (लइ—फारसी) व। ३ बी० होयहै। (६) १ बी० पायक मारे। २ बी० महरि। (७) १ बी० सिर। २ बी० मारे। ३ बी० देषौ राषि।

अर्थ—(१) [महर ने कहा,] "ऐ भाट गुसाईं, तुम (तुम्ही) गढ मे जाओ, और आगे [स्थान] देकर लोरिक को ले आओ।" (२) भाट ने घोडे पर चढ कर उसे दौड़ाया, और उसने जाकर लोरिक को जुए के फड पर [जुआ खेलते हुए] पाया। (३) [लोरिक ने पूछा,] "ऐ भाट, तुमने कहाँ (किसलिए) घोडा दौडाया है ? तुम किसके भेजे हुए हो और क्या (क्यो) आए हो ?" (४) [उसने उत्तर दिया,] "हे लोर, महर ने तुम्हे वेगपूर्वक (शीघ्र) वुलाया है, [क्योकि] कुवरू और धवरू बाठ द्वारा मारे जा चुके हैं। (५) ऐ सूर्य, जा और गोवर की गुहार लग, [शत्रु] अब चाँद को लेने ही वाला है, [जिससे] अधियारी (अधेरी रात) होने [ही] वाली है।" (६) लोर यह सुनकर उठ खडा हुआ कि [वैरी ने] प्रलय नाख (डाल) दिया है और महर अवसन्न (अवसाद-ग्रस्त) हो गया है। (७) [उसने कहा,] "आज ही मैं रण मे बाठ को मारूगा और राजा [रूपचद] को पलायित देखूगा।"

(१०६)

घर गा लोरिक डाग सभारी। 'ओडन खाड लीन्ह' पटतारी।
बाधि 'रगाउलि' 'कसि' सिरि 'पागा'। 'पहिरेसि' सार तार का आगा।
'घन सहरी' करि खैंचि बधावा। 'पेट रु' 'गात' सनाहु मढावा।
टाटर चहु 'जन' लीन्ह उचाई। लोरिक मूड दीन्ह औधाई।
सारग एकु 'जुगुति' कर चढा। 'जनु 'अरजुन कह रावनु गढा'।

'फरसा कुत' 'कटारी लीतेहि' बाधि चला तरवारि ।
रगत 'पिपासु' खाड 'लोर' कर दौरा जीभ पसारि ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ६८, भो० पत्र १३ (नवीन), बी० ३३०-३३२ ।

मै० मे इस कडवक के साथ का चित्र 'खोलिन और लोर के सवाद का' है, जो बाद मे आता है, अत प्रति यहाँ पर अस्त-व्यस्त है ।

शीर्षक—मै० दुरूने खान रफतने लोरिक व मुस्तइद शुदन बर जग ।

भो० आमदने लोरिक दर खान व साख्त शुदन बराय जग व बोसीदन अस्लहा व वस्तने अस्लहा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० वोडन षाड लीन । (२) १ बी० रगावरि । २ मै० किहेसि, बी० औ । ३ भो० बागा, बी० षागा (पागा-नागरी) । ४ बी० पहरि । (३) १ बी० षाड फरी । २ मै० पेट, बी० पीतरि (पेट रु—फारसी) । ३ बी० काटि (गात—फारसी) । (४) १ बी० जनि । (५) १ बी० जुगति । २ वी० जानौ । ३ भो० अरजुन कौरौ कह कढा, बी० रावनु अरजन हुते गढा । (६) १. भो० फरसा कूडि, मै० फिरि सजोइ । २ मै० कटार लीन्ह, बी० कटारी लीन्ही । (७) १ बी० पियास । २ बी० लोरिक ।

अर्थ—(१) लोरिक घर गया, उसने डाग (यष्टि) सभाली और पड़ताल कर (देख-भाल कर) उसने ओडन और खाडा (खड्ग) लिया । (२) [पैरो मे] रगाउली वाध कर और सिर पर पाग कस कर उसने सार (लौह) के तारो का आगा (अगरखा) पहना । (३) उसने घनसहरी हाथो मे खीच कर वधाई तथा पेट और गात्र को सन्नाह से मढाया । (४) टाटर को चार जनो ने उठा लिया और लोरिक के सिर पर उसे औधा करके रख दिया । (५) एक शार्ङ्ग (सीगो का धनुप) युक्तिपूर्वक उसके हाथो मे चढ गया, [वह ऐसा लगा] मानो जैसे अर्जुन के लिए उसका रावन (प्रिय) [धनुष—गाडीव] गढा हुआ हो । (६) फरसा, कुत तथा कटारी लेकर और तलवार वाध कर वह चल पडा । (७) [अव] लोरिक का रक्त-पिपासु खाडा (खड्ग) जिह्वा पसार (फैला या निकाल) कर दौड पडा ।

(१०७)

पौलनि लोरहि चलन न देई ।
अवहि राउ किन चादा लेई ।

मै (मइ) का उ(ओ)कर जीव रपावा।
जूझे(झइ) कौ (कह ?) कस महरि बुलावा।
गा(गा)व जि बाटैहि (बार्टहि) जीव रषाही।
ते कस आजु न जुझें(जूझइ) जाही(ही)।
जिव घरबात जीव धन मोरा।
बारु न देषे(पइ) देहौ(हउ) तोरा।
तुझ कछु होई तौ हौ(हौ) कौ(केउ) जीवौ(वौ)।
काहु(उ) पाइ (उ?) कै पानी पीवौ(वौ)।
गाढ काजु मरे (मरइ) कर कैसै जीउ लुकाऊ (ऊ)।
माता देहु असीस मुझु मारि बाठु घरि आऊ (ऊ)॥

सन्दर्भ—बी० ३३३-३३५। मैं० का वह पत्र, जिस पर यह कडवक रहा होगा, अब नही है, किन्तु उसके वर्तमान पत्र ६८ पर जो चित्र है, वह इसी कडवक का है, क्योकि उसमे सवाद करते हुए खोलिनि और लोरिक अकित है। आगे के कडवक मे मैना को सबोधित करते हुए लोरिक कहता भी है देहु असीस दोउ जनि (१०८ ६), जिससे यह स्पष्ट है कि माता से भी वह विदा लेने गया था।

अर्थ—(१) [लोरिक की माता] खोलिन लोर को चलने नही दे रही थी और कह रही थी, "क्यो न राजा [रूपचद] अभी चाँदा को ले ले ? (२) मैंने क्या उसके जीव की रखवाली [अपने जिम्मे] ली है ? फिर [तुम्हे] महर [उसकी रक्षा के लिए] युद्ध करने को क्यो बुला रहा है ? (३) जो गाव बाँटते हैं (राजा से शासन-ग्राम लेते है), वे ही [उसके तथा उसके परिवार के लोगो के] जीव की रक्षा करते है, वे आज क्यो नही युद्ध करने जा रहे है ? (४) [अपना] जीव ही मेरे घर की सपत्ति है, वही मेरा धन है, मै तेरा बाल [भी] किसी को न देखने दूगी। (५) कही तुझे कुछ हो गया तो मैं कैसे जीऊगी ? मै क्या खाऊगी अथवा पानी पीऊगी ?" (६) [लोरिक ने कहा,] "[इस समय] मरने (प्राण देने) का कठिन कार्य (प्रयोजन) है, फिर मैं कैसे उससे अपना जीव (अपने प्राण) छिपाऊ ? (७) हे माता, [इस समय] मुझे आशीर्वाद दो कि मैं बाठ को मार कर घर आऊ।"

(१०८)

'आगे' आइ 'ठाढि धनि' मैना । नीर 'समुद जस उलथइ' नैना ।
चुइ चुइ बुद 'परहि' थनहारा । 'जनु टूटहि गज मोतिन्ह' हारा ।
'जउ तुम्ह हइ झूझइ कइ' साधा । मोहि 'तउ' मारि करहु 'दुइ' आधा ।
'तउ पीछे उठि झूझइ जाएहु' । 'मोरि' असीस जीति घर 'आएहु' ।
जाकरि नारि 'सो झूझ' न जाई । वावनु बनखडि 'रहा' लुकाई ।
देहु असीस दोउ जनि मारि बाठ घरि 'आवउ' ।
'सोनहि पइरि' 'कराउ(उ) मैना(ना)' 'मोतिन्ह माग भरावउ' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ६९, बी० ३३६-३३८ ।

मै० मे इस कडवक के साथ जो चित्र अब है वह कदाचित् महर की सेवा मे वसीठो के लौट कर जाने का है, इसलिए इस अश मे प्रति अस्त-व्यस्त है ।

शीर्षक—आमदने मैना पेश लोरिक व गिरिय आगाज करदन ऊ ।

पाठान्तर—(१) बी० आगे । २ बी० ठाढ धन । ३ बी० समद जानौ उझले । (२) १ बी० परैहि । २ बी० जानु टुटैहि गजमोती । (३) १ बी० जौ तुम्ह जूझे की है । २ बी० तुह्म । ३. बी० दोइ । (४) १ बी० तौ पीछै उठि जूझें जइहौहु । २ बी० मोर । ३ बी० अईहौहु । (५) १ बी० सु जूझ । २ बी० रह्यो । (६) १ बी० आऊ । (७) १ बी० सोनै पीर (पइरि—फारसी) । २. मै० कराइ । ३ बी० मोत्यो माग भराऊ ।

अर्थ—(१) [उसकी] स्त्री मैनां [उसके] आगे आकर खडी हो गई, जैसे समुद्र का जल [उल्लस्त होता है], वैसे ही उसके नेत्र उल्लस्त हो रहे थे । (२) जव उसके वूद चू-चूकर उसके भारी स्तनो पर पडते थे, [तो ऐसा लगता था] मानो गज-मुक्ताओ के हार टूट रहे हो । (३) [उसने कहा,] "यदि तुम्हे युद्ध करने की साध (आकाड्क्षा) है, तो मुझे मार कर तुम दो आधे (टुकडे) कर दो, (४) तव उसके बाद उठ कर युद्ध करने जाना और मेरा आशीर्वाद है (होगा) कि [शत्रु को] जीत कर घर लौटो । (५) [चादा] जिसकी नारी है, वह [तो] युद्ध मे जा नही रहा है, वह वावन वनखड मे छिप रहा है ।" (६) [लोरिक ने कहा,] "तुम दोनो जनी (मैना और खोइलिन) मुझे आशीर्वाद दो कि वाठा को मार कर घर लौटू, (७) और [तदनन्तरं], हे मैना, मैं [तुम्हारे लिए] सोने के पायल [निर्मित] कराऊ और मोतियो से [तुम्हारी] माग भराऊ ।"

(१०९)

माता वहुरि दीन असीसा।
जीवहु लोरिक वरि कोटि बरीसा।
करता दोउ (दहु ?) अैस परवाना।
अरज (जु ?) न भीव भोज बरि जाना।
पाड जैत (जेति?)सतराह(सतुरह)सिरि सालू।
तुह्म(म्ह) समरे त होइ धर पालू।
जस रामहिं बाध्यो सर सेतू।
सतुराह (सतुरह) मरि (मारि) किया कुरषेतू।
नैन नीर भरि अचरु पसारा।
वोल्या(ला) बचनु जननि धन बारा।
अमरु सवदु के रापा तुह्मरै (तुम्हरे) सिरजनु हारु।
जस बरु दीन्ह भीम अरज(जु ?)न कौहु(कहु)तस तुह्म(म्ह)धौ करतारु॥

सन्दर्भ—वी० ३३९-३४१।

मैं० यहा त्रुटित है (दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी)। किंतु पिछले कडवक मे लोरिक मैंना के साथ माता को भी सवोधित करता है, जव वह कहता है "देहु असीस दोउ जनि" (१०८ ६), इससे इस कडवक की प्रामाणिकता निश्चित है।

अर्थ—(१) तदनन्तर माता ने आशीर्वाद दिया, "ऐ लोरिक, अच्छा यह हो (यह मेरी शुभ कामना है) कि तुम कोटि वर्षों तक जीवो। (२) कर्त्तार (सृष्टिकर्ता) तुम्हे ऐसा प्रमाणे कि वह तुम्हे अर्जुन, भीम, भोज की भाति जाने (जैसे उसने उन पर कृपा की, तुम पर भी करे)! (३) तुम्हारा पाडा जितने भी शुत्र हो उनके सिर के लिए शल्य (प्रमाणित) हो, और तुम्हारे स्मरण से धरा का पालन हो (उसकी रक्षा हो)! (४) जैसे राम ने सर (समुद्र ?) पर सेतु वाधा था, और शत्रुओ को मार कर कुरुक्षेत्र (युद्ध) किया था [वैसे ही तुम भी करो!]" (५) नेत्रो मे अश्रु भर कर उसने अचल पसारा और जननी ने कहा, "ऐ [मेरे] वालक, तुम धन्य हो। (६) सृष्टिकर्त्ता तुम्हारा शब्द (वचन) अमर कर रक्खे! (७) जैसे उसने भीम और अर्जुन को वल दिया, वैसे ही वह तुम्हे भी दे!"

(११०)

'जइस असीस दीत तस पाएहु' । लोरिक 'राइ' जीति घरि 'आएहु' ।
लोरिकु गा अजई के बारा । भीतर 'हुते' 'जो' 'आइ' हकारा ।
'पहिलेहि अजई दोख' 'उपावा' । मिसु 'कइ' परि गा दांत कपावा ।
'घात' काटि 'घसि' गेरू भरी । खपरी लइ 'पूदी' तर धरी ।
आंग 'मूदि' 'असि करइ' पुकारा । 'कवनि' मीचु 'दीन्ही' करतारा ।
लाज 'लागि' 'महरइ मुह' 'अबही' 'राउ कह आउ' ।
'खाडइ' मीचु न 'पाइउ' दई 'बहुल' पछिताउ ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ८६, भो० पत्र ७ (नवीन), बी० ३४२-३४४ ।

शीर्षक—मै० रफ्तन लोरिक दर खान. अजई व बहाना ए मर्ज करदन ऊ।

भो राजी शुदन खेलन व इजाजत दादन मैना विदाअ करदन लोरिक जानिब खान राव रफ्तन ।

पाठान्तर—(१) १. बी० जस असीस देह तसै पायुहु । २. मै० राउ । ३ बी० आयुहु । (२) १ भो० हिए । २ बी० मे नही है । ३ बी० आय। (३) १ बी० पहिले अजई देप । २ मै० अनावा । ३ बी० कै। (४) १ बी० षाट । २ बी० कै । ३ भो० यूदी, बी० पूदह । (५) १ बी० मूड (मूदि—फारसी) । २ बी० अस करहि । ३ बी० कौनु । ४ बी० दीनी । (६) १ बी० जाइ । २ भो० महरइ मुह, बी० महर महि । ३ भो० इह्वइ, बी० औ अव । ४ बी० होइ कुराव । (७) १ मै० खाडइ, बी० षाडै । २ बी० पायो । ३ बी० वहुत भएउ ।

अर्थ—(१) [मैना ने कहा,] "जैसा [मैने] आशीर्वाद दिया, [समझो कि] वैसा तुम ने पाया, ऐ लोरिक, तुम राजा [रूपचन्द] को जीत कर घर आना ।" (२) लोरिक अजई के द्वार पर गया, तो भीतर से हँकारी आई । (३) पहले ही [से] अजई ने दोष (दुःख) उत्पन्न कर रक्खा था, बहाना करके वह पड गया था तथा दात कपाने लगा था । (४) [स्वय] घात (घाव) काट कर उसमे उसने घिसे हुए गैरू को भर रक्खा था और एक खपडी लेकर पूदी (?) के नीचे रख लिया था । (५) अग (शरीर) को मूद कर वह पुकार लगा रहा था, "हे सृष्टिकर्ता, तूने मुझे कौन-सी मृत्यु दी ? (६) महर के मुह मे लज्जा लग रही है, इसलिए अभी राव [महर] कहेगा कि 'आओ [तथा युद्ध करो] ।' (७) खाडे से मैंने मृत्यु न पाई, इसका, हे दैव, बडा पछतावा हुआ ।"

(१११)

अजई 'गुरु परि कइ' 'बतलावउ'।
'इहइ बहुत' तुम्ह 'सेउ' सिधि 'पावउ'।
'मइ लोरिक' 'तहिया' सिधि 'दीती'।
हाथि फरी 'तुम्ह' 'जहिया' 'लीती'।
अब बुधि 'देउ' 'सुनसि तू' मोरी। ओडन देह न 'देखइ' तोरी।
'बा(पा)ट जोरि धरि' 'पाउ उचाएहु'। बाह लुकाइ 'खरग चमकाएहु'।
'पाट गहत' 'जनि भूलइ दीठी'। 'पाव न देखइ उघरिहिं पीठी'।
घालि 'अखारे' 'खेदसि' 'सास' भरे 'जउ' जाइ।
'देय(इ) फरहरा' 'मारसु' जइसे 'पर अरराइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ८७, भो० पत्र ८ (नवीन), बी० ३४५-३४७।

शीर्षक—मैं० नमूदने लोरिक रा अजई तरीक-ए-जग।

भो० विदाअ करदन लोर वर रजई रा व हुनरहा जग आमोख्तन अजई वर लोरिक रा।

पाठान्तर—(१) १ बी० वरु गुरु कौनु, भो० गुरु पकरहिं। २ बी० बुलाऊ। ३ बी० यहै बचन। ४ बी० पैं, मैं० हुत। ५ बी० मे नही है। (२) १ बी० मै लोकसि। २. मैं० तहा, बी० तिहुवा। ३ मैं० दीतिहु, बी० दीन्ही। ४ बी० तुह्म। ५ बी० जहिवा। ६. मैं० लीतिहु, बी० लीन्हा। (३) १ बी० देहु। २ भो० सुनहु तुम, बी० सुनहु धौं। ३. बी० देषौ। (४) १ मैं० फरी टेकि भुइ, भो० पाट धरइ भुइ। २ बी० वाह उचावोहु ३ बी० षगु चमकावहु। (५) १ बी० बात कहत (पाट गहत—फारसी) २ बी० मत भूलहु दीठें। ३ बी० पावा देषि उघरि न बैठे। (६) १ भो० उखारत, बी० उपारै। २ भो० खेदसि, बी० तस त्रिधि षेदहु। ३ बी० मैं० सास। ४ बी० जस। (७) १ भो० देइ फराहर, मैं० खरग फरहरा, बी० देय फरहारा। २ बी० मारहु। ३ भो० जइसे वन अरराइ, बी० जइस परैं खहराइ।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "हे अजई गुरू, तुम पडकर (पडे ही पडे) बताओ, यही बहुत है कि तुमसे मैं सिद्धि पाऊ।" (२) [उसने उत्तर दिया,] "मैंने, ऐ लोरिक, उसी समय [तुम्हे] सिद्ध दे दी थी जब तुमने हाथ मे फरी ग्रहण की थी। (३) अब मैं तुम्हे बुद्धि (युक्ति) दे रहा हूँ, और उस

बुद्धि (युक्ति) को सुनो। ओडन [इस प्रकार लिया हुआ] हो कि [उसकी ओट मे से] तुम्हारी देह न दिखे। (४) पाट (?) जोड कर तुम भूमि पर पाव उठाना और अपनी बाहो को छिपा कर खड्ग को चमकाना। (५) पाट (?) पकडते समय दृष्टि न भूले (भ्रमित हो) और उघडी हुई पीठ के साथ तुम्हे [शत्रु] न देख सके। (६) तुम यदि भरी हुई श्वास के साथ जा कर और अखाडे (युद्ध-भूमि) मे डालकर [शत्रु को] खेदोगे (उसका पीछा करोगे), (७) और फरहरा (लवी उछाल ?) देकर तुम खड्ग मारोगे, [शत्रु] जैसे अररा कर पडेगा (गिरेगा)।"

(११२)

'पहिलें' जाइ महर 'उ(ओ)रिगायुहु। तउ 'पाछे तुम्ह' झूझइ जाएहु'।
लोरिक जाइ महर 'ओरगावा'। 'पैग' बीस चलि 'आगें' आवा।
अबलहिं 'लोरहि भए बर जाईं'। 'सगरइ' होइ 'मइ देखेउ आईं'।
'लोरिक सूरु भइसि' तू मोरा। 'मारु बाठ' मुखु 'देखउ' तोरा।
हउ तुम्हे हुते तीर जउ 'पावउ'। आधे गोवरि राजु 'करावउ'।
तीस पान कर बीरा 'महरइ' लोरहि दीन्ह हकारि।
घोर 'देउ' 'स्यौं (सेउ)' 'आखर' पाखर 'जौआवो(व)हु' 'रन' मारि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ७२, बी० ३४८-३५०।

शीर्षक—मैं०. रफ्तन लोरिक बर महर व बर्ग दिहानीदने महर लोरिक रा।

बी० बाए हाशिए मे सकेत है 'लोरिक महर की भीर लडन आया'। किंतु यह अन्य हाथ की लिखावट मे लगता है।

पाठान्तर—(१) १. बी० पहलैं। २ मैं० ओरगावा। ३. बी० पीछै उठि। (४) बी० जूझन आयुहु। (२) १ बी० उरिगावा। २ बी० पईक (पैंग—फारसी) ३ बी० आगैं। (३) १ बी० लोरन भई पछानी। २ बी० सफरी। ३ बी० मैं देख्यै आनी। (४) १ बी० लोर सूरु भाई। २ बी० छेकि बाठु। ३ बी० देषौ। (५) १ बी० पाऊ। २ बी० कराऊ। (६) १ बी० महरैं। (७) १ बी० दीन्ह। २ मैं० सउ (उ)। ३ बी० अपर। ४ मैं० जउ आइहु। ५ बी० रिन।

अर्थ—(१) [अजई ने फिर कहा,] "तुम पहले जाकर महर की सेवा [मे निवेदन] करना, तब पीछे तुम युद्ध करने जाना।" (२) [तदनुसार]

लोरिक ने जाकर महर की सेवा [मे प्रार्थना] की, तो महर वीस पग आगे चल कर आया। (३) [महर ने कहा,] "अवलो के लिए, हे लोरिक, तुम्ही जाकर वल हुए (होते रहे) हो, मैंने यह [वात] सर्वत्र हो कर देखी है। (४) ऐ लोरिक, तुम मेरे शूर हुए हो, तुम वाठ को मारो, मैं तुम्हारा मुख (आसरा) देख रहा हू। (५) यदि, हे वीर, मैं तुम्हारे द्वारा [सकट-सरिता से] तीर (किनारा) पा जाऊगा, तो आधे गोवर पर [तुम्हारा] राज करा दूगा।" (६) [यह कह कर] तीस पानो का वीडा महर ने लोरिक को वुला कर दिया, (७) [और कहा,] "मै तुम्हे आखर-पाखर के साथ घोडा दे रहा हूँ कि तुम [शत्रु को] रण मे मार कर आओ।"

(११३)

चला लोरु 'लइ' आपन साथी। 'जहवा पखरे' मैमत हाथी।
लोह 'नदी' 'जनु दइ वुडकाए'। 'तारू' तरवा 'कइ' अन्हवाए।
झरक लोहु 'जनु' उदिनिल भानू। दर महि दूसर सूझ न आनू।
देखि बाठु राजा पहि धावा। चाद 'गोहारि' 'सुरुज चलि' आवा।
उठा झार दरि 'रही' न जाई। हाथि घोर सब 'चले' पराई।
'झूझु' बाठ तइ 'जीतब' 'अब कोई' छडु लाइ।
सूर बीर तइ 'मारब' तोहि पहि एकु न जाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ७३, वी० ३५१-३५३।

शीर्षक—मैं० रवा करदने लोरिक वायाराने खुद दर मैदाने जग।

पाठान्तर—(१) १ वी० लै। २ वी० जहाँ पखरिया। (२) १ वी० दीन। २ वी० जानौ लै डुवकाई। ३ वी० तार्यौ। ४ वी० कै। (३) १ वी० जानौ। (४) १ वी० गुहरि। २ वी० लोरु चरि। (५) १ वी० रह्या। २ मैं० चला। (६) १ वी० जूझु। २ वी० जीता। ३ मैं० आइ लोर। (७) १ वी० मारे।

अर्थ—(१) लोर अपने साथियो को लेकर [वहाँ के लिए] चल पडा जहाँ पर मदमत्त हाथी पाखरे हुए [तैयार] थे। (२) [वे ऐसे लगते थे] मानो लौह की नदी मे वुडकी (डुवकी) दिए हुए हो और तालु से लेकर तलवे तक [उसमे] नहलाए हुए हो। (३) उनके लौह ऐसे झलकते थे मानो उदय होते हुए सूर्य हो, दल मे दूसरा (अन्य कुछ) नही सूझ रहा था। (४) [लोर को आता] देख कर वाठ राजा [रूपचद] के पास दौडता-दौडता

गया। [उसने कहा,] "[अब तो] चादा की गुहार (पुकार पर—उसको बचाने के लिए) सूर्य (लोर) चला आया है। (५) [युद्ध की] ज्वाला उठ पडी है और दल मे रहा (रुका) नही जा रहा है, हाथी-घोडे सभी भाग चले है।" (६) [रूपचद ने कहा,] "ऐ बाठा, तू युद्ध कर, तू ही जीतेगा, [भले ही] अब कोई छद्म (युक्ति) लगा, (७) उस सूर्य को, ऐ वीर, तू मारेगा, तुझसे [बच कर] एक भी नही जा सकता है।"

(११४)

'निसरत' लोर 'सबडं' नीसरे। 'एक एक जनु परखहि' आगरे।
लौकहि खरग 'दानहि लइ फिरे'। 'बाधे पाट जउ रे धर धरे'।
'झलकहि ओडन' ताबे 'तुरी'। बांधे 'पवरी लोहे जरी'।
पटवर 'सार तार' 'कइ' भई। 'भई अतिय बज्जर कइ मई'।
'सबहि सिदूर' 'दरेरइ' धरे। 'भागहि' देखि 'घोर' पाखरे।
'नियरे नियरा' 'पाइक' 'चढा सहस बर' राउ।
अचल 'चलाए न बिचलइं' 'रहे' रोपि धर पाउ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ७४, बी० ३५४-३५६।

शीर्षक—मै०. सिफते मुस्तअदीए फौज लोरिक।

पाठान्तर—(१) १ बी० नीरत। २ बी० सभहि। ३. बी० येक जानौ बुधि औ। (२) १ बी० दात की फरी। २ बी० बाटह बाट जोरि भरि धरी। (३) १ बी० चमकहि बोडन। २ बी० तरे। ३. बी० पैरहि लोहहि जरे। (४) १ मै० तार सार। २ बी० की। ३ बी० भइ पअरिनि बजर की भई। (५) १ बी० सीह उरेरहि। २ बी० दरेरै। ३ मै० भाजहि। ४ बी० हस्ति। (६) १ बी० नेराह नेराह। २ बी० पाइक बैठे। ३ बी० चरा सीस परि। (७) १ बी० चलायो ना चलैहि। २. बी० बैठ।

अर्थ—(१) [युद्ध के लिए] लोरिक के निकलते ही सब [सैनिक] निकल पडे, मानो एक-एक [सैनिक] पहले से ही उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। (२) खड्ग लौकने (लपलपाने) लगे, [क्योकि] योद्धा उनका दान देने के लिए उनको लेकर लौट पडे थे, जब पाट (पटका) बाधे हुए उन्होने [रण-] धरा को धारण किया था। (३) घोडो पर उनके ओडनो का तांबा झलक रहा था, वे पावरियो को बाधे हुए थे जो लोहे से जटित थी। (४) उनकी पटवरे फौलाद के तारो की बनी हुई थी, [इसलिए] वे अत्यधिक वज्रमयी हो गई

थी। (५) सभी [योद्धा] सिंदूर की दरेरे (धारिया) धारण किए हुए (लगाए हुए) थे [जिसके कारण] उन्हे देख कर पाखरित घोडे भाग रहे थे। (६) पदाति निकट ही निकट थे, [इस प्रकार] सहस्र [-गुणित] वल के साथ राजा [महर] ने चढाई की। (७) [अब सैनिक] अचल थे, चलाने पर वे विचलित नही हो रहे थे, और उन्होने पैरो को रण-धरा मे आरोपित कर दिया था।

(११५)

'तह तुरि' बैसि 'गए' धनुकारा। 'जेहि पथ पउलत' नही उबारा।
'साजि वडवा तस कइ कढे' । दीत 'टकोरा' 'घूरहिं चढे'।
'अपरइ नर तह सकरी मूठिहि। पनच घरे सर तुरियन पूठिहिं।'
बान 'सारि कइ' 'आग' उचाए। पाखहि 'गरुर' काटि रचि लाए।
'दीते फुक (पुख)' सर 'मूठि सभारहिं'। 'बोलत' बोलु माझ' 'मुपि' मारहिं।
जन्त्र लखउरी 'काढे' [व]हुत 'दाप भनकार'।
भरि भरि भाथा बाधे तिन्ह 'पहिं' कहा 'उवार'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ८३। वी० ३५७-३५६।

शीर्षक—मैं० सिफते तीरदाज़ान गोयद।

पाठान्तर—(१) १ वी० तिह तौ। २ वी० गहे। ३ वी० जिहि विनु वोलत। (२) १ वी० सजि विनानी की अस गढी (गढे—फारसी)। २ वी० टकौरा। ३. वी० धूमर चढी (चढे—फारसी)। (३) १ वी० विसरी परतेहि सकरी मूठी पेटते दूसरी रुतुरी पूठी। (४) १ वी० सान दे। २ वी० आन। ३ वी० गुवर। (५) १ वी० दे भुवग (फुक—फारसी)। २ वी० सभारैहि। ३ वी० वोलित। ४ मैं० मुह। (६) १ वी० काढी। २ वी० हस्ति दोत (दात ?) फुनकार। (७) १ वी० महि। २ मैं० उपार।

अर्थ—(१) वहाँ (रणक्षेत्र मे) घोडो पर धनुकार (धानुष्क) वैठ गए। जिस पथ से भी वे पैर रखते थे, उस पथ पर उनसे वचना असभव था। (२) घोडिया सजा कर वे इसी प्रकार निकल पडे थे और वे उन्हे टकोर देकर चढे हुए घूम रहे थे। (३) घोडो की पीठ पर अपर नर (योद्धा) वहाँ पर अपनी मुट्ठियो मे, जो सकीर्ण की हुई (सिकोडी हुई—वाँधी हुई) थी, प्रत्यचा पर शरो को रक्खे हुए थे। (४) वे वाने धारण कर अग उठाए हुए ऐसे लगते थे मानो गरुड के दोनो पखो को काट कर युक्ति-पूर्वक उन्हे लगा

दिया गया हो। (५) पुखो (बाण के अग्रभाग) मे शर (सरकडा) दिए (लगाए) हुए वे अपनी मुट्ठियो को सभाल रहे थे और [विपक्ष के योद्धाओ के] बोल उठते ही उनके मुख मे [बाण] मारते थे। (६) जो लखौरी यत्रो को निकाले हुए थे और बहुत दर्प के साथ उनकी ध्वनि कर रहे थे, (७) तरकशो को [शरो से] भर कर जिन्होने बाध रक्खा था, उनसे बचना कहा [सभव] था ?

(११६)

साजे सुरथ 'बिनानिहि गढे'। 'सउ सउ धानुक एक एक चढे'।
ढूके 'आए आने तेहि खिनइ'। तीनि चारि सै ऊभे 'कनइ'।
जोयन बीस करि लाइ चलावहिं'। खिन 'इक' माझ बहुरि 'तह' आवहि।
'ठौर ठौर कइ' 'रन' महि धरे। जनु 'बोहिथ' सायर महिं परे।
'रथ केहि अरथ झूझ कह' कीन्हा। पर दर 'मुख लइ' खूटा दीन्हा।
देखि 'झुझार राइ के' 'कुरधर' रहे तवाइ।
'फूटि चले राइ अउ राउत बूड लौकि सो आइ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ८४। बी० ३६०-३६२।

शीर्षक—मै० सिफते रथ जगी गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० विनानहू घरे। २ बी० सै सै धानुक यक यक चरे। (२) १ बी० आइ अनी महि घने। २ बी० गने (कने—फारसी)। (३) १ बी० कर राय चलावैहि। २ बी० यक। ३ बी० तहा। (४) १ बी० ठाव ठाव के। २ बी० रिण। ३ मै० वोहित। (५) १. बी० अरथ रथै जूझ कौ। २. बी० लौ औ। (६) १ बी० जूझार राय के। २. बी० कर धरि। (७) १ बी० फूट चले जस बनियो बूडि बूडि लोगु मराइ।

अर्थ—(१) विज्ञानियो (कुशल कारीगरो) के द्वारा गढे हुए सुन्दर रथ सजाए गए और सौ-सौ धानुष्क एक-एक पर सवार हुए। (२) उसी क्षण ले आए गए वे आ ढुके, और पास-पास ही तीन-चार सौ खड़े हो गए। (३) बीस बीस योजनो तक हाथियो को लगा कर उन्हे चलाया जाता था और वे क्षण भर मे ही वहाँ पुन आ जाते थे। (४) वे रण-क्षेत्र मे स्थान-स्थान पर लाकर इस प्रकार रक्खे गए थे मानो सागर मे वोहित्य [रख] पडे हो। (५) युद्ध के लिए इन रथो को किस अर्थ (प्रयोजन) से किया (वनाया) गया था ? इसलिए कि इनके द्वारा [जैसे] पर दल (शत्रु-दल) के मुख को लेकर उसमे खूँटा दे

दिया जाए। (६) राजा के इन योद्धा सैनिको को देखकर [विपक्ष के] कुलधर [योद्धा] तप्त हो रहे। (७) और उसके बहुतेरे राव और रावत फूट चले (तितर-बितर हो गए) और जो [अब तक रण सरिता मे] डूब रहे थे, वे ऊपर आते [और भागते] दिखाई पडे।

(११७)

गज गवने 'दरि सासौ भएऊ'। बासुगि 'नासि पतारहि गएऊ'।
'झुकरत इद्रासन डर' होई। 'कापहिं पाउ' न अगवइ कोई।
'चढे महाउत कसे' अबारी। दात पितरि मढि सूडि सिगारी।
'जोतहि महाउत' अकुस 'गहइ'। 'बिनु गज रैन' दर राखि न 'रहइ'।
सावनि मेघ 'ओनइ जनु रहे'। पखरे गैवर 'परखहि चढे'।
'वज्र माथ' घन पसरे परी छाह 'रनि' आइ।
उठी खेह दर 'पउदरि' 'सूरिजु गएउ' लुकाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ८५, बी० ३६३-३६५।

मैं० मे इस छद के सामने चित्र मैना से लोरिक के विदा लेने के प्रसग का है, जो कि बहुत बाद मे आता है। इससे ज्ञात होता है कि इस स्थान पर मैं० के पत्र अस्त-व्यस्त है।

शीर्षक—मैं० सिफते फीलाने महर।

पाठान्तर—(१) १ बी० दरि सौ सौ भेये। २ बी० कैंपि पतारैंहि गये। (२) १ बी० छिघरति यद्र सरौ वड। २ बी० कपैंहि राइ। (३) १ बी० चढै छतनिया करसि। (४) १ बी० जैन महावतु। २ बी० षुहाई। ३ बी० बन कजी (बिन गज—फारसी)। ४ बी० रहाही। (५) १ बी० उनये जानौ अहे। २ बी० राषे न रहे। (६) १ बी० मैं जु मात। २ बी० रिनि। (७) १ बी० पयाह दर। २ बी० सूरज गयो।

अर्थ—(१) गजो के गमन करने से [शत्रु-] दल मे सशय (डर) हुआ, और वासुकि भाग कर पाताल को चला गया। (२) [हाथियो के] चीखने से इद्रलोक मे डर होने लगा, [देवताओ के] पैर काँपने लगे, क्योकि [इनका भार] कोई अगो पर नही ले सकता था। (३) अबारी कसकर [हाथियो पर] महावत चढ गए, उनके दातो को उन्होने पीतल से मढ कर उनके सूंडो को शृगारित किया था। (४) जब महावत उन्हे जोतते थे, वे अकुश ग्रहण करते थे, क्योकि बिना गजरैंन (अकुश ?) के वे [हाथी] दल (सेना) मे रोकने से रुकते नही थे। (५) श्रावण मे मेघ मानो अवनमित हो गए हों, इस प्रकार

वे पाखरित गजेन्द्र [युद्ध मे प्रवृत्त होने की] प्रतीक्षा कर रहे थे। (६) जिनके मस्तको पर वज्र (फौलाद) [के तवे] थे, ऐसे वे घन [सदृश हाथी] जब वहाँ पर फैल गए, रण-क्षेत्र मे छाया आ पडी। (७) दल तथा पद-दल मे धूल उठी और सूर्य छिप गया।

(११८)

'महरइ' काढि 'केकान' पलाने। दहु 'दिसि' धरे लोर पह आने।
'हस हासुले' भवर सुहाए। 'जनु' बग घन 'कारी' महि आए।
उद(दि)र समद भुइ' पाउ न धरही'। 'सावकरन जस' नाचत 'रहई(ही)'।
'महू तुरग' तीनि पा ठाढे। 'टेइं हराह' 'पक्खरन्हि गाढे'।
बोर कररिया 'अउ सुरराहा'। 'दहु दस रूप जोति ते आहा'।
पवन पाइ परबत सम 'देही' देखि तरास उडाहि।
बहुल 'धाप धर धावहि थामे हिरि' न रहाहि॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ७८, बी० ३६६-३६८।

शीर्षक—मै० सिफत असपान राव महर।

पाठान्तर—(१) १ बी० महरि। २ मै० तोखार। ३ बी० दिस। (२) १ बी० हास हसौला। २ बी० जानौ। ३ बी० कार। (३) १ बी० पाव धराही। २ मै० भाउ गरब ते। ३ बी० नचत रहाही। (४) बी० मुहये तुरज। २ बी० तीनि हजार। ३ बी० पखरिया काढे। (५) १ बी० औ सुरवाहा। २ बी० जिहि की घाप सराहौं काहा। (६) १ बी० मे नही है। (७) १. बी० घाघर थोरे ठोक हरि न।

अर्थ—(१) महर ने निकाल (निकलवा) कर केकानो (घोडो) को पर्याण से सज्जित किया (कराया) और उन्हे लोरिक के पास ला कर दस ओर रख दिया। (१) हस जैसे हासुले थे ओर सुहावने भवर थे, जो ऐसे लगते थे मानो किसी वादल की कालिमा मे बकुले आए हुए हो। (३) उदिर और समद भूमि पर पैर नही रख रहे थे, और श्यामकर्ण जैसे नाचते ही रहते थे। (४) महुए घोडे ऐसे थे जो तीन पैरो पर खडे होते थे [चौथा पैर रखते ही दौडने लगते थे ?]। टेई और हराह गाढे पाखरो मे [सन्नद्ध] थे। (५) [इनके अतिरिक्त] बोर, कररिया (गुर्र ?) और सरराह (सेराह) थे, ये [दस जातियो के घोडे] मानो दस रूपो और ज्योतियो के थे। (६) वायु मे ये पैर इस प्रकार देते (चलाते) थे मानो पर्वतो पर चढ रहे

हो और चाबुक देख कर ही ये उडने लगते थे। (७) बहुतेरे धाप (=½ कोस) तो ये धरा पर [थामते-थामते] दौड जाते थे और थामने पर लज्जित होकर रुकते नही थे।

(११९)

कसि कसि चढे 'सबहि' असवारा। 'जियत न देखउ जिन्हकर' मारा।
बिसहि बुझाए 'सानइ' धरे। 'बेलक' सौ सौ तरकस भरे।
'खरगन्हि बसइ' 'बीजु कइ कया'। रगत 'पियासी कर नहि मया'।
बीर 'अस्सु रन' 'पखरी(रि)न्ह चढे'। 'तारू तरवा लोहइ जरे'।
टाटर पहुचिउ 'रागइ' कसे। 'झरकहि लवकइ सोनइ रसे'।
'जिन्ह के' हाक 'परहि' नर औ गज लेहि तरास।
'मरहि' सीह 'हिए डरि' सुनि 'कइ' रहे 'निवास'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ७९। बी० ३६९-३७१।

शीर्षक—मै० सिफते सवाराने जगी।

पाठांतर—(१) १ बी० सभै। २ बी० जैति (जियत—फारसी) न देखो जिह कर। (२) १ बी० सानहि। २ बी० बोलक। (३) १ बी० खरगैहि। २ बी० बीज की काया। ३ बी० पियासे (पियासी—फारसी) करहि न दया। (४) १ मै० आरनर। २ बी० रखरहू चरे। ३ बी० तारौ (तारू—फारसी) तरवा लोहहि जरे। (५) १ बी० बहुजू रागै। २ बी० झरकैहि लवकैहि सोनै कसे। (६) १ बी० जिहकी। २ बी० परैहि। (७) १ बी० मरौह। २ बी० हिय डरि कै। ३ बी० कै। ४ मै० न पास।

अर्थ—(१) [घोडो पर जीने] कस-कस कर सभी सवार चढे, जिनके मारे हुओ को मैंने जीते हुए नही देखा। (२) विष मे बुझाए हुए और शान पर रक्खे हुए बेलक (बाण) तरकशो मे सौ-सौ रक्खे हुए थे। (३) [उनके] खड्गो मे विद्युत् की काया निवास करती थी, जो रक्त से प्यासी थी और [किसी पर] मया (ममता) नही करती थी। (४) [ऐसे] वीर अश्वो पर रण मे पाखरित होकर चढे थे और तालु से तलवे तक वे लौह से जडे (मढे) हुए थे। (५) वे टाटर, पहुची तथा रागो (क्रमश भुजाओ तथा पैरो के कवच) कसे हुए थे, जो सोने से रसे हुए [होने के कारण] झलक और लपलपा रहे थे। (६) [वे ऐसे थे] जिनकी हाक पर मनुष्य गिर पडते थे, हाथी त्रास करते थे, (७) तथा सिंह हृदय मे डर कर मर जाते थे, और इसलिए अपने निवासो मे ही बने रहते थे।

(१२०)

'गीधन्ह नेउता कुटुब हकारा'। 'आनि' रसोइ 'आगि' 'परजारा'।
आजु बाठ सेती खड तारा। 'लोरिक' 'पसाएं' 'करउ जेवनारा'।
'नौता काल देस कर' आवा। 'चील्हन गै दर मांडव' छावा।
सरगि 'ऊड तेहि फरहरि खीनी'। 'गारि' 'करोर' भाति 'रस भीनी'।
सुना 'सियार' पितर 'पख' आवा। 'रइनि' पासि 'सब जाति बोलावा'।

'गूद मासु धरि तोरबि' रगत भरवि 'नइ' कुड।
आठ मास धर 'जेवहि' सात मांस लहि मुड॥

संदर्भ—मै० पत्र ८८, शि०, बी० ३७२-३७४।

शीर्षक—मै० सिफते जानवरा मुरदार ख्वार।

शि० : आमदन जमअदारान मुरदार ख्वारान हुमः अज······।

शि० मे अर्द्धालियो के प्रथम चरण तथा दोहे के दोनों चरण अपाठ्य हैं।

पाठान्तर—(१) १ बी० गिद्धव निवता कुटबा हकारी। २ मै० कीत। ३ मै० अगिनि। ४ वी० परजारी। (२) १ मै० लोर। २. बी० साय। ३ बी० करहि जिवनारा। (३) १ वी० निवता फाग देस कै। २ बी० चील्हह कौ घरि मडपु। (४) १ वी० गुवरि फरहरहि घनी। २. मै० गालि, वी० कारि (गारि—फारसी)। ३ मै० गरोहि। ४. मै० रस कीनी, बी० दस तनी। (५) १. बी० सियारि। २ मै० मख (पख—नागरी)। ३ बी० रैनि। ४ बी० सभ जाति बुलावा। (६) १ वी० गोड (गूद—फारसी) मास घर जीवन। २ वी० नै। (७) १ बी० पूरव।

अर्थ—(१) गिद्धो ने निमत्रण भेजा और कुटुबियो को वुला भेजा, [उन्होने कहलवाया,] "हमने आ कर रसोई की है और [उसके लिए] अग्नि प्रज्वलित की है। (२) आज वाठ से [लोरिक ने] इस [भू-] खड को [समझना चाहिए कि] तार दिया, अत लोर के प्रसाद से हम यह ज्यौनार कर रहे है।" (३) जव स्वदेश का यह निमत्रण-काल आया, चीलो ने जाकर दल मे मडप छाया। (४) वे आकाश मे इसीलिए क्षीण पताकाओ जैसी उडने लगी, [उनकी] वाते करोडो भाति की और रस-सिक्त थी। (५) स्यारो ने सुना कि पितृ-पक्ष आया हुआ है, इसलिए उन्होने [उस सहार-क्षेत्र मे] रात्रि के समय समस्त जाति को पास वुला लिया। (६) [उन्होने कहा,] "गूदा

और मास हम पकड कर तोडेंगे और रक्त से कुड भरेंगे। (७) आठ मास तक हम धडो का भोजन करेंगे, और सात मास तक मुडो का।"

(१२१)

चहु दिसि 'देख राउ' दरु आवा। रहा अचलु होइ चल न चलावा।
'जउ रे' 'चलावहि' 'जाइय' कहा। कवनु उतरु अब 'दीजइ' तहा।
'ओछे दर हम बाजे आई'। 'आए पवरि अब जाइ न जाई'।
देस मडर महि लागी लाजा। 'बूडि सिराउ' 'ओछहि सहु' भाजा।
काहू सो मतु 'करइ न पारे'। 'जेइ रे सुना सो आगे हारे'।
राइ भाट कहि 'पठए' 'महर करहु अब' काउ।
एक एक 'सहु झूझइ' दूसर 'नियर' न आउ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ८६, बी० ३७५-३७७।

शीर्षक—मै हैवत खुरदन रूपचद व फरिस्तादने भट।

पाठान्तर—(१) १ बी० देषि राय। (२) १ बी० जौ रु। २ बी० चलावैहि। ३ बी० जाहिहै। ४ बी० दीजै। (३) १ बी० वोछै दर महि पाछै आये। २ बी० पूर अनी यहि जान न जाये। (४) १ बी० पूर (बूडि—फा०)। २. बी० वोछै सौ। (५) १ बी० परै न पारै। २. बी० जिहि सुना सु येको नहि हारै। (६) १ बी० पठवा। २ बी० कहहु महर अस। (७) १. बी० सौ जूझै। २ बी० नेर।

अर्थ—(१) राजा [रूपचन्द] ने देखा कि चारो ओर से [महर का] दल आ रहा था, वह दल अचल हो रहा था तथा चलाने (हटाने) से चलता (हटता) [भी] नही था। (२) [वह सोचने लगा,] यदि वे चलाए गए तो हम [भाग कर] कहा जाएँगे और अब वहा (अपने यहा) क्या उत्तर देंगे? (३) [अपने से] तुच्छ दल से आकर हम भिड गए और [उसकी] पौरी पर आकर अब [वापस] जाया नही जा रहा है। (४) देश और मडल मे हमे लज्जा लग गई, जो ओछे से [परास्त होकर] भाग निकलता है, वह डूब कर ही शीतल होता है (शाति लाभ करता है)। (५) किसी से हम मत न कर सके, और जिन्हे भी मैंने सुना है, वे आगे हार [ही] चुके है।" (६) राजा [रूपचन्द] ने [अपने] भाट को यह [कहने को] कह कर भेजा, "हे महर, अब क्या करोगे? (७) [यदि स्वीकार हो तो] एक-एक योद्धा एक-से ही झूझे और दूसरा नर (योद्धा) उनके निकट न आए (जाए)।"

(१२२)

बहुरे भाट दिवाए पाना। महर बोलु राजा 'कर' माना।
'बाठु' झुझारु फेरी(रि) 'लइ' आवा। 'पाछे परे तिन्ह झगर बसावा'।
सीह 'सिगार' बीर 'दुइ' आए। राय मया करि पान दिवाए।
ओडन सीह 'झकोरि ऊतरा'। 'हिलतहि' खरगु खिसि धरती परा।
'चढत अनी कुसगुन' अस 'भए'। 'सीह सिगार लौटि रन' 'गए'।

सीह लाग 'रन बरिसइ' 'कापि त' 'उठइ पतार'।
सुनहा 'भयो चेर क(कु)वरू कर' 'काटेसि खेदि' सियार ॥

सन्दर्भ—मै० ६०, बी० ३७८-३८० ।

शीर्षक—मै० वाज गश्तने भट व जग करदने सीह व गुश्त' शुदन ऊ ।

पाठान्तर—(१) १ बी० का। (२) बी० वीरु। २. बी० लै। ३. बी० पाछै सरहि न जिन्ह का पावा। (३) १ बी० सिगा। २. वी दोइ। (४) १ वी० झकोरा तरा (झकोरि उतरा—फ़ा०)। २ बी० हाथि। (५) १ वी० चरत अनी कुसुगुन। २ मै० भएऊ। ३. बी० सीगार रूपि रिन। ४ वी० गये। (६) १. बी० रिन रासै। २ बी० कापत (कापि त—फा०)। ३ बी० उठै न पार (पतार—फा०)। (७) १. मै० भएउ चर कुवरू। २ वी० काटसि देखि।

अर्थ—(१) पान दिलाए जाने पर भाट वापस गए, क्योकि महर ने राजा [रूपचद] के वचनो को मान लिया था। (२) [अब] योद्धाओ को वाठ फिरा कर ले आया और जो [सैनिक] पीछे जा पड़े थे, उन्हे उसने झगडे (युद्ध) मे ला वसाया (स्थित किया)। (३) सीह और सिगार [नाम के] दो वीर आए और राजा [रूपचद] ने उन्हे मया (ममता) कर पान के वीडे दिलाए। (४) ओडन को झकोले देकर सीह [युद्ध मे] उतरा किन्तु उसका खड्ग [युद्ध मे] हिलते ही (प्रविष्ट होते ही) धरती पर गिर पडा। (५) मेना के चढाई करते ही ऐसा अपशकुन हुआ, इसलिए सीह और सिगार [एक वार] लौट कर युद्ध मे गए। (६) रण-क्षेत्र मे जब सीह वरसने (शस्त्रास्त्र चलाने) लगा तव पाताल भी काप उठा। (७) किन्तु वहा [उसके लिए] कुवरू का चेर (पुत्र) श्वान हुआ, जिसने उस स्यार को खदेड कर काटा।

(१२३)

देखि 'सिंगार' कोह 'परजरा'। बाधि फरहरा 'आगें' सरा।
दौरि 'किहेसि' सिर 'खाडइ' घाऊ। टाटर टूटि 'काढि' गा पाऊ।
दूसर खाड 'लिहेसि' पटतारी। फरी फाट धर 'गएउ' उबारी।
'दापि' सिंगार चेर तस मारा। 'बिचला' खाड टूटि गइ धारा।
पुनि 'जमदाढ' 'पानि' कर गही। बजर चोट सिर 'चेरइ' सही।
'बिनु' हथियार भा 'राउत' परि गा 'थाकि' सिगार।
एक चोट 'दुइ कीतिसि' धर 'सेउ' फाट कपार॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ६१, वी० ३८१-३८३।

शीर्षक—मैं० जग करदन सिंगार बा बाठा व गुश्त शुदने सिंगार।

पाठान्तर—(१) १ वी० सिगा। २ मैं० परचरा। ३ वी० आगैं। (२) १ वी० दिहेसि। २ वी० षाडै। ३. वी० गाडि। (३) १ वी० लिहसि। २ वी० गयो। (४) १ वी० दावि। २ वी० विचरा। (५) १ मैं० जमधर। २ वी० सपानि। ३ वी० चेरे।(६) १ वी० बिन। २ वी० रावत। ३ वी० थाक (थाकि—फा०)। (७) १ वी० दोइ कीन्हसि। २ वी० स्यौ।

अर्थ—(१) यह देखकर सिंगार क्रोध से प्रज्वलित हो उठा और फरहरा (पताका) बाध कर आगे बढा। (२) उसने दौड कर [कुवरू के चेर—पुत्र के] सिर पर खाडे का घाव किया, जिससे [उसका] टाटर टूट गया और वह [घाव] उस का पाउअ (वस्त्र) निकाल गया। (३) दूसरा खड्ग उसने जाच-भाल कर लिया, [इस बार के आधात से कुवरू के चेर—पुत्र की] फरी फट गई यद्यपि धड उबर (बच) गया। (४) अब सिंगार ने दर्प मे आकर [कुवरू के] चेर (पुत्र) पर [पुन] आघात किया, किन्तु उसका खाडा विचलित हो गया और उसकी धार टूट गई। (५) तदनतर उसने हाथ मे जमदाढ (यमदष्ट्रा) ग्रहण की और [उस की] वज्र (फौलाद) की चोट [कुवरू के] चेर (पुत्र) ने सहन की। (६) किन्तु जब वह बिना हथियारो का हो गया, वह राजपुत्र सिंगार थक कर गिर पडा। (७) [विपक्षी की] एक चोट ने उसके दो [टुकडे] कर डाले और धड के साथ उसका कपाल फट गया।

(१२४)

'बरम' दास धरमू 'दुइ' आए। राइ 'मया करि' पान दिवाए।
आजु 'सो' दिनु 'जा कह पतिपारे'। 'गाउ ठाउ' कापर 'मइ' सारे।

ओडन चवर लाग घूघरा। बरमदास 'पउ' 'आगे' धरा।
छाडि फरी घन(नु)हर कर गहा। बान 'फुक (पुख)' धरि 'चेरइ' रहा॥
बरमदास तुम्ह 'नियर न आवहु'। कौने लाभ कहु जीउ 'गवावहु'।
बरमदास मन कोपा काटि 'मूड' 'लइ' जाउ।
'बिछुटा पान निकरि गा बरमदास पर ठाउ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ९२, वी० ३८४-३८६।

शीर्षक—मै०: आमदने बरमदास व घरमू अज तरफे राव रूपचद व गुश्त· शुदने बरमदास।

पाठान्तर—(१) १. मै० ब्रह्म। २ वी० दोइ। ३. वी० बिचारे। (२) १ वी० सु। २. वी० जाकौ प्रतिपारे। ३ बी० गाव ठाव। ४. बी० मैं। (३) १ वी० पगु। २ बी० आगै। (४) १. मै० धानुक। २ बी० भुवग। ३ बी० चेरैं। (५) १ बी० नेर न आयुहु। २ बी० गवायहु। (६) १ वी० माथ। २ वी० लै। (७) १. बी० निछुटा बान बिरथ गा परा न छडिसि ठाऊ।

अर्थ—(१) [तदनतर] ब्रह्मदास और धरमू—ये दो [योद्धा] आए, राय [रूपचद] ने इन्हे मया (ममता) करके पान [के बीडे] दिलाए। (२) [राजा ने कहा,] "आज वह दिन है जिसके लिए तुम प्रतिपाले गए थे, जिसके लिए तुम्हे गाव, स्थान और कपडे मैंने दिए थे।" (३) [यह कहकर] घूघर लगे हुए ओडन और चामर उसने ब्रह्मदास के पैरो के आगे रख दिए। (४) [ब्रह्मदास ने] फरी छोड कर हाथ मे धनुष पकड़ा तो [कुवरू के] चेर (पुत्र) ने वाण (शर) पर पुख (अग्रभाग) रक्खा। [उसने कहा,] "ब्रह्मदास, तुम निकट न आओ। किस लाभ के लिए तुम अपने प्राण गवा रहे हो?" (६) ब्रह्मदास [यह सुनकर] मन मे कुपित हुआ [और उसने कहा,] "मैं [तुम्हारा] सिर काट कर ले जाऊगा।" (७) [तब तक उस चेर (पुत्र) वाण] छूट पडा, उसके प्राण निकल गए और ब्रह्मदास उसी स्थान पर गिर पडा।

(१२५)

फुनि धरमू 'गुन' मेलिसि तानी। 'नाध टूट अउ' पनच गवानी।
'जौ ले(ल)हि चेर सभरे भाली। 'तौ लहि' धरमू 'चापइ' 'घाली'।
'धरमू कोपि पीठि लइ फिरइ'। 'चेरइ कर धरमू के घरइ'।

'गा' परान धरमू घर 'पार(रे)सि'। काढि कटार 'हिए' महि मारेसि।
'देइ पाउ तोरेसि भुअडडा'। 'काटेसि' 'चेरु' 'सुनेसि' नव खडा।
'रनमल पइठ खरग लइ' मारेसि कुवरू क पूत।
'रहइ' न टेका 'नर पइ' 'जूझ राइ' जम जूत॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ६३, बी० ३८७-३८९।

शीर्षक—मै० जग करदन धरमू व गुश्त शुदन धरमू।

पाठान्तर—(१) १ बी० कौ (गुन—फा०)। २ बी० नाह टूटि औ। (२) १ मै० चला वजाइ भेरि औ तूरा (तुल०—अगले कडवक के (२)।१ से)। २ बी० तौ लेहि। ३ बी० चापा। ४ मै० घाला। (३) १ बी० कवरू क पूत बैठि (पीठि—फा०) लै फरी। २ बी० मिलताह करि धरमू की धरी। (४) १ बी० गए। २ मै० मारेसि (पारेसि—नागरी)। ३ बी० कठ। (५) १ बी० दोउ पाव तोरसि भुव दडा। २. बी० काटा। ३ बी० किया। (६) १ बी० रणमल हाथि फरी लै। २. बी० मारसि कवरू का। (७) १ बी० रहे। २ बी० मरिये। ३ बी० ज्यो रु आये।

अर्थ—(१) पुन (तदनतर) धरमू ने [धनुष की] डोरी तान (खीच) कर लगाई, किंतु उसका नाघ (वद) टूट गया और उसकी प्रत्यचा जाती रही। (२) किन्तु जब तक [कुवरू के] चेर (पुत्र) ने भाला सभाला, तब तक धरमू ने धनुष मे [प्रत्यचा को] डाल लिया। (३) जब धरमू कुपित होकर उसकी पीठ पर घूम पडा, तो [कुवरू के] चेर (पुत्र) ने धरम् के हाथ पकड लिए। (४) जब उसने धरमू को धरा पर गिरा दिया, उसके प्राण निकल गए, तदनतर उसने कटार निकाल कर उसके हृदय मे घुसा दी। (५) पैरो को देकर [कुवरू के] चेर (पुत्र) ने उसके भुजदडो को तोड डाला, और [फिर] उन्हे काट डाला। इसे नवखड [पृथ्वी] ने सुना। (६) तब रणमल खड्ग ले कर रण मे प्रविष्ट हुआ, और उसने कुवरू के पुत्र (चेर) को मारा। (७) किन्तु वह योद्धा [युद्ध करने से] रोका न जा सका, और वह यमराज का युक्त (जोड) जूझ गया।

(१२६)

'रनपति' 'महर' दीन्ह 'अगुसारी'। 'चाह बियाहि आनइ' कुवारी।
चला बजाइ भेरि अउ 'तूरा'। खरग मूठि 'भरि लिहेसि सेधउरा'।
दौरि खाड 'रनमल' सिर दीन्हा। रकत धार 'सभ' सेदुर कीन्हा।

'रनमल' परत सिरीचदु 'आवा'। 'रनपति' पाखर घालि गजावा।
अजैराज 'सीगिनि' कर गही। 'मारेसि बेलकु' पाखर रही।
छाडि सिरीचंदु पाखर भागा जिउ 'लइ गएउ' पराइ।
राइ देखि बाठा 'कहु (कह)' तुम्हं 'किन जूझौ (झूझउ?)' जाइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ६४, वी० ३६०-३६२।

शीर्षक—मै० ऐजन कैफियत जग रनपति गोयद।

पाठान्तर—(१) १ वी० रेवत। २ वी० महरि। ३ वी० यकतारी। ४ वी० जाइ विवाहौ थैनि। (२) १ मै० तुरा (तूरा—नागरी)। २ वी० घसि जरे सिदूरा। (३) १ वी० रणमल। २ वी० सब। (४) १ वी० रणमल। २ वी० धावा। ३ वी० रैपति। (५) १ वी० सागनि। २ वी० मारसि वेलुक। (६) १ वी० ले गया। (७) १ मै० मे नही है, २ मै० कस झूझि न।

अर्थ—(१) [यह देख कर] महर ने रणपति को आगे बढाया, जो चाहता था कि व्याह कर [चादा ?] कुमारी को ले जाए। (२) वह भेरी और तूर्य बजाकर चला, उसने खड्ग को मुट्ठी मे कस कर पकडा [जैसे उसने हाथ मे] सिन्दूर-पात्र लिया [हो]। (३) उसने दौड कर रणमल के सिर पर खड्ग का आघात किया और रक्त की धारा से उसके सब (कवच-वस्त्रादि) को सिन्दूर [-पूरित जैसा] कर दिया। (४) रणमल के गिरते ही श्रीचद आया, तो रणपति ने [उसके] पाखर पर आघात कर उस गजित किया। (५) [तब] अभयराज ने हाथ मे सिंगिनी पकडी, और उससे उसने मारा (आघात किया), किन्तु उसकी वेलक पाखर मे ही [लग कर] रह गई। (६) श्रीचद पाखर को छोड कर भाग निकला और अपना जीव लेकर पलायित हो गया। (७) राजा [रूपचद] ने यह देख कर वाठ से कहा, ["ऐ वाठ,] तुम क्यो नही जाकर युद्ध करते हो ?"

(१२७)

वीरपालु गिरपति 'लइ आवउ'। 'भुजबीर हमीर सीगन बुलावउ'।
करमदास 'सतराज' दिवानद। 'विजैसेन' महिराज बिजैचद।
गनपति द्यौसू (दिवसू)' निकरू नागू। 'हिरदै घवरू सरदेव जागू'।
देवराज 'हरराज' सरूपा। अजे सिंघु हरिपार 'निरूपा'।
'धीरधर' हरखू गनपति 'आनउ'। 'सीउराज मदनू भल जानउ'।

तीस पखरिया 'आनउ' 'सभु' दरु 'मारउ' आजु ।
'हाथि घोर' धन चादा 'लीजइ' गोवर 'कीजइ' राजु ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र ९५, वी० ३९३-३९५ ।

शीर्षक—मैं० आमदने वाठा वा फौज खुद दर मैदाने जग ।

पाठान्तर—(१) १ वी० लै आऊ । २ वी० भीजर सुगनु हमीर बुलाऊ । (२) १ वी० दिवराज । २ वी० विजय सेन । ३ मैं० अउ महिराज । (३) १ मैं० देमू । २ वी० सहदे परगू औ फुनि गाजू । (४) १ वी० महिराज । २ वी० नरूपा । (५) १ वी० धीरू । २ वी० आनू । ३ वी० स्योराज मनू औवलू सुजानू । (६) १ वी० आने । २ वी० सवु । ३ वी० मारौ । (७) १ वी० हस्ती घर । २ वी० लीजै । ३ वी० कीजै ।

अर्थ—(१) [वाठा ने कहा,] "मैं वीरपाल और गिरपति को ला रहा हू, भुजवीर, हमीर तथा सीगन को वुला रहा हू, (२) करमदास, सतराज, देवानद, विजयसेन, महिराज, विजयचद, (३) गनपति, निकरू, देवसेन, नागू, हिरदै, घवरू, सरदेव, जागू, (४) देवराज, हरराज, सरूपा, अजयसिह, हरपाल, निरूपा, (५) धीरधर, हरखू और गनपति को ला रहा हू, मैं शिवराज और मदन को भी भली भाति जानता हू । (६) [इन] तीस पाखरित योद्धाओ को लाऊगा, और समस्त [शत्रु-] दल को मार गिराऊगा । (७) हाथी, घोडे, धन तथा चादा को आप लीजिए और गोवर पर राज्य कीजिए ।

(१२८)

अनी पूरि बाठा 'लइ' आवा । 'महर दीख अउ' लोरु वुलावा ।
लोरिक वीर पखरिया 'पारहु' । 'भीव' 'डागवइ तइस' 'हुकारहु' ।
पाच 'वैस पाच' चौहाना । खत्री पाच देस 'चहु' जाना ।
नाउ एक तीनइ 'सहनानी' । पाखर 'नेक' रूड 'की वानी' ।
'गहरवारा अउ रोड दसाने' । पाखर 'कूडि तुला सेउ जाने' ।
अनी आइ 'दुइ' 'ओनई' 'जैसे अखाड के' मेह ।
'लोह पहिरि' 'सभ' ठाढे तिल 'इक' सूझ न देह ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र ९६, वी० ३९६-३९८ ।

शीर्षक—फिरिस्तादने महर लोरिक वा मुकावले वाठा ।

पाठान्तर—(१) १ वी० लै । २ वी० महरि देपि । (२) १ वी० पारौहु । २ मैं० भीय । ३ वी० डागव तीस (तइस—फारसी) । ४. वी०

हकारहु। (३) १ वी० वैसि माझी। २ बी० वहु (चहु—नागरी)। (४) १ मैं० साहीने। २ वी० जैऔ। ३ मैं० केकीने। (५) १ वी० अगरवार औरा दरसाई। २ बी० लूड (कूडि—फारसी) तुलाने आई। (६) १ वी० दोय। २ वी० उनई। ३ बी० जस उषारि (असाड—फारसी) गह। (७) १ वी० लो पर। २ मैं० सब। ३ वी० यक।

अर्थ—(१) सेना पूरी कर बाठा लाया है, महर ने यह देखा और लोरिक को वुलाया। (२) [उससे कहा,] "ऐ पाखरिया लोरिक वीर, तुम्ही [हमे वचा] सकते हो, भीम ने डगवै के लिए [जैसे हुकार (गर्जना) की थी], वैसे ही तुम भी मेरे लिए हुकार (गर्जना) कर उठो। (३) पाच बैस है, पाच चौहान हैं, और खत्री पाच है, यह चारो [ओर] जगत् जानता है। (४) नाम एक है, केवल साभिज्ञान (रूप-रग आदि) तीन हैं, [जैसे] एक ही रूड (?) की वर्णिका के अनेक पाखर किए हुए हो। (५) गहरवार, रोड तथा दसाने पाखर, कूडि और तुला के साथ तुम्हारे जाने हुए है। (६) दोनो सेनाए आ कर अवनमित हो गई है, जैसे आषाढ के मेघ होते है। (७) [सैनिक] इस प्रकार लौह-मडित खडे हैं कि तिल भर भी [किसी का] शरीर नही दिखाई पड रहा है।"

(१२९)

उभरे खरग 'कुत तरवारी'। 'घरी एक लहि होइ रन मारी'।
'टूटहि' रुड मुड धर 'परही'। जिय 'कर' लोभु न चित महि 'धरही'।
'खरग' 'डडाहर बाजहि' तारा। 'भई' फाग दर 'भा' रतनारा।
'जस फागुन' 'फूलहि वन' टेसू। 'तस रन रगत' 'रात भए भेसू'।
वाजहि भेरि 'सीग अउ' तूरा। दर भा चाचर रगत सिंदूरा।
'परे पखरिया चहु दिसि' कठ राज सरु लाग।
महर बीर कछु उबरे बाठा जिउ 'लइ' भाग॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ९७, वी० ३९९-४०१।

शीर्षक—मैं०. सिफते जग कर्दने वाठा वा लोरिक व हजीमते खुरदने ऊ।

पाठान्तर—(१) १ वी० कठ (कुत—फारसी) तरवारि। २ वी० खतरी येकि कुरैहि रिन मारि। (२) १ वी० टूटेहि। २ वी० परैहि। ३ वी० का। ४. वी० घरैहि। (३) १ मैं० खरल। २ वी० डडाहर वाजैहि। ३ वी० भये। ४ मैं० रन। (४) १ वी० जैसे वसत। २ वी०

वन फूलैंह । ३ वी० तैसे रिनगर । ४ वी० रावै भैसू । (५) १ वी० सख अव । (६) १ वी० दोइ दर जूझत रावतह । (७) १ वी० लै ।

अर्थ—(१) खड्ग, कुत (बर्छे) और तलवारे उभड (उठ) पडे और एक घडी तक रण-क्षेत्र मे मार होती रही । (२) रुड (धड) टूटने तथा मुड धरा पर गिरने लगे, [सैनिक] जीव का मोह चित्त मे नही रख रहे थे । (३) खड्गो के भारी दड तथा ताल वज रहे थे, [दोनो] दलो मे फाग [सी] हुई थी और रण [-क्षेत्र] लाल हो रहा था । (४) जैसे फाल्गुन मे वन मे किशुक फूलते है, वैसे ही रण [-क्षेत्र] मे [योद्धाओ के] वेष रक्त से लाल हो रहे थे । (५) भेरिया, सिंगे और तूर्य वज रहे थे, दोनो दलो मे [जैसे] चाचर हुई थी और वे रक्त से सिन्दूरित हो रहे थे । (६) पाखरे हुए सैनिक चारो ओर पडे हुए थे [जब] राजा [रूपचद] के कठ मे [लोरिक का ?] शर लगा । (७) महर के ही कुछ वीर बच रहे थे, और बाठा जीव लेकर रण-क्षेत्र से भाग गया था ।

(१३०)

'राइ' कहा बांठा कस 'कीजइ' । सभ दरु चापि नगर 'किन' लीजइ ।
'जउ तह राइ आपुन पछ्वाइय' । चाद 'सइहिं झूझेहिं' बिन 'पाइय' ।
'भर लइ खाड आए तस जोरी । देखहि देव तैतिसउ कोरी' ।
'पैकहिं पैकहि भएउ' अभेरा । चला भाजि राजा' कर 'खेरा' ।
'चादा कारन झूझ बनि आई (आवा)' । रावतह रगत 'भएउ पैरावा' ।
'लेइ' पखरिया 'राजा' 'सिमटा' 'सुनहु बाठ' कस कीज ।
'कइ चादा लइ' 'जाइय राजा' 'कै(कइ) गोवरि' 'सिरु' दीज ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र ६८, बी० ४०२-४०४ ।

शीर्षक—मै० मशावरत करदने राव रूपचद बा बाठा ।

पाठान्तर—(१) १ वी० राय । २ बी० कीजै । ३ बी० कौ । (२) १ बी० जै न राय आपुन मडि आये । २ वी० कमी तु जूझ । ३ वी० पाये । (३) १ बी० मे पक्ति छूटी हुई है । (४) १ बी० बीखन बीखन (पैकहिं पैकहिं—फारसी) भयो । २ बी० गढु केरा । (५) १ बी० अरथाह जैति लई चलि आवा । २ बी० भयो परावा । (६) १ मै० लेइ जउ । २ मै० मे नही है । ३ बी० समटौ । ४ वी० सुनु बाठा । (७) १ वी० कै रु चाद लै । २ वी० जाइये । ३ मै० कै गोवरा । ४ मै० जिउ ।

अर्थ—(१) राजा [रूपचद] ने कहा, "बाठा [अब] कैसे किया जाए। [एकौझा युद्ध त्याग कर और] समस्त सेना को [युद्ध मे] धकेल कर नगर को क्यो न ले लिया जाए ?" (२) [बाठा ने कहा,] "यदि हे राजा, आप [अपने को सेना के] पीछे रखिए, तो आप चादा को अपने-आप बिना युद्ध किए पा जाइएगा।" (३) भट खड्ग लेकर इस प्रकार जुड आए कि तैंतीसौ कोटि देवता [उन्हे] देखने लगे। (४) पायक (पदाति) से पायक (पदाति) की भिडत हुई और राजा [रूपचद] का खेडा (दल) भाग चला। (५) [राजा ने कहा,] "चादा के लिए ऐसा युद्ध बन आया है कि वहाँ पर रावतो के रक्त का तैराव हो गया है। (६) जो पाखरित योद्धा थे, वे जीव (प्राण) लेकर सिमट आए हैं, हे बाठ, [अब] कैसे किया जाए ?" (७) [बाठ ने उत्तर दिया,] "अब, ऐ राजा, या तो चादा को ले जाइएगा और या तो गोबर मे प्राण दीजिएगा।"

(१३१)

राइ पखरिया 'सौ' मोहि देहू। औ सै तीनि चारि तुम्ह लेहू।
'लइ अभिरउ हउ राउत' जहा। 'पाछे मोरि न छाडहु तहा।
चला महरु 'गहे रई' मथानी। 'बाठइ पटुवइ तोहि केइ' आनी।
दरु 'लइ' बाठा तेहि 'भुइ गएऊ'। जहा 'अभेरु' महर 'सेउ अहेऊ'।
दूध पियावत 'भरहिं' न कोई। 'अस कै' मथे 'गाल कित' होई।
परे पखरिया 'नौ दस' बहुल पाइ होइ भाग।
महर सनाहु टूटिगा 'अउ(उं)छि' खाड धर लाग॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ६६, बी० ४०५-४०७।

शीर्षक—मैं०. जवाब दादन बाठा बर राव रूपचद।

पाठान्तर—(१) १ बी० सो। (२) १ बी० उभरौ हौ रावत। २ बी० पाछौ। भोर न छाडौ। (३) १ बी० कै परी। २. बी० वाठै नवी कौन कौहु (४) १ बी० लै। २ बी० तहा भी गयो। ३ बी० अभीरु (अभेरु—फारसी)। ४ बी० म्यौ भयो। (५) १ बी० बहु। २. बी० अति कै मथै। ३ बी० काकतू। (६) १ बी० नव दमै। (७) १. बी० वोछ।

अर्थ—[बाठ ने कहा,] "हे राजा, मुझे सौ पाखरित योद्धा दो, और तीन-चार सौ तुम [साथ रख] लो; (२) उन्हे लेकर मै वहाँ भिड रहा हूँ जहाँ पर [शत्रु-पक्ष के] रावत हैं, उन्हे मैं पीछे मोड कर भी छोडूँगा नही।"

(३) [तदनतर वाठा ने महर के पास पहुँच कर कहा,] "ऐ महर, तू [भी] रई-मथानी लेकर चल पडा है!" [उसने उत्तर दिया,] "ऐ वाठ बुनकर, तुझे कौन [नासमझ] ले आया ?" (४) दल लेकर [तदनतर] बाठ उस भूमि मे गया जहाँ महर से भिडत [होनी] थी। (५) उसने [महर से] कहा, "भटो को कोई दूध नही पिलाता है, इस प्रकार के मथने से कहाँ तक बात होगी (बनेगी) ?" (६) नौ-दस पाखरित योद्धा वहाँ धराशायी हुए, और बहुतेरे पैदल हो कर भाग निकले। (७) महर का सन्नाह टूट गया [जब बाठ ने प्रहार किया], किन्तु [बाठ की] तलवार सिमट कर धरा से जा लगी।

(१३२)

पलटा लोरु 'सिघ' 'जस' गाजा। 'पहिल खाड राजा' सिरि बाजा।
खरग 'तारि लोरिक कइ बाजी'। पाखर काटि राउ 'गा भाजी'।
बिजली अनी 'धरेसि' महिराजू। 'मारेसि' सिरीचद अउ 'भुइराजू'।
बीरराज 'मारेसि ऊभरी'। बजर आगि 'खाडइ' परजरी।
मारि सीगनि 'नइ' रगत बहाई। खरग झार 'लोहुइ' न बुझाई।
'आगे' देइ 'लिहेसि' दरु आपनु हाकि चलाए 'तस टाड'।
'लौटा' बाठु लोर 'सो [सोउ ?]' 'उभारेसि' खाड ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १००, बी० ४०८-४१०।

शीर्षक—मैं० · जग करदने लोरिक वा राव व हज़ीमत ख़ुरदने राव।

पाठान्तर—(१) १ मैं० सिग। २ बी० कैसै। ३ बी० पहली षाड राउ। (२) १ बी० तार लोरिक के वाजे (तारि लोरिक कै वाजी—फा०)। २ बी० गया भाजे (भाजी—फा०)। (३) १ बी० धरसि। २ बी० मरि। ३ बी० भौराजू। (४) १. बी० मारसि औ फरी। २ बी० पा। (५) १ बी० नैं। २ बी० लोहू। (६) १ बी० आगै। २ बी० लहसि। ३ बी० जैसैं डाड। (७) १. बी० लवटा। २ बी० सोन, मैं० मे शब्द नही है। ३ बी० उभारसि।

अर्थ—(१) [तब तक] लोरिक लौट पडा और उसने सिंह के समान गर्जन किया और राजा [रूपचद] के सिर पर [उसका] पहला खड्ग बजा। (२) लोरिक का तीक्ष्ण खड्ग जब इस प्रकार बजा, उसने [रूपचद] का पाखर काट दिया और राजा भाग गया। (३) [राजा की] सेना विचलित हो गई, [तब] उसने महाराज को पकड़ा और श्रीचद तथा भुइराज को

मारा। (४) [पुन जब] उसने उभड कर वीरराज को मारा, खड्ग से वज्र (फौलाद) की अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी। (५) उसने सिंगिनी मार-मार (चला-चला) कर रक्त की नदी बहा दी, [उसके] खड्ग की ज्वाला लहू से नही बुझ रही थी। (६) आगे करने के लिए उसने अपने दल को लिया और उसे टाडे (सार्थ) के समान हाक कर [युद्ध के लिए] चलाया। (७) [यह देख कर] बाठा लौट पडा और लोर से [लडने के लिए] उसने भी खाडा उठा लिया।

(१३३)

'उभरा' बाठु 'लोरिक तस' मारा। 'राघव सुर नर दिए' उबारा।
दूसर खाड 'जउ बइठ' 'सनाहा'। 'पहुचिउ टूटि उतरि' गई बाहा।
उठा लोर सीगिनि कर गही। 'मारेसि' 'बेलक' पाखर रही।
'अभिरे' बीर 'दुवउ' बरिवडा। 'अगिनि बरी' बरु बाजत खडा।
'करह सजोइ' बाठु खिसि परा। हिए पाउ 'दइ' लोरिक धरा।
'धरेसि तारि' तरवारि कंठ 'महि' काटि चला 'लइ' मुड।
भाजि चला 'दर' राउ रूपचदु देखि परा धर 'रुड'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १०१, बी० ४११-४१३।

शीर्षक—मैं० : उफ्तादने बाठा दर मैदान व हज़ीमत ख़ुरदने राव रूपचद।

पाठान्तर—(१) १ मैं० उभर। २ बी० लोरु तसै। ३ बी० परा घोर नरु दई। (२) १. बी० जौ बैठ। २ बी० बहजू टूटि उवरि। (३) १ बी० मारसि। २ बी० बेलुक (४) १ बी० उभरे। २ बी० दोऊ। ३. बी० आगि परी। (५) १ बी० करि सजोउ। २ बी० लोरिक दे। (६) १ बी० देहिसि ता। २ मैं० हति। ३ बी० ये। (७) १ बी० तव। २ बी० मुड (प्रथम चरण मे भी तुक यही है)।

अर्थ—(१) जैसे ही बाठ उभडा (उठा), लोरिक ने उसे वैसे ही मार दिया, मानो राघव ने [रावण को मार कर] सुर-नर को उससे बचाया हो (त्राण दिया हो)। (२) उसका दूसरा खड्ग जब [उसके] सन्नाह पर बैठा, उसकी पहुँची टूट गई और उसकी [एक] बाँह उतर गई (जाती रही)। (३) लोरिक उठा और उसने हाथ मे सिंगिनी पकडी, किन्तु उसने जो बेलक मारी, वह उसके पार मे ही रह गई। (४) दोनो बलवान् वीर परस्पर भिड गए और [दोनो के] खड्गो के बजने से आग जल उठी। (५) [इस

प्रकार] युद्ध का सयोजन कर बाठ गिर पडा तो उसके हृदय पर पैर रखकर लोरिक ने उसे धर दबाया। (६) उसने तीक्ष्ण तलवार उसके कठ मे (पर) रक्खी और उसका मुड काट कर वह ले चला। (७) राजा रूपचद का दल भाग निकला जब उसने धरा पर [बाठ का] रुड (धड) पडा हुआ देखा।

(१३४)

लोरिक कहा जान जिनि 'पावहि'। 'तस मारउ जस बहुरि न आवहिं'।
मारियहि पाइक 'लीजहिं' फरी। रावतह रगत पूरि नइ भरी।
मारि महावत हाथी धरे। 'धरियहिं' ठाढ घोर पाखरे।
बहुते बीर जियत धरि आने। बहुते 'जिउ लइ' निसरि पराने।
मारत खरग मूठि 'असि' लागी। परी साझ राजा 'गा' भागी।
'मरेंहि' न 'सूझइ' धरती रगत 'भएउ' पैराउ।
चला गवाइ राउ दरु 'आपनु' बहुरि न 'आवइ' काउ॥

सन्दर्भ—मैं० १०२, वी० ४१४-४१६।

शीर्षक—मैं दुम्बाल करदने लोरिक अज़ लश्करे राव रूपचद।

पाठान्तर—(१) १ बी० पावसि। २. बी० तैंसैं मरोहु जैंसैं बहुरि न आयसि। (२) १ बी० लीजैंहि। (३) १ बी० धरियेहि। (४) १ बी० जिय ले। (५) १ बी० कैं। २ बी० गया। (६) १ बी० महरि। २ बी० सूझैं। ३ बी० भयो। (७) १ बी० आपुनु। २ बी० आवैं।

अर्थ—(१) लोरिक ने कहा, "ये जाने न पाएँ, मैं इन्हे ऐसा मारूँगा कि ये पुन न आएगे।" (२) [विपक्ष के योद्धाओ को महर-पक्ष के] पदाति फरी लेकर मारने लगे, तो रावतो के रक्त से पूरित हो कर नदी भर गई। (३) उन्होने महावतो को मार कर हाथियो को पकड लिया और पाखरित घोडो को खडे हुए पकड लिया। (४) बहुत से वीरो को वे जीवित ही पकड लाए, [किन्तु] बहुतेरे प्राण लेकर भाग निकले। (५) खड्ग मारते समय [लोरिक की] तलवार [राजा की] मूँठ पर लगी क्योकि सध्या आ पडी थी [और इसलिए सूझ कम रहा था], राजा रूपचद भाग निकला। (६) मृतो से [ढकने के कारण] धरती नही सूझ रही थी और रक्त [इतना इकट्ठा हो गया था कि उस] मे तैराव हो गया था। (७) राजा [रूपचद] अपना दल [इस प्रकार] गवा चला, [और उसने सोच लिया कि] वह पुन कभी न आता।

९. चांदा-लोर प्रथम दर्शन खण्ड

(१३५)

'रनु' 'जिनि' 'गोवर' महरु सिधारा। लोरिकु खतरी बीरु हंकारा।
'दइ कइ' पान महर 'गिय' लावा। 'अउ' गज मैमति आनि 'चढावा'।
'चवर धारि' 'दुइ चवर डुलावहि'। 'अउ राउत आगे भए' आवहि।
'ऊपरि राति पिछउरी' तानी। 'चढी (ढि)' धौराहरि 'देखहि' रानी।
चलि गोवरु 'सभु' 'देखइ' आवा। 'रन' लोरिक 'खाडइ' जसु पावा।
मुनिवर देहि 'असीसा' 'गोवर होइ' बधाउ।
धनु 'धनु' बीर 'भुवाह' बर पूजा लोगु 'चढाउ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १०३, बी० ४१७-४१६।

शीर्षक—मै० · बाज़ गश्तन महर बा फतह व नवाख्तने लोरिक राव बर फील सवार करदन व दीदने खल्कहा।

पाठान्तर—(१) १. बी० रिनु। २ मै० जीति। ३ बी० गोवरु। (२) १. बी० दे कै। २ बी० गै (गिय—फा०) ३ बी० औ। ४. बी० चरावा। (३) १. बी० चौर ढार। २ बी० दोइ चौर ढुरावहि। ३ बी० औ रावत सभि आगै। (४) १ बी० उपर रात पछौरी। २ बी० चरि। ३ मै० देखइ। (५) १ मै० सब। २ बी० देषन। ३ बी० रिन। ४ बी० पाडै। (६) १ बी० असीस। २ बी० गोवर होउ, मै० गोवरा होइ। (७) १ बी० धन। २ मै० भुवा। ३ बी० चराउ।

अर्थ—(१) युद्ध जीतकर महर गोवर गया, और क्षत्रिय (योद्धा) वीर लोरिक को उसने बुलाया। (२) पान देकर उसे महर ने गले लगाया, और मदमत्त गज लाकर [उस पर] चढाया। (३) दो चामर-धारी चामर डुला रहे थे, और रावत आगे-आगे [चलते] हुए आ रहे थे। (४) ऊपर लाल चादर (चादनी) तनी हुई थी। रानियाँ धवल-गृहो (प्रासादो) पर चढी हुई [उसे] देख रही थी। (५) गोवर का समस्त जन-समुदाय चल कर उसे देखने आया था, [क्योकि] रण मे लोरिक के खाडे ने यश प्राप्त किया था। (३) मुनिवर आशीर्वाद दे रहे थे और गोवर मे बधावा हो रहा था। (७) "लोरिक वीर की भुजाओ का बल धन्य है, धन्य है," कह कर लोग उन पर पूजा (चढावा) चढा रहे थे।

(१३६)

चाद 'धौराहर ऊपरि' गई। चेरि बिरसपति 'गोहनि' लई।
परी साझ जगि भा अधियारा। चाद मदिर 'चढि किय' उजियारा।
सो कस आहि 'जेइ' गोवरु उबारा। 'कवनु बीरु जेहि कटकु 'सघारा'।
'कवनु सिघु जेहि' गैवरु हना। धनु 'सो जननि अइस जेइ' जना।
'पूछे(छ)उ' धाइ बचनु सुनि मोरा। एहिं दरि 'कवनु सो' कूकू लोरा।
'कवनु' रूपु 'कह' मदिर 'आछै (छइ)' 'आखउ' बिरसपति तोहि।
'साधि मरति हउ बीरनि' लोरु 'दिखावहि' मोहि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १०४, बी० ४२०-४२२।

शीर्षक—मैं० आमदने चादा वर बालाए कस्र व दीदन तमाशा लोरिक व बुरदने विरस्पति रा वा ख़ुद।

बी० मे हाशिए मे किसी अन्य हाथ का लिखा हुआ है चादा लेरीक दीठ ····(अपाठ्य)।

पाठान्तर—(१) बी० धौरहर उपर। २ बी० गौहनि। (२) १ बी० चिर कै। (३) १ बी० जु। २ बी० कौनु वीरु जै। ३ बी० फु (?) सघारा। (४) १ बी० कौनु सिघु जै। २ बी० सु जननी जिनि वोहु। (५) १ बी० पूछै। २ बी० कौनु सु। (६) १ बी० कौनु। २ बी० किह। ३ मैं० मे नही है। ४ बी० कहौ। (७) १ बी० साध मरत हौ बैरनि (बीरनि—फा०)। २ बी० दिखावहु।

अर्थ—(१) चादा [इस समय] धवल-गृह (प्रासाद) के ऊपर गई, साथ मे उसने बृहस्पति [नाम की] दासी को ले लिया। (२) सध्या हुई और जगत् मे अधेरा हुआ, उस समय चाद (चादा) ने उस मदिर पर चढकर प्रकाश किया। (३) [बृहस्पति से उसने कहा,] "वह कैसा है जिसने गोवर को बचाया है और वह कौन-सा वीर है जिसने [शत्रु के] कटक का सहार किया है ? (४) वह कौन-सा [पुरुष-] सिह है जिसने उस गजेन्द्र को मारा है ? वह जननी धन्य है जिसने ऐसा [पुरुष-सिह] उत्पन्न किया है। (५) ऐ धाय, मेरी बात सुन, मैं [एक बात] पूछ रही हू, इस दल मे कूकू (कुकुम) लोरिक कौन है ? (६) वह किस रूप का है और कहा उसका मदिर (भवन) है ? तुझसे, ऐ बृहस्पति, मैं यह कह (पूछ) रही हू। (७) मैं लोरिक की साध मे, ऐ बहिन, मर रही हू, तू मुझे लोरिक को दिखा।"

(१३७)

'लोरहि' चाद 'सुरुज' कइ जोती। कुडल सोवन 'दिपहि' गजमोती।
'चद्रु' 'लिलार' धरा 'जनु' लाई। चमक 'बतीसी' अतिइ सोहाई।
'खोपा' केस 'पीठि' 'लहराए'। लक 'झीनि' 'हरि गही न जाए'।
नैन कचोरा 'दूधइ' भरे। जनु 'छपया तिन्ह' भीतरि 'धरे'।
कनक बरन झरकति 'हइ' देहा। मदन मुरति उडि 'लागि न' खेहा।
तानी 'राति पिछउरी' हस्ति 'चढा' दिखराउ।
करि सिर 'पाग' 'सलोनी' 'तिरिछ कटार सोहाउ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १०५, का०, बी० ४२३-४२५।

शीर्षक—मै० निशानी नमूदने बिरस्पति चादा रा अज जमाल सूरते लोरिक।

का० नमूदने विरस्पति लोरिक रा बा चाद।

पाठान्तर—(१) १ बी० लोरिक। २ बी० सुरिज। ३. बी० दिपति। (२) १ बी० चदु। २ का० लिलाट। ३ बी० जानौ। ४ का० बतीसिउ। (३) १ बी० खूप। २ मै० लटकि। ३ बी० करि आये। ४ बी० झीन। ५ मै० कौनउ पचि माए, बी० हरि कहे (गही—फा०) न जाये। (४) १ का० रूपइ, बी० मोत्योहु। २ मै० छतया तिन्ह, बी० सीप दोइ। ३ मै० परे। (५) १ बी० है। २ बी० लागै। (६) १ बी० रात पिछौरी। २ बी० चरा। (७) १ मै० माग। २ बी० सलूनी। ३ बी० करेहि कटार सुहाव।

अर्थ—(१) [वृहस्पति ने कहा,] "ऐ चादा, लोरिक की ज्योति सूर्य की है। [उसके कानो मे] जो स्वर्ण-कुडल हैं, उनमे गजमुक्ता चमकते है। (२) [उसके] ललाट पर मानो चद्रमा लगा कर रक्खा हुआ है, और [उसकी] बत्तीसी (दत-पक्ति) भी चमक कर अत्यधिक शोभित होती है। (३) उसके खोपे के केश पीठ पर लहराते रहते हैं, केसरी के सदृश उसकी कटि क्षीण है, जो पकडी नही जा सकती है। (४) उसके नेत्र दूध से भरे कच्चोलो के सदृश हैं, [जिनमे उसकी कनीनिकाए ऐसी है] मानो उनके भीतर षट्पद (भ्रमर) रक्खे हुए हो। (५) [उसका] कचन वर्ण का शरीर झलक रहा है, उसकी मदन मूर्ति को धूल उड कर नही लगी है। (६) [उसके आसन के ऊपर] लाल पिछौरी (चादनी) तनी हुई है, और वह हाथी पर

चढा हुआ दिखाई पड रहा है। (७) वह सिर पर सलोनी पाग करता है और उसकी तिर्यक् कटार शोभा दे रही है।

(१३८)

'चादहि' लोरिकु निरखि निहारा। देखि बिमोही गई 'बेकरारा'।
नैन झुरहि मुखु गा कुबिलाई। अन न 'रूच' 'पानी न' सुहाई।
सुरिज सनेह चाद 'कुबिलानी'। 'आइ बिरसपति छिरका' पानी।
घरु आगनु सुखसेज न 'भावइ'। चाद उमाही सुरिजु 'बोलावइ'।
'पूनिउ चद्र जइस' मुखु अहा। गई 'सो' जोति गहन 'होइ' रहा।
सहस करा 'सूरिज कइ' रही चाद 'चित' छाइ।
'सोरह' करा चाद 'कइ' 'भई अमावसि' जाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १०६, बी० ४२६-४२८।

का० के प्राप्त अशो मे यह कडवक नही है किन्तु पिछले छद के नीचे उसमे इस छद का तर्क 'चादइ' दिया हुआ है।

शीर्षक—मैं० दीदने चादा जमाल व कमाल लोरिक व बेहोश शुदने ऊ।

पाठान्तर—(१) १ बी० चादेहि। २ बी० बिकारा। (२) १ बी० रूचै। २ मैं० अउ पानि। (३) १ मैं० कुमिलानी। २ बी० बदनु चेरि छिरकहि लै पानी। (४) १ बी० भावै। २ बी० बुलावै। (५) १ बी० पून्यो चद जैस। २ बी० स। ३ बी० खीन होय। (६) १ बी० सूरज की। २. बी० चितु। (७) १ बी० सोराह। २ बी० की। ३ बी० रही अमावस।

अर्थ—(१) चादा ने लोरिक को निरीक्षण करके देखा, तो उसको देख कर वह विमुग्ध हो गई और बेचैन [हो] गई। (२) उसके नेत्र सतप्त हो रहे थे, उसका मुख कुमला गया था, उसे अन्न नही रुच रहा था और [न] पानी अच्छा लग रहा था। (३) सूर्य (लोरिक) के स्नेह मे चाद (चादा) कुमला गई, बृहस्पति ने [उसकी ऐसी दशा देखी तो] आ कर [उस पर] पानी छिडका। (४) घर, आगन तथा सुख-शैया उसे नही भा रहे थे, उमग मे आई हुई (अचेत) चाद (चादा) सूर्य (लोरिक) को बुला रही थी। (५) उसका पूनो के चन्द्र जैसा मुख था, [किन्तु इस समय] उसकी वह ज्योति चली गई थी, और उसे ग्रहण [जैसा] हो रहा था। (६) सूर्य (लोरिक) की सहस्र कलाए चाद (चादा) के चित्त पर छा गई थी, (७) [इसलिए]

चाद (चादा) की पोडस कलाए जा कर (परिर्वातित होकर) अमावास्या की हो गई थी ।

(१३९)

'कहइ' बिरस्पति चाद सभारू । सुरिज लागि कस करसि 'खभारू' ।
हाथ 'पाउ' 'सभरसि' न बारी । 'बाधि केस ओढि लइ' सारी ।
'जउ' तोहि लागि सुरिज 'कै' झारा । 'कइ खडवानि पियांवउ' बारा ।
राज कुवरि तू कानि न करई । 'हउ सो धाइ' 'मोरि' लाज न 'धरई' ।
'आनउ पानि बइसि' मुख 'धोवहि' । 'उल्हरि' सेज सुख निद्रा 'सोवहि' ।
'जो' चिति 'हइ' तुम्ह मनसा भोर 'कहउ' सो मोहि ।
'रइनि जाइ दिन उगवइ' 'उतर देब' मइ तोहि ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १०७, वी० ४२९-४३१ ।

शीर्षक—मैं० तफहीम करदने बिरस्पति चादा रा कि होशियार बाश ।

पाठान्तर—(१) १ बी० कहै । २ मैं० खभा । (२) १ बी० पाव । २ मैं० समरसि । ३ वी० बाधिक कटि समिलै उठि । (३) १ बी० जौ । २. की । ३ वी० कै षडवानि पिलाऊ । (४) १ बी० हौ धाई । २ वी० मोरी । ३ वी० धरसी । (५) १ वी० आनौ पानी बैसि । २ बी० धोवहु । ३ वी० उलरि । ४ वी० सोवहु । (६) १ बी० जै । २ बी० है । ३ बी० कहौ । (७) १ वी० रैनि जाइ रबि उवत । २ वी० चाद दीब (देब—फा०) ।

अर्थ—(१) बृहस्पति कह रही थी, "ऐ चाद (चादा), तू [अपने को] सभाल, सूर्य (लोरिक) के लिए तू क्या (क्यो) खभार (अशाति, बेचैनी) कर रही है ? (२) हाथो और पैरो को तू, ऐ बालिका, नही सभाल रही है, केशो को बाध और साडी लेकर ओढ़ । (३) यदि तुझे सूर्य की झार (ज्वाला) लग गई है, तो मैं, हे बाला, खडवानी करके तुझे पिलाऊ । (४) ऐ राज-कुमारी, तू कानि (लज्जा) न कर, मैं तो [तेरी] धाय हू, मेरी लाज न धर । (५) मैं पानी ला रही हू, तू बैठ कर मुख धो, और शैया पर लेट कर ऐ सुदरी, तू सुख की निद्रा सो । (६) तैने चित्त मे जो कुछ चाहा है, तू यदि मुझ से नवेरे कहेगी, (७) तो रात्रि [व्यतीत हो] जाएगी और दिन उग आएगा [तब] मैं [दौट-धूप करके] तुझे उत्तर दूगी ।

(१४०)

गई 'सो' खेलि 'रइनि' अधियारी। उठा 'सुरिजु' जगि किरनि पसारी।
दिन 'गए' घरी बिरसपति आई। चाद करा 'बिनु' जाइ 'जगाई'।
कहु 'सो' बात जिहि तू 'असि' भई। काहि लागि भरि 'आकुर' गई।
चाद बिरसपति कै पा परी। काल्हि सुरिजु 'देखिउ एक' घरी।
'कइ ओहि मोरे घरे बोलावहि'। 'कइ' मोहि 'लइ ओके डड लावहि'।

चाद 'कत सइ देखिय' सुरिजु मदिर 'जहि' आउ।
'करहि महर सेउ बिनती' गोवरु 'नौति जेवाउ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १०८, बी० ४३२-४३५—आने वाले कडवक की प्रथम दो पक्तियो के इस कडवक मे भी भूल से आ जाने के कारण एक सख्या बढ गई है।

शीर्षक—मै० पद दादन बिरस्पति चादा रा अज आमदन लोरिक दर खान।

पाठान्तर—(१) १ बी० सु। २ बी० रैंनि। ३ बी० सूर। (२) १ बी० की (गए—फा०)। २ मै० मे नही है। ३ बी० उचाई। (३) १ बी० सु। २ बी० अस। ३ बी० आकुरि। (४) १ बी० देष्यै इक। (५) १ बी० कै वोहु मेरे घरहि बुलावोहु। २ बी० कै। ३ बी० लै ओहि डीलि लगावोहु। (६) १ बी० गिनत (कत—फा०), मै० (सइ—फा०) देषा। २ बी० जिहि। (७) १ बी० कहौ महर स्यो बीनती। २ बी० न्यौति जिमाउ।

अर्थ—(१) वह अधेरी रात खेल कर चली गई, सूर्य उठा और उसने जगत् मे [अपनी] किरणे प्रसारित की। (२) एक घडी दिन जाने पर बृहस्पति आई और उसने उस कला-विहीन चद्र (चादा) को जगाया। (३) [उसने कहा,] "वह बात तू बता जिससे तू ऐसी हो गई है। किसके लिए तू अकुर (रोमाच) से भर गई है?" (४) चादा बृहस्पति के पैरो मे गिर पडी [और उसने कहा,] "कल मैंने सूर्य (लोरिक) को एक घडी भर [ही] देखा है। (५) या तो उसे मेरे घर पर बुलाओ, और या तो मुझे ले [चल] कर उसके दण्ड (मार्ग) पर लगा दो।" (६) [बृहस्पति ने कहा] "ऐ चादा, [अपने] कान्त को तब तुम स्वय देखोगी जब वह सूर्य (लोरिक) [तुम्हारे] मदिर (भवन) मे आएगा। (७) किन्तु [इसके लिए] महर से तुम विनती

करो कि वह गोवर [के जन-समुदाय] को नियन्त्रण देकर जिमाए (भोजन कराए) ।"

(१४१)

बिरसपति बचन चाद चित धरा । 'हियउर पूरि' खाड 'घिउ' भरा ।
सुनतइ बचनु 'महर' पहि गई । जाइ 'ठाढि आगे' होइ भई ।
एक ईछ ईछी 'मइ' पिता । 'तउ तुम्ह' राउ रूपचंदु जिता ।
देवहि 'पूजा फूलु चढाएउ' । 'पाय' लागि कर जोरि 'मनाएउ' ।
पिता मोरु 'जउ रन जीति आइहि' । 'देस लोकु सभु नौति जेवाइहि' ।
'पुरवहु' बाच जो 'कीन्हेउ' 'अरघ' होइ 'सो' नारि ।
'राइ' 'रूपचदु' 'रन' जीति 'आएहु' कटकु सघारि ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र १०६, बी० ४३६-४३८ ।

शीर्षक—मै० रफ्तने चादा बर महर व अरज दाश्तन महमानिए खलक करदन ।

पाठान्तर—बी० मे इस कडवक की प्रथभ दो पक्तिया पिछले कडवक के दोहे के पूर्व भी आई हुई है । (१) १ बी० हैवर पुरषु । २ बी० घीव । (२) १. बी० पिता । २ बी० ठाढ आगै । (३) १ बी० मै० । २ बी० तौ तैं । (४) १ बी० पूज्यै फूरु चरायौ । २ बी० पाइ । ३. बी० मनायो । (५) १ बी० रिनु जीतैं आवैं । २. बी० देव लोगु सबु न्योति जिमावैं । (६) १. बी० पुरवोहु । २ बी० कीन्ही । ३. बी० अरकहु (अरघो—फा०) । ४ बी० सु । (७) १. बी० राव । २ मै० खरग । ३ बी० मे नही है । ४ बी० आयो ।

अर्थ—(१) वृहस्पति के [इस] वचन को चादा ने चित्त मे धारण किया, और अपने हृदय (उर) को उसने [इस मधुर परामर्श के] खाड तथा घी से भरपूर भरा । (२) [वृहस्पति का] वचन सुनते ही चादा महर के पास गई, और [उसके] आगे (सामने) जाकर खडी हो रही । (३) [उसने कहा,] "हे पिता, मैंने एक इच्छा इच्छी (मानी) थी, तव तुमने राव रूपचद को जीता है । (४) देवता पर मैंने पूजा का फूल चढ़ाया था, और [उसके] पैरो से लग कर तथा [उससे] हाथ जोड कर मनाया था कि (५) 'मेरा पिता जब रण जीत कर आएगा, वह समस्त देश तथा लोक (जन-समुदाय) को न्योता देकर जिमाएगा (भोजन कराएगा) ।' (६) [अब] वह वाच (सकल्प), जो मैंने किया था, पूरा करो, नारी का वह अर्घ्य (पूजा का आयोजन) पूरा होना

चाहिए, (७) [क्योंकि,] ऐ राजा, तुम खड्ग से रण जीत कर और [शत्रु के] कटक का सहार कर आ गए हो।"

(१४२)

चाद वचन 'हउ कहवा बावउ'। 'सब गोवरु अउ देस जिवावउ'।
'महरइ नाउन्ह कहा बोलाई'। घर घर गोवरु 'नौतहु' जाई।
'काल्हि' महर 'घरइं' 'हइ' 'जेवनारा'। बार 'बूढ' सब झारि हकारा।
सुनि 'कइ' नाऊ दहा 'दिसि गए'। 'तइतीसउ बार(न)सब नौता लिए'।
खूट खूट सभ 'नौता' झारी। 'अथवा' सुरिजु परी अधियारी।
पारधि 'पठए अहेरइ' 'अउ' बारी पनवारि।
'पछिली राति आए फिरि नाऊ सहदेव महर' 'दुवारि'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ११०, बी० ४३९-४४१।

शीर्षक—मैं० कुबूल करदन महर सुखुने चादा व इश्तअदाद दादने हुम खल्क रा।

बी० मे बाए हाशिए मे अन्य व्यक्ति द्वारा सकेत दिया गया है जौं (ज्यौं ?) नार।

पाठान्तर—(१) १ बी० हौ काहौ पाऊ। २ बी० का गोवरु सवु न्योति जिमाऊ। (२) १ बी० महरे नावा कहा वुलाई। २ बी० न्योतौ। (३) १ बी० कालि। २. बी० कै। मैं० मे नही है। ४ बी० जिवनारा। ५ मैं० वूड। (४) १ बी० कै। २ बी० दिस गयो। ३ बी० छतीसौ वरन न्यौतिवै लये। (५) १ बी० न्योते। २ बी० अथव। (६) १ बी० वैठि अहेरिया। २ बी० औ। (७) १ बी० पिछली ओ नाऊ आयियोहु महरि। २. मैं० मे नही है।

अर्थ—(१) [महर ने कहा,] "चाद (चादा) के वचन को मैं कैसे वाया दे सकता हूँ (कैसे उसकी उपेक्षा कर सकता हूँ)? समस्त गोवर तथा देश को मै भोजन कराऊँगा।" (२) महर ने [तदनतर] नाइयो को वुला कर कहा, "तुम सब जाकर गोवर मे घर-घर को निमत्रण दे आओ, (३) (कहना,) "कल महर के यहाँ ज्यौनार है, वालक और वृद्ध निरपवाद सव को वुलाया है।" (४) यह सुन कर नाई दसो दिशाओ मे गए, तो समस्त तैंतीसो वर्णों ने निमत्रण लिया। (५) खूंट-खूंट (खड-खड) मे सव को निरपवाद निमत्रण दिया गया। सूर्य अस्त हुआ और अन्धकार पड गया। (६) [तव]

वहेलिए आखेट के लिए भेजे गए और [पत्तो के लिए] बारी पनवारियो मे। (७) [न्यौतने वाले] नाई पिछली रात (रात्रि के पिछले प्रहर) मे लौट कर सहदेव महर के द्वार पर आए।

(१४३)

दिन भा पारधि आइ तुलाने। अगनित 'मिरिघ जियत' धरि आने।
'वहुते रोझ गयड अति घने'। चीतर 'झाख' जाहि नहि गने।
'गौन मझारे अउ' लोखरा। ससा 'लेगुना' घर इकु 'भरा'।
'मेढा' सहस मारि कइ टागे। 'तीनि चारि सै' बकरा मागे।
'अउ साउज वहु' 'बनइल' मारे। 'सिधुरबार को गनइ बिरारे'।
'साउज' देस न उबरा आने 'सबइ धराइ'।
जावत 'पखि' 'सगौने' 'कहइ सरस सबु गाइ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १११-११२ (दो सख्याएँ पडी हुई है), बी० ४४२-४४४।

शीर्षक—आवर्दने सैयादाने हैवानाते हर जिन्सी।

पाठान्तर—(१) १ बी० मिरग जिवत। (२) १ बी० बहुत रोझ औ गाडर घने। २ बी० झापि। (३) १ बी० गोवन मझरी औ। २ बी० लवकना। ३ मै० मे नही है। (४) १ बी० मीढा (मेढा—फा०)। २ मै० चारि पाच सै। (५) १ बी० औ स्यावज सभ। २ बी० पनियल (बनइल—फा०)। ३ बी० स्यघ अरीयर को गम जारे। (६) १ बी० सावज। २ बी० समै धराय। (७) १ बी० पप। २ बी० सगौतै (सगौने—फा०)। ३ बी० कह्यौ सरस सभु गाय।

अर्थ—(१) दिन हुआ तो वहेलिए आ पहुँचे, वे अगणित मृग जीवित पकड लाए थे। (२) वहुतेरे नीलगाय थे और गैंडे [भी] अत्यधिक थे, चीतल और झाख गिने नही जा रहे थे। (३) गौनो, मझारो, लोखडो (लोमडो), शशको तथा लेगुनो से एक घर भर गया था। (४) एक सहस्र मेढे मार कर टागे हुए थे, तीन चार सै वकरे मागे (मगाए) हुए थे। (५) और भी वनैले श्वापदो (जतुओ) को मारा गया था, सिधुरवार और [जगली] विडालो को कौन गिन सकता था ? (६) देश का कोई श्वापद (जतु) न वचा था, सभी पकडवा कर लाए गए थे। (७) जितने पक्षी वहाँ गए (?), [अव] उन सवको सरस रूप मे गाकर [कवि] कह रहा है।

(१४४)

'बटई' तीतर 'लावा' धरे। गुडरू कनवा(केवा)'खचियन' भरे।
'बहुल बगेरिया अउ' चरियारा। 'उसर तिलौरा अउ भुनजारा'।
'बरुवा' सीतल कार तिलोरा। 'रयन टिटिहरे धरे टिटोरा'।
'बन कुकुरा' 'खर मोरउ घने'। 'कूज महोक' जाहि नहि गिने।
'धरे को बरनइ उनके बना। पखि(खी) बहुल नाउ को सुना।'
जे 'कबि आइ समाने' सरसि 'बरनि गए तेहि'।
'अउर' पखि जे मारे 'तिन्हकर' नाउ को लेहि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ११३, बी० ४४५-४४७।

शीर्षक—मैं० सिफते जानवरा दर ज़ियाफते महर।

पाठान्तर—(१) १ बी० बडटई। २ बी० लवटी। ३ बी० कुजिहि(?)। (२) १ बी० भरी वकेरी औ। २ बी० औसर तलवा और भूजारा। (३) १. बी० वरवा। २ बी० रेनि टटीहरि करहि टटेरा। (४) १ बी० चौकदरु। (२) बी० पर मोरा। ३ बी० कुज महोक। (५) १ बी० धकूर औ कहु वापाना मछरी बहुत नाव को जाना। (६) १ बी० के आइ तुलाने। २ बी० वरगे (बरनि गए—फा०) तेई। (७) १ बी० और। २ मैं० ता कर, बी० तिन्ह कौ।

अर्थ—(१) बटई, तीतर और लावे रक्खे हुए थे, गुडरू और कनवा (केवा) खाचियो (टोकरियो) मे भरे हुए थे, (२) बहुतेरे वगरिए तथा चरियारे थे, उसर-तिलौरे और भुनजारे (?) भी थे, (३) बरुवे, सीतल, और काले तलोर थे, रत्न-टिट्टिभ रक्खे हुए टटोर (टे-टे कर) रहे थे, वन-कुक्कुट और खर-मोर भी घने थे, क्रौंच तथा महोख गिने नही जा रहे थे। (५) जो [पक्षी] पकड कर लाए गए थे, कौन उनके वर्णों को गिन सकता है? बहुतेरे पक्षी थे, उनके नाम किसने सुने होगे? (६) जो काव्यो मे आ समाए हैं, वे ही सरस पक्षी [ऊपर] वर्णित हुए हैं। (७) और (अन्य) पक्षी जो मारे गए थे, उनके नाम कौन ले?

(१४५)

तीनि चारि सै बइठ 'सुवारा'। 'बइसदरु' आनि 'रसोइ परजारा'।
'मास मसउरा कटवा' कीन्हा। 'लइ धुगार बटिया करि' दीन्हा।
बेगर बेगर पखि पकाए। 'घिरित' वघारे 'मिरिच भराए'।

विरचन 'अविरचन बटवा' परा। 'रस रतनाकर सेधव गरा'।
कूकू 'मेलि किएउ' बिसवारू। 'दारचो' 'करवद' अंबिली चारू।
'कटुक तराकत लखवर लोन तेल बिसवार'।
'खटरस होइ महारस' 'तिलकुट किएउ' अहारु॥

सन्दर्भ—मै० ११४, वी० ४४८-४५०।

शीर्षक—मै०. सिफते पुजानीदने ता आम दर मतबख़।

पाठान्तर—(१) १. वी० सिवारा (सुवारा—फ़ा०)। २ वी० बैसादरु। ३. वी० रसोइ जारा। (२) १ वी० मास मसौरा कुटवा। २ वी० ले जुगारु पानि कर। (३) १ वी० घृत। २ वी० मिरच फिराये (भराए—फा०)। (४) १ वी० ईचनवा। २ वी० सरसत नागर सीधैं करा। (५) १ वी० पीसि कियो। २ मै० दरवद। ३ वी० करौदा। (६) १. वी० कटु करकर मिठे रे लूनु आहि औ षार। (७) १ वी० घिरत भिरी अस मिरई। २ वी० तिलक महि कियो।

अर्थ—(१) तीन-चार सै रसोइए बैठे, और आग ला कर उन्होने उसे रसोइयो मे जलाया। (२) मास, मसौरे, और कटवा [तैयार] किए गए, तथा बुगार लगा कर वटवा [तैयार] कर दिए गए। (३) अलग-अलग पक्षी पकाए गए और घी मे वघारे हुए मिर्च से भराए गए। (४) बिरचन (?) तथा अविरचन (?) वटवा (पीस कर) रक्खे हुए थे, रत्नाकर (?) का रस तथा सेधा लवण गल रहा था। (५) कुकुम (केसर) डाल कर मसाला [तैयार] किया गया था, जिसमे दाडिम (अनार के दाने), करौदे और चारु (अच्छी) इमली भी [पडे] थे। (६) कटुक (?), तराकत (?), लखवर (?), लवण, तेल तथा मसाले थे। (७) षट् रसो [के रूप] मे महारस [तैयार] हो रहा था, और तिलकुट [के रूप] मे आहार [तैयार] किया गया [था]।

(१४६)

'जाजर पापर भूजि उचाए'। 'भांटा' टीडस 'सोधि तराए'।
'करुए' तेल करैला तरे। 'कुम्हडा भूजि' साठि 'इक' धरे।
'खिखसा परवर' 'कुदुरी अही'। 'घिए तरोई अरुई गही'।
'चोंटी चोंटिहि धोइ' पकाए। चूका 'पालक अउ चौलाए'।
'लोंआ चिचिंडा वहु' तोरई। 'सीता सेव भार दस' भई।

'ककोल जीवती' 'सौफ औ' 'सोई मेथि पकानि'।
'राधी कुसुभ कुदुरिया' काढे बहुल सधान'॥

सन्दर्भ—मै० ११५, बी० ४५१-४५३।

शीर्षक—मै० सिफते खजरियात हर जिन्सी गोयद।

पाठान्तर—(१) १ बी० काचर पापर भूजि उचाई। २ बी० वाटा। ३ बी० सुध तराई। (२) १ बी० करये। २ बी० कुमछा मूठ। ३ बी० यक। (३) १ बी० पूवस बरवर (परवर—फा०)। २ बी० कदुरी आही। ३ बी० घने बास तेहि उपर काही। (४) १ बी० पुई सपूवत धोय। २ बी० पालिक आ चालाइ। (५) १ बी० कदू चचीड औ। २ बी० सीवा सीव भारद। (६) १ बी० गुगल चौटि। २ बी० सौंप लौ। ३ बी० सोवा मेथी पान्ह। (७) १ बी० राघ कसूभ कडूरिया। २ बी० काढि भरै सैधान।

अर्थ—(१) जर्जर (खस्त) पापड भूज कर उठाए गए थे, भाटे और टीडसे सोधे करके तलाए गए थे। (२) कडुए तेल (सरसौ के तेल) मे करैले तले गए थे, और साठ-एक कुम्हडे भून कर रक्खे हुए थे। (३) खिखसे, परवल, कुदुरिया थी, घिए (नैनुए), तरोइया तथा अरवियो को लिया गया था। (४) चूक (खट्टा) पालक तथा चौलाई वोटी-बोटी (टुकडे-टुकडे) धो कर पकाए गए थे। (५) लौकी, चिचिंडा, वहुतेरी तरोई, सीता (?) सेम की दस भारें हुई थी। (६) ककोल, जीवती, सौफ, सोया और मेथी पके थे, (७) कुसभी रग की कुदुरिया राधी गई थी और वहुतेरे सधान (चटनी-अचार) निकाले गए थे।

(१४७)

बरा मुगौरा 'बरियइ' कीन्ही। 'खडुई काटि घिरित' महि दीन्ही।
बनी 'मेथौरी छिरकुलि' वारी। 'अउ डुबुकी जेहि मिरचइ' पारी।
'भूजी' कीन्ह 'गुरेठ' पकावा। 'पान अडाकर गुझियइ' लावा।
'रौता (?) कसवद' 'किई मिर्चवानी'। अउर 'उभारि राई कर पानी'।
तुरसी घालि कढी 'अउटाई'। लपसी 'सोठि' बहुत 'कइ' लाई।
दूधु फारि 'कइ' खिरसा 'बाधा' 'राषा' दही 'सजाउ'।
अवर 'कठहडी' को 'कह' जाकर नाउ न 'आउ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ११६, बी० ४५४-४५६।

शीर्षक—मै० सिफते पकवान दर हर जिन्सी गोयद।

पाठान्तर—(१) वी० वरई । २ वी० खडई काटि घिरत । (२) १ वी० वई मठौरी छिलकल । २ वी० औ डभकी जैहि मिरचै । (३) १. वी० भूज । २ वी० करठ (गुरेठ—फा०) । ३ वी० डागा पातु रग जिहि । (४) १ वी० रीठ कसौडी । २. वी० की मिरचानी । ३ वी० भाति राई की वानी । (५) १ वी० औटाई । २ वी० सूठि । ३ वी० कै । (६) १ वी० कै । २ वी० षरस । ३ मैं० मे नही है । ४ वी० सजाई । (७) १ वी० पटहरी । २ वी० कहै । ३ वी० आई ।

अर्थ—(१) वडे, मुगौडे, और वरिया [तैयार] किए गए थे, खडुई को काट कर घी मे दिया गया था । (१) छिलकुल वाली मेथौरी वनी थी, और डुवुकी [वनी] थी जिसमे मिर्चें पडी थी । (३) भूजी की गई थी और गुरेठा पकाया गया था, गुझियो मे समूचे पर्ण (पत्ते) लगाए गए थे । (४) रौते तथा कसौदे का मिर्चवानी (मिर्च का पानी) किया गया था और उभाड कर राई का पानी किया (वनाया) गया था । (५) खटाई डाल कर कढी औटाई गई थी तथा लपसी मे सोठ आधिक्य के साथ लगाई (डाली) गई थी । (६) दूध फाड कर खिरसा वाधा गया था, और सजाया हुआ दही रक्खा गया था । (७) अन्य कठहडियो (व्यजनो) को कौन वखाने जिनके नाम [मुझे] नही आते है ?

(१४८)

'कपुर सारि' 'रतसारि' 'बिकोई' । 'कररा धनिया' मधुकर तोई ।
'सिगना झाली अउ चौधरा' । 'कक्कर खडर काडर' भरा ।
'अगर सारि रतना मुतिसिरी' । 'राजनेत मूढी सौखिरी' ।
'करगी करगा' साठी 'किए' । 'सुरमा बिहसा' महसर लिए ।
'गजधर कुडर आगर 'धनी' । रूप 'पसाढी सोंधी' 'तनी' ।
'कड दोझा' अति धोए काढे 'सबइ पसाइ' ।
जस वसत वन 'फूलन्ह' चहु 'दिसि' बासु 'खधाइ ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र ११७, वी० ४५७-४५६ ।

शीर्षक—मैं० . सिफते विरजहाए हर जिन्सी गोयद ।

पाठान्तर—(१) १ वी० कपूर सार । २ वी० रतसर । ३ वी० वन्कोइ । ४ वी० गरुरा दभिया । (२) १ वी० स्यगना झारी औ जोधरा । ३ वी० कन्कि पेडची महकर । (३) १ वी० अगरवाम राता मुतसरी ।

२ वी० राज नीति मूढी सूकरी। (४) १ वी० करकी करका। २ वी० कये (किये—फा०), मैं० लिए (दूसरा तुक भी यही है)। ३ वी० सर बाभनि। (५) १ वी० वकीसीर कडियाकर। २ मैं० घेनी। ३ वी० सरूपै सूधै। ४ मैं० मे नही है। (६) १ वी० के दूझारि। २ वी० सभै पकाई। (७) १ वी० फूलौ। २ वी० गति। ३ वी० गधाई।

अर्थ—(१) कर्पूरशालि, रक्त शालि, बिकोई, करारा, धनिया, मधुकर तथा तोई [चावल] थे। (२) सिगना, झाली, चौधरा, कक्कर, खडर और काडर भरे गए थे। (३) अगुरु शालि, रतना, मौक्तिकश्री, राजनेत्र, मूढी, सौखिरी, (४) करगी, करगा तथा साठी [तैयार] किए गए थे, तथा सुरमा, विहसा और महसर लिए गए थे। (५) गजधर, कुडर, आगर, घेनी थे तथा रूप, पसाढी, सोधी तथा तनी थे। (६) दोझा (दो बार बीन) करके वे अत्यधिक धोए गए थे और सभी [माड] पसा कर काढे (निकाले) गए थे। (७) जैसे वसत मे वन मे फूलो से [उसी प्रकार इन चावलो से] चारो दिशाओ मे सुवासो की गन्ध खधा (महक) रही थी।

(१४६)

‘हासा गोहू’ ‘धोइ’ पिसाए। ‘कपर छान कड’ ‘झार’ ‘बनवाए’।
अति ‘बडवड ते’ ‘बड भर तोला’। सेतु ‘सुहाव’ ‘कूज जनु भोला’।
टूट न ‘ताना’ दुहु कर तोरा। नैनू माझ हाथ ‘जनु’ बोरा।
‘जउ रे’ साठि ‘एक गासु’ तुलाई। मुख मेलत ‘खिन जाहि’ ‘बिलाई’।
‘सगर देस (दिवस) ‘जेवहिं’ ‘चित’ लाई। ‘भरइ’ न पेटु न भूखि ‘बुताई’।
‘केवर’ बास परि ‘महकहिं’ फूकत जाहि उडाइ।
भार सहस ‘दुइ’ ‘तिलकुट’ ‘महरइ धरे बनवाइ’॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ११८, भो० पत्र १४ (नवीन), शि०, वी० ४६०-४६२।

शीर्षक—मैं सिफते गदुम व नाने मैंदा खालिस।

भो० सिफते गदुम व नान तुनक।

शि० मे शीर्षक, (३)।१ तथा (७)।२ अपाठ्य हैं।

पाठान्तर—(१) १ शि० हसा गोहू, मैं० वी० हासा गेहू (गहू—मैं०)। २ वी० घोय। ३ वी० कापर छानि कै। ४ भो० झाल, वी० झारि। ५ वी० पुवाये। (२) १ भो० वडवर ते, शि० वडवद सम, वी० वड। २ वी० बदिरवर कूली। ३ भो० सुहाए। ४ भो० खूज जनु भोला, वी केतु

जानै फूली। (३) १ भो० ताने। २. बी० महि हाथु जानी। (४) १ बी० जूरी (जो रे—फा०)। २ मैं० करि गास, बी० क गासु, भो० एक काटि। २ बी० षिन जाइ, भो० जनु जाइ। ३. शि० अपाठ्य है। (५) १ भो० सब दिन जेंव जउ, बी० सभ दिन जीयेहि जौ, शि० हर दीन (दिन) जेंइहिं। २ बी० भरै। ३ बी० भूष। ४ भो० बी० वुझाई। (६) १ भो० कर, मैं० केर, बी० कपूर। २ बी० महकैं। (७) १ बी० इक, शि० दस (?)। २ बी० तिलि यक। ३ बी० महरी धरे पकाइ।

अर्थ—(१) हसा गेहू को [उन्होने] धो कर पिसाया था और उसे कपडे से छान कर उसके झाल बनवाए थे। (२) वे [झाल] अत्यधिक बडे-बडे थे, तो भी [वजन मे] वे एक-एक तोला भर के थे, और [श्वेत ऐसे थे] मानो वे भोले-भाले श्वेत क्रौंच हो। (३) वे ऐसे [लसदार] थे कि दोनो हाथो से [पकड कर] तानने पर भी वे टूटते नही थे, और [उनको हाथो मे लेने पर ऐसा लगता था] मानो हाथ नवनीत मे डुबाए गए हो। (४) यदि साठ-एक भी ग्रास उनके उठाइए, तो मुख मे डालते ही वे क्षण मात्र मे विलीन हो जाते थे। (५) सारे दिन उन्हे चित लगा कर भी खाया जाता, तो भी न पेट भरता और न भूख बुझती। (६) वे केवडे की सुवास जैसे महक रहे थे और [हल्के इतने थे कि] फूकते ही उड जाते थे। (७) [इस प्रकार के झालो के] दो सहस्र भार तिलकुट महर ने बनवा कर रख छोडे थे।

(१५०)

'पतरिन्ह कह' तोरियहि बन पाता। 'झारि' न उबरा 'कीत निखाता'।
महुवा आब 'लीन्ह' घरि 'बारी'। बर पीपर 'कइ' 'बाधी' खारी।
कटहर बडहर 'औलउ' लिए। 'जामुनि करहार' नाग 'सभ' भए।
'कठ ऊवरि' 'पाकरि बहु' तोरी। 'मुहली' 'करवद' दाख कंकोरी।
तेंदू 'बुगुची' रीठा घनां। 'पुरइनि' पात 'कर रे' को गना।
'विनवइ' आइ बनासपति पाइ लागि कर जोरि।
नाग कीन्ह 'हम' 'वारिन्ह' पात लीन्ह 'सभ' तोरि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ११६, भो० पत्र १७ (नवीन), बी० ४६३-४६५।
शीर्षक—मैं० · सिफत आवरदने वर्गहाय दरख्तान।
भो० · आवरदन वर्गहाय दरख्तान रा वराय दोद रह।
पाठान्तर—(१) १ बी० पातरि कीहु। २. मैं० झूरि। ३ मैं० कीन्ह

निखाता, बी० कोई छाता। (२) १ बी० बेलि। २ भो० बी० वारी। ३ बी० की। ४ भो० बाधहि। (३) १ मैं० औलउ कर, बी० उबरे। २ भो० जाम गभार, बी० जाम मषार। ३ मैं० सब। (४) १ बी० केतिन उबरे। २ भो० बर पाकरि, बी० पाकुरि। ३ भो० महुव [किन्तु 'महुवा' (२) मे आ चुका है]। ४ बी० करमजु। (५) १ बी० इगज। २ बी० परिय। ३ भो० करि रहि, बी० करर। (६) १ बी० बिनइ। (७) १ मैं० हउ। २ बी० वारि जेहि। ३ मैं० सब।

अर्थ—(१) पत्तलो को बनाने के लिए वन के [वृक्षो के] पत्तो को तोडा गया था। निरपवाद [कोई भी] न बचे, ऐसा निहत उन्हे कर दिया गया। (२) बाटिकाओ से महुए और आम [की पत्तिया] रख ली गई थी, वट और पीपल [की पत्तियो] की खारिया (जालियो की बनाई हुई झालें) बाध ली गई थी। (३) कटहल, बडहल, और आवलो [की पत्तियो] को भी हाथ मे कर लिया गया था, जामुन और करहार सभी नग्न (पत्र-हीन) हो गए थे। (४) कठ-ऊबर और पाकर (की पत्तियो) को बहुतायत से तोडा गया था, मुहली (?), करौदा, द्राक्षा (अगूर की वेल) और ककोली [की पत्तियो] को भी [तोडा गया था]। (५) तेंदू, बुगुची तथा रीठा [के पत्ते] भी बहुत से लिए गए थे, पुटकिनी (कमलिनी लता) के पत्तो की गणना कौन करे? (६) पैरो से लग कर और हाथ जोड कर वनस्पतिया आकर बिनती कर रही थी, (७) "हमे बारियो ने नग्न कर दिया है, क्योकि हमारे सभी पत्ते उन्होने तोड लिए है।"

(१५१)

'महर' मदिर 'सभ' नेत बिछाए। कइ 'खड वानी' कुड भराए।
गोवरु 'नौता' 'हुत' 'सो' बुलावा। 'तइतीसउ' 'बान' 'सभइ चलि' आवा।
'कतहु' न 'सूझइ' 'सरहि जनु' चली। 'उपटा देस मदिर गा भरी'।
'बइसि कुवर गए पातिहि' पाती। 'परजा पवनि सो भातिहि' भाती।
लोरिकु 'महरइ' पाटि 'बइसारा'। गहनु मारि 'जेइ' चादु उबारा।
'बरन चारि भरि बइठे' 'अगनित कहि नहि जाइ'।
खेत साठि 'लहि' आगनु तउ 'हु' लोग न समाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १२०, भो० पत्र ११ (नवीन), बी० ४६६-४६८।
शीर्षक—मैं० आमदने खल्क गोवर दर खान महर व नश्स्तिने ईशा।
भो०: फराज़ करदन कदूरी दर खान राव महर।

पाठान्तर—(१) १ भो० महरह, बी० महरि। २ मैं० सब, बी० बहु। ३ मैं० भो० खड वानि (वानी—ना०)। (२) १ बी० न्यौंतौ। २ भो० हुत, बी० हुता। ३ मैं० सोइ, बी० सु। ४ मैं० तहतीसउ, बी० छतीसे। ५ भो० पान, बी० बरन। ६ बी० सभै को। (३) १ बी० कहति। २ भो० सूझहि, बी० सूझ न। ३ बी० सब जन। ४ बी० इक इक चाहि स ईक भिले। (४) १ बी० वैसि कवर गए पातोहु। २. बी० परज पौनि सु भातेहि। (५) १ बी० महरि। २. बी० बैसारा। ३ बी० जै। (६) १ बी० वार वार चरि फिरि बैठे। २. बी० अगिनत गने न जाहि। (७) १ बी० लौहु। २ बी० मे नही है।

अर्थ—(१) महर के समस्त मदिर (भवन) मे नेत्र विछाए गए थे, और खडवानी करके कुड भराए गए थे। (२) गोवर [नगर] को जो निमत्रण दिया गया था, उसका बुलावा कराया गया। तैतीसो वानो के समस्त लोग चल कर आए। (३) कही [कुछ] सूझ नही रहा था, मानो शरह (सेना की पक्ति) चल पडी हो, देश ही उमड आया था [जिससे] मदिर भर गया था। (४) कुमार (कुमारभुक्त—गुजारेदार) पक्तियो-पक्तियो मे बैठ गए, प्रजा और पावने (हर्षोत्साह के अवसर पर पुरस्कारादि पाने वाले) [अपनी-अपनी] भाति के अनुसार बैठे थे। (५) लोरिक को महर ने पाट (पीढे) पर विठाया, जिसने ग्रहण को मार कर चादा को बचाया था। (६) [भोजन के लिए] चारो वर्णों के लोग [ऐसी] अगणित सख्या मे भर बैठे थे कि वह [वात] कही नही जा रही है। (७) साठ खेतो [के क्षेत्रफल] का [महर का] आगन था, तव भी लोग उसमे नही समा (अट) रहे थे।

(१५२)

'वइठइ वार पसरे' पनवारा। भातु परोसहि 'झारि सुवारा'।
पतरी भरहिं 'पहूचहिं खाना'। 'बतीसउ' 'भाति लोर पह आना'।
मास मसौरा 'कटवा भरे'। 'दोना' सौ सौ 'जनइत' धरे।
'लड' मुतिसारु तुलाने नाऊ। घिरित खाड 'कीन्ह' पैराऊ।
'धरे' पकवान 'जेत' 'हुत' कहे। 'भल सधान' लाख इक अहे।
'गनि चौरासी' हाडी 'नाऊ' 'परस सभारि'।
'परे' 'खजहजा वहत्तर' होइ 'लागि जेवनारि'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १२१, भो० पत्र १२ (नवीन), बी० ४६६-४७१।

शीर्षक—मैं० तआम खुरानीदने महर वर खल्क रा अज अलवाने नेअमतहा ।

भो० आवरदने तआम दर मजलिस हर जिन्स ।

पाठान्तर—(१) १ मैं० वइठ वारी पसर, वी० वैठ वार पसरी (पसरे—फा०)। २ मैं० होइ जेवनारा, बी० झारि सवारा। (२) १ भो० पहुचहि वरुताना, बी० पूछ परवाना। २ भो० भातिहि, वी० वहुती वनु। ३ वी० वहु भातेंहि जाना। (३) १ भो० खरवा भर वरे, वी० कुटवा भरे। २ वी० दूना (दोना—फा०) ३ भो० चपत, वी० जनयति। (४) वी० ले। २ वी० कैन्ह (कीन्ह—फा०)। (५) १ वी० धरि। २ वी० जियत (जेत—फा०)। ३ भो० हुत। ४ वी० फुनि सघियान। (६) १ भो० गनि चौरासी सैं, वी० गिन चौरासी। २ भो० मे नही है, वी० वावन (नाऊ—फा०) ३. वी० पुर सँभारा। (७) १ वी० मधुर। २ मो० वहुल खजहजा, वी० खजहजा भीतरि (वहत्तर—फा०)। ३ वी० लाग ज्योनार।

अर्थ—(१) लोगो के वैठने की वेला मे पनवारे (पत्तल) फैलाए गए। समस्त को सूपकार (रसोइए) भात (उवाला चावल) परस रहे थे। (२) [व्यजनो से] पत्तले, भर रही थी और खाद्य पहुच रहे थे। लोर के पास वत्तीसो [प्रकार के व्यजन] लाए गए थे। (३) मास के मसौरे और कटवा भरे हुए सौ-सौ दोने जनइतो (भृत्यो) ने [लाकर] रक्खे। (४) मोतीसार (?) लेकर नाई आ पहुचे थे, उसमे घी तथा खाड (व्यजनो मे) पैराऊ (तैरने के योग्य) किए (डले) हुए थे। (५) जितने कहे गए थे वे सभी पकवान [लाकर] रक्खे गए, अच्छे सधान (अचार) तो लाख-एक (?) थे। (६) गिन-गिन कर चौरासी हाडिया (पात्र) सभाल-सभाल कर नाई परस रहे थे। (७) वहत्तर प्रकार के खाद्य और भ्रज्य रक्खे गए और ज्यौनार होने लगी।

(१५३)

'पहिरि' चाद खीरोदक सारी। 'सोरह करा' सिंगार सिगारी।
'चढि धौराहरि किहेसि' परगासू। 'देखि लोरिकहि विसर गरासू'।
लोरु 'जान' 'आछरि' दिखरावा। इहि कबिलासि 'अउर' को आवा।
'अमिरितु जेवन तेहि' 'माहुर भएऊ'। जीउ 'काढि' हरि 'चादइ लएऊ'।
मुक्ख न जोति कया अति रूखी। 'चाद सनेह' सुरिजु गा सूखी।
'जेइ भूजि अमिरित गइ' झारि उठी 'जेवनार'।
लोरु लीन्ह 'कइ' डाडी 'विसभर' कछु न सभार ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १२२, बी० ४७२-४७४।

शीर्षक—मै० आमदने चादा वर कस्र व दीदने लोरिक व वेहोश शुदन लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. बी० पहरि। २ बी० सोराह करा। (२) १. वी० चरि धौरहरि कियसि। २ बी० देषहि लोग बिसरि गयो गासू। (३) १ बी० जानै। २ मै० अछरिंहि। ३. बी० और। (४) १ बी० अबृतु जीवनु। २ वी० माहरु भयो। ३ मै० सो। ४. बी० चादा लये। (५) १ बी० चदु न आहि। (६) १ बी० जिय भूचि अबृत रस। २ बी० ज्योनार। (७) १ वी० कै। २ बी० वेसभर।

अर्थ—(१) चादा खीरोदक की साड़ी पहन कर शृगार की सोलह कलाओ से शृगारित हुई। (२) [तदनतर] उसने धवल-गृह (प्रासाद) पर चढ़ कर प्रकाश किया तो उसको देखकर लोरिक को [भोजन का] ग्रास विस्मृत हो गया। (३) लोर ने जाना कि किसी अप्सरा ने दर्शन दिए, [उसने कहा,] "इस कैलास (धवल-गृह) मे और कौन आ सकता है?" (४) [जीमते ही] अमृत [जैसा] भोजन उसके लिए विष हो गया, [क्योकि] उसका जीव जो था, उसे चादा ने निकाल कर हर लिया था। (५) मुख पर ज्योति [शेष] न रही, काया अत्यधिक रुक्ष हो गई, और चाद (चादा) के स्नेह मे सूर्य (लोरिक) सूख गया। (६) अमृत [की वह ज्यौनार जब] जीमी और भूजी गई, और पूरी ज्योनार (भोजन करने वालो की पक्ति) उठ गई, (७) लोरिक को लोगो ने डाडी पर चढ़ा लिया, [क्योकि] वह वेसभाल था, और [तन-वदन का] कुछ भी सभाल उसे न था।

१०. चांदा-लोर पुनर्दर्शन खण्ड

(१५४)

'लइ लोरिक घर सेजि' 'ओल्लारा'। बहहि 'नैन गागही(हि)'असरारा।
'खोलिनि रोवइ काह' यहु भया। मोरु बारु 'केइं हडा दिया'।
लोगु 'कुटुवु वधू' जन 'आए'। पडित 'वैद सयान 'बोलाए'।
'धरि' नाटिका वैद अस कहही। चांद सुरिज 'दुइ' निरमल 'अहही'।
वात न पित 'रगत' 'नहि सीऊ'। 'ताप' न जूडी 'चित्त सजीऊ'।
देव न 'दानव' छरगा 'होय(इ) न सीयार' 'विरार'।
'मलिन' काम 'रस' वेधा 'तउ' यह 'ररइ' मरार॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १२३, बी० ४७५-४७७ ।

शीर्षक—मै० दर ख़ानः आवरदने लोरिक राव गिरिय करदने खोलिन ।

पाठान्तर—(१) १ बी० लै लोरिक औ सेज । २ बी० उलारा । ३ बी० नीर गगा । (२) १ बी० खौलनि रौवै का । २ बी० कौ छिरगै दया (दिया—फा०) । (३) १ मै० कुटुब वदू, बी० कुटवु वधू । २ बी० आवा । ३ बी० वैदु । ४ बी० बुलावा । (४) १ मै० धनि (वरि—ना०) । २ बी० दोय । ३ मै० अ··· । (५) १ बी० रग । २ बी० नाही सूती । ३ बी० ताव । ४ बी० चितह सजूती । (६) १ बी० दानौ । २ मै० नहि यह सीयर ('सीऊ' पूर्ववर्ती पक्ति मे आ चुका है) । ३ बी० वरारा । (७) १ बी० मदन (मलिन—फा०) । २ मै० कर । ३ बी० तौ । ४ बी० रुरै ।

अर्थ—(१) लोरिक को [उसके] घर ले जाकर शैया पर लिटा दिया गया । [उसके] नेत्र गगा [के समान] लगातार बह रहे थे । (२) खोलिन रो रही थी, "यह क्या हुआ ? मेरे वालक को किसने हडा (भाण्डो द्वारा किया जाने वाला एक प्रकार का टोटका) [कर] दिया ?" (३) लोक, कुटुवी और वाधव जन आए, पडित, वैद्य और सयाने बुलाए गए । (४) नाडी पकड कर वैद्य ऐसा कह रहे थे, "चाद और सूर्य (दक्षिण और वाम नाडिया) निर्मल हैं । (५) न वात है, न पित है, न रक्त है और न शीत है, न ताप है, न जूडी है, चित्त सजीव (सचेत) है । (६) न किसी देव ने और न किसी दानव ने इसे छला है, न स्यार या बिडाल [ने इसे कुछ कर दिया] है । (७) यह मलिन काम-रस द्वारा विद्ध है, इसीलिए यह मराल रर (रट) रहा है ।

(१५५)

सुरिजु 'रइनि' महि 'गएउ' लुकाई । 'चद्र' जोति निसि आगे आई ।
खोलिनि नीरु वारि 'सिर पिया' । 'मकु मोही मह' लोरिकु 'जिया' ।
'हउ आपन' जिउ 'चिहु दह' देऊ । लोरिक केर मागि 'कइ' लेऊ ।
'वरु मोहि बूडी(ढी) दुख लइ' जाई । 'जिनि बूडी(ढी)कर दिया' बुझाई ।
'बहु' सताप 'कइ कहइ' कहानी । 'कारि' राति दुख रोइ विहानी ।
भोर 'सूरु' परगासा दिनकर भएउ अजोर ।
'खोलिनि रोइ' 'डफारा' बारु 'जियावहु' मोरु ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १२४, बी० ४७८-४८० ।

शीर्षक—मै० अै ज़न लहू दर गिरिय. खोलिन गोयद ।

पाठांतर—(१) १ बी० रैनि । २ बी० गयो । ३ बी० चद । (२) १ बी० सिरु पीया । २. बी० मोकौ मारि जीय । ३ बी० जीया । (३) १ बी० हौ अपना जिउ । २ बी० जोरहि (चौदह—फा०) । ३ बी० कै । (४) १ बी० वरि मरि वूड रोगु लै । २ बी० जिन बारिक । (५) १. बी० यह । २ बी० दुष कथा । ३ बी० कारी । (६) १ बी० सुरिजु । (७) १ बी० षौलनि नगरु । २ बी० डभारा (डफारा—फा०) । ३ बी० जिवावहु ।

अर्थ—सूर्य रजनी मे छिप गया और रात्रि मे चद्रमा की ज्योति आगे आई, (२) तो खोलिन ने [लोरिक के] सिर पर पानी वार कर [इस अभिप्राय से] पिया कि लोरिक उसके जीवन मे जीता (उसका जीवन लेकर जीता) । (३) [उसने कहा,] "मै अपने चौदह जीवन (जन्म) दे दूगी और [उसके वदले मे] लोरिक का [यह एक] माग कर लूगी । (४) भले ही मुझ बूढी को दुख ले जाए, किन्तु मुझ वूढी का [यह] दीपक न वुझे ।" (५) वह वहुतेरा सताप कर [ऐसा] कथन कर रही थी, और काली रात [उसे] दुख मे रोते-रोते वीती । (६) पुन (तदनतर) सूर्य प्रकाशित हुआ (लोरिक उठा) दिन का उजाला हुआ । (७) खोलिन ने रोकर डकारा (चिल्लाया), "मेरे वालक को [ऐ लोगो,] जिलाओ ।"

(१५६)

'राजि' विरसपति 'हाटहि' गई । 'कीन बान' कछु 'बेसहन' लई ।
'कारुन' सवद 'सवन' 'दहु' परा । मुख 'फिराइ' 'पउ भीतरि धरा ।
'तिरियहि कर हिय होइ' मयारू । जाइ बिरसपति 'झांखा' बारू ।
'खोलिनि' देखी महर भडारी । कर गहि 'पाट' आनि 'बइसारी' ।
'काहे तुम्ह रोवहु परधानां' । 'हिय उर' मोर सुनत चरराना ।
मोर वार 'जस भुलवा' घरी 'घरी' बिहसात ।
अव 'न खाइ अन' पानी 'दिनहि' जाइ 'कुबिलात' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १२५, भो० पत्र १५ (नवीन), वी० ४८१-४८३ ।

शीर्षक—मै० रफ्तने विरस्पति वे वहान कारी दर खान. लोरिक व दीदने खोलिन ।

भो० : रफ्तन बिरस्पति दर खान लोरिक ।

पाठान्तर—(१) भो० धाइ, बी० राय (रायि राजि—ना०)। २ बी० हाटा। ३ भो० कीन बार, बी० पाट पटोर। ४ बी० बिसहन। (२) १ मैं० करुना। २ भो० सुवन, बी० श्रवन। ३ बी० घन। ४ बी० फिराय। ५ भो० पउ आगे, बी० पगु भीतरि। (३) १ भो० तिरियहि कर हिय काह (?), बी० तिरिया कर जिउ होय। २ बी० झाकसि। (४) १ बी० खौलनि। २ बी० बाह। ३ बी० बैसारी। (५) १ बी० काहै कँ पररोहु बधाना। २ मैं० हिरदै, बी० हियरा। (६) १ बी० अस फुलवा (भुलवा—फा०), मैं० भुलवा परि। (७) १ बी० खाइ सो अनु न। २ भो० दिन दिन, बी० खिनरितन। ३ मैं० कुमिलात।

अर्थ—(१) बृहस्पति सज्जा कर हाट को गई, क्योकि उसे कुछ कीन-बाने (क्रयार्थ पदार्थ) खरीदने थे। (२) उसे ऐसा लगा कि उसके कानो मे कोई कारुण्य का शब्द पडा था, [इसलिए] उसने मुख को घुमा कर पग भीतर रक्खे। (३) स्त्री का हृदय मयालु (ममतालु) होता है, इसलिए बृहस्पति ने जा कर द्वार झाका। (४) खोलिन ने महर की उस भडारी को देखा, तो उस का हाथ पकड कर उसे वह ले आई और उसने फलक (पीढे) पर उसे बिठाया। (५) [वह खोलिन से पूछने लगी,] "ऐ प्रधान, तुम क्यो रो रही हो ? मेरा हृदय-उर [तुम्हारे रुदन को] सुन कर फटने लगा है।" (६) [खोलिन ने उत्तर दिया,] "मेरा बालक [किसी के द्वारा] भुलाया-जैसा हो रहा है, घडी-घडी वह विहँसता है। (७) अब वह अन्न-पानी नही खा रहा है और अनुदिन कुम्हलाता जा रहा है।"

(१५७)

चलु 'खोलिनि तोर कहा रोगी। 'मकु ओखदु जानउ ओहि' जोगी।
'लइ गइ खोलिनि' लोरिकठाऊ(ऊ)। देखिसिकयासीस 'धर'पाऊ(ऊ)।
सूरिज 'घरहिं' बिरसपति आई। नैन उघारि चद्र बिहसाई।
'गनि गुनि देख' 'आकि कइ' पीरा। कवन गरह'की(कइ)आहि अभीरा'।
बहु गुन 'गुनी' तिरी 'परधाना'। वहु बियाधि बहु 'ओखद' जाना।
महर भडार 'भडारी' 'अउ चादा कइ धाइ'।
नैन 'उघारि' बात कहु 'लोरिक' 'आइउ आहि बुलाइ'।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र १२४, बी० ४८४-४८६।

शीर्षक—मै० . बुरदने खोलिन बिरस्पति रा दर महल व दीदने बिरस्पति लोरिक रा ।

पाठान्तर—(१) १ बी० खौलनि तौरौ कहा सु । २ बी० मुकु औषधु जानौ उहि । (२) १ बी० ले गइ षौलनि । २ बी० धरि । (३) १ बी० घराह । (४) १ बी० गिगुन देखि । २ बी० दुषा की । ३ मै० करि हइ तुम्ह पीरा । (५) १ बी० गनै (गुनी—फा०) । २ मै० बरहाना । ३ बी० औषधु । (६) १ बी० भडारनि । २ बी० औ चादा की धाय । (७) १ बी० पसारि । २ मै० मे नही है । ३ बी० मै आनी अबहि बुलाई ।

अर्थ—(१) "ऐ खोलिन, चल" [बृहस्पति ने कहा,] "[देखू] तेरा रोगी कहा है ? सभव है उसके योग्य ओषधि मै जानती होऊ ।" (२) खोलिन उसे लोरिक के स्थान पर ले गई और [बृहस्पति ने] उसकी काया, उसके सिर, धड और पाव देखे । (३) [खोलिन ने कहा,] "ऐ सूर्य (लोरिक), तेरे घर मे बृहस्पति आई हुई है, तू नेत्र खोल, चाद विहस रही है । (४) हे वीर, यह आक कर और विचार कर देखे तो कि किस ग्रह की तुझे पीडा है । (५) यह बहुत से गुणो मे गुणी और स्त्रियो मे प्रधान है । यह बहुतेरी व्याधिया और [उनकी] बहुतेरी ओषधिया जानती है । (६) यह महर के भाडार की भाडारी है और चादा की धाय है । (७) ऐ लोरिक, नेत्र खोल कर वाते कह, मै इसे बुला कर लाई हू ।"

(१५८)

'जननि जउ चाद कहि' बोलु' 'उभासा' । सहस करा सूरिजु परगासा ।
'कहेसि' जननि यहु बेदन 'कहउ' । 'तोरी' लाज 'लजात सु अहउ' ।
'खोलिनि' जाइ 'अवर तह (ह)' ठाढी । लोरिक पीर 'हियइ कइ' काढी ।
'जेहि दिन हउ जेवनारि' बुलावा । महर मदिर काहू दिखरावा ।
सो जिउ 'लइ गइ' 'कही' न जाई । बिनु 'जिउ भएउ परेउ' घहराई ।
सोरह 'करा' सपूरन चाद जोति परगास ।
वीजु चमक परि 'चमकी' 'ओहि' धौराहर पास ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १२७, बी० ४८७-४८९ ।

शीर्षक—मै० . दूर शुदन खोलिन व गुफ्तन लोरिक हिकायत दीदन चांदा वा बिरस्पति ।

पाठान्तर—(१) बी० ज्यौं ज्यौं चाद । २ मै० उभा । (२) १ बी०

कहसि। २ बी० कहौ। ३ बी० तेरी। ४ बी० लजावत अहौ। (३) १. बी० षौलनि। २ बी० और तहा। ३ बी० हिये की। (४) १ बी० जिह दिन जीवन हुतें। (५) १ बी० ले गई। २ बी० कह्यौ। ३. बी० जिय भयो पर्‍यो। (६) १ बी० करा। (७) १ बी० चमकैं। २ बी० उहि।

अर्थ—(१) जननी ने जब 'चाद' कह कर बोल उद्‌भासित किया, तव सूर्य (लोरिक) ने [अपनी] सहस्र कलाओ के साथ प्रकाश किया। (२) उसने कहा, "जननी, मैं इससे [अपनी] वेदना तो कहूगा, [किन्तु] तेरी लाज से मैं लजा रहा हू।" (३) [यह सुन कर] खोलिन अन्यत्र कही जाकर खडी हो गई, और लोरिक वीर ने हृदय की पीडा निकाली (व्यक्त करनी प्रारभ की)। (४) [उसने कहा,] "जिस दिन मैं ज्यौनार मे बुलाया गया था, महर के मदिर (भवन) मे कोई दिखाई पडी थी। (५) वही मेरे जीव को लेकर चली गई और वह कही नही जा रही है। मैं बिना जीव का हो गया और घहरा कर [भूमि] पर गिर पडा। (६) सोलह कलाओ से वह सपूर्ण थी और चन्द्र की ज्योति से प्रकाशित थी। (७) उस धवलगृह (प्रासाद) के पास (पार्श्व मे) वह बिजली की चमक की भाति चमक गई।"

(१५९)

'सुनि लोरिक असि' बात न 'कहियइ'। 'जउ कहियइ एहिं' 'देसि न' रहियइ'।
'वह तउ' आहि महर 'कइ घिया'। 'सरगि चाद' 'धौराहर दिया'।
'तरइन्ह जा करि सेज बिछावहि'। 'नवइ' नखत 'निसि पहरे' आवहि।
सो तइ देखि बीजु परबारी। 'गहन होति जिय' गई 'न' मारी।
'मन कइ सोग हिए हुत धोवहु'। 'जेइ' भूजि सुख निंद्रा 'सोवहु'।
अत राजा 'के दुअरि[आ]' 'अउ निसु' सरग 'बसेरु'।
'जेहिं का' राजु पिरिथिमी 'तेहि तू गरब न हेरु'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १२८, बी० ४९०-४९२।

शीर्षक—मैं० मना करदने बिरस्पति लोरिक रा कि ई हिकायत न गोयद।

पाठान्तर—(१) १ बी० लोरिक हौं यह। २ बी० कहिये। ३ बी० जैं कहिये इहि। ४ बी० रहिये। (२) १ बी० वाह तौ। २ बी० की धीया। ३ मैं० चाद नाउ। ४ बी० धौराहरि दीया। (३) १. बी०

तारायनु जाकै सेज विछावैहि । २. वी० नौव नषित । ३ बी० पहरै । (४) १. वी० लह तोर जिउ । २ वी० जु । (५) १ बी० मन की सूग (सोग—फा०) हियेहि तै जोवहु । २. बी० जीय (जेइ—फा०) । ३ वी० सोवोहु । (६) १ वी० की दुलहिनि । २ वी० औनि । ३ वी० वसेर । (७) १. वी० जिहि कर । २ वी० तिह कर करिब (गरब—फा०) न हेर ।

अर्थ—(१) [बृहस्पति ने कहा,] "ऐ लोरिक सुनो, ऐसी बात न कही जानी चाहिए, क्योकि यदि कही जाए तो इस देश मे न रहा जाए । (२) वह तो महर की कन्या है; वह आकाश का चाद (चद्र) है, और धवलगृह (प्रासाद) का दीपक है । (३) [वह ऐसी है कि] जिसकी शैया तारिकाए विछाती है और जिसके पहरे के लिए नवो नक्षत्र आते है । (४) उसी ने तुझे देख कर विजली फेकी (गिराई), और वही तेरे लिए ग्रहण होती हुई [वस] तेरे जीव को मार न गई । (५) अपने मन का शोक हृदय से धो डाल, भोजन जीम कर और सुखो का भोग कर सुख की नीद सो । (६) जिस राजा के इतने [अधिक] दौवारिक है और विलकुल आकाश मे (अत्यधिक ऊचाई पर) जिसका वसेरा (निवास) है, (७) और जिसका राज्य पृथ्वी पर है, उसको (उसकी ओर) तू गर्व से न देख ।"

(१६०)

'चाद क' उतरु बिरसपति कहा । सूरिजु दूहू 'पाय परि' रहा ।
आजु विरसपति सुदिनु 'हमारा' । मुखा कवलु 'जो दीख' तुम्हारा ।
कहु 'सो बात' जिहि 'होइ मेरावा' । भल 'जो करइ' सो भलाई पावा ।
'कइ विसु मोहिलइआनि खियावहि' । 'कइ सो मत्र विधि आजु जियावहि' ।
कर पालउ 'दस नख मुह मेलइ' । पायन 'परइ' बिरसपति 'ठेलइ' ।
'पाय' न ठेलि बिरसपति 'हउ तउ' चेर तुम्हार ।
वचन तोर 'मोहि ओखद' 'कहसि' न जीवनु 'जिवनु' हमार ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र १२६, भो० पत्र १६ (नवीन), वी० ४६३-४६५ ।

शीर्षक—मैं० पाए विरस्पति उपतादने लोरिक व अलहाज विसियार नमूदने ऊ ।

भो० मिन्नत करदन लोरिख पेश विरस्पति ।

पाठान्तर—(१) १ वी० चादा का । २ वी० पाव ले । (२) १ मैं०

अम्हारा। २ भो० जेहिं दीख, बी० जौ देप। (३) १ बी० सु मोहि। २ वी० होय मिलावा। ३. बी० जु करै। (४) १ वी० कै मोहि विसु लै अबहि पवावोहु। २ बी० कैरु मतरु पढि आजु जिवावोहु। (५) १ भो० दस नख मुख मेला, वी० दस मुहि नष मेलै। २ भो० पायन परत, बी० पाव परत। ३ भो० ठेला, वी० ठेलै। (६) १ बी० पाव। २ वी० औ है (हौ—ना०)। (७) १ वी० औषध पर। २ बी० कहस। ३ मै० जीवनु।

अर्थ—(१) जब चाद [के सबध] का यह उत्तर बृहस्पति ने कहा, सूर्य (लोरिक) उसके दोनो पैरो पर गिर रहा। (२) उसने कहा, "ऐ बृहस्पति, आज मेरा शुभ दिन है कि तुम्हारा मुख-कमल दीख पडा है। (३) तुम मुझसे वह बात कहो जिससे मिलाप हो, क्योकि जो भला (भलाई) करे, उसे भलाई मिलनी [भी] चाहिए। (४) या तो ला कर मुझे विष खिलाओ अथवा वह मत्र [दो] कि विधाता आज जिला दे।" (५) [यह कहकर लोरिक] कर-पल्लव के दस नख मुख मे डालने लगा* और जब वह उसके पैरो पर पडने लगा, बृहस्पति उसे पैरो से ठेलने (हटाने) लगी। (६) [लोरिक ने कहा,] "बृहस्पति, तू पैरो से मुझे न ठेल (हटा), मैं तो तेरा चेर (पुत्र ?) हू। (७) तेरा वचन मेरे लिए ओषधि है, मेरे जीवन [का वह वचन] तू कह न !"

(१६१)

विरखपति देख 'लोरिक कइ कया'। 'मरन सनेह' 'उठी मन मया'।
पाइ छाडि 'लोरिक पिइ' पानी। 'ओषद करउ' पीर तोरि जानी।
लोरिक तोर कहा 'मइ' माना। 'कइ हउ कइ' तू 'अउर' न जाना।
'जउ लोरिक इहिं' बात 'उभारा'। 'मोहिं क्रिपिना धरि छौकइ पारा'।
सुनि 'बुधि' 'देउ' जाइ मढु 'सेवहि'। 'मइ लइ जाबि पुजावइ' '[देवहि?]'।
तपा रूप होइ 'बइठउ' 'कया' बिभूति 'चढाइ'।
'दरसन निकट जउ' 'बिगतहि' देखहु नैन 'अघाइ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १३०, बी० ४९६-४९८।

शीर्षक—मै० हील आमोख्तने बिरस्पति वर लोरिक रा।

पाठान्तर—(१) १ बी० लोरिका कीया। २. बी० मेरे मनेह (सनेह—ना०)। ३ वी० उठि मनु दीया (दया—फा०)। (२) १ वी० लोरि

*लोरिक से जीव-दान की याचना करते हुए आगे के एक प्रसग मे बुदिया दानी ने भी इसी प्रकार मुख मे उगलिया डाली हैं।

पिउ। २. बी० औषधु करौ। (३) १. बी० मैं। २ बी० कै हौं कै। ३. वी० और। (४) १. बी० जै लौरिक यह। २ बी० उभारी। ३ बी० स्यौ कुनुवा धरि येहि सब सारी। (५) १ बी० बु। २. मैं० मोरी (मोरि—ना०)। ३ वी० सेऊ। ४ बी० मिलै चाद पूजायसि। ५ बी० देऊ, मैं० त्रुटित है। (६) १ वी० वैसहु। २ बी० कियइ। ३ बी० चराई। (७) १. वी० विसन वगते जि। २ वी० बगतौहू। ३ बी० अघाई।

अर्थ—(१) बृहस्पति ने लोरिक की काया देखी तो [उसके] मरण का सन्देह (भय) होने के कारण उसके मन मे ममता उठ (जाग) पडी। (२) [उसने कहा,] "ऐ लोरिक, तू मेरे पैर छोड और पानी पी, मैं औषधि कर रही हूँ, तेरी पीडा मेरी जानी हुई है। (३) ऐ लोरिक, मैंने तेरा कथन मान लिया, किन्तु उसे या तो मैं जानूँ और या तो तू जाने, उसे और कोई न जाने। (४) यदि, ऐ लोरिक तूने इस बात को उभाड़ा (प्रकट किया), तो तू मुझ कृपिणा (दीना) को पकड (पकड़वा) कर [तप्त कडाह मे] छौंकवा सकता है। (५) तू सुने, मैं तुझे बुद्धि (युक्ति) दे रही हूँ, तू जाकर मढ (मदिर) को सेए, मैं [उसे] देवता की पूजा कराने ले जाऊगी। (६) तपस्वी के रूप मे होकर तू वहाँ पर काया पर विभूति (राख) चढाकर वैठ, (७) और उसका दर्शन (रूप) जव निकट से व्यक्त हो, तू उसे नेत्रो से तृप्त होकर देख।"

(१६२)

कहि 'जु(जो)' बिरसपति 'वाहेर' भई। 'खोलिनि' खेह पाय 'कइ' लई।
सीस 'चढाइसि पा कइ' घूरी। आस मोरि 'जनि लीजिय चूरी'।
खोलिनि 'चद्रु' मेष घरि आवा। सूरिजु गहनु 'हुत सोइ' छुडावा।
भा मुखु 'भरम जियहिं जनि' धरहू। न्हाइ धोइ कुछु 'औषध' करहू।
'लोरहि' घरी 'जियइ कह' पाई। 'जागा' सुरिजु 'चदु' बिहसाई।
'भरम न करहू खोलिनि जिय मह लोरिक लइ अन्हवावहु'।
'अरु किछु अरथ दरब वारहु वा(वां)भन देइ पठावहु'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १३१, वी० ४९९-५०१।

शीर्षक—मैं० वेरुन आमदने विरस्पति अज़ महल लोरिक व पाय उफ्तादने खोलिन।

पाठान्तर—(१) १ मैं० मे नही है। २ वी० वाहरि। ३. वी०

घौलनि। ४ बी० क। (२) १ बी० चराइसि पाव कि। २ बी० तै अब ही पूरी। (३) १ मै० चद्र। २ बी० होय तस। (४) १. बी० चितह भरम जिन। २ मै० अरघ। (५) १. बी० लोरिक। २ बी० जियन की। ३ बी० जाग। ४ मै० चद्र। (६) १ बी० पिरम हस जौ कुररहि कुरहि नवासु सुहाई। (७) १ बी० मे इस चरण के स्थान पर अगले कडवक की प्रथम पक्ति है (पाठ वहाँ पर देखिए)।

अर्थ—(१) बृहस्पति [यह] कह कर जो बाहर हुई, [तो] खोलिन ने उसके पैरो की धूल ली। (२) [बृहस्पति के] पैरो की धूल को उसने सिर पर चढाया [और कहा,] "तुम मेरी आशा को तोड मत लेना।" (३) [उसने उत्तर दिया,] "खोलिन, चद्र मेष के घर मे आएगा तभी वह सूर्य को [इस] ग्रहण से छुडाएगा। (४) सुख हो गया, अब जी मे भ्रम (भय) न धारण करो, नहा धोकर कुछ ओषध (उपाय) करो। (५) लोरिक ने जीने की घडी प्राप्त कर ली है, सूर्य जाग गया है और चन्द्र विहसित हो रहा है। (६) ऐ खोलिन, जी मे भ्रम (भय) न करो, लोरिक को ले [जा] कर स्नान कराओ, (७) और कुछ अर्थ-द्रव्य [उस पर] वारो तथा उसे किसी ब्राह्मण को देने के लिए भेज दो।"

(१६३)

'जेहि दिन लोरिक उठइ नहाई। लोक कुटुब मइ करबि बधाई।
तोहि पहिरावउ 'चीरु अमोला'। 'जउ मुख आइ लोर' कहु बोला।
गई बिरसपति 'जह सब' तारा। अउ निसि चाद 'करइ' उजियारा।
गई 'सो' मेटि सुरिज 'कइ 'पीरा'। चाद 'तराइनि सेउ किइ भीरा।
'अरघ' 'बइस' निसि चादा रानी। नखत 'तराइनि कहहि' कहानी।
चाद नखत 'लइ' तारा 'बइठ' धौराहर जाइ।
लोर लागि 'मोहि' चिता कहि 'जउ' बिरसपति आइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १३२, बी० ५०२-५०४।

शीर्षक—मैं० (अपाठ्य) कबूल करदने खोलिन विरस्पति रा अर्ज़ सेहते लोरिक।

पाठान्तर—(१) १ बी० मे यह पक्ति पिछले कडवक के दोहे की दूसरी पक्ति के रूप मे इस प्रकार है

"जिहि दिन लोरिकु उठि बैठै लोगु न्यौति मैं करो वधाई।

(२) १ बी० तुहि पहिराऊ। २ बी० जिहि सुपु आइ लोरिक।

(३) १. वी० जहा सवि। २ वी० करै। (४) १ बी० सु। २ वी० की। ३. मै० मे नही है। ४ बी० तरायनि स्यौ गै। (५) १ मै० पाट। २ वी० बैसि। ३ वी० तरायनि कहै। (६) १. बी० लै०। २. बी० वैठ। (७) १ बी० लोरिक। २ बी० तिहि। ३ वी० जु।

अर्थ—(१) [खोलिन ने कहा,] "जिस दिन लोरिक उठेगा और स्नान करेगा, लोक (लोगो) और कुटुबियो मे मैं बधावा करूगी।(२) तुझे अमूल्य चीर पहनाऊगी, जब लोरिक के मुख मे बोल आएगा।" (३) बृहस्पति [अब] वहाँ गई जहाँ समस्त तारिकाए (दासिया) थी और रात्रि मे [जहाँ पर] वह चाद (चादा) प्रकाश कर रही थी। (४) वह सूर्य (लोरिक) की पीडा मिटा कर [वहाँ] गई [जहाँ पर] चाद (चादा) तारिकाओ (दासियो-सखियो) के साथ भीड (समाज) किए हुई थी। (५) चादा रानी रात्रि मे चुप बैठी हुई थी, नक्षत्र और तारिकाए (दासिया-सखिया) कहानी कह रही थी। (६) चाद (चादा) नक्षत्रो और तारिकाओ (दासियो-सखियो) को लेकर धवलगृह (प्रासाद) मे जा बैठी, (७) [और उसने कहा,] "लोर के लिए मुझे चिन्ता है; बता यदि तू बृहस्पति [वहाँ से] आई हो।"

(१६४)

'सवन' फटिक मुद्रा सिर सेली। कठ जाप 'रुदराखइ' मेली।
चकरु 'जोगौटा कोथी कथा'। पाइ पावरी 'गोरख' पथा।
मुख बिभूति कर गही अधारी। छाला 'वइसि क (कइ)' आसन मारी।
डडा 'खप्पर' सीगी 'पूरइ'। नेह 'चारचा' गावइ 'झूरइ'।
गुन किंगिरी 'तेहि' बार 'बजावइ'। 'चितहि चांदा' मुख 'चित्र उपावइ'।
सिद्ध पुरुख मढ 'बइठेउ' 'धरि' तिरसूर दुवारि।
'भुगुति' मोरि बनखड 'कइ' चाद नाम 'तात (तत ?) सार'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १३३, वी० ५०५-५०७।

शीर्षक—मै० जोगी शुदने लोरिक व नशिस्तने दर बुतखान बुत।

पाठान्तर—(१) १ वी० सोवन (सवन—फा०)। २ वी० जाप्प रुद्रागं (रुद्राखं—फा०)।(२) १ वी० जुगौटा काठी कैथा। २. मै० गोरक। (३) १ वी० वैमक। (४) १ वी० खपर जु। २ वी० पूरै। ३. वी० चान्जि। ४ वी० झूरै। (५) १ वी० तिह। २ वी० बजावै। ३. वी० जिन्हि। ४ वी० जात्रा पावै (चित्र उपावै—फा०)। (६) १. वी० वैठ।

२ बी० धर। (७) १ बी० भुगति। २ बी० की। ३ बी० सैसार (ततसार—फा०)।

अर्थ—(१) कानो मे [लोरिक ने] स्फटिक-मुद्राए, सिर मे सेली, कठ मे जप-रुद्राक्ष की मालाए डाल ली। (२) उसने चक्र, योगपट्ट (योगियो का वस्त्र), कोथली (थैली), तथा कथा (गूदडो का वस्त्र) [ले लिया] और पैरो मे पादत्री (खडाऊ) डाल कर वह गोरख-पथ मे [हो गया]। (३) उसने मुख मे विभूति (राख) [लगाई], हाथ मे अधारी ग्रहण की और छाला (मृगचर्म) पर बैठ कर आसन मार लिया। (४) वह दड और खप्पर [ले कर] सिगी पूरता (सिगी मे श्वास भरता), स्नेह-चर्चा के गीत गाता तथा सतप्त होता। (५) उस वेला मे वह गुण-किन्नरी (एक प्रकार की सारगी) वजाता, और चित्त मे चादा के मुख का चित्र उत्पादित करता। (६) मढी मे वह सिद्ध पुरुष उसके द्वार पर त्रिशूल रख कर बैठ गया। (७) [वह कहता,] "मेरी भुक्ति वनखड की है (मेरा भोजन कद-मूल-फलादि का है) और चाद (चादा) का नाम ही [मेरे लिए] सार तत्व है।"

(१६५)

एक बरिस लोरिक मढु सेवा। चाद सनेह 'मनाएसि' देवा।
कातिग परब दिवारी आई। डार परी 'रितु खेलिय' गाई।
चाद बिरसपति लीन्ह हकारी। 'आवइ' खेलन 'जाहि' 'दिवारी'।
सखी साठि इक गोहनि लागी। रूप सरूप 'सभागइ भागी'।
'अक्खत' चाद 'चली लइ' तहा। 'गाइ' दिवारी 'खेलइ' जहा।
'सून फूल' चादा 'लइ' 'अक्खत मेला' जाइ।
'बिहरत' हारु टूटि गा 'मोतिहु' गए 'छिरियाइ'॥

सन्दर्भ—मै० १३४, बी० ५०८-५१०।

शीर्षक—मै० यक साल परस्तीदने लोरिक वुत रा व आमदने चादा वा सहेलियान दर आ।

पाठान्तर—(१) १ बी० मनायसि। (२) १ बी० रुति पेलहि। (३) १ बी० आवोहु। २ मै० देखइ। ३ बी० जाह। (४) १ बी० सभाग सभागी। (५) १ बी० आखत। २ बी० लिये लै। ३. बी० गई। ४ बी० षेलहि। (६) १ बी० षेल गउ चाद। २ बी० लै। ३ बी० अपित मेले। (७) १ बी० फिरताह। २ बी० मोती। ३ बी० छिराइ।

अर्थ—(१) एक वर्ष तक लोरिक ने मढ (मदिर) का सेवन किया और चादा के स्नेह मे देवता को मनाया। (२) कार्त्तिक मे दीवाली का पर्व आया और यह डार (?) पडी कि गाँव मे ऋतु के खेल खेले जाए। (३) चादा ने वृहस्पति को बुला लिया और कहा, "आओ, दीवाली खेलने के लिए जाए।" (४) साठ के लगभग सखिया साथ लग गईं, रूप मे वे सुरूपा और भाग्य मे वे भाग्यशालिनी थी। (५) चादा अक्षत लेकर वहाँ के लिए चल पडी जहाँ पर गाव मे दीवाली खेली जाती थी। (६) प्रसून तथा फूल लेकर चादा ने [देवता पर] अक्षत जा डाले, (७) [किन्तु वहाँ पर] विहार करते समय उसका हार टूट गया और उसके मोती भी [निकल कर] छिटक गए।

(१६६)

'सही' मोति 'लइ धोवइ' पानी। चाद 'कानि कइ(?)चितहि' 'सकानी'।
जननि 'जउ पूछिहि तउ' कस 'कहऊ'। 'कवन' उतरु अनु उत्तर 'देऊ'।
'बोला सखिन्ह छाह मढि लीजइ'। हार 'पिरोइ' चाद 'तुम्ह' दीजइ।
आइ विरसपति 'बहुरि' हुकारी। चाद बचन सुनि मढी सिधारी।
मढु सुहाव 'अउ' छांह 'सुहाईं'। चाद सखी लइ बइठी जाईं।
'मानिक मोति पिरोवहिं रचि रचि बारी हार'।
'बइठी चाद बिरसपति' सूरिजु मढी दुवारि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १३५, वी० ५११-५१३।

शीर्षक—मैं० शिकस्तने हार मुरवादीद चादा दर बुतख़ान व जमअ करदने सहेलियान।

पाठान्तर—(१) १ वी० सवरि। २ वी० घाइ लै। ३ वी० कुमति भइ पिता। ४ मैं० लजानी। (२) १ वी० मदिर पूछै। २ वी० कहौ। ३ वी० कौन। ४. वी० सहौ। (३) १ वी० वोली सषी छाव मठि लीजै। २ वी० परोइ। ३ मैं० कह। (४) १ वी० भई। (५) १ वी० अति। २ वी० ही आई। (६) १ वी० रचि रचि वारि परोवहिं मानिक मोती हार। (७) १ वी० चाद वैठ परछाही।

अर्थ—(१) सखिया मोतियो को ले-लेकर पानी से धो रही थी, [इस बीच] चादा [माता-पिता की] कानि कर चित्त मे शकित हुई। (२) [उसने कहा,] "जननी यदि पूछेगी, तव मैं कैसे कहूगी और कौन-सा उत्तर तथा अनु-उत्तर दूगी ?" (३) सखियो ने कहा, "मढ (मदिर) मे छाया ली जाए

और [वही पर] हार को [पुन] गूथ कर, ऐ चाद, तुम को दिया जाए।" (४) फिर (तदनतर) बृहस्पति ने आकर [इस प्रस्ताव का] समर्थन किया और चादा [उसके] वचन को सुनकर मढी के लिए चल पडी। (५) वह मढ सुहावना था, और [उसमे] छाया [भी] सुहावनी थी, चादा सखियो को ले कर जा बैठी। (६) वे बालिकाए रच-रच कर [हार के] माणिक्य और मुक्ता पिरोने लगी, (७) और चादा तथा बृहस्पति [उस मढी मे] बैठ गई, [जबकि] सूर्य (लोरिक) उस मढी के द्वार पर [बैठा हुआ] था।

(१६७)

'झाखि सहेलिन्ह' चादहि कहा। 'एहि मढ मह एक आएसु' अहा।
अति रूपवतु राजपुतु 'आही'। सुरिजु मदन 'कत लाए जाही'।
'कुर क. ऊच आहि बडवारू। सुदर खतरी बीर अपारू।
कवनि जननि 'जरमेउ' अस बारा। सहस करा 'भएउ' उजियारा।
नागर 'छइल सभागइ' भरा। करम जोति मनि 'माथे बरा'।
'चादहि' 'कहा' 'तराइन' सूरिजु 'देखउ' 'आइ'।
अस भगिवतु 'जउ देखिय' 'दिस्टि पापु' झरि 'जाइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १३६, बी० ५१४-५१६।

शीर्षक—मैं० ख़बर जोगी करदने सहेलियान बर चादा रा।

ऊपर निर्धारित (४)।२ मैं० मे (५)।२ है और (५)।२ मैं० मे (४)।२ है।

पाठान्तर—(१) १ बी० झारि सहेल्योहु। २ बी० इसु मढ महि कोउ आसनु। (२) १ बी० अहै। २ बी० गति लाए रहै। (३) १ बी० कुवरु कर उच। (४) १ बी० जनमा (?)। २ बी० होइ। (५) १ बी० चतुर सभागै। २ बी० माथै परा। (६) १ मैं० चाद। २ बी० कहसि। ३ बी० तरायनि। ४ बी० देखहु। ५ बी० आई। (७) १ बी० जु देखै। २ बी० द्रिष्टि पाषु (पापु—नागरी)। ३ बी० जाई।

अर्थ—(१) [इधर-उधर] झाक कर [चादा की] सहेलियो ने कहा, "इस मढ मे एक आदेश (योगी) है। (२) वह अत्यधिक रूपवान् राजपुत्र है, सूर्य तथा मदन जिसके (जिसकी तुलना मे) किस योग्य हैं ? (३) वह कुल का ऊचा और बडा है, वह सुदर क्षत्रिय और अपार वीर है। (४) किस जननी ने ऐसी वीर बालक को जन्म दिया है, जिसकी सहस्र कलाओ से वहा प्रकाश हो

रहा है ? (५) वह नागर और छैला है, सद् भाग्य से पूरित है, और कर्म की ज्योति-मणि उसके मस्तक पर झलक रही है। (६) चादा से तारिकाओ (सखियो) ने कहा, "उस सूर्य (पुरुष) को आ कर देखो, (७) ऐसे भाग्यवान् को यदि देखिए तो दृष्टि के [समस्त] पाप झड़ जाए।"

(१६८)

चांद सीसु 'भगवतहि' नावा। भा अचेतु 'मन' चेतु गवावा।
मुनिवर 'मन' देखन 'गुन गएऊ'। पीत बरन मुख 'भेमरु भएऊ'।
नैन झुर्रहि अति कया सुखानी। 'धनि' धानुक चखि हना बिनानी।
नैन दिस्टि चांदा 'मुख' लाइसि। रहा घाइ 'न सो देखइ पाएसि'।
'भउह फिराइ' चाद गुन तानी। नैन बान मुनि 'हना सयानी'।
काटि दीन्ह जस 'बकर देवारी' रगत 'कीन्ह घर बार'।
देखि गई 'धर धरती' मुनिवर 'देउ' दुवार॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १३७, बी० ५१७-५१६।

शीर्षक—मैं० सलाम करदने चादा व बेहोश शुदने जोगी।

पाठान्तर—(१) १. बी० भगवत कौ। २ बी० मनि। (२) १ बी० मुपु। २ बी० कौ गयो। ३ मैं० विख। ४ बी० भ्यभरु भयो। (३) १ बी० धन। (४) १ मैं० मे नही है। २ बी० तहा देषि न आइसि। (५) १ बी० भौह फिराई। २ बी० हन्यो विनानी। (६) १ बी० वकरा देहुरे। २ बी० पेह पुरमार। (७) १ बी० धन उधोनत। २. बी० मुनियर देव।

अर्थ—(१) चादा ने उस भाग्यवान् [अथवा भागवत] को सिर नमित किया, [तो] वह अचेत हो गया और उसने मन की चेतना गवा दी। (२) उस मुनिवर का मन [चादा को] देखने के लिए चला गया था, [अत] उसका मुख भेंभर तथा पीत वर्ण का हो गया था। (३) उसके नेत्र अत्यधिक सतप्त हो रहे थे और उसकी काया सूख गई थी; वह धानुष्का धन्य थी जिसने चक्षुओ से उस विज्ञानी को आहत कर दिया था। (४) नेत्रो की दृष्टि उसने चादा के मुख पर लगाई, [तो] वह ऐसा आहत हो रहा कि उसे देख भी न पाया। (५) भौहो [के धनुष] को घुमा कर चादा ने प्रत्यचा तान ली और उस सयानी ने नेत्र-बाणो से मुनि को आहत कर दिया। (६) जैसे दीवाली पर बकरा काट दिया गया हो और घर का द्वार [उसके रक्त से] लाल कर दिया गया हो, (७) [ऐसे] देव-द्वार पर धरती पर मुनिवर का धड [पड़ा हुआ] देख कर वह चली गई।

(१६९)

बाहुरि मडप चाद 'जउ' आई। 'सूरिज' दिस्टि मुख गा 'कुबिलाई'।
'पूछइ' चाद बिरसपति धाई। काह 'कहउ कछु कही' न जाई।
'जउहि' सीसु 'मइ' सिध कहु नावा। मुरछि परा मुख 'बकति' आवा।
हाथ 'पाउ सिरु हिर न सभारइ'। 'धरि धरि' सीसु मडप 'सेउ मारइ'।
हारु 'पिरोइ' 'सहेलिन्हु' दीन्हा। हसि कइ चाद 'पहिरि गिय' कीन्हा।
'कहा' बिरसपति 'चादा' चलहु बेगि 'घर' जाहिं।
चाद सूरिज 'हइ अथवत' महरी खरी डराहिं॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १३८, बी० ५२०-५२२।

शीर्षक—मै० बाज़ गश्तने चादा अज बुतख़ान व आमदन वेख़ानए खुद।

पाठान्तर—(१) १ बी० जै। २ बी० सुरिजु। ३ मै० कुमिलाई। (२) १ बी० पूछै। २ बी० कहौ कुछु कहन। (३) १ बी० जवहि। २ बी० मै। ३ बी० बगत। (४) १ बी० पाव कछु सिरु न सभारै। २ मै० धुनि धुनि। ३ बी० स्यौ मारै। (५) १ बी० परोय। २ बी० सहेलेंहु (सहेलीहु—फा०)। ३ बी० विगसि गै। (६) १ बी० कहसि। २ बी० चादहि। ३ बी० घरि। (७) १ बी० है अथवा।

अर्थ—(१) जब चादा मडप से वापस हुई, सूर्य (लोरिक) की दृष्टि [लगने] से उसका मुख कुम्हला गया था। (२) चाद धाय बृहस्पति से पूछने (कहने) लगी, "मै क्या कहू ? कुछ कहा नही जा रहा है। (३) जभी मैंने सिद्ध को सिर नवाया, वह मूर्च्छित हो कर गिर पडा और उसके मुख से वक्ति (वाक्य) न निकला। (४) उसके हाथ-पैर और सिर हिल रहे थे, उन्हे वह सभाल नही रहा था और [अपने] सिर को पकड-पकड कर मडप से मार (टकरा) रहा था।" (५) [उसकी] सहेलियो ने उसे हार [पुनः] पिरो (गूँथ) कर दिया, तो हँस कर उसे चादा ने ग्रीवा मे [धारण] किया। (६) बृहस्पति ने कहा, "चादा, चलो, हम शीघ्र घर जाए। (७) ऐ चादा, सूर्य अस्त हो रहा है, हम महरी को खरी (बहुत) डरती है।"

(१७०)

'माता' पिता बधु नहि 'भाई'। सगु न साथी मीतु न 'धाई'।
'एहिं' बनखड 'कोइ' पास न 'आवइ'। 'को रे' मरत मुखि नीर 'चुवावइ'।

'को रे' 'उठाइ बइसार संभारी'। 'एहि' 'कथा गुन' 'देइ' हंकारी।
दई पेटि जीउ बहुरि संचारा। 'बांधेसि' सीसु झारि 'कइ' बारा।
'सपने सउतुक मइ' कछु देखा। चित न 'संभारउ' मरन बिसेखा।
'देवहि पूछहु(हुं) तू जउ आहा 'हउ कस' गा बिसंभार।
कया सूक मुख 'भैमर' 'मोरे' जियं कछु 'न संभार'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १३६, भो० पत्र ६ (नवीन), बी० ५२३-५२५।

शीर्षक—मै० · कैफियत दर तनहाइए लोरिक गोयद।

भो० · गुफ्त लोरिक गुरवत खुद व पुरसीदन बुत रा।

पाठान्तर—(१) १ भो० माता। २. बी० धाई। ३ बी० सहाई। (२) १. बी० यह। २ बी० को। ३ भो० आवा। ४. भो० कोइ, बी० कोपि। ५ भो० चुवावा। (३) १ मै० कोइ, बी० को। २. बी० उठारि वैसार न सभारी। ३ बी० नेह, भो० आनि, किंतु बाद मे पाठ 'एहि' दिया गया है। ४ बी० घूटि कोउ। ५. भो० कहइ। गहइ। (४) १ बी० बाधि। २ मै० करि, बी० कै। (५) १ बी० सपन क सूतकै मैं। २ भो० सभार, बी० सभारै। (६) १ बी० देवेहि पूछि जीउ अहा। २. बी० हौ किन। (७) १ बी० मनि भीभर। २ बी० मोर।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "माता, पिता, बधु, भाई, सगी, साथी मित्र तथा धाय नही है। (२) इस वनखड मे कोई पास नही आता है, [अत] कौन मुझ मरते हुए के मुख मे पानी चुवाए ? (३) कौन मुझे उठा कर और सभाल कर बिठाए और बुला कर इस कथे मे गुण दे—इस कथे (चीथड़ो) जैसी काया मे सूत्र जैसे प्राण पिरोए ?" (४) तब तक दैव ने उसके पेट मे जीव का सचार किया तो उसने बालो को झाड कर सिर बाधा। (५) [वह कहने लगा,] "स्वप्न मे अथवा सप्रत्यक्ष मैंने कुछ देखा, [जिसे] चित्त मे स्मरण नही कर रहा हूँ, [मानो] मरण का विसेख (वैशिष्ट्य—प्रभाव) था। (६) देवता से पूछू कि 'तू जब [उपस्थित] था, मैं कैसे बेसंभाल हो गया, (७) [कैसे] मेरी काया मे शुष्क गई, मेरा मुख भेभर हो गया और मेरे जी मे कुछ भी सभाल (चेत) न रहा ?' "

(१७१)

एकु 'अचंभा' 'सुनहि तू' लोरा। 'सउतुक सपनइ भएउ जेहि' तोरा।
'अछरिन्ह केर झुंड' एकु आवा। 'सो' अछरी 'तइ' 'देखि' न पावा।

तू तिन्ह देखि 'परा मुरझाई । 'हौ(हउ) ब' 'लोन परि गएउ' बिलाई ।
भा झनकारु 'जउहि तिन्ह गवना' । 'अउ रितु उठा फूटि कनै सोना'।
खिन इक 'रही कोड' तिन्ह कीन्हा । 'बहुरि' पयानु उतर मुख कीन्हा ।
सीसु उचाइ 'जउ देखिउ' मडपु चहु 'दिसि' सून ।
'लहन मोर जइ उतरइ' लोर 'तुम्हारेइ पून' ॥

सन्दर्भ—मैं० १४०, बी० ५२६-५२८ ।

शीर्षक—मैं० जवाब दादने बुत बर लोरिक रा ।

पाठान्तर—(१) १ बी० अचभौ । २ बी० सुनसि न । ३ बी० सूतक सुपन भयो जिउ तोर । (२) १ बी० अछिराह केर झूरु । २ बी० सा । ३ बी० तै । ४ बी० देख (देखि), मैं० देखन । (३) १ मैं० हउ रे । २ बी० नून पर गयो । (४) १ बी० चहू दिस कूना (गवना—फा०) । २ बी० औहट उठे फटि गयै सौना । (५) १ मैं० हस गवन । २ बी० फुनि रु । (६) १ बी० नैन जो देखौ । २ बी० दिस । (७) १ बी कया मुरछि जिउ उवरा । २ बी० तुम्हारे पुन ।

अर्थ—(१) "ऐ लोरिक", [देवता ने कहा,] "तू एक अचभा सुन, जिससे तेरा (तुझे) स्वप्न मे सप्रत्यक्ष हुआ । (२) अप्सराओ का एक झुड आया, और उन अप्सराओ को तू देख न पाया । (३) तू उन्हे देख कर मूर्च्छित हो पडा और अब (उसी समय) मैं लवण की रीति से [उनके सौन्दर्य-सागर मे] विलीन हो गया । (४) जब उन्होने गमन किया, एक झकार हुआ और ऋतु (प्रकृति) मे कनक और सोना (स्वर्णिम प्रकाश) फूट उठा । (५) एक क्षण तक वे रही और उन्होने कोड (खेल-खिलवाड) किया, पुन उन्होने उत्तर-मुख प्रयाण किया । (६) मैने सिर उठा कर जब देखा, चारो ओर मडप सूना था । (७) मेरा लहना (प्राप्य) जभी उतरेगा (प्राप्त होगा), ऐ लोरिक, वह तुम्हारे पुण्यो से होगा ।"

(१७२)

'चाद बिरसपति पास बुलाई । पिरम कहानी 'कहु मोहि' आई ।
'जेहिं' रस मन कर बिरसु बिसारउ । 'रस दिवरा हिरदै थरि जारउ'।
रस अहारु मोहि देहि अघाई । बिरह झार बिनु रस न बुझाई ।
बहुल 'रसायन' देखेउ' चाखी । 'सरस' कहानी कहु मोहि भाखी ।
'रस किए' राति सपूरनभावै(वइ)। 'अउ' रस सुनि 'सुख' निद्रा 'आवइ' ।

'कहु रस बचन' 'बिरसपति' 'जेहि चित करुव' मिठाइ ।
रस 'कइ' घरी 'बहुरावहि' दुख सताप 'षु(षो)भ' जाइ ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १४१, बी० ५२९-५३१ ।

शीर्षक—मै तलबीदने चादा बिरस्पति रा व पुरसीदन हिंकायते लोरिक । मै० मे निर्धारित (५)।१ का अतिम शब्द छूटा हुआ है ।

निर्धारित (४), (६) तथा (७) बी० मे ऊपरी हाशिए मे भिन्न व्यक्ति द्वारा दिए हुए है ।

पाठांतर—(१) १ बी० कहौ निसि । (२) १ बी० जिह । २ बी० रस दियरा हिरदै परजारौ । (४) १ बी० रसइन । २ बी० देषौ । ३ बी० प्रिम । (५) १ बी० सरस स । २ मै० मे नही है । ३ बी० औ । ४ बी० सखि । ५ बी० आवै । (६) १ बी० इहै कह रस बचन बिरसपत । २. बी० जि चित कटु (७)१ । १ बी० की । २ बी० उचावहु । ३ मै० तेहि ।

अर्थ—(१) चादा ने बृहस्पति को पास बुलाया [और कहा,] "तू आकर मुझे [कोई] प्रेम-कहानी सुना, (२) जिसके रस से मैं अपने मन की विरसता को विस्मृत कर दू और हृदय के स्थल मे रस का दीपक जलाऊ । (३) रस का आहार मुझे अघा कर (भर-पेट) दे, [क्योकि] विरह की ज्वाला बिना रस के बुझती नही है । (४) बहुतेरे रसायनो को मैंने चख कर देखा, [उनसे कोई लाभ नही हुआ,] अत कोई रस कहानी तू मुझसे भाष कर कह । (५) रस के द्वारा सम्पूर्ण रात्रि भाएगी और रस (रस की वार्त्ता) सुन कर ही सुख-निद्रा आएगी । (६) ऐ बृहस्पति, तू वह रस-वचन कह जिससे चित्त की कड़ुवाहट मीठी हो जाए । (७) तू रस की घडी वापस ला, जिससे [मेरे] दु ख, सताप और क्षोभ जाएँ ।"

(१७३)

तू रसु विरसु चाद का जानसि । 'हउ रस कहउ घिरित जउ' सानसि ।
'घिरित खाड सो करउ मेरावा' । 'चाद जइस' अबिरितु तुम्ह पावा ।
रस 'बरजहि कइ बरइ' अहारू । 'रसहि बूड़ि आछहि सयंसारू' ।
रस 'के दाध' अनपानि न 'भावा' । रस 'जउ आन ओखद बरु लावा' ।
रस 'कइ बात चितहि जउ' धरसी । रस 'कइ घरिय बिरसु जिनि' करसी ।
रस 'के' कुडि परा 'मरहि' मुनिवरु 'गन(गहन ?)' गहीरु ।
रस क बूट 'धरि वाहइ' चादा 'लावहि' तीर ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १४२, वी० ५३१-५३३ ।

शीर्षक—मैं० जवाव दादने विरस्पति चादा रा ।

पाठांतर—(१) १ वी० हौं रस कहौ घिरत स्यो । (२) १ वी० घिरत षाड सौ होई मिरावा । २ वी० अैसे चाद । २ वी० अमिरतु । (३) १ वी० परिजाव तस वै । २ वी० रसह अछ वूडै सैसारू । (४) १ वी० लागे । २ वी० भावै । ३ वी० जु पाइ औषध पै लावै । (५) १ वी० की वात चिताह जै । २ वी० की घरी विरसु जिन । (६) १ वी० कै । २ वी० मढि (मरहि—फा०) । ३ वी० अति रुति गगन । (७) १ वी० घर वाहा । २. वी० लावोहु ।

अर्थ—(१) [वृहस्पति ने उत्तर दिया,] "ऐ चादा, तू रस और विरस को क्या जाने ? मैं रस तो तव कहूँ जव तू उसे घृत (स्नेह) से साने । (२) घृत (स्नेह) का खाड (रस) से मिलान करे तो जैसे, ऐ चाद, तूने अमृत पा लिया । (३) रस का चाहे वर्जन कर, चाहे उसके आहार का वरण कर, रस मे डूव कर ही ससार स्थित है । (४) [किन्तु] रस से दग्ध होने पर अन्न-पानी नही भाता है, [अत] यदि रस को कोई लाए तो अच्छा यह हो कि [इसके साथ ही] इसकी औपधि भी लाए । (५) रस की वात यदि तू चित्त मे धारण करती है तो तू रस की घडी को विरस न करे । (६) गहन-गभीर रस के कुड मे जो मुनिवर गिर कर मर रहा है, (७) उस रस मे डूबे हुए को वाह से पकड कर, ऐ चादा, तू तीर पर लगा ।

(१७४)

निलज बिरसपति लाज न 'धरसी' ।
मोहिं भिखारि 'सेउ' सरभरि करसी ।
बिरसपति 'तोरे' मन अस आवा ।
'जउ तइ' मढि मुनिवरु दिखरावा ।
'जेहिं' खिन चाद सुरिजु दिखरावा ।
'तेहि' 'खिन हुते' मोहिं 'अउरु' न भावा ।
नैन 'पइसि' चित 'कीतेसि' ठाऊ । 'बाजु' कीन्ह 'हउ' अनत न जाऊ ।
'तइ जो देखाइ' बिरसपति 'कहा' । सो 'मइ जेउ' लागि 'चित' रहा ।
लोरु सुरिजु 'बहु' 'निरमर' चहू 'भुवन' 'उजियार' ।
चाद आहि धनि 'ताकरि' 'सो रबि' नाहु हमार ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १४३, बी० ५३४-५३६ ।

शीर्षक—मै० . जवाब दादने चादा बर बिरस्पति रा बा गुस्स ।

(५)।२ मे 'जेउ' मै० मे वाद बढाया हुआ है ।

पाठांतर—(१) १ बी० मरसी । २ बी० स्यो । (२) १ बी० तोरे । २ बी० जी ते । (३) १ बी० जिह । २ बी० तिह । ३ मै० दिन हुत । ४. बी० औरु । (४) १ बी० पैसि । २ बी० कीतसि । ३ बी० बाच (वाज—फा०) । ४ बी० मै । (५) १ बी० तै जु दिषाव । २ बी० अहा । ३ बी० तौ हिये लागि । ४ मै० चिंत (चित्त—ना०) । (६) १ बी० पर । २ मै० निरमल । ३ बी० भवन । (७) १ बी० ताकर । २ मै० सूरिज ।

अर्थ—(१) "ऐ निर्लज्ज बृहस्पति," [चादा ने कहा,] "तू लाज नही धारण करती है, [और] तू एक भिखारी के साथ मेरी बरावरी करती है । (२) बृहस्पति, तेरे मन मे ऐसा आया [होगा], जभी (तभी) तूने मढ मे [मुझे ले जा कर उस] मुनिवर को दिखाया । (३) जिस क्षण तूने चाद को सूर्य (लोरिक) का दर्शन कराया, उस क्षण से मुझे अपर (अन्य) कोई नही भाया है । (४) [मेरे] नेत्रो से प्रविष्ट होकर उसने [मेरे] चित्त मे स्थान कर लिया है, और मुझे वर्जित कर दिया है, मैं [इसी कारण] अन्यत्र नही जाती हूँ । (५) तूने जब [उसको] दिखा कर, ऐ बृहस्पति, कहा [तभी से] वह जैसे मेरे चित्त मे लग रहा है । (६) मेरा लोरिक वहुत निर्मल (निष्कलक) सूर्य है और वह चारो भुवनो मे प्रकाश-पूर्ण है । (७) चादा उसी की धन्या (स्त्री) है, और वह सूर्य (लोरिक) मेरा नाथ (स्वामी) है ।"

(१७५)

वह 'सो' महर धिय तोर भिखारी । भीखि 'लेसि' जउ 'देसि' हकारी ।
दरसन 'रात' 'भएउ तेहि' जोगी । भीख न माग 'पुरुख हइ' भोगी ।
'तेहि' कारनि मुखि भसम 'चढावा' । सुबचनु देहि 'तउहि सिधि पावा' ।
तोरे रस कर 'आहि' पियासा । 'निससत रहै लेय(इ)' मरि सासा ।
चाद वचनु एकु 'मुनसि न' मोरा । तू 'ओखद वहु रोगिया' तोरा ।
हस्ति 'चढ़ा दिखराएउ' फुनि 'आएउ जेवनार' ।
मोर्डि लोरु 'मढि मुनिवरु' देपत 'गा' बिसभार ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १४४, बी० ५३७-५३९ ।

शीर्षक—मै० वाज़ नमूदने हिकायत लोरिक पेशे चादा ।

पाठांतर—(१) १ वी० सु। २ मैं० लेइ। ३ वी० देहु। (२) १. मैं० राता। २ बी० भयो तोहि। ३ वी० पुरषु है। (३) १ वी० तुहि। २ बी० चरावैं। ३ वी० तवहि सुषु पावैं। (४) १ मैं० आस। २ मैं० नित तोहि आछे लइ। (५) १ मैं० सुनहु तुम्ह। २ बी० औषध वोहु रोगी। (६) १ वी० चरा दिखरायो। २ वी० आयो जिवनार। (७) १ मैं० मढ मह। २ वी० भयो।

अर्थ—(१) [बृहस्पति ने कहा,] "ऐ महर-कन्या, वह तेरा भिक्षुक है, और वह भिक्षा [तभी] लेगा जब तू बुला कर उसे देगी। (२) तेरे दर्शनो पर अनुरक्त हो गया, तभी वह योगी हुआ, वह भीख नही माँगता है, वह पुरुप तो भोगी (भोग-प्रिय) है। (३) इसी कारण उसने मुख पर भस्म चढा ली है, तू अपना वचन देगी, तभी वह सिद्धि पाएगा। (४) वह तेरे रस का पिपासु है, वह नि श्वास लेता और मर-मरकर साँसे लेता रहता है। (५) ऐ चादा, तू मेरा एक वचन सुन, तू औपधि है और वह तेरा रोगी है। (६) वही हाथी पर चढा हुआ दिखाई पडा था, और वही पुन [उस दिन] ज्योनार मे आया था, (७) वही लोरिक मढ (मडप) मे मुनिवर [के वेप मे] था, जो तुझे देखते-देखते वेसभाल हो गया था।"

(१७६)

मढि मुनिवरु 'जउ' लोरिकु अहा।
'तइ' न बिरसपति 'मोसिउ' कहा।
भुगुति 'जुगुति तेहि जोग' 'दिवउतिउ'।
'घिरित मेरए' 'रस' बचन 'सुनइतिउ'।
अबहि जाइ धरि बाह 'उचावहि'।
बिरह 'बिभूत मुनि पानि पियावहि'।
अस जिनि 'कहहि कि' चाद 'पठाइउ'।
पूछत 'कहिसु' 'सही' चलि 'आइउ'।
'गूवा' पान नगरखड लेहू। 'कइ' खडवानि बिरसपति देहू।
मुखि बिभूति 'अउ' कथा अस कहि धरहु उतारि।
'देई भएउ तुम्ह' परसना 'पूजिहि' आस तुम्हारि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १४५, वी० ५४०-५४२।

शीर्षक—मैं० अफसोस करदने चादा अज़ वेहोशी दर बुतखान।

पाठांतर—(१) १ वी० जो। २ बी० ते। ३ बी० मो सौ। (२) १ वी० जोग कछु जुगति। २ वी० दिवौत्यौ, मै० देतिउ। ३ वी० घिरत भरे। ४ मै० मे यह नही है। ५ बी० सुन्यैत्यै। (३) १ बी० उचावोहु। २ बी० भूजि मुष पानी प्यावेहु। (४) १ बी० कहहु कि, मैं० कहहि। २ वी० पठायौ। ३ बी० कही। ४ मै० मे नही है। ५ वी० आयो। (५) १ वी० गोवा (गूवा—फा०)। २ वी० ले (कै—फा०)। (६) १ वी० औ। (७) १ बी० देउ भया। २ बी० पूजी।

अर्थ—(१) [चादा ने कहा,] "यदि उस मढ मे मुनिवर [के वेश मे] लोरिक था, तो तूने, ऐ वृहस्पति, मुझसे बताया नही। (२) उसके योग्य मैं भुक्ति (भोजन) और युक्ति दिलाती और उसे घृत मिलाए हुए (स्नेह-मिश्रित) वचन सुनाती। (३) तू अभी जाकर और उसकी बाँहे पकड कर उसे उठा और उस विरहाभिभूत (?) मुनि को पानी पिला। (४) ऐसा मत कह कि तू चादा की भेजी हुई है, पूछते समय यही कह, "मै स्वय ही चली आई हूँ।" (५) गूवा (सुपारी) पान और नगर-खड (श्वेत-शर्करा—चीनी) ले ले और, ऐ वृहस्पति, खडवानी (खाड का रस) बना कर उसको दे। (६) [पुन] उससे ऐसा कहे, 'मुख की विभूति और कथा उतार कर रख दो, (७) दैव तुमसे प्रसन्न हुआ है, तुम्हारी आशा पूरी होगी।' "

(१७७)

चाद 'खाडि दिई' पान 'सोपारी'। सरगि विरसपति मढिइ सिधारी।
'गौनि' विरसपति 'मढिइ' पईठी। 'जहवा' चाद सुरिजु भई दीठी।
विरसपति डसन वीजु चमकाए। मुनिवर नैन रगत झरु लाए।
विरसपति 'पाय' सुरिजु 'लइ' रहा। 'तुम्ह जो' चाद मढि 'आवन' कहा।
जागत 'रहउ' 'जो' नीद गवानी। अन न रूच 'अउ भाइ' न पानी।
'हउ जउ' चाद 'लइ आइउ' 'कीएउ मढ' परगास।
मुभर नीद 'वरु सूते' गई ढंढोरि चहु पास॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १४६, वी० ५४४-५४६।

शीर्षक—मैं० शकर व वरग दादह फिरिस्तादने चादा विरस्पति रा वर लोरिक दर वुतखान।

पाठान्तर—(१) १ वी० पाड दै। २ वी० सुपारी। (२) १ वी० नार। २. वी० मढी। ३ वी० जहुवा। ४ मै० सूरिजु (सुरिजु—ना०)।

५. बी० भा । (४) १ बी० पाव । २ बी० लै । ३ बी० तै जु । ४. बी० आनै । (५) १ बी० रहौ । २ बी० जु । ३ बी० भावै नहि । (६) १ बी० हौ जु । २ बी० लै आयो । ३ बी० कियसि मढी । (७) १. बी० भरि सोवोहु ।

अर्थ—(१) चादा ने खड (काट) कर पान-सुपारी दी तो आकाश (धवलगृह) से बृहस्पति मढी गई । (२) जा कर बृहस्पति उस मढी मे प्रविष्ट हो गई जहा पर चाद (चादा) और सूर्य (लोरिक) की [परस्पर] दृष्टि हुई थी । (३) बृहस्पति ने दातो की बिजली चमकाई, तो मुनिवर के नेत्रो ने रक्त की झडी लगा दी । (४) बृहस्पति के पैर सूर्य (लोरिक) ने पकड लिए, [और वह बोला,] "तुमने जो चादा की मढ मे आने की [बात] कही थी [उसको स्मरण करो] । (५) [उससे] क्योकि मेरी निद्रा गुम हो गई है, मैं जागता ही रहता हूँ, अन्न मुझे नही रुचता है और पानी नही भाता है ।" (६) [बृहस्पति ने कहा,] "मैं जब चादा को [यहा] लाई और इस मढ मैंने [उसका] प्रकाश किया, (७) तुम भरपूर नीद मे सो गए और वह [तुम्हारे] चारो ओर ढूढ-ढाढ कर चली गई ।"

(१७८)

'जउ हर सेइ नरायन धा(ध्या)वइ' ।
'चाद सुरिजु 'बिनु और न भावै(वइ)' ॥
सुबचन सुनि 'लोरिक' 'गहबरा' ।
दोऊ 'पाय (इ) सीस लै(लइ) धरा' ॥
अबहि 'सुरिजु' मन राखि 'रहावहु' । बिहसति चाद सरद 'रितु पावहु' ।
'तजहु' 'लोर दरसनु अउ' मढी । 'सरगि चाद बुधि बहु गुन' गढी ।
बिरसपति बचन लोर 'जउ' माने । 'कइ खडवानि पियाएसि आने ।
परथमि देव मनाएउ' फुनि 'रे' बिरसपति तोहि ।
पाइ 'परउ लइ तारा' चाद 'मेरावहि' मोहि ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १४७, बी० ५४७-५४९ ।

शीर्षक—मैं० पन्द दादने बिरस्पति चादा लोरिक रा कि दूर कुन लिवासे जोग ।

मैं० मे (७) का प्रथम अक्षर पन्ने के फटने से निकला हुआ है ।

पाठान्तर—(१) १ मैं० सूरिजु (सुरिजु—ना०) । २ बी० रवावोहु ।

३ बी० रुति पावोहु। (२) १ मै० तजु। २. बी० सुरिजु दरसनु औ। ३ बी० चाद सुरगि विधाता कै। (३) १ बी० जो हरि सबै तरायनु धावै। २ बी० चद। ३ मै० कह ओर निभावइ। (४) १ बी० लोर। २ मै० हेरा। ३ मै० पायनि सीस धरेरा। (५) १. बी० जौ। २. बी० दे षंडवानी पान सुवाने। (६) १ बी० मनायो। २ बी० रु। (७) १. बी० परौ अब तोरो। २ बी० मिरावोहु।

अर्थ—(१) "ऐ सूर्य (लोरिक)," बृहस्पति ने कहा, "अभी मन को रोक कर रहो, तुम चादा को शरद ऋतु मे हसती हुई पाओगे। (२) ऐ लोरिक, [अब] इस दर्शन (वेष) और मढी को छोडो। चाद आकाश मे (धवलगृह के ऊपरी खड मे) है और वह बहुतेरी बुद्धि और गुणो से गढी हुई (निर्मित) है। (३) यदि तुम शिव की सेवा और नारायण का ध्यान करोगे, तो चाद (चादा) को सूर्य (लोरिक) के अतिरिक्त और कोई न भाएगा।" (४) इन सुवचनो को सुन कर लोरिक गद्-गद् हो गया और उसने [उसके] दोनो पैरो पर सिर रख दिया। (५) जब बृहस्पति के वचनो को लोर ने मान लिया, बृहस्पति ने खडवानी की और उसे लाकर लोरिक को पिलाया। (६) [लोरिक ने कहा,] "पहले मैंने देवता को मनाया और पुनः (तदनतर) तुझे [मनाया], (७) ऐ [चाद की] तारिका (दासी), मैं तेरे पैरो पडता हूँ, तू मुझे लेकर चाद से मिला दे।"

(१७६)

मुनिवरु दरसन जोगु उतारा। मढु तजि खतरी 'मदिर' सिधारा।
चली बिरसपति 'सू(सु)रिजु पठाई'। चांद 'नारि' 'कह' बात जनाई।
चाद बिरसपति 'सेउ' अस कहा। कहि मढ मुनिवरु 'कैसे' अहा।
नैन रगत 'झर दिन' असरारू। 'भुगुति न जानइ नीद' अहारू।
'मलिन' काम वेधा न 'सभारइ'। चाइ चाद निसि ठाढ 'पुकारइ'।
सीसु धुनति तिहि 'देवरइ' 'जनहु नावित अभुवाइ'।
'कहव तत अब ही हुत' 'आइउ' मदिर पठाइ॥

सन्दर्भ—मै० १४८, बी० ५५०-५५२।

शीर्षक—मै० 'फुह्द आवरदन लोरिक लिबासे जोग व वखान. खीश ग्पतने लोरिक व बिरस्पति।

पाठान्तर—(१) १ मडपि। (२) १ बी० सरगेहि आई। २. बी०

वारि। ३ वी० निसि। (३) १ बी० सौ। २ वी० कैसे। (४) १ वी० दिनु झुरै। २ वी० भुगति न जानै पवनु। (५) १ बी० मदन। २ वी० सभारै। ३ वी० पुकारै। (६) १ बी० देहुरै। २ बी० जानौ नावट उभवाई (नावित अभुवाइ—फा०)। (७) १ वी० वगत सुनाय वहुत कौ। २ वी० आयौ।

अर्थ—(१) उस मुनिवर (लोरिक ने) योग का दर्शन (वेष) उतार डाला और मढ को छोड कर वह क्षत्रिय [अपने] घर गया। (२) [उधर] सूर्य (लोरिक) को [घर] भेज कर बृहस्पति गई और उसने चादा नारी को वे बाते बताई। (३) चादा ने बृहस्पति से इस प्रकार कहा (पूछा), "बता कि मढ मे वह मुनिवर कैसा है।" (४) [बृहस्पति ने कहा,] "उसके नेत्रो से दिन भर निरतर रक्त [के आसू] झडते रहते है, न वह भुक्ति (भोजन) जानता है और नीद और आहार जानता है। (५) मलिन [प्रकृति वाले] कामदेव के वेध को वह नही सभाल पा रहा है, इसलिए वह रात्रि भर खडे-खडे 'चाद' 'चाद' पुकारता रहता है। (६) वह [उस] देवल (देवालय) मे सिर पीटता रहता है, मानो कोई नावित (दरसनिया) अभुवाता हो। (७) मैं [उससे] तत्र (युक्ति) कहूँगी, किन्तु अभी तो मैं उसे वहाँ से मदिर (घर) भेज कर आई हूँ।"

११. लोर धवलगृह-आरोहण खण्ड

(१८०)

'दिवस दहा दिसि' 'भैइ(भड) भेइ(भड?)' 'आवइ'।
चाद लागि निसि रोइ 'बिहावइ'।
'खिन एक' सग साथ 'नहि बइसइ'। कया अमर बिनु मदिरि न 'पइसइ'।
मैना आइ पाइ 'लइ' परी। लोरिक 'मदिरि बइसु' इक घरी।
न्हाइ धोइ बस्तर 'पहिरावउ'। 'अउ'घसि'अगरु सीतरु तनिलाऊ(वउ)'।
सेज बिछाइ फूल 'वरु दासउ'। पिरम लागि मनि 'साति करासउ'।
उतरु न देहि 'पिरम' 'झल फूटा' मुई नारि 'बिललाइ'।
'सवन' 'न' 'सुनइ चद्र परि' चिंता रहा नैन 'दुइ लाइ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १४६, वी० ५५३-५५५।

शीर्षक—मै० अज सहरा वख़ानए आमदने लोरिक व पाय उफ्तादने मैना।

पाठान्तर—(१) १ वी० चौसदह दिस। २ मै० फिरि फिरि। ३. वी० आवै। ४. वी० विहावै। (२) १ वी० कहन (खिन—फारसी) वगत। २ वी० न बैसै। ३ वी० पैसै। (३) १ वी० लै। २ मै० बइसु कहू। (४) १ वी० पहिराऊ। २ बी० औ। ३ मै० चदन सीप भरावउ। (५) १ वी० भरि वासौ। २ बी० साति करासौ। (६) १ मै० पेम। २ वी० जानौ भूता। ३. वी० चिललाई। (७) १ बी० श्रवन। २ बी० मे नही है। ३. वी० सुनै चद। ४ वी० दोड लाई।

अर्थ—(१) [लोरिक] दिन मे दसो दिशाओ मे चक्कर लगा-लगाकर आता और राते चाद के लिए रो-रो कर बिताता। (२) एक क्षण भी [किसी के] सग-साथ न बैठता और अमर (जीव) के बिना [हुई] उसकी काया मदिर (भवन) मे प्रवेश न करती। (३) मैना आकर और [उसके] पैरो को पकड कर गिर पडी। [उसने कहा,] "लोरिक, घर मे एक घड़ी [भर को] बैठो। (४) नहाओ, धोओ, तुम्हे वस्त्र पिन्हाऊ, और शीतल अगुरु घिस कर तुम्हारे शरीर मे लगाऊ। (५) शैया बिछा कर उस पर भला फूल बिछाऊ तथा तुम्हारे प्रेम मे लग कर मन को शाति प्राप्त कराऊ।" (६) [फिर भी] वह उत्तर न दे रहा था और प्रेम की ज्वाला फूट पडी थी, [यह देख कर] नारी (मैना) विललाती मर गई (चिल्लाती रह गई)। (७) लोरिक कानो से सुन नही रहा था, [क्योकि] वह, हो न हो, चद्र (चादा) का चिन्तन कर रहा था और [उसी के ध्यान मे अपने] दोनो नेत्र लगाए हुए था।

(१८१)

'मरउ मरउ कइ' दिवसु 'तुलाना'। रडनि 'चाद जउ दिएउ पयाना'।
चला वीरु वनखड 'हइ' जहा। सिघ 'सदूर' चिघारहिं तहा।
मगर दिवस 'तिन्ह मेती भवै(वइ)'। 'रडनि' आइ गोवर महि 'गवइ'।
'मकु' चादा खिन 'इकु दिखरावइ'। 'तेहिं असरे' निसि 'गोवरा आवइ'।
मरगपथ 'दै(दइ)' लोचन 'लावइ'। 'पाउ धरत मकु' चाद दिपावै(वइ)।
इन परि 'रडनि परावइ' 'दिन फुनि इनहीं' भाति।
'चांद' मनेह 'वउरावा' तिल इक 'होइ' न साति॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १५०, बी० ५५६-५५८।

शीर्षक—मैं० . सहरा गिरफ्तने लोरिक अज कमाल फिराक चादा।

पाठान्तर—(१) १ बी० रैंनि चाद जौ दिहौ पयाना। २ बी० मरौ मरौ कै। ३ मैं० तुलाना। (२) १ बी० है। २ बी० सिधौर। ३ मैं० झकार्रहि। (३) १ मैं० तिन सेती भवै। २ बी० रैंनि। ३ बी० गमैं। (४) १ बी० मुकु। २ बी० दिखरावा। ३ बी० तिहि असिरैं। ४ बी० गोवर आवा। (५) १ मैं० दोइ। २ बी० लावै। ३ बी० पाव धरत मुष। ४ मैं० चादा आवइ। (५) १ बी० रैंन बौरावै। २ मैं० अउ दिन फुनि इहिं। (७) १ मैं० चादा। २ बी० बौरायो। ३ बी० होय।

अर्थ—(१) [उस दिन] रात्रि मे [मढी से] जब चाद (चादा) ने प्रयाण दिया (किया), तब से 'मर रहा हू', 'मर रहा हू' करते-करते दिन हो आया। (२) और वह वीर वहा के लिए चल पडा जहा बनखड था, वहा सिह तथा शार्दूल (शरभ) चीत्कार कर रहे थे। (३) सारे दिन वह उनके साथ भ्रमण करता रहता और रात्रि मे गोवर मे आकर विचरण करता। (४) चादा एक क्षण के लिए दिखाई पडती, इसी आसरे से वह रात मे गोवर आता। (५) नेत्रो को वह आकाश के मार्ग मे देकर लगाए रखता और [वह इस आशा से] पैर रखता कि [किसी झरोखे मे] चादा दिखाई पड जाती। (६) इसी रीति से वह रातो को भगाता (विताता) और पुन दिनो को भी इसी भाति से [भगाता-विताता]। (७) चादा के स्नेह ने उसे वावता कर दिया था, [जिसके कारण] एक तिल भी शाति उसे नही होती थी।

(१८२)

परी 'केवञ्छ' सेज न[हि] 'भावइ'।
'रइनि' चाद 'बिहफइ जो बोलावइ'।
'कह तेहिं सू(सु)रिजु कवन घर बसा।
'बिख' सिर चढा 'चेतु मोर' डसा।
'जह कहु होइ तेहिं जाइ बोलावहि'।
सूरिजु आनि सेज 'बइसावहि'।
चाद 'मरति लइ' सू(सु)रिजु 'जियावइ'।
'तउ का करबि मरे हुत' 'आवइ'।
आनि बिरसपति 'तो' पा सरना। रै(रइ)नि दिवस आहि मोहिं मरना।

'आगि दाह' मनि चटपटी घरु बाहरु न सुहाइ ।
चाद 'न जीयइ भानु बिनु' आनि बिरसपति जाइ ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १५१, बी० ५५९-५६१ ।

शीर्षक—मै० वेकरार शुदने चादा अज कमाल इश्क लोरिक ।

पाठान्तर—(१) १ बी० कवीछ । २ वी० सुहाई । ३ वी० रैनि । ४ वी० दिवि पै जु बुलाई । (२) १ बी० सुरिजु कहौ कौन । २ बी० पप (विख—फारसी) । ३ बी० चित्तु मोर । (३) १ बी० जौ कही परिक(का)रि बुलावौहु । २ वी० बैसावहु । (४) १. बी० मरत पै (लइ—फा०) । २. वी० जिवावै । ३ बी० तो को करिबि मुये हितु । ४ बी० आवै । (५) १ मै० सो । २ मै० राति । (६) १ बी० आग दौह । (७) १ वी० भान विनु न जीवै ।

अर्थ—(१) [उधर] चादा को शैया न भाती, [जैसे] उस पर केवाच पडी हो, और रात्रि मे वह बृहस्पति को बुलाती । (२) उससे वह कहती (पूछती), "सूर्य (लोरिक) किस घर मे बस रहा है ? [उसके विरह का] विप मेरे सिर पर चढा हुआ है और मेरी चेतना को डस रहा है । (३) वह जहाँ-कही भी हो, जाकर उसे बुला दे और उस सूर्य (लोरिक) को लाकर [मेरी] शैया पर विठा दे । (४) सूर्य (लोरिक) को ला कर मरती हुई चाद (चादा) को जीवित कर, [अन्यथा] तव मै [उसे] क्या करूगी जब वह [मेरे] मरने पर आएगा ? (५) ऐ वृहस्पति, तू उसे लाए, मुझे तेरे पैरो की शरण है, [अन्यथा] मुझे रात-दिन मरना ही है । (६) [मेरे] अगो मे दाह रहता है और मन मे विकलता रहती है, घर और बाहर [कुछ] सुहाता नही है । (७) चाद (चादा) भानु (लोरिक) के विना नही जी सकती है, [इसलिए] ऐ वृहस्पति, तू जा कर उसे ला ।"

(१८३)

'हउ' निसि चाद सुरिज कव 'पावउ' ।
दिवसु होइ 'चढि' सरगि' बोलावउ' ।
वाधी 'पवरि पवरिया' जागहि । तसकर 'बैरि' देखि 'डरि भागहि' ।
'तिवइहि' 'कहा एत वउसाऊ' । 'रइनि काप हिय उठइ' न पाऊ ।
पावस राति देखि अधियारी । 'कितु हुत सू(सु)रिजु हकारउ' वारी ।
जो' मन' हुत 'सो मिलइ' न वारा । 'भूष कि पावै(व)हि अव सहारा' ।

दिवस चारि तुम्ह 'साधन' 'एहिं' जोबन कइ 'आस' ।
चाद 'सुरिजु' 'मइ मेरउब' 'मानिहु भोग बिलास' ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र १५२, बी० ५६२-५६४ ।

शीर्षक—मैं० अँज़न दर वेकरारी चादा गोयद ।

पाठान्तर—(१) १ बी० हौ । २ बी० पाऊ । ३ बी० चरि । ४ बी० सरगि बुलाऊ । (२) १ बी० पौर पौरिया । २ बी० वीर (वैरि—फारसी) । ३ बी० डर भागैंहि । (३) १ बी० तिवइ । २ बी० येत कहा बौसाऊ । ३ बी० रैनि कापैहि उठैं । (४) १ बी० कत हुतैं सुरिजु बुलाऊ । (५) १ बी० मनु । २ बी० सि मिलैं । ३ मैं० भूषौ आत कि पाग सवारा । (६) १ बी० साधैहु । २ बी० इहि । ३ बी० तास । (७) १ मैं० सूरिजु (सुरिजु—ना०) । २ बी० मैं मिरऊ । ३ बी० मानहु भोग बिरास ।

अर्थ—(१) [बृहस्पति ने कहा,] "ऐ चादा, मैं रात मे सूर्य (लोरिक) को कब पा सकती हूँ ? दिन हो तो आकाश पर चढ कर उसको बुलाऊ भी । (२) पौरियो को बद कर पौरिए जागते है, और तस्कर (चोर-डाकू) तथा वैरी [भी] उन्हे देख कर भाग निकलते है । (३) इतना व्यवसाय (पौरुष) [मुझ] स्त्री मे कहा है ? रात्रि मे हृदय कापता है और पैर नही उठते हैं । (४) वर्षा की अधेरी रात को देख कर मैं, हे बालिका, कहाँ से सूर्य (लोरिक) को हँकारू (बुलाऊ) । (५) मन को जो रुचता है, हे वाला, वह नही मिलता भूखा क्या सहकार आम्र पाता है ? (६) हे भली स्त्री, चार दिनो तक ही है । तुम्हे इस प्रकार यौवन की आशा करनी है (उसका आसरा देखना है) । (७) [उसके बाद] मैं, हे चाद, सूर्य (लोरिक) को [तुम से] मिलाऊगी, [और] तुम भोग-विलास मानना ।"

(१८४)

उतरी चाद 'बइठि' पटसारा । उदिनल भानु 'किएसि' उजियारा ।
चली बिरसपति 'झमके पाहा' ।
'डडकारन (डडक अरन)' 'ब्यझ (बिझ)' बन माहा ।
जाइ तुलानि बीर 'के बासा' । 'सीह सदूर' फिरहिं चहु पासा ।
देखा लोर बिरसपति आई । नैन रगत भरि नदी बहाई ।
बिरसपति तोर पथ 'हउ जोवउ' । खिन इकु राति 'दिवस' 'नहिं' 'सोवउ' ।

'काहि' सदेसु 'कहि पठऊ(वउ)' 'को रि(रे) जनावै(वइ)' बात।
कारि राति 'बन अधिया(य)र' 'अउ हउ' 'चाद' चांद चिललात ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १५३, वी० ५६५-५६७।

शीर्षक—मै० फुरूद आमदने चादा अज़ कस्र व फरिस्तादने विरस्पति रा वर लोरिक।

पाठान्तर—(१) १ वैसि। २ वी० द्योसु। (२) १ वी० झवकी वाहा (पाहा—फारसी)। २ वी० डडाकार। ३ मै० वीच। (३) १ वी० कै पासा ('पासा' दूसरे चरण का भी तुक है)। २ वी० सिघ सिधौर। (५) १ वी० मै जोऊ। २ वी० दिवसु। ३ मै० न। ४ वी० सोऊ। (६) १ मै० कहि। २ मै० जेहि पठई। ३ मै० कवन जनाए। (७) १ बी० मोहि दूभर। २ वी० मे नही है। ३ वी० सवरि।

अर्थ—(१) चाद [भवन के ऊपरी खड से] उतरी और पटशाला मे जा वैठी [तव] उदीयमान भानु ने प्रकाश किया। (२) बृहस्पति झमकते हुए पैरो से (तेजी से) विघ्य वन के दण्डकारण्य मे चल कर गई। (३) वह [लोरिक] वीर के निवास पर जा पहुँची, सिह तथा शार्दूल (शरभ) उसके चारो ओर फिर रहे थे। (४) लोरिक ने देखा कि बृहस्पति आई हुई थी, तो उसने नेत्रो मे रक्त भर कर उसकी नदी वहा दी। (५) [उसने कहा,] "ऐ बृहस्पति, मैं तेरा मार्ग देख रहा हूँ, और रात-दिन मे एक क्षण भी नही सो रहा हू। (६) मैं किससे सन्देश कह कर भेजू और कौन [मेरी] वात (वार्ता) जनाए (सूचित करे)? (७) काली रात [जैसा] अधकारपूर्ण वन है, और मैं [उसमे] 'चाद' 'चाद' चिल्लाता हू।"

(१८५)

'तोरिइ पीर लोर हउ' पीरी। पान न 'खाडौ(डउ)' 'एकउ' बीरी।
अव 'मइं तो कह' गुनु उपराजा। 'हिरदइ मतु रइनि एक' साजा।
'पवरि' पथु 'तोहि' जाइ न जाई। वारकु 'होइ तउ' लेउ लुकाई।
'उटइ' वीर 'जउ' 'उटवइ' पारसि। सरग पथ 'जउ चढत' सभारसि।
'कइ' कारन 'हनिवन' वरु वांधसि। 'कइ' कर लाइ 'पुख' सर साधसि।
'कइ रे' फास 'वरु मेलमु' 'जउ' 'रे' सरगि 'चढि' जासु।
'कइ रे' चाद 'रवि(रवि)' 'भूजसु' 'दुहु तस सरग निवा(वा)सु ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १५४, बी० ५६८-५७० ।

शीर्षक—मैं० गुफ्तन विरस्पति बर [?] ।

पाठान्तर—(१) १ बी० तोरि पीर लोरिक हौ । २ मैं० खाडउ (खाडउ—ना०) । ३ बी० येकै । (२) १ बी० मैं तो कौ । २ बी० हिरदै मतरु रैनि कौ । (३) १ बी० पैरि । २ बी० तुहि । ३ बी० होउ तौ । (४) १ बी० उटै । २ बी० जै । ३ बी० उटवै । ४ बी० जौ चरे । (५) १ बी० कै । २ बी० हनवत । ३ बी० पाख । (६) १ बी० कै रु । २ बी० बर मेल्हसि । ३ बी० तौ । ४ बी० रु । ५ बी० चरि । (७) १ बी० तौर । २ 'रवि' पाठ दोनो प्रतियो मे है । ३ बी० भूजसि । ४ बी० बैठि सरग कै पासि ।

अर्थ—(१) [बृहस्पति ने कहा,] "तेरी ही पीडा से, ऐ लोरिक, मैं [भी] पीडिता हू [एक] बीडा भी पान मैं नही खडित कर रही हू । (२) अब मैंने तेरे लिए [एक] गुण (उपाय) उत्पादित किया है, हृदय मे मैंने रात मे एक मत्र साजा है । (३) पौरी के मार्ग से तुझसे जाया न जाएगा, यदि कोई वालक हो तो मैं उसे छिपा भी लूँ । (४) ऐ वीर, तू पुरुषार्थ कर, यदि तू पुरुषार्थ कर सके, यदि तू आकाश के मार्ग पर चढते समय अपने को सभाल सके । (५) या तो [उसके ?] कारण तू हनुमान का वल वाधे, और या तो तू हाथो से लगा कर पुख (वाण के अग्रभाग) मे शर (सरकडा) लगाए । (६) यदि तू आकाश (धवलगृह के ऊपरी भाग) पर [किसी युक्ति से] चढ कर जा सके तो या तो तू [अपने गले मे] फासी लगाएगा, (७) और या तो तू, ऐ सूर्य, चाद (चद्र) का भोग करेगा, दोनो ही प्रकारो से तुझे स्वर्ग का निवास [प्राप्त] होगा ।"

(१८६)

'जउ सो' वचन बिरसपति कहा । 'लोरिक बीरु' 'हियइ' 'गहगहा' ।
मन रहसा कह आजु 'मेरावा' । 'जेहि लगि' 'सुरिजु रैनि दिन' धावा ।
बिरह झार आछत 'कुबिलाना' । रहसा 'कुवरु(कवरु)' भाति 'बिगसाना' ।
सो मोहि बाट आइ दिखराऊ । 'जेहि चढि' जाउ चाद कर ठाऊ ।
धनसो राति जेहि सजन 'मिलाइहि' । चाद सुरिजु 'दुइ' 'कोड' 'कराइहि' ।
चली बिरसपति सरगेहि सूरिजु 'गोहनि' लाइ ।
जहा चाद निसि 'बिसवइ' गई 'सो' पथ 'दिखाइ' ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र १५५, बी० ५७१-५७३ ।

शीर्षक—मै० बुरदने विरस्पति लोरिक रा व नमूदन राहे कस्र चादा ।

पाठान्तर—(१) १ बी० जौ ये । २ मै० लोर । ३ बी० हिये । ४ मै० कै गहा । (२) १ बी० मिलावा । २ बी० जिहि लगु । ३ मै० सूर सरग चढि । (३) १ मै० कुमिलाना । २ मै० कवल । ३ मै० बिहसाना । (४) १ वी० जिहि कर । (५) १ बी० मिराही । २ बी० दोइ । ३ मै० गवन । ४ वी० कराही । (६) १ बी० गौहनि । (७) १ बी० बिसई । २ बी० जु । ३ मै० दिखराइ ।

अर्थ—(१) जब बृहस्पति ने यह वचन कहा, लोरिक वीर हृदय मे गद्‌गद हो गया । (२) वह मन मे हर्षित हुआ और उसने कहा, "आज मिलाप होगा, जिसके लिए सूर्य (लोरिक) रात-दिन दौड़ रहा था ।" (३) विरह-ज्वाला से वह कुम्हलाया हुआ था, [अब] वह हर्षित हो गया और कमल की भाति विकसित हो गया । (४) उसने कहा, "तू आकर मुझे वह बाट दिखा, जिस पर चढकर मै चाद के स्थान पर जा सक । (५) वह रात धन्य होगी जिस रात मे स्वजन मिलेगे और चाद (चादा) तथा सूर्य (लोरिक) दोनो क्रीडा करेगे ।" (६) बृहस्पति सूर्य (लोरिक) को साथ लगाकर आकाश (धवलगृह) की ओर चली, (७) और जहा पर चादा रात मे विश्राम करती थी, वह (उसका) मार्ग [लोरिक को] दिखा गई ।

(१८७)

पाट 'पढीना' लोर बिसाहा । 'वरति' साठि गुन कीत बराहा ।
मयन माजि लोरिक तस ताना । 'जानु' सरग 'कह रचे' बिवाना ।
मुख भुवग 'जनु धर हुत' काढा । हाथ तीस 'एक आछइ' ठाढा ।
अकुरी सार'करी'तेहि लाई । जिहिं'परी(रि)परइ' तेहि निछुटि न जाई ।
खड खड लाग फाद 'सै चारी' । बीर पाउ जह 'धरइ' सभारी ।
देखि पूछ अस मैना वरहा 'करियहु' काह ।
'परड' भइसि अति' मारग 'बाधइ 'चाहत' 'आहि' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १५६, वी० ५७४-५७६ ।

शीर्षक—मै० खरीदने लोरिक अफरेशम खाम वराए साख्तने कमद ।

पाठान्तर—(१) १ वी० बुढनिया । २ वी० वरत । (२) १ वी० जानो । २ वी० कौ रचे । (३) १ मै० हुत जनु धर, वी० जानौ धर तें ।

२ वी० यक आछै । (४) १ वी० गढी । २ वी० रु (५) १ मै० सचारी । २ वी० जहा धरै । (६) १ वी० करिहौ । (७) १ वी० वुरी (परइ—फा०) । २ वी० मारनि । ३ वी० बाधी । ४. वी० आह ।

अर्थ—(१) लोरिक ने पढीना (?) पाट (पटसन) मोल लिया और उसको साठ गुण वट कर उसने एक वरहा (रस्सा) वनाया (तैयार किया) । (२) मोम से माज कर उसे उसने इस प्रकार ताना (तान कर खडा किया) कि मानो आकाश के लिए उसने विमान रचा हो, (३) अथवा मानो वह किसी भुजग (सर्प) का मुख हो जो धड [अथवा धरा] से निकाला हुआ और तीस हाथ की ऊचाई तक खडा हो । (४) उससे लगा कर फौलाद की एक आकडी उसने की, कि जो जिस प्रकार से भी पडे उसी प्रकार से वह छूट कर न जाए । (५) खड-खड पर [उसमे] चार सौ फदे लगे हुए थे, जिन्हे पकड कर वह वीर सभाल कर पैर रखता । (६) उस [वरहे को] देखकर मैना पूछने लगी, "यह वरहा क्या करोगे ? (७) [लोरिक ने कहा,] "[मेरी] भैस मार्ग मे अत्यधिक [इधर-उधर] पडती रहती है, इससे उसी को बाधना चाहता हू ।"

(१८८)

छठि भादव निसि भइ अधियारी । नैन न 'सूझइ' बाह पसारी ।
चला वीरु बरहा कर लावा । जिय 'के परे' दूसर न बोलावा ।
घन 'गरजइ' भरि 'दइउ' बरीसा । 'खोरि भरी जनु' बाट न दीसा ।
दादुर 'ररहि' वीजु 'चमकाई' । 'अइस न जान कवनि दिसि जाई' ।
'मसियरु' देखि 'झरोखइ' पासा । 'लोरिक जान' 'नखत परगासा' ।
'चित (चित्त)' भुलान 'न सभारा' मदिर 'कवनि दिसि आहि' ।
दिवसु होत तौ(तउ) 'चित(चित्त)धरउ' 'इतरु गहउ तउ' काह ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १५७, वी० ५७७-५७६ ।

शीर्षक—मै० रवा शुदने लोरिक दर शवे तारीक · · (अपाठ्य) सूए कस्त्र चादा ।

वी० फासा मेला—जो प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति द्वारा दिया हुआ ज्ञात होता है ।

पाठान्तर—(१)१ वी० सूझै ।(२) १ वी० क वरीति ।(३) १ वी० गरजै । २ वी० देव । ३. वी० खोर भरे जानौ । (४) १ वी० रढै । २ बी० चमकाही । ३ वी० अैस न जानै कै दिस जाही । (५) १ वी०

मसिहरु । २ वी० झरोषै । ३ वी० लोरिक जानै, मैं० लोर जान । ४. बी० निपतु परकासा । (६) १ वी० चित । २ बी० न सभारै । ३ बी० कौहु दिस आह । (७) १ वी० जिउ धरिये । २ बी० उतरु (इतरु—फा०) करी तौ ।

अर्थ—(१) भादो की छठी तिथि को [जब] अधेरी रात हुई और बाँहे फैलाइए तो वे [अपने ही] नेत्रो से नही सूझती थी, (२) वह वीर चल पडा । हाथ मे वह उसने वरहा लगा लिया और अपने जीव के अतिरिक्त किसी दूसरे को उसने न बुलाया । (३) घन गरज रहे थे और दैव भरपूर वरस रहा था, खोरिया (गलिया) भरी हुई थी, मानो मार्ग नही दिखता था । (४) दादुर चिल्ला रहे थे और बिजली चमक रही थी, ऐसा नही जान पड रहा था कि किस दिशा मे जाइए । (५) झरोखे के पास [जल रहे] मशालो को देख कर लोर ने समझा कि नक्षत्रो का प्रकाश था । (६) [उसने कहा,] "चित्त भ्रमित हो गया है, इसलिए वह यह नही स्मरण कर रहा है कि [चादा का] मदिर (भवन) किस दिशा मे है । (७) दिन होता तो चित्त मे [उसके मदिर को] धारण करता; यदि इतर [मदिर] पकडूँ तो क्या [लाभ] होगा ? ।"

(१८६)

'कौधा लौके भा' उजियारा । 'चरचा' लोरु मदिर मसियारा ।
'सवरेसि' 'भीम केर बउसाऊ' । 'मेलेसि' बरह रोपि धर पाऊ ।
परा वरहु 'तउ' चादा जागी । 'अकुरी देख' चौखडी लागी ।
'झाखा' चाद लोरु तरि आवा । अकुरी काढि बरहु छिटकावा ।
'जेउं जेउ' मेलि मदिर पर जाई । हसि हसि चादा देइ छिटकाई ।
'एक वार' वर 'आनउ मेलउ' 'बरह' फिराइ ।
'काटउ ठौर' तीस 'एक' 'जउ' न मदिर पर जाइ ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र १५८, वी० ५८०-५८२ ।

शीर्षक—मैं० दर फर्सीदन वर्क व शिनाख्तन लोरिक खान चादा ।

पाठान्तर—(१) १. वी० कवधा लवकै भया । २ मैं० चरचिया । (२) १ वी० नवरसि । २ वी० भीव केर वैसाऊ । ३ वी० मेलसि । (३) १ वी० तव । २ वी० अकुर देपि । (४) १ वी० झाका । (५) १ वी० ज्यै ज्यै । (६) १ वी० ये । २. वी० नै मिलिवो । ३. वी० मदिर । (७) १ वी० काटो ठाव । २ वी० यक । ३ वी० जो ।

अर्थ—(१) [जव] विजली के चमकने से प्रकाश हुआ, तव लोर ने [चादा के] मदिर के मशाल को जान लिया। (२) उसने भीम के पौरुष का स्मरण किया, और धरा पर पाव रोप (स्थित) कर उसने वरहा डाला (फेंका)। (३) वरहा पडा, तव चादा जाग गई, और उसने देखा कि [वरहे की] आकडी चौखडी मे लगी हुई थी। (४) चादा ने झाका तो देखा कि लोर नीचे आया हुआ था, तो उसने आकडी निकाल कर वरहे को छिटका दिया। (५) जैसे-जैसे (जव जव) वह वरहा मदिर पर मेला (फेंका) जाता, चादा हस-हस कर उसे छिटका देता। (६) [लोरिक ने कहा,] "एक वार [और] वल लाऊ (एकत्रित करू) और वरहे को फिरा कर डालू (फेंकू)। (७) यदि यह मदिर पर [फिर भी] न जाए, तो इसे तीस-एक स्थानो पर काट डालू।"

(१६०)

चाद कहा अब लोरिकु 'जाइहि'। मन उतरे 'फुनि फिरि नहि आइहि'।
'हउ असि बोलिउ' चतुरि सयानी। बरहा 'छाडिउ कवनि' अयानी।
हाथ क मानिकु 'समदियहि राई'। 'मुइय' 'सो' हाथ 'न चढई' आई।
'कइ औगुन' 'भय मइ गुनु' तोरा। परा 'बरहु' 'बुधि' 'हीनिइ' छोरा।
'दइय' ठाउ जउ मागा 'पावउ'। 'मेल बरहु खाभहि' 'लइ लावउ'।
'दइय बिधाता बिनवउ' सीसु नाइ कर जोरि।
परा 'फाद पुनि मोरे' 'जाइ बरहु जिनि तोरि'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १५६, का०, बी० ५८३-५८५।

शीर्षक—मैं० अफसोस करदन चाद वाज गुज़ाश्तने कमद।

का० अफसोस करदन चादा गुजाश्तने कमंद।

पाठान्तर—(१) १ बी० जैहै। २ बी० फिरि बहुरि न अैहै। (२) १ बी० हौ कस बोलियो। २ बी० छाड्यै कौन। (३) १ का० समदि वडाई, बी० समदिया राई, मैं० समदियहि राई। २ मैं० वहुरि, का० मुएहु। ३ बी० स। ४ बी० न चरई। (४) १ बी० कै ओगन। २ मैं० मय वाए कइ, बी० मैं सो गुनु। ३ बी० फधु। ४ का० मे नही है। ५ बी० हीनी। (५) १ बी० दई। २ बी० पाऊ। ३ का० मेली (मेलि) वरह खाभ (खाभहि), बी० मेलै वरहु षभि। ४ बी० लै लाऊ। (६) १. बी० दई विधात वीनऊ। (७) १ बी० फासु वसि मेरै। २ का० अपाठ्य है, बी० जाय बरहु जिन तोरि।

अर्थ—(१) चाद (चादा) ने [मन मे] कहा, "अब लोरिक [चला] जाएगा, और मन के उतर जाने पर वह पुन न आएगा। (२) मैं ऐसी चतुरा और सयानी कहलाती रही हू, तब मैंने [उसके द्वारा फेंके हुए] वरहे को किस अज्ञान के कारण छोड दिया ? (३) हाथ का माणिक्य यदि राजा को समद (भेंट कर) दीजिए, तो वह पुन हाथ नही चढता (आता) है। (४) अवगुण (अपवाद) का भय करके मैने [लोरिक का] गुण (फदा) तोड दिया (छिटका) और पडे (लगे) हुए वरहे को मुझ बुद्धिहीना ने खोल दिया। (५) [अव तो] यदि दैव के स्थान (दरवार) मे मागा हुआ पाऊ और वह वरहे को मेले (फेंके), तो मै उसे लेकर खभे से लगा दू। (६) दैव और विधाता से मै सिर नमित कर और हाथ जोड कर विनय करती हूँ (७) कि [अव] फदा [मेरे मन मे] पड गया है, इसलिए ऐसा न हो कि वह (लोरिक) वरहे को तोड कर चला जाए।"

(१६१)

'वीर भुआ वर' वरहु फिरावा। 'तस मेलेसि जस निछुटि' न आवा।
परा वरहु 'तउ' चादा धाई। 'अंकुरी' मंदिर खाभ 'लइ' लाई।
रहा वरहु लोरिक 'धरि' ताना। माल 'जुगुति पउ धरेसि सुआना'।
वीर परान 'वरन गुन काहा'। 'वेडिनि' बांस 'चढति जनु आहा'।
'चादइ देख लोरिकु' गा आई। सेज 'सुभर होइ' 'बिसई' जाई।

'चढा' लोरु धौराहरि 'देखेसि' बिषम अवास।
सरग 'नियर' धर औहट राध न 'केऊ' पास॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६०, का० के प्राप्त अशो मे यह छद नही है किन्तु पूर्ववर्ती छंद के वाद उसमे इस छद का तर्क "वीर भुआ" है अत. का० मे भी इसका रहा होना प्रमाणित है, वी० ५८६-५८८।

शीर्षक——कमद अदाख्तने लोरिक व रिहा करदने चाद वसतून।

पाठान्तर—(१) १. वी० वीरि भुवारि। २. वी० तैंस मेला जैसैं वहुरि। (२) १ वी० तव, मैं० तउ तिरि। २. वी० अकुरि। ३. वी० लैं। (३) १. वी० भरि। २ वी० जुगति पगु धरसि विवाना। (४) १ वी० वरगैं (वरन गुन—फा०) कहा। २ वी० नाचनि। ३ वी० चरति जैसैं अहा। (५) १ मैं० चादइ देख लोर, वी० चाद देपि लोरिकु। २ वी० नभर भै। ३ मैं० विमवइ। (६) १ वी० चरा। २ वी० देपति। (७) १. वी० नीरैं। २ वी० कोउ।

अर्थ—(१) वीर [लोरिक] ने भुजाओ के वल से वरहे को चक्कर दिया और ऐसा डाला (फेका) कि वह [पुन] खुल कर न आता। (२) वरहा जव पड गया, तव चादा दौडी [आई] और उसकी आकडी को लेकर उसने मदिर के खभे मे लगा (फसा) दिया। (३) जव वरहा रह (रुक) गया, तव उसको लोरिक ने पकड कर ताना (खीचा) और उस सुजान ने मल्ल की युक्ति से [उस पर] पैर रक्खा। (४) उस वीर के प्राणो (पुरुषार्थ) के गुण का क्या वर्णन किया जाए ? मानो कोई वेडिन (नट का खेल दिखाने वाली स्त्री) वास पर चढ रही हो। (५) चादा ने देखा कि लोरिक आ गया था, तो वह शैया मे सुभर होकर (फैल कर) जाकर विश्राम करने लगी। (६) लोरिक जव धवलगृह (प्रासाद) पर चढ गया, उसने उस विषम आवास को देखा। (७) वह ऐसा था कि आकाश उसके निकट था और धरती ओहट (दूर) थी, न कोई राध (निकट) मे था और न पास मे।

(१९२)

लोरिक 'लीति' खाभ 'परिछाही'। सो 'देखिसि जो देखा' नाही।
'दिया साठि तिरि खाभइ बरही'। जगमग रतन पदारथ करही।
'हियरइ'हारु 'धरि(री) तसि'जोती। सरग नखत 'जनु बइठे' मोती।
चेरी 'सोइ जो' पहरे गई। 'जानु' अकासि 'कचपची' उई।
'विसवइ' चाद सपूरन 'जहा'। मानिक 'जोति तराइनि' 'तहा'।
'रइनि' माझ 'जस' दिनु भा नाही 'पैर पराउ'।
'चढि' 'लोरिक' 'सो' देखा जो न 'दीख हुत' काउ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६१, वी० ५८९-५९१।

शीर्षक—मैं० · वर वालाए कस्र ईस्तादने लोरिक व दीदने तमाशाए ख्वावगाहे चादा व खुफ्तने कनीज़गान।

पाठान्तर—(१) १ वी० लीन्ह। १ वी० परछाही। ३ वी० देषा जो देषसि। (२) १ वी० दियर साठि नौ पभ वराही। (३) १ वी० हीयरैं। २. वी० धरा तस। ३ वी० जानौ वैठे। (४) १ वी० सोय जु। २ वी० जानौ। ३ वी० किरकची। (५) १ वी० विसई। २ मैं० तहा। ३. वी० दिपैहि तरायन। ४ मैं० जहा। (६) १ वी० रैनि। २ वी० जैसौं। ३ वी० वीर वराउ (पैर पराउ—फा०) (७) १ वी० चरि। २. मैं० लोर। ३ वी० अ [म]। ४ वी० देखो हुति।

अर्थ—(१) लोरिक ने खभो की प्रतिच्छाया (आड़) ली और उसने वह देखा जो [पहले कभी] नही देखा था। (२) साठ दीपक तीन (?) खभो पर जल रहे थे, और रत्न तथा पदार्थ (बहुमूल्य पत्थर) जगमग कर रहे थे। (३) [चादा के] हृदय पर के हार ने भी वैसी ही ज्योति धारण कर रक्खी थी और उसमे जो मोती विठाए हुए थे, वे [ऐसे लग रहे थे] मानो आकाश मे नक्षत्र हो। (४) चेरियाँ जो पहरे के लिए जाकर सोई हुई थी, वे [ऐसी लग रही थी] मानो आकाश मे कचपचिया उदित हुई हो। (५) सम्पूर्ण चाद (चादा) जहा पर विश्राम कर रही थी, वहा पर माणिक्यो की ज्योति ही तारिकाओ की ज्योति हो रही थी। (६) रात्रि मे ही जैसे दिन हो रहा था [इसलिए लोरिक के] पैर नही पड़ रहे थे। (७) लोरिक ने चढ कर वह देखा जो उसने [पहले] कभी न देखा था।

(१९३)

झारि चौखडी ईंगुर बानी। चित्र उरेह 'कीन्ह' 'सोनवानी'।
लक 'उरेहि' भभीखनु 'रेहा'। 'सची' 'मानु दसगिय कइ' देहा।
'छीता' हरन राम सगरामू। दर 'पाडव' कुरखेत 'क' ठाऊ।
'खरपरा' चोरुकौडिया जुआरू। 'उजइनी(नि)' 'नगरी' अगियाबेतारू।
'माझ ही(हि ?) पडु काबि लिहि' लावा। 'चकाबूह' 'अरियहु' उचावा।
सीह 'सद्दूर' 'मिरिग मिरिगाबन' 'सावज' 'अनवन' भाति।
कथा 'काबि' सिरलोक नटारभ 'लिखी (खि)' लाए चहु पाति॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६२, शि०, वी० ५९२-५९४।

शीर्षक—मैं० सिफते नक्शकारी चौखडी। शि० मे शीर्षक, (३), (६)।२ तथा (७) अपाठ्य है।

पाठान्तर—(१) १ वी० की (किए—फा०)। २ वी० सुनवानी। (२) १ वी० उरेह। २ वी० रहा। ३ शि० सची, वी० साजी। ४ वी० मुन दसगं की। (३) १. मैं० सीता। २ वी० पडौ। ३ वी० का। (४) १ मैं० करिया, वी० पपरा। २ वी० उजिन। ३. शि० मे स्पष्ट नही है, वी० नयर। (५) १ वी० माछी व्यदु खाभ लै। २ वी० चकवोह। ३. वी० आरोहि। (६) १ वी० सिर्धार। २. मैं० मिरिघ मिरिघावन, वी० मिरग मिरगावा। ३ मैं० मे नही है। ४ वी० अन [अन]। (७) १. वी० काव्य। २ वी० लिग्वै (लिग्वी · लिखि—फा०)।

अर्थ—(१) [उसने देखा कि] सारी की सारी चौखडी ईंगुर के वर्ण

की थी, और उसमे चित्रो का उरेह (उल्लेखन) सोने के पानी से किया हुआ था। (२) लका को उरेह कर [उसमे] विभीषण को उरेहा गया था, और दशग्रीव की देह मानो [उस मे] सची हुई थी। (३) सीता-हरण और राम का [रावण से हुआ] सग्राम, पाडव-दल तथा कुरुक्षेत्र का स्थान भी [उरेहे हुए थे]। (४) खर्पर चोर और कौडिया (कौडी ढालने वाले) जुआडी उरेहे हुए थे, उज्जयिनी नगरी और [उसमे] अगिया वैताल उरेहे हुए थे। (५) मध्य मे ही पाडवो का काव्य (महाभारत ?) अकित कर लगाया हुआ था, और वह चक्रव्यूह [अकित हुआ] था, जिसे शत्रुओ ने उठा रक्खा था। (६) सिंह, शार्दूल (शरभ), मृग, मृगारण्य और श्वापद (हिंस्र जतु) अनवन (अनहोने) भाति के [उरेहे हुए] थे। (७) कथा काव्य के श्लोक और नाट्यारभ (नाट्य ग्रथ) चार पक्तियो मे लिख (उरेह) कर लगाए हुए थे।

(१९४)

'लवटि देख जउ' कूकू लोरा। चदन घसि भरि धरे कचोरा।
'बेना' परिमलु अति औछरा। 'ठौर ठौर' खर तेलिया जरा।
मेध सुगध 'आहि' असरारू। चोवा बास 'होइ' महकारू।
खैर कपूर सुरग सुपारी। पान अडागर धरे सवारी।
नरियर दाख चिरौजी 'आहा'। खाड 'खडौर' 'कहउ' तेहि काहा।
'लोरहिं लीन्हि खाभ' परिछाही 'परा जाइ' मुख 'जोव'।
धनु बिरास चादा कर बासु 'माति' निसि 'सोव'।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६३, बी० ५६५-५६७।

शीर्षक—मैं० सिफते खुशबूए हर जिन्स आरास्त गोयद।

पाठान्तर—(१) १ बी० लवटि देषि जौ। (२) १ बी० बीना (बेना—फा०)। २ बी० ठाव ठाव। (३) १ बी० अते। २ बी० होय। (५) १ बी० अहा। २ बी० गदौर। ३. बी० कह। (६) १ बी० लोरु बैठ। २ बी० सिर उचाइ। ३ मैं० जोइ। (७) १ बी० मात। २ मैं० सोइ।

अर्थ—(१) जब लौट (घूम) कर कूकू लोरिक ने देखा, [उसे दिखाई पडा कि] चदन घिसे जाकर कच्चोलो मे भर कर रक्खे हुए थे। (२) वीरण (खस) का परिमल अत्यधिक उछल (महक) रहा था और स्थान-स्थान पर तेलिया प्रखर रूप से जल रहा था। (३) मेद की सुगध असराल

(निरतर) हो रही थी, और चोवा की महकीली वासना [भी] हो रही थी। (४) खैर (कत्था), कपूर, अच्छे रग की सुपारी, तथा समूचे पान सवार कर रक्खे हुए थे। (५) नारियल, द्राक्षा, तथा चिरौजी थे, और जो खाड तथा खडौर (खण्डपूर—शक्कर के लड्डू) थे, उन्हे क्या कहूँ ? (६) लोर ने खभो की प्रतिच्छाया ली और वह जा कर [चादा का] मुख देखने लगा। (७) [उसने कहा,] "चादा का विलास धन्य है, जो [सुवासो से] मत्त रात मे सो रही है।"

(१९५)

पालिक सेज 'जो' आनि विछाई। धरत पाउ भुइ 'लागइ' जाई।
पाट 'विनी' 'अरु' 'फूल उभारी'। 'सोनइ झारी हास कुदारी'।
मुरग चीरु डकु आनि बिछावा। धरती 'लागि' चहू दिसि आवा।
'तेहि चढि' सूति रवनि 'बेकरारा'। 'खोपा' छूटि छिटकि गए बारा।
वहु 'भति करी फूल वहु' बासी। करंडी चारि 'भोर भर दासी'।

लोरु 'जान अइ' बिसहर पुहुप बास रस आइ।
'मनसा' हाथ 'पसारइ' कापि 'उठइ' डरपाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६४, वी० ५९८-६००।

शीर्षक—मैं० 'सिफते तख्ते जरी व मुकल्लल व जवाहरव (?) चिराग।

पाठान्तर—(१) १ वी० जु। २ वी० लागे। (२) १ बी० वुने। २ वी० औ। ३ मैं० फूलन्ह भारी। ४ वी० सोने झारे हस कुडारी। (३) १ मैं० वडसि। (४) १ वी० तिहि चरि। २ वी० विकरारा। ३ वी० खूपा। (५) १ वी० भाते करि फूल औ। २ वी० सौरि पर डासी। (६) १ वी० जानये (आइ—फा०)। (७) १ वी० मन सै। २ वी० पसारै। ३ वी० उठी।

अर्थ—(१) जो पलग की शैया लाकर विछाई हुई थी, वह पाव रखते ही भूमि से जा लगती थी। (२) वह रेशम से विनी और फूलो से उभाडी हुई थी। वह सोने की झाली (पानी चढाई ?) हुई और हास (?) की कुदारी (कुदी की) हुई थी। (३) उस पर एक सुरग (अच्छे रंग का) चीर लाकर विछाया हुआ था, जो धरती पर चारो ओर वैठता (लिपटता हुआ) आया था। (४) उसी पर चढ कर वह रमणी वेचेत सो रही थी, उसके खोपे (बालो के जूडे) मे छूट कर उसके बाल छिटक गए थे। (५) वह [शैया] बहुतेरी भांति की कलियो और बहुतेरे फूलो से सुवासित थी, उनकी चार करडिया दासिया भोर (प्रभात) होने पर भरती थी। (६) लोर ने समझा कि

यह [कोई] विषधर (सर्प) था जो उन पुष्पो के सुवास-रस के लोभ मे वहा आया हुआ था। (७) वह [उस रमणी को] छूने के लिए हाथ पसारने (बढाने) की इच्छा करता था किन्तु [फिर] वह डर कर काप उठता था।

(१६६)

'गेडुवा' चाद धरा उढिकाई। दिनियर 'पइतिइ' बैठेउ आई।
मुखा कवलु 'जनु बिहसत' अहा। अधर सुरग 'बरन गुन' 'कहा'।
सोवत 'फिरा हिए कर' चीरू। 'अस्थन' देखि मुरुछि गा बीरू।
'चित्तहिं कहई' आपु 'जनावउ'। 'पाय धरउ गइ बिगति सुनावउ'।
'फिरि कइ' लोरु चहू 'दिसि' आवा। 'मनि सका नहि सोवत' जगावा।
गा परान बर पौरुख 'बीरहि बकति' न आउ।
'जीउ उडाना(न)' 'मनि सका 'केहि' बिधि सोवत जगाउ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६५, बी० ६०१-६०३।

शीर्षक—मैं० वेदार करदन लोरिक चादा रा अज ख्वाव।

पाठान्तर—(१) बी० गिडुवा। २ बी० पैतिहि। (२) १ बी० जानौ बिगसत। २ बी० बरगौ (वरन गुन—फा०)। ३ मैं० काहा। (३) १ बी० हियें बिहरि गा। २ बी० स्तन। (४) १ बी० चिंता है कस। २ बी० जगाऊ। ३ बी० पाव धरौ कै बगत सुनाऊ। (५) १ बी० फिर कै। २ बी० दिस। ३ बी० मिसु कै सोवत न सकै। (६) १ बी० बीरैहि बगत। (७) १ मैं० जीउ दान। २ बी० कहि (केहि—फा०)।

अर्थ—(१) चादा ने गेडुआ (गोली तकिया) इस प्रकार उढका कर रक्खी थी कि मानो दिनकर (सूर्य) पैती (?) पर आकर बैठ गया हो। (२) उसका मुख-कमल मानो विहस रहा था, उसके सुरग (सुदर) अधरो के गुण का क्या वर्णन किया जाए? (३) सोते समय उसके हृदय पर का चीर हट गया, तो [खुले हुए] स्तनो को देखकर वह वीर मूर्च्छित हो गया। (४) चित्त मे वह कहने लगा (सोचने लगा), "अपने आप को जना दू, उसके पैर पकड़ू और [उसे] अपनी गई-बीती सुनाऊ।" (५) [यह सोचते-सोचते] लोरिक [शैया के] चारो ओर घूम आया, किन्तु मन मे वह शकित था इसलिए उसने उसे सोते से जगाया नही। (६) उस के प्राण, बल और पौरुष चले गए थे, और उस वीर के [मुख से] वाक्य नही निकल रहे थे, (७) मन मे [की] शका के कारण उसके प्राण उड गए थे, फिर वह किस प्रकार उसे सोते हुए जगाता?

१२. चांदा-लोर-संवाद खण्ड

(१९७)

'उछरत' बीर 'गहइ' कर बारी। 'नैनन सोव' मन 'जाग' गोवारी।
फुनि खतरी 'जउ' 'नियरइ' आवा। कर गहि केस चांद 'गुहरावा'।
चोर चोर 'कह कोउ न जागइ'। 'मानुस सोवत सो गुहारि न लागइ'।
ऊच 'बोल मुनि' चेरी 'जार्गाह'। चोरु देखि 'बहु चीसइं लार्गाहं'।
'तानेसि केस दिहेसि दुइ' फेरा। 'करै(रइ) गुहारि चोर मुह' हेरा।
मन रहसी धनि अस 'गहे' 'कहइ जे' आस तुलानि।
धई ठाउ जो 'मांगिउ' सो मोहि 'मेरइसि' आनि॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १६६, बी० ६०४-६०६।

शीर्षक—मै० वेदार शुदन चादा व गिरफ्तन मोए सरे लोरिक व फरियाद बर आवरदन।

पाठान्तर—(१) १ बी० अछरत (उछरत—फा०)। २. बी० गही। ३ मै० नैन सोवहि। ४ बी० जागु। (२) १ बी० जौ। २ बी० नियरै। (३) १ बी० कै कोय न जागै। २ बी० मानस सूत गुहारु न लागै। (४) १ बी० बोलौ तौ। २ बी० जागैहि। ३ बी० बिह जैसे (बहु चीसइ—फा०) लागैहि। (५) १ बी० तान(ने)सि केस दिह(हे)सि दोय, मै० छाड न केस धरे दुइ। २ बी० करै गुहरु चोर मै हेरा। (६) १ बी० कहै। २ बी० जिय की। (७) १ बी० मागा। २. बी० मेर्‍यौ।

अर्थ—(१) [जब] उछलते हुए उस बालिका के हाथो को बीर [लोरिक] ने पकड़ लिया, तब वह नेत्रो मे सो रही थी किन्तु मन से जाग रही थी, (२) और जब वह क्षत्रिय (वीर) निकट आया, उसके केशो को पकड कर चाद (चादा) ने पुकार लगाई। (३) वह 'चोर' 'चोर' कह पुकार रही थी, किन्तु कोई न जागता था, जो मनुष्य सो रहा हो वह [किसी की] गुहार मे नही लग सकता है। (४) [फिर उसने सोचा कि] उसकी ऊची आवाज़ सुनकर दासिया जाग पड़ती और चोर देखकर बहुत चीखने लगती, (५) अत. उसने उसके केश खीचे, उन्हे दो फेरे दिए, और उस चोर (लोरिक) का मुह देखते हुए वह गुहार (पुकार) करती रही। (६) धन्या (नारी) इस प्रकार उसे पकड़ कर मन मे हर्षित हुई, और कहने (सोचने) लगी कि उसकी आशा

तुल गई (पूरी होने को आई)। (७) [उसने मन मे कहा,] "दैव के स्थान पर (दरबार मे) मैंने जो मागा था, उसे उसने लाकर मिला दिया।"

(१९८)

सुनु अचेत 'धनि भेभर' भोरी।
'अपने जरमि' न 'कीत्यै (तिउ?)' चोरी।
'आइउ तोरें' नेह 'गोवारी'।
'कहे चोरु अउ' 'देत्यौ (दीतिउ ?)' गारी।
चोरु 'होतेउ तोर' अभरन 'लेतेउ'। पूर गहन 'लइ उ(उ)छहि देतेउ'।
धरे केस 'तू मोहि गोहरावसि'। 'सोवत' लोग 'केहि' अरथि जगावसि।
अभरन काजि न 'आवइ मोरें'। रूप 'भुलानेउ' चादा 'तोरें'।
'तोहि लागि जउ मरऊ' नेहु न 'छाडउ' काउ।
'पिरीति तुम्हारि लागि मोरे हिरदइ' 'जइ जीउ जाइ तउ' जाउ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६७, बी० ६०७-६०९।

शीर्षक—जवाव दादने लोरिक वर चादा बा नरमी।

पाठान्तर—(१) बी० धन भ्यभर। २ बी० अपनै जनमि। ३ मैं० कीन्हिउ। (२) १ बी० आयो तोरैं। २ बी० गुवारी। ३ बी० कहसि चोरु औ। ४ मैं० दीन्ही। (३) १ बी० होउ तौ। २ बी० लेऊ। ३ बी० ले वोछे देऊ। (४) १ बी० मोरे तू गुहरावसि। २ बी० सूत। ३ बी० किह। (५) १ बी० आवहिं मोरैं। २ बी० भुलानौं। ३ बी० तोरैं। (६) १ बी० तोर लागि जौ मरिहौं। २ बी० छाडौं। (७) १ बी० पिरति तुह्मार लाग मो हियरौ। २ बी० जौ सिरु जाइ तु।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "ऐ अचेत, भेभर (तमतमाई हुई ?) और भोली स्त्री, सुन, अपने जीवन भर मैंने चोरी नही की। (२) ऐ ग्वालिन, मैं तेरे स्नेह मे आया, [किंतु] तूने मुझे चोर कहा और गाली दी। (३) मैं चोर तब होता जब मैं तेरे आभरण लेता और पूरे (सब) आभरण लेकर छुडा भागता। (४) तू मेरे केश पकडे हुए लोगो को बुला रही है! लोग सो रहे हैं, उन्हे तू किस प्रयोजन से जगा रही है? (५) आभरण मेरे काज नही आते हैं, मैं तो, हे चादा, तेरे रूप पर भूला हुआ हू। (६) तेरे लिए यदि मैं मर जाऊ, [तब भी] मैं तेरे स्नेह को कभी न छोडूंगा। (७) तेरी प्रीति मेरे हृदय से लगी हुई है, यदि इस कारण जीव जाता है तो भले ही जाए।

(१९९)

चोरु 'रइनि जउ' चोरी 'आवइ' । अभरन 'लेत तेहि' 'कवनु छुड़ावइ' ।
'चोरत नेह कहिय दहु काहा' । 'अइस उतर केहु जानियत आहा' ।
'मइ तोहि को का' सदेस पठावा । कौन सकति तू मो पहि आवा ।
चाटहि 'पख' 'उठइ' जउ आई । 'रहइ' न 'परि' सो 'मरइ' उडाई ।
जिउ 'देइ चाह' आइ सो बेरा । 'जियतहि' न 'कोउ चोर मुह' हेरा ।
मीचु टारि तू 'आतेसि' 'कइसेइं' 'मेटि' न जाइ ।
पाउ 'धरहि तोहि बिस्तर' 'जाइहि जीउ गवाइ' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १९८।१, वी० ६१०-६१२ ।

शीर्षक—मैं० कैफियत चादा लोरिक रा दुज्द ।

पाठान्तर—(१) १. वी० रयनि जौ । २ वी० आवै । ३ वी० ले ताह । ४ वी० कौनु छुडावै । (२) १ वी० चोरहि । २ वी० कहै धौ कहा । ३. वी० अैसे उतरि जाइ धौ अहा । (३) १ वी० मै तौ कहु कि । (४) १ वी० पाख । २ वी० उठेहि । ३ वी० रहै । ४ मैं० पाउ । ५. वी० मरै । (५) १ वी० दे जाहि (चाहि—फा०) । २ वी० चीन्ह । ३. वी० कोइ चोरु हम । (६) १ वी० आनसि (आतेसि—फा०) । २ वी० कैसन । ३ वी० मेट । (७) १ वी० धरा तिहि वस्तरि । २ वी० जायही जीउ गमाई ।

अर्थ—(१) [चादा ने उत्तर दिया,] "चोर जब रात्रि मे चोरी के लिए आए, तब उसको आभरण लेते समय कौन छुडा सकता है ? (२) चोरी करते हुए व्यक्ति के सम्बन्ध मे भला स्नेह की बात क्या कही जाए ? ऐसा उत्तर किसी प्रकार मे तूने जान (सीख) लिया है । (३) मैंने तुझको क्या सन्देश भेजा और तू किस शक्ति से मेरे पास आया ? (४) चींटे को जब आकर पख उठे (निकले) तो वह [जीवित] नही रहता है, और हो न हो वह उड कर मर जाता है । (५) यदि तू जीवन (प्राण) देना चाहता है तो वह वेला आ गई है, [चोर के] जीवित रहते हुए कोई चोर का मुह नही देखता है । (६) तू [अपनी] मृत्यु को हटा कर आया है, किन्तु वह किसी प्रकार भी मिटाई नहीं जा सकती है । (७) यदि तूने विस्तरे पर पैर रक्खा, तो तू अपने प्राण गवा कर [ही] जाएगा ।"

(२००)

'जउ लहि जीउ घट महहि' होई। तउ लहि सागि न 'आवइ' कोई।
परथमि 'मानुस' जीउ 'गवावइ'। तउ 'पाछे चढि सरगेहि आवइ'।
मरि 'कइ' चाद सरगि 'हउ' आवा। 'जउ' जिउ होइ डराइ डरावा।
हउ तउ 'मरिउ जउहि' तू देखी। तोहि देखि 'धनि मुइउ' बिसेखी।
'मुए जो मारइ' सो कस आहा। चाद मुए कर 'मारब' काहा।
देखि रूप जिउ 'दीन्हा' तउ 'आएउ तोहि' पासि।
रहे नैन 'जेहि देखउ' 'रहइ जियहु लइ' सास॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६८।२, बी० ६१३-६१५।

शीर्षक—मैं० सवाल करदने लोरिक व नमूदने तमशीद।

पाठान्तर—(१) बी० जौ लहु जीउ कया घट। २ बी० आवै। (२) १ बी० मानसु। २ बी० गवावै। ३ बी० बिवान चरि सरगेहि आवै। (३) १ बी० कै। २ बी० जौ। ३ बी० जै। (४) १ बी० मुयो जवहि। २ बी० धन मुयो। (५) १ बी० मुयाह जु मारै। २ बी० मारसि। (६) १ बी० लीन्हौ। २ बी० तौ आयो तुम्ह। (७) १ बी० जिहि देष्यौ। २ बी० रही जीभ (रहइ जियहु—फा०) ले।

अर्थ—(१) "जब तक जीव" [लोरिक ने कहा,] "घट (शरीर) मे ही होता (रहता) है, तब तक कोई प्राणी स्वर्ग (धवलगृह तथा बैकुठ) मे नही आता है। (२) पहले मनुष्य अपना जीव (जीवन) गवाता है, तब [उसके] पीछे चढ कर वह स्वर्ग मे आता है। (३) मैं, हे चादा, मर कर [इस] स्वर्ग मे आया हू, यदि जीव हो तब [तो] डराया हुआ डरे। (४) मैं तो तभी मर गया था जभी मैंने तुझे देखा था, [आज] तुझे देख कर, ऐ नारी, मैं विशेष रूप से मर गया। (५) [इस समय] जो तू मृत को मार रही है, वह कैसा है ? ऐ चादा, मृत को मारना क्या ? (६) तेरा रूप देख कर मैंने जीव (जीवन) दिया, तब मैं तेरे पास आया। (७) [या तो मेरे] नेत्र शेष हैं जिनसे मैं तुझे देख रहा हूँ, और [या तो मेरा] जीव साँसें ले ले कर शेप है।"

(२०१)

लोर 'बचन' सुनि उठा मरोहू। 'चादा चितहि वुझानेउ' कोहू।
केस छाडि 'धनि आचर' गहा। चाद 'बइठि' बीरु ठाढा रहा।
'चोर' नाउ आपन कहि मोही। बोलु 'सद्' 'मकु चीन्हउ' तोही।

'कवनि जाति' तोर घरु 'हइ' कहा। 'कवनु' लोग तुम्हं आछहु 'जहा'।
'मता' पिता तोरी 'चित' न करही। 'रइनि' फिरत तोहि 'बाजि' न धरही।
'कहत' बचन 'मोहिं' अस भा 'का गहि करियहिं' तोहि।
महरु 'रूखि लै (लइ) टागै (टांगइ)' सो हत्या 'फुनि' मोहि॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १६६, बी० ६१६-६१८।

शीर्षक—मै० गुजाश्तने चादा मूये सरे लोरिक व गिरफ्तने कमरवन्दे ऊ।

पाठान्तर—(१) १ मै० मे नही है। २ बी० चादहि बचन बुझाना। (२) १ बी० धन अचरु। २. बी० बैठ। (३) १. बी० चोरु। २ बी० सबदु। ३ बी० मुषु चीन्हौ। (४) १ बी० कौन जाति तोरु। २ बी० कहु। ३. बी० कौनु। ४ बी० अहा। (५) १. बी० मात। २ बी० च्यत। ३ बी० रैनि। ४ बी० वरज। (६) १ बी० हसत। २ बी० मन। ३ बी० काढि न औपी। (७) १ मै० रूख लइ करमहि। २ बी० लागै।

अर्थ—(१) लोर के वचनो को सुनकर [चादा के जी मे] मरोह उठा (करुणा जागृत हुई) और चादा के चित्त का क्रोध बुझ गया। (२) [लोरिक के] केशो को छोड़ कर उस नारी ने उसका अचल पकडा, चाद (चादा) बैठी रही और वीर (लोरिक) खडा रहा। (३) [चादा ने कहा,] "ऐ चोर तुम अपना नाम मुझमे कहो, [कुछ] शब्द बोलो, जिससे तुम्हे पहचान सकू। (४) तुम्हारी कौन-सी जाति है और तुम्हारा घर कहा है ? वह कौन-सा लोक (देश ?) है जहा तुम [रहते] हो ? (५) क्या [तुम्हारे] माता-पिता [तुम्हारी] चिन्ता नही करते हैं और रात मे फिरते समय वे तुम्हे वर्जन कर (रोक कर) नही रखते हैं ? (६) ये वचन कहते हुए मुझे ऐसा हुआ (लगा) कि तुम्हे पकड कर किया ही क्या जायगा। ? (७) महर यदि तुझे ले जाकर वृक्ष पर टागे (तुझे फासी दे), तो उसकी हत्या मुझे ही [तो होगी]।'

(२०२)

आजु कि 'चाद न' चीन्हसि मोही। 'गहने लीति उवारिउं तोही।
'तुम्हरिय मारव जो' दीत न काऊ। 'मारिउ' बाठ 'खी(खि)देरिउ राऊ'।
'अनवन वीर देखु तोर अहई'। सकरी 'बार' मोर मुख 'चहई'।
'हड सो आहि धहिं' कूकू लोरा। खांड परत 'जेइ' आगु न मोरा।
'महर काज मइं जीव न वारिउ। गार पसेउ तहा लोहू ढारिउ।'

'पुरुख न' आपु 'सराहइ' पूछत 'कहई' बात।
'चोर बोल सो मारइ' 'जो' 'मनि बाउर' रात ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १७०।१, बी० ६१६-६२१।

शीर्षक—मैं० जवाब दादने लोरिक चादा रा।

पाठान्तर—(१) बी० चादा। २ बी० गहनै लेत (लीत—फा०) उवार्‌यौ। (२) १ बी० तुम्हारी साषि (माषि—ना०) न। २ बी० मार्‌यौ। ३. बी० षदेर्‌यो। (३) १ बी० अनअन वीर भाइ तोरै अहही। २ मैं० बेर। ३ बी० चहही। (४) १ बी० हौ सु आहि धन। २ बी० जिहि। (५) १ बी० महर काजि वस कूवै लेउ जौ जिउ चाहि काढि कै देऊ। (किन्तु यह आगे २०४.४ है)। (६) १ बी० बीरु नहि। २ बी० सराहै। ३ बी० औ कहि। (७) १ बी० वोछ वोलु नहि बोलिये। २ बी० जौ। ३ बी० मनु वावर।

अर्थ—(१) "ऐ चाद (चादा)," [लोरिक ने कहा,] "आज क्या तुम मुझे पहचान नही रही हो? जब तुम ग्रहण मे ली हुई थी, तव मैंने ही तुम्हे उवारा था। (२) यह तुम्हारी ही माख (ममता) थी, जो [तुमने] कभी नही दी थी, कि मैंने वाठ को मारा और राजा [रूपचद] खदेडा (भगाया)। (३) देख, तेरे [पिता के] अनहोने वीर थे, [किन्तु सकट की वेला मे [उन सबने] मेरा [ही] मुह जोहा। (४) मैं, ऐ स्त्री, वह कूकू लोर हूँ, जिसने खड्ग पडते [समय] अग नही मोडा। (५) महर के कार्य के लिए मैंने अपना जीव नही बचाया, जहा उसने प्रस्वेद (पसीना) गारा, वहाँ मैंने लहू ढारा (गिराया)। (६) [सच्चा] पुरुष अपनी सराहना नही करता है, पूछने पर ही वह वात कहता है, (७) और चोर भी वोल वही मारता (निकालता) है जो मन मे वावला [या] अनुरक्त होता है [क्योकि उसे ही जीने की चिन्ता नही होती है]।"

(२०३)

'आपुहि' बीर 'सराहसि' काहा। जाति 'गोवारु' आहि चरवाहा।
'हमरे' चेर सहस 'एक अहहि(ही)'। काच खाहिं 'तोहि' आगिन चहही।
अत केकान 'जउ पूछु पधावा'। 'असवारहु कह फेरि न' आवा।
जा 'कह' लोरु 'कीन्हि' मनुसाई। 'तेहिं के' मदिर 'कस पैठेउ' धाई।
अइसे 'परि जउ' सेव 'करावा'। साई दोह अस 'छटि नावा (न आवा)'।

सुनि 'जउ पावइ' महरु अस 'गोवरां दीन्ह' बसेर ।
एक धरत सो धर येहि तू 'दूलह केहि' केर ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १७०।२, बी० ६२२-६२४ ।

शीर्षक—मैं० . सवाल करदने चादा दर अहानतः लोरिक ।

पाठान्तर—(१) १ बी० आपन । २. बी० सराहहि । ३ बी० गुवारु । (२) १ वी० महरे । २ वी० दोइ रहही । ३. बी० तौ । (३) १. बी० ज पूछ वधावा (पधावा—फा०) । २. बी० असवा वारैहि का फिरि कैं । (४) १ वी० कौहु । २. बी० करैं । ३ बी० तिहि कैं । ४ बी० कि पैठै । (५) १ वी० पहिं जौ । २ मैं० करावइ । ३. बी० जीउ गवावा । (६) १ वी० जौ पाव । २ वी० गोवर पारि । (७) १. बी० दुलही कि ।

अर्थ—(१)—[चादा ने कहा,] "ऐ वीर, तू अपने आप को क्या सराहता है ? तेरी जाति ग्वाले की है और तू चरवाहा है । (२) हमारे एक सहस्र चेर (सेवक) है, वे तुझे कच्चा ही खा जाए और वे [इसके लिए] आग भी न चाहे । (३) [हमारे] केकान (घोडे) इतने है कि यदि तू दौडता हुआ [उनके सवारो से] पूछने लगे, तो समस्त सवारो [से पूछने] का फेरा न आएगा । (४) जिसके लिए, ऐ लोरिक, तू ने पुरुषार्थ किया, उसके मदिर मे दौड कर तू कैसे (क्यो) प्रविष्ट हुआ ? (५) इस प्रकार (विधि) से जो सेवा कराता (करता) है, उससे स्वामि-द्रोह [का अपराध] छूटने पर नही आता है । (६) यदि महर ऐसा सुन पाए, जिसने तुझे गोवर मे वास (रहने का स्थान) दिया है, (७) और वह [स्वामि-द्रोह] एक को [भी] पकडे, तो वह इसी स्थान पर [तुझे] पकडेगा । [तव] तू किसका दूलह (प्रेमी) [होगा] ?"

(२०४)

साइं दोहु 'अस' वोलिए नारी । राति 'आइ हिये हनै(नइ)कटारी' ।
'कइ पायन्हि पखवारि सचारइ' । 'कइ दिन पाइ चूना मुह सारइ' ।
'जेहि करइं काजि' जीउ 'लइ' दीजा । ताकहु चांद 'दोहु कइस' कीजा ।
'महर काज धसि कुवडा लेऊ । जिउ जउ माग काढि कइ देऊ' ।
'महरइं' दोह न 'कीजइ' वना । दोहु 'करहि तिन्ह' कोउ न गना ।
गुन अवगुन 'तह' 'कोई जानै(नइ)' 'जउ' मन आहि सरीरि ।
'वाग नारि घर आइउ' हउ 'वूडउ' मझ 'नीरि' ॥

सन्दर्भ—मैं० १७१।१, बी० ६२५-६२७।

शीर्षक—मैं० जवाव दादने लोरिक बर चादा रा।

पाठान्तर—(१) १ बी से। २. मैं० जाइ अहिनार्नें मारी। (२) १ बी० कै पानहि बधवारु सचारैं। २ बी० कै दिनाइ दर नैंमहि सारैं। (३) १ बी० जिव कर काजि। २ बी० लैं। ३ बी० दोषु कैसैं। (४) १ बी० महर काजि हौं जीऊनि वारौं परैं पसेउ लोही तहा ढारे। (किन्तु यह २०२.४ है। (५) १ बी० महरैं। २ बी० कीजैं। ३ बी० करौं तिह। (६) १ बी० सभ। २ मैं० कोइ न जानइ। ३ बी० जो। (७) १ बी० सोई टारि वाहरि। २. बी० है बूडौं। ३ बी० नीरी।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "ऐ नारी, तू इस प्रकार स्वामिद्रोह [की बाते] उसके लिए कह जो रात्रि मे आ कर हृदय मे कटारी मारे। (२) तू चाहे तो मेरे पैरो मे पखवारी (वेडी ?) सँचारे और चाहे तो दिन पाने (होने) पर मेरे मुह मे चूना लगाए (उसे उज्ज्वल करे)। (३) जिसके काज (लिए) जीव ले कर दिया जाए, उसको (उससे), ऐ चादा, द्रोह कैसे किया जा सकता है ? (४) महर के लिए मे कुए मे धस पडूँगा, और यदि वह जीव मागेगा, तो वह [भी] निकाल कर दे दूगा। (५) मैं [महर का] द्रोह नही कर सकता, [क्योकि] जो द्रोह करते हैं, उन्हे कोई नही गिनता है। (६) गुण-अवगुण वहाँ (तव) कोई जानता है, जव [उसके] शरीर मे मन होता है। (७) [अपनी] घर की नारी [अथवा अपने नारी और गृह] की उपेक्षा कर मैं आया, सो जल के मध्य मे डूब रहा हू।"

(२०५)

'पूछउ' 'लोरिक कहु' सति मोही। 'कै (केइ)' 'असती' बुधि 'दीन्ही' तोही।
'सतहि तिरइ सायर' महि नावा। बिनु सत 'बूड़इ थाह न' पावा।
'जेहि' सतु होइ 'सो लागइ' तीरा। सत 'कर' हीन 'बूड' मझि नीरा।
सत गुन 'खैंचि' तीर 'लइ लावा'। सत 'छाडे' गुन तोरि 'वहावा'।
सत 'सभार (साभर ?) तउ पावइ' थाहा।
'बिनु' सत थाह 'होइ अवगाहा'।
सतु साथी सतु 'साभल' 'सतइ नाउ' कडहार।
'करि' सत कत तू आवसि 'बर सिधि देइ' करतार ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १७१।२, वी० ६२८-६३०।

शीर्षक—मै० : सवाल करदने चांदा बर लोरिक दर इश्क ।

पाठान्तर—(१) मै० पूछीउ (पूछिउं—ना०)। २. बी० लोर कहौ। ३. मै० लेइ (केइ)। ४ बी० अस्त्री। ५ बी० दीनी। (२) १. बी० सताह तिरै सियार। २ बी० बूर (बूड़—फा०) थाह नहि। (३) १ बी० जिहि। २. बी० सु लागै। ३ बी० क। ४. बी० बूर। (४) १ बी० तारि। २ बी० लै लावै। ३. बी० छोरै। ४ बी० बहावै। (५) १ बी० सभरि तिहि पावै। २ बी० विन। ३ बी० होय औगाहा। (६) १ बी० सावरा। २ बी० सतै नाव। (७) १ बी० कहि। २ बी० पर सिधौं।

अर्थ—(१) [चादा ने कहा,] "ऐ लोरिक, मैं तुझसे पूछती हू, तू मुझसे सत्य कह, किस असती (असत्य-निष्ठ) ने तुझे [यह] बुद्धि (युक्ति) दी है? (२) सत्य से ही सागर मे नाव तिरती है, बिना सत्य के वह डूब जाती है, क्योकि उसे थाह नही मिलती है। (३) जिसमे सत्य होता है, वह किनारे लग जाता है और सत्य से हीन जल के मध्य मे ही डूबता है। (४) सत्य ही गुण (रस्सी) को खीच कर [नाव को] तट पर ला लगाता है, और सत्य को छोडने पर [तुमने जैसे] उस गुण (रस्सी) को तोड़ फेका। (५) यदि सत्य का शवल होता है, तो थाह मिल जाती है और बिना सत्य के थाह [का स्थल] भी अवगाढ (गहरा—अथाह) हो जाता है। (६) सत्य ही साथी, सत्य ही शवल और सत्य ही नाव का कर्णधार [होता] है। (७) तू कहा सत्य [का आश्रय] कर आ रहा है कि सृष्टिकर्ता तुझे श्रेष्ठ सिद्धि दे?"

(२०६)

'जेहि' दिन चाद 'गइउ जेवनारा'। देखि 'विमोहिउ रूप तुम्हारा'।
तुम्हरी जोति 'जु भा' उजियारा। 'परिउ' पतगु 'होइ' मइ 'न सभारा'।
सो रंगु रहा 'न चित हुत' जाई। चितहु माझ रग कुरिया छाई।
रग 'जेवन' रग भोजन 'करउ'। रग 'पुनि' 'जीवन' 'निरग पुनि मरउ'।
'तेहि रग नैन नीर नइ' 'वहे'।
'हे (होइ?) वर रग किरारैनै (करारन?) ढहे'।
रगु 'जउ देह मन भारी' विनु रग 'उठइ' न पाउ।
'जीउ' चाहि रग दूलहु मुनु चादा सत भाउ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १७२।१, बी० ६३१-६३३।

शीर्षक—मै० : जवाब दादने लोरिक चादा रा।

पाठान्तर—(१) १ बी० जिह। २ बी० गयो जिवनारे। ३. बी० विमेहे रूप तुम्हारे। (२) १ मै० भएउ। २ बी० पर्‌यो। ३ बी० होय। ४ मै० नसभारा (न सभारा)। (३) १ बी० जु चितहु न। (४) १ बी० जीवैं। २ बी० करैं। ३ बी० सौ। ४ बी० जीव। ५ बौ० रग विनु मरौ। (५) १ बी० तिहि रग फूटि नयन तस। २ मैं० वहा। ३. मैं० बिनु सत बूड होइ अवगाहा (तुल० २०५ ५)। (६) १ बी० जु देहि मन बावरि। २ बी० उठै। (७) १ बी० जिहि।

अर्थ—(१) [लोरिक ने उत्तर दिया,] "जिस दिन, ऐ चाद (चादा), मै ज्यौनार मे गया, तुम्हारा रूप देखकर विमुग्ध हो गया। (२) तुम्हारी (रूप की) ज्योति से जो प्रकाश हुआ, मैं पतिगा होकर बेसभाल [उस पर] जा पडा। (३) [तदनतर] वही रग (अनुराग) बना रहा और वह चित्त से नही जा रहा है, चित्त मे भी उस रग ने कुटी छा ली है (घर बना लिया है)। (४) उसी रग (अनुराग) का जीमना और उसी रग का भोजन करता हू रग (अनुराग) ही [मेरा] जीवन है और निरग (अनुरागहीन) होकर मैं मर जाऊगा। (५) उसी रग (अनुराग) मे नेत्रो ने अश्रु-सरिताएँ वहाई और रग (अनुराग) से वर (प्रवल) होकर उन्होने करारो को ढहा दिया। (६) जव रग (अनुराग) होता है देह और मन भारी होते है और विना रग (अनुराग) के पैर भी नही उठता है। (७) जीव की अपेक्षा भी रग (अनुराग) दुर्लभ (प्रिय) होता है, ऐ चादा, मेरा यह सत्य भाव सुनो।"

(२०७)

रग 'कइ' बात 'कहउ' सुनि लोरा। 'कइसे' रात मोहि मनु तोरा।
जाति अहीरु रगु आहि न तोही। रग बिनु निरगु न 'राता होई'।
कहु दुखु 'जो तइ मोहि निति' सहा। बिनु दुख 'यह' रगु 'कइसे रहा'।
'जउ न सहिय सिर खाडइ' घाऊ। रग 'रती एक होइ' न काऊ।
'अगिनि' झार बिनु रगु न होई। जेहिं रगु 'होइ' अवटि 'मर' सोई।
'अन' न रुच 'रग' बेधा जाइ नीदि निसि जाग।
मोट 'थूल तू लोरिक' कह 'कइसे' रगु लाग॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १७२।२, बी० ६३४-६३६।

शीर्षक—मैं० गुफ्तने चादा हिकायत इश्क ऊ।

पाठान्तर—(१) बी० की। २ बी० कहौ। ३ बी० कैसे। (२) १ बी०

राचै मोही। (३) १ वी मो तिहि जो तैं। २ बी० य। ३. बी० कैसै साहा। (४) १ बी० जौ न सहै सिर षाडै। २. बी० राता औ चलै। (५) १. बी० अगनि। २. बी० होय। ३ बी० मरैं। (६) १ बी० अन। २ बी० रग कर। (७) १ बी० थूल्ह तू लोरिका। २ बी० कैसै।

अर्थ—(१) [चादा ने कहा,] "ऐ लोरिक, सुन, रग (अनुराग) तू [अपने] की वात [मुझसे] कह कि कैसे तेरा मन मुझ पर अनुरक्त हुआ? (२) [तेरी] जाति अहीर की है, इसलिए तुझे रग (अनुराग) नही [हो सकता] है और जो रग के बिना निरग होता है, वह अनुरक्त नही हो सकता है। (३) वह दुख वता जो तूने मेरे निमित्त सहन किया; बिना दुख सहन किए यह अनुराग किस प्रकार रहा? (४) यदि कोई सिर खड्ग का आघात नही सहन करता है, तो उसे एक रत्ती भर भी रग कभी नही होता है। (५) [पुन.] अग्नि की ज्वाला सहन किए बिना रग नही होता है, जिसमे रग होता है वह औट कर (सतप्त होकर) मरता है। (६) रग से विद्ध को अन्न नही भाता है, उसकी निद्रा जाती रहती है और वह रात्रि भर जागा करता है। (७) ऐ लोरिक, तू मोटा और स्थूल है, तव तू कैसे कहता है कि तुझे रग लगा हुआ है?"

(२०८)

'पानु भएउं' चांदा तोहि जोगू।
सिर 'देइ खेलेउ' चित धरि भोगू।
'गात किहेउ' 'जस अँसू (अइसु) सुपारी'।
'खाडि पीसि दोइ' 'कीत्यो(तेउ)' नारी।
'औ(अव)न' स 'काढि कीन्ह दुइ आधा'।
अइस चाद 'मइ आपुहि' साधा।
विरह दगध 'हउ' चूना कीन्हा। जरत नीरु 'तेहि' ऊपर दीन्हा।
अनु 'छाटेउ' विरहइ कइ झारा। पानी 'के हउ रहिउं' अधारा।
'कहिउ' निरति 'सव आपनि' अव 'जउ' पूछहि वात।
अधर 'धरत गइ पियरई 'तेहि' रंग तोरे रात॥

सन्दर्भ—मै पत्र १७३।१, वी० ६३७-६३९।

शीर्षक—मैं० जवाव दादने लोरिक चादा रा।

पाठान्तर—(१) १ वी० वानु (पानु—फारसी) भयो। २. वी० सौ गेल्यो। (२) १ वी० काटि (गात—फा०)। २ मैं० जस सूवा सारी।

३. बी० खारि पीठि दोइ। ४ मैं० कीन्हेउ। (३) १ मैं० मे प्रथम अक्षर त्रुटित है। २ बी० काढि कियो दोय। ३ बी० मै आपहि। (४) १ बी० हौ। २. बी० तिहि। (५) १ बी० छाडौ। २ बी० विरहै की। ३ बी० कै हौ रह्यो। (६) १ बी० कहै। २ बी० सभ आपन। ३ बी० जौ। (७) १ बी० अधर की बीरी (पियरई—फा०)। २ बी० तिह।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "तेरे योग मे मै पान [जैसा पीला] हो गया, और [पान की भाति ही] सिर देकर तथा चित्त मे [तेरा] भोग धारण कर मैंने [प्रेम का] खेल खेला। (२) [अपने] गात्र को मैंने ऐसा किया जैसे सुपारी हो, और ऐ नारी, उसे खडित कर और पीस कर मैंने उसके टुकडे कर डाले। (३) अपने अवन (असुदर) को निकाल कर दो आधो मे विभाजित कर डाला, इस प्रकार, ऐ चादा, मैंने अपने-आपको साधा। (४) विरह के दाह ने मुझे चूना कर डाला, और उसके ऊपर भी मैंने [अपने] जलते हुए शरीर पर [आसुओ का] पानी दिया (डाला)। (५) विरह की ज्वाला के कारण मैंने अन्न छोड दिया, और पानी के आधार पर मैं [जीवित] रहा। [६] मैने अपनी समस्त निरति [इसलिए] कही है कि अब तूने बात पूछी है। (७) अधरो पर धारण करते ही [उनके अमृत से] पीतिमा चली गई (जाएगी ?) इसलिए (इस आशा से) मैं तेरे रग (अनुराग) मे रक्त हो गया हूँ।"

(२०६)

सुरग सेज भरि फूल बिछावसि। 'कवल कली तसि' मैना रावसि।
'असि धनि छाडि जउ अनतइ धावा'। कइ सनेह 'तउ ही छटकावा'।
भवरु 'फूल' पर 'रहइ' लुभाई। रसु 'लइ' ता 'पहि' वहुरि न जाई।
काहि लागि तू 'कोड करावसि'। 'मोहि कुल राका धूर(रि) भरावसि'।
'अरे' लोर तू 'केहिं बउरावसि'। 'तेहि बउराउ' जहा कछु पावसि।
'का अचेति हउ बाउरि' 'कइ' तू लोर 'बउरावसि'।
'कइ' सनेह मोहि 'छरगसि' 'जित भावइ तित जावसि'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १७३।२, बी० ६४०-६४२।

शीर्षक—मैं० गुफ्तने चादा हिकायत मैना वा लोरिक।

पाठान्तर—(१) १ बी० कवर करी अस। (२) १ बी० अस धन छारि जु अनतैं धावैं। २ बी० तव ही छिटकावैं। (३) १ बी० फुर। २ बी० रहै। ३ बी० ले। ४ मैं० कह। (४) १ मैं० कोरइ करसी।

२ मै० उहिं के लिलार खूट न धरसी । (५) १ वी० अहो । २ बी० तिहि वौरावसि । ३ वी० तिहि वौराई । (६) १ बी० कै हौ अचेत कि बावरि । २ वी० कै । ३. वी० वौरासि । (७) १. बी० कै । २ बी० छिरगसि । ३ वी० वरि भावै तहा जासि ।

अर्थ—(१) [चादा ने कहा,] "तू फूलो से भर कर सुरग शैया बिछाता है, और [उस पर] कमल-कलिका जैसी मैना से तू रमण करता है । (२) [अपनी] ऐसी स्त्री को छोड कर जो तू अन्यत्र दौड रहा है, [उससे ज्ञात होता है कि] तू स्नेह करके तदनतर [अपने को] अलग कर लिया करता है । (३) भौरा फूल पर लुभाया रहता है किन्तु उसका रस लेकर पुन. उसके पास नही जाता है । (४) तू किसलिए [मुझसे] ऐसा कोड (खेल-खिलवाड) करा रहा है और [किसलिए तू] मेरे राका (पूर्णिमा के चन्द्र) जैसे कुल मे [मुझसे] धूल भरवा रहा है ? (५) अरे लोरिक, तू किसको वावला कर रहा है ? तू उसको वावला कर जहा (जिससे) कुछ पास के । (५) या तो (?) मैं अचेत और वावली हू, और या तो तू, ऐ लोर, मुझे वावला कर रहा है । (७) तू स्नेह [की वातें] कर मुझे छल रहा है, जहा भी तुझे भाए, वहा तू जा ।"

(२१०)

'जेहि' दिन चाद 'दइय हउ' गढा । तेहि दिन हुते तोर रगु चढा ।
'विसरा' 'लोकु कुटुवु' घर 'वारू' । बिसरा अरथु दरबु 'व्यवहारू' ।
मुख तबोलु सिर तेलु विसारा । बिसरा परिमलु फूल 'कइ' मारा ।
अन न रुच निसि 'नीदि' विसारी । बिसरी सेज सो 'कलि फुल वारी' ।
वुधि विसरी रग 'भएउ सवाई' । 'ता कह निरग कहइ बउराई' ।
'तह तोरउ रग' विरवा हिरदइ 'लागेउ आइ ।
'कोप' सरग जरि धरती 'जिय वरु' जाइ तउ 'जाइ' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १७४।१, वी० ६४३-६४५ ।

शीर्षक—मै० जवाव दादने लोरिक चादा रा ।

पाठान्तर—(१) १ वी० जिह । २. वी० दइ हौं । (२) १ मै० विसर । २ वी० लोग कुटवु । ३ मै० वार विसारा । ४ मै० वेहवारा । (३) १ वी० गी । (४) १ वी० सेज ('सेज' दूसरे चरण मे आता है) । २ वी० मैना-रानी । (५) १ वी० भयो सवायो । २ वी० चाद निरग करि तै वौरायो ।

(६) १ वी० नेह रग तोरैं। २ वी० लागा घाउ। (७) १ वी० कूप (कोप—फा०)। ३ वी० जैं सिरु। ४ मैं० जाउ।

अर्थ—(१) [लोरिक ने उत्तर दिया,] "जिस दिन, ऐ चादा, दैव ने मुझे निर्मित किया, उसी दिन से तेरा रग मुझ पर चढा [हुआ है]। (२) लोक (देश-समाज), कुटुब, और परिवार मुझे [उसी दिन से] विस्मृत हो गए, अर्थ, द्रव्य, और व्यवहार मुझे भूल गए। (३) मैने मुख मे तावूल [लेना] और मिर पर तैल [लगाना] विस्मृत कर दिया, मुझे परिमल भूल गया और पुष्प-मालाए भूल गईं। (४) मुझे अन्न नही रुचता है, मैंने रात्रि मे निद्रा विस्मृत कर दी है, और मैंने कलियो-फूलो वाली शैया भुला दी है। (५) बुद्धि भूल गई, तो रग सवाया हो गया और उसको तू बावली हो कर निरग कह रही है। (६) वहा (इस सव का कारण) यह है कि तेरे रग (अनुराग) का विटप हृदय मे आकर [ऐसा] लग गया है (७) कि उसकी जडे धरती मे है तो उसकी कोपलें स्वर्ग (आकाश) मे [निकल रही] हैं, और भले ही अव [उसके कारण] जीव जाता है तो जाए।"

(२११)

'जेहिं' दिन लोरिक 'रन' 'जिनि' 'आएहु'। पइसत नगर घाय 'दिखराएहु'।
'तेहि दिन हुत मइ' अनु न कराई। 'परइ' न नीदि सेज न सुहाई।
'पेट पइसि जिउ लीन्हा' काढी। बिनु 'जिउ' नारि 'देख बरु' ठाढी।
'मइ' तोहि लागि 'जेवनार' कराई। छतीस कुरी 'पिता' हकराई।
'मकु' 'इक' तिल तुम्ह 'देखइ' 'पावउ'। देखि रूप 'मकु नैन सिराहउ।
'तेंहि' 'दिन' 'हुत' 'हउ भूलिउ' 'मोर जिउ तोहि को चाह'।
चरचा मरमु तुम्हारा 'लोर दहु करियहु काह'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १७४।२, वी० ६४६-६५१।

शीर्षक—मैं० गुफ्तने चादा हिकायत इश्क खुद वर लोरिक रा।

पाठान्तर—(१) १ वी० जिह। २ वी० रिन। ३ मैं० जीति। ४ वी० आयुहु। ५ वी० दिषरायुहु। (२) १ वी० तिह दिन ते मोहिं। २ वी० परैं। (३) १ वी० नैन पासि जीउ लेहिस। २ वी० जिव। ३ वी० देषि मैं। (४) १ वी० मैं। २ वी० जिवनार। ३ मैं० पिताहि। (५) १ वी० मुकु। २ मैं० टक। ३ वी० पाऊ। ४ वी० जिय नैं सिराऊ। (६) १ वी० तिही। २ वी० हुतैं। ३ वी० हू भूली। ४ वी० रह्यो न तुम्ह विनु जाई। (७) १ वी० अव धौ करौ हौ कहाई।

अर्थ—(१) [चाँदा ने कहा] "ऐ लोरिक, जिस दिन तुम रण जीतकर आए थे और नगर मे प्रवेश कर रहे थे, धाय ने मुझको तुम्हे दिखाया। (२) उसी दिन से ही मैंने अन्न [का आहार] नही कराया (किया), मुझे नीद नही पडती है और शैया नही भाती है। (३) तुमने [मेरे] पेट मे प्रविष्ट होकर [मेरा] जीव निकाल लिया और बिना जीव के मैंने स्तब्ध होकर तुम्हे देखा। (४) मैंने तुम्हारे लिए ही ज्यौनार कराई, और छत्तीसो कुल वालो को पिता के द्वारा बुलवाया, (५) कि कदाचित् [इसी युक्ति से] तुम्हे एक तिल (थोडा सा) देखने पाऊँ, और तुम्हारे रूप को देखकर [अपने] नेत्रो को सिराऊ (शीतल करू)। (६) उसी दिन से मैं भूली [सी] हू और मेरा जीव तुमको चाहने लगा है। (७) [प्रश्नोत्तर करके] मैंने तुम्हारा मर्म चर्चा (देखा-समझा) है। ऐ लोरिक, [अब] बताओ कि क्या करोगे।"

१३ चांदा-लोर-मिलन खण्ड

(२१२)

'अम्रित' बचन चाद अनुसारा। हसा 'बीरु' भा बोलु अधारा।
हसि 'कइ' 'वीरु' चीरु 'कर' गहा। 'मोतिन्ह' हारु टूटि 'गिय' रहा।
चाद कहा खिनु एकु 'सहारौ(र)हु। हारु टूटि गा मोति 'सभारहु'।
वीनि 'मोति' सभ 'लोर' उचावहु। तउ 'चढि' 'सेज (?)' रावहु।
मोति 'उचावत' 'रइनि' बिहानी। उठा 'सूर लइ साध निमानी'।
वीरु 'डरान' भोरु भा 'मन कइ चेत गवाएउ'।
सेज हेठि 'लइ चादइ सूरुज दिवसु' 'लुकाएउ'॥

सन्दर्भ—मै० १७५, वी० ६५२-६५४।

शीर्षक—मै० कैफियत दर खदह व लागे शव गुजरानीदन।

पाठान्तर—(१) १ मै० अमिरित। २ मै० लोरु। (२) १ वी० कै। २ मै० लोरु। ३ वी० सिरु। ४ वी० मोत्यो। ५. वी० गै। (३) १. मै० सभारहु (दूसरे चरण का भी तुक यही है)। २ वी० सभारौहु।(४) १ वी० मोत। २. मै० वीर। ३ वी० चर। ४ मै० पिरम रस। प्रतिलिपि मे यह अर्द्धाली बाद मे आती थी इसलिए छूटी समझकर [सभवत आदर्श के अनुसार] पुन किसी अन्य व्यक्ति द्वारा ऊपरी हाशिए मे दे दी गई। प्रतिलिपि मे इसका पाठ है, मोती तौ जै लेउ उचावहु : तै चरि सेज रवनि रै

रावहु । (५) १ मैं० उठावत । २ बी० रैनि । ३ बी० सुरिजु धन सुप चित मानी । (६) १ बी० डरा मन ('मन' आगे आता है) । २ बी० सुनि कै जीउ सकान । (७) १ बी० लैं लोरिक चादहि द्योसु । २ बी० लुकान ।

अर्थ—(१) जव इस प्रकार का अमृत (अमृतोपम) वचन चादा ने निकाला, लोरिक हस पडा (प्रसन्न हो गया) [क्योकि] उसे वचनो का आधार मिल गया । (२) हस कर वीर [लोरिक] ने हाथ से [उसका] चीर पकड लिया, तो ग्रीवा मे [का] उसका मोतियो का हार टूट कर रह गया । (३) चादा ने कहा, "एक क्षण सहारो (सभलो—रुको), मेरा हार टूट गया है, [पहले] उसके मोतियो को सभालो । (४) सभी मोतियो को विन कर, हे लोर, उठा लोगे तभी तुम शैया मे चढकर रमण करो और कराओगे ।" (५) [किन्तु] मोती उठाते-उठाते रात व्यतीत हो गई, और सूर्य (लोरिक) अपनी निर्मानित (तिरस्कृत) साध को लिए हुए उठा । (६) वीर (लोरिक) डरा कि प्रभात हुआ [इसलिए] उसने मन की चेतना गवा दी । (७) दिन मे शैया के नीचे सूर्य (लोरिक) को लेकर चाद (चादा) ने छिपाया (छिपाए रक्खा) ।

(२१३)

दई दई कै (कइ) द्यौ (दिव)सु गवावा ।
परी सा(सा)झ लोरिकि(क?) जिउ पावा ।
छिरका चादेहि (चादहि) अम्रित वानी ।
पल्ह(ल्हु)ई बेलि जैसे कु(कु)बिलानी ।
न्हाइ धोइ बस्तर पहिरावा ।
मधुर षुजाहजा (खजहजा) काढि जिवावा ।
नारिग बेलि (?) गुसय (गुसाइ) निचाषी ।
लोर देषि मै (मइ) तुम्ह कौहु (कहु) राषी ।
मदिर पिता कर आहा लोर पपु (पापु) नहि कीज ।
उरौहु(उतरहु)आजु स कोसर(सकूसर)काल्हि दाष रमु लीज ॥

सन्दर्भ—वी० ६५५-६५७ । एक अर्द्धाली वी० मे नही है ।

मैं० त्रुटित है, क्योकि पिछले कडवक के साथ जो चित्र है वह लोर-चादा सभोग का है, जो बाद मे आता है ।

अर्थ—(१) "दैव, दैव" करके लोरिक ने दिन गवाया (काटा), जव

संध्या पडी (आई), तब लोरिक ने [अपना] जीव पाया। (२) चादा ने अमृत-जल छिड़का, तो उसकी [काया-] वल्लरी, जो जैसे कुम्हलाई हुई थी, पलुह उठी। (३) उसको नहला-धुलाकर [चादा ने] वस्त्र पहनाए, और मधुर खाद्य-भज्य निकाल कर उसे खिलाए। (४) [चांदा ने कहा,] जिस नारंगो की वल्लरी (?) को मेरे स्वामी (पति) ने नही चखा था, ऐ लोरिक देखो, मैंने उसे तुम्हारे लिए रख छोड़ा है। (५) [किन्तु] यह मंदिर (भवन) मेरे पिता का है, ऐ लोरिक, [यहाँ पर] पाप न करो; (६) आज सकुशल तुम उतर जाओ, [तो] कल तुम द्राक्षा का रस (अधर-रस) लेना।"

(२१४)

सुनहु चाद मोरी येकै (एकइ) विनती।
आपनु भरमु कहौ (हौ) अरु हीनति (हिनती)।
उटइ सीसु तोरैं मदिर पइ(ई)ठे। जूवा पैतु जिउ लाइ बईठो(ठे)।
तुम्ह जीता मोर(री?) भइ हारी। कौन छद पेल्या(ला?) तुम्ह नारी।
तनु मनु जीउ लेई(इ) तू गई। विनु जिय काया रकत विनु भई।
नैन सरूप तोर कर ताने। अभरन सब जानो(?) ऊपर बाने।
सत परान बुधि पावसि चित मन नैन बिसेष।
अति बिमान तुम्ह जीता काया थाक अस देप॥

सन्दर्भ—वी० ६५८-६६०।

मै० यहाँ पर त्रुटित है जो उसके चित्रों से प्रकट है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी। किन्तु चाद ने पिछले कडवक की अंत की पक्ति मे दूसरे दिन जो द्राक्षा-रस लेने की बात कही है, उसका स्पष्ट उत्तर इस कडवक में नहीं दिखाई पड़ता है, यह चित्य है।

अर्थ—(१) "ऐ चाद, सुनो", [लोरिक ने कहा,] "मेरी एक विनती है, मैं अपना भ्रम (मर्म) कह रहा हूँ और अपनी हीनता का निवेदन कर रहा हूँ। (२) अपने सिर को उठा (साहसपूर्वक ले) कर मैं तेरे इस मदिर मे प्रविष्ट हुआ, और जुए की पैंत (बाजी) के रूप में अपने जीव को लगा कर बैठा रहा। (३) इस जुए मे तुम जीती और मैं हार गया! ऐ नारी [इस जुए मे] तुमने कौन-सा छद्म खेला? (४) तुम [बाजी के रूप मे लगाए हुए] मेरे तन-मन-जीव को ले गई, और मेरी काया बिना जीव और बिना रक्त की हो गई। (५) नेत्र तेरा स्वरूप·· ····और सब आभरण मानो उस पर

.... .। (६) मेरे सत्व प्राण, बुद्धि, चित्त, मन तथा नेत्र तुम्हे विशेष रूप से मिल रहे हैं, (७) तुमने मुझे अत्यधिक जीता है, ऐसा देख कर (?) काया थक गई है (नि:सत्व हो गई है)।"

(२१५)

सुनि कै चाद भीरि गै(गिय) लावा। सकति रूप मेरै कै आवा।
जिह नित मरन गजन जो सहा। सो पर(रि?)छि तस ता कर कहा।
मोहि लागि लोर जीउ परछेवा। अब हौ करौ दासि तोरि सेवा।
अधर षडि नै[न]नि घिउ सानौ। हिरदौ थार भर(रि) आगै आनौ।
सुर(र)ग बेलि फर तुम्ह कौ राषी (राषे?)।
नैनहु देषि गुसाइ(ई) नचाषी (निचाषे?)।
फूर सेज पर(रि)मल चदन बहु बिधि कीज।
कर गहि रद(ही) पयोधर अधर षडि रसु लीज॥

सन्दर्भ—बी० ६६१-६६३।

मैं० यहाँ पर त्रुटित है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी।

ऊपर आई हुई (५) निम्नलिखित २१३ ४ से तुलनीय है—

नारिंग बेलि (?) गुसय (गुसाइ) निचापी।
लोर देषि मैं (मइ) तुम्ह कौहु (कहु) राषी।

अर्थ—(१) लोरिक की यह भीरुता (हीनता-दैन्य) सुनकर चादा ने उसे गले से लगा लिया [और कहा,] "शक्ति और रूप (सौन्दर्य) मिलने को आ गए है। (२) जिसके लिए तुमने मरण और गजन (कष्ट) सहन किए, अब तुम उसकी और उसके कथनो की परीक्षा कर लो। (३) ऐ लोरिक, तुमने मेरे लिए अपने जीव (प्राणो) को परिछिन्न किया, तो मैं [भी] तुम्हारी दासी [होकर] तुम्हारी सेवा करूँगी। (४) [मैं अपने] अधरो की खाड को [अपने] नेत्रो के घृत (स्नेह ?) मे सान रही हूँ और [उन खडपूरो से] मैं हृदय के थाल को भर कर तुम्हारे आगे ला रही हू। (५) मैंने सुरग (सुन्दर) वल्लरी के फल (कुच) तुम्हारे लिए रख छोडे हैं, नेत्रो से देखो कि वे मेरे स्वामी द्वारा अनचखे [छोड दिए गए] थे (६) पुष्प-शैया, परिमल तथा चदन बहुतेरे प्रकार से [तैयार] किए हुए हैं। (७) मेरे पयोधरो को हाथो से ग्रहण किए रहिए और मेरे अधरो को खडित करके उनका रस लीजिए।"

(२१६)

आपनु मरम चाद जौ कहा।
उठि कै(कइ) चाद लोरु (लोरु चाद ?) कर गहा।
गहि अकौ गै(गिय) दीन्ही बा(बा) हा। पिरम न सकै लोरिकु नाहा।
आधी बीरी खडि मुषि दीन्ही। आधी छीनि लोर पहि लीन्ही।
तबहि (कबही ?) सीसु लोर सिरु वारै।
त(क ?)बही षौ(षै)चि माझ मुष मारै।
त(क ?)बही रोस पीठि दै बैस(सा)।
तू त(क ?)बही हसि कै तोरै केस(सा)।
चलत लोर कछु मन न सुहावै। कहि कहि प(पि)रम चाद बौरावै।
भव कर (?) चितु उपना लोर मदन [अ ?]ति लाग।
अति [रस?] रसिकु सेज फुनि रावै चादा देय सुहाग॥

सन्दर्भ—बी० ६६४-६६७। इस कडवक मे एक छठी अर्द्धाली भी है, इसीलिए बी० की चतुष्पदी सख्या भी इस कडवक मे एक बढ गई है। यह छठी अर्द्धाली असगत है, क्योकि लोर के जाने की बात इस प्रसग मे नही आती है जो इसमे कही गई है। इसलिए यह अर्द्धाली कदाचित् प्रक्षिप्त है।

मै० यहाँ पर त्रुटित है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी।

अर्थ—(१) जब चादा ने अपना मर्म कहा, तो लोरिक ने उठ कर चादा का (?)हाथ पकडा। (२) उसको अक मे पकड कर उसकी ग्रीवा मे उसने बाह दी, प्रेम [के इस व्यापार] मे लोरिक-नाथ शकित नही हो रहा था। (३) [पान की] आधी बीडी काटकर [चादा ने लोरिक के] मुख मे दी और आधी लोरिक [के मुख] से छीन ली। (४) कभी (?) लोरिक चादा के सिर पर अपना सिर वारता, कभी उसे खीच कर उसके मुख पर अपना मुख मारता, (५) कभी रोष करके चादा को पीठ देकर बैठ जाता, और कभी हसते हुए उसके केश तोडने लगता। (बाद की अर्द्धाली कदाचित् प्रक्षिप्त है)। (६) चित्त मे ․ ․․․․ ․․ उत्पन्न हुआ, और लोरिक को मदन अत्यधिक लगा। (७) अत्यधिक [रस का ?] रसिक लोरिक पुन (तदनतर) शैया मे रमण करने और चादा को सौभाग्य देने लगा।

(२१७)

पैठ भुजुगु राइ की बारी। फूल करी रसु लें(लेइ) फुलवारी।
डार डार चहुं दिस(सि) फिरिआवै। षूटै दाख बेलि फर रावै।
रवै नारिग उतग जभीरी। बिरसै नारिंग (?) दार्यो षीरी।
चदन कू(को)प नासिका लावै। बासु ल(ले ?)इ औ सीसि चरावै।
जही जही (जाही जूही) अवर सेवती। सबे फूर बिलस बनपा(प) ती।
राव की रापी बारी चाद भुजगहि दीन्ह।
रसु जु लीन्ह पियासे भुजग बिनु रस कीन्ह॥

सन्दर्भ—बी० ६६८-६७०।

मैं० यहा पत्र त्रुटित है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी। किन्तु मैं० पत्र १७५ के साथ जो चित्र इस समय है, वह कदाचित् इसी कडवक का है उसमे नायक-नायिका का सभोग चित्रित है।

अर्थ—(१) राय की बारी (राजा की बालिका रूपी बाटिका) मे [वह] भ्रमर प्रविष्ट हो गया, और वह पुष्प-वाटिका के पुष्पो और कलिकाओ का रस लेने लगा। (२) वह चारो दिशाओ मे एक-एक डाल पर फिरने, द्राक्षा वल्लरी का खडन करने और विल्व फल (कुचो) से रमण करने लगा। (३) वह नारगो और उत्तुग (उन्नत) जभीरियो [जैसे चादा के कुचो] से रमण करने और उसके नारगो (?), दाडिम-बीजो (दातो) तथा खीरनी (जिह्वा) से विलास करने लगा। (४) चदन की कोपलो (?) को वह नासिका से लगाता था और उसकी सुवास लेकर उसे सिर पर चढाता था। (५) वह जाही-जूही (?) और सेवती (?) आदि सभी फूलो (?) और वसस्पतियो (?) का विलास कर रहा था। (६) राजा की रख छोडी हुई उस वारी (बालिका-वाटिका) को चादा ने उस भ्रमर को दे दिया, (७) और उस प्यासे भ्रमर ने जो उसका रस लिया, तो उसे रस-हीन कर डाला।

(२१८)

खिन एक 'हाथ पाय रेंगि आए'। फुनि 'रे फेरि' दुहु 'हिय उर लाए'।
बहु 'सोहाग दइ' सुदरि' धरी। खरी अवटि जनु 'साचड' भरी।
अधर अधर 'सौं' कर 'कर'धरी। नाभी नाभि 'सो' 'तानी' रही।
'जागि(घि?)जोरि तस कइ लइ लाए'। 'जनु' गज मेमत 'वर कह आए'।
'काम सकति' धन(नि) अस कै गही'। फुनिए 'फूटिअम्रित नै(नइ)वही।

'धन सु राति जिहि सजन मिरावा' 'रइनि' छमासी 'होउ'।
'पच' भूत आतमा सिराने अस बिरसौ(सउ) सभ 'कोउ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १७६, वी० ६७१-६७३।

शीर्षक—मैं० मज़ामअत करदने लोरिक वा चादा।

पाठान्तर—(१) वी० यक। २ वी० बा(?)ह हाथ रग आई। ३ वी० रु भीरि (फेरि—फा०)। ४. वी० हिरै लाई। (२) १ वी० सुहागु दे। २ मैं० दोउ सिर। ३ वी० साचै। (३) १ मैं० मे नही है। २ वी० गहि। ३ वी० सौ। ४ वी० ताने (तानी—फा०)। (४) १ वी० चापि चूरि कै तस गै लाई (लाए—फा०) २ वी० जानौ। ३ वी० पुरखेहि आई (आए—फा०)। (५) १ मैं० रस सभ निसि अहे। मैं० बहुत अपुरुव ते भए। (६) १. मैं० चाद घरिहि सूरुज आवा। २ वी० रैनि। ३ मैं० होइ। (७) १ मैं० पाच। २ मैं० कोइ।

अर्थ—(१) एक क्षण के लिए [लोरिक के] हाथ [चादा के] पैरो तक रँग आए, तब उन्हे लौटा कर उसने [उसके] दोनो हृदय-उरो (उरोजो) से लगाया। (२) बहुत सुहाग देकर उसने सुदरी को पकडा, मानो खूब औटा कर उसे साचे मे भरा हो। (३) अधरो से अधरो और हाथो से उसने हाथो को पकडा, [उसकी] नाभि [स्त्री की] नाभि के साथ तानी हुई थी, (४) जाघो को जोड कर उसने इस प्रकार ले कर मिलाया कि मानो दो मदमत्त गज परस्पर बल [-प्रयोग] के लिए आए हुए हो। (५) काम-शक्ति भर उसने स्त्री को इस प्रकार से पकड रक्खा, तो अमृत की नदी फूटकर बह निकली। (६) वह रात्रि धन्य थी जिसने [दो] स्वजनो को मिलाया, ईश्वर करे यह रात छ मास की हो जाए। (७) [दोनो के] पचभूत और आत्मा शीतल हुए, इसी प्रकार ईश्वर करे सब विलास-लाभ करे।

(२१६)

'केलि' करत सभ 'रइनि' बिहानी। देखि 'सूर धनि' उठी डरानी।
'जउ' लहि चेरी 'उठइ' न पावा। 'तउ' लहि 'चादइ' सुरिजु लुकावा।
मोहि 'संक' आपुन नाही लोरा। 'मत' कछु 'होइ' बहुल डरु तोरा।
मत 'कोइ' चेरी 'देखन' 'पावा'। जाइ महर 'पह' बात 'जनावा'।
'जउ कोइ तोहि को देखइ' आई।
'हौ (हउ) फुनि मरौ (रउ)' 'तउहि' बिसु खाई।

'परम खलीती जउ कर साहस' सो 'तरि लागइ' पार।
माझ समुद 'होइ वेरी' थाकी तीर लाउ करतार॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १७७, वी० ६७४-६७६।

शीर्षक—मै० वक्त सुबह बिनहान (?) करदने चादा लोरिक रा दर जेर तख्त।

पाठान्तर—(१) १ वी० केरि। २ वी० रैनि। ३ वी० सुरिजु धन। (२) १ बी० जौ। २ बी० उठै। ३. वी० तौ। ४ बी० चादा। (३) १ वी० डरु। २ वी० तुह्य। ३ बी० होय। (४) १ वी० को। २. मै० देखइ। ३ बी० पावै। ४ वी० सौ। ५. वी० जनावै। (५) १ वी० जौ रु तुमहि कोउ देषै। २ मै० हउ फिरि नरउ (मरउ—ना०)। ३ वी० तवहि। (६) १ बी० पिरम खलताह जौ कर सैहिहस। २ वी० तिहि लागै। (७) १ बी० होय वेरी, मै० होइ।

अर्थ—(१) केलि करते हुए समस्त रजनी व्यतीत हो गई, तो सूर्य को [उदित होता] देखकर धन्या (स्त्री) अत्यधिक डरी हुई उठी। (२) जब तक चेरिया उठ न पाए, तब तक मैं चाद (चादा) सूर्य (लोरिक) को छिपा दूँ। (३) [उसने कहा,] "ऐ लोरिक, मुझे अपनी शका नही है, किन्तु तुम्हे कुछ न हो, इसका तुम्हारे लिए बहुत डर है। (४) ऐसा न हो कि कोई चेरी देख ले, और वह जा कर महर से यह वात वता दे। (५) यदि कोई तुम्हे आ कर देख लेगा, फिर (तो) मै तत्काल विष खाकर मर जाऊँगी। (६) परम स्खलित [नौका] भी यदि साहस करे तो वह तैर कर पार लग सकती है, (७) किन्तु यदि समुद्र के मध्य मे पहुँच कर [नावो का] वेडा भी थक जाए (साहस हार बैठे), तो उसे सृष्टिकर्त्ता ही तीर से लगा सकता है।"

(२२०)

'भोर चेरि पानी लइ' आई। मुखु 'धोवा अउ' सखी बुलाई।
'भेभर' मुखु निसि चाद न सोवा। चीरु फाटु 'कहवा लहि' गोवा।
'फिरी माग केस' 'उधसाने'। 'फूल झूरि हिरदै' 'कुबिलाने'।
'सखिन्ह' देखि 'रावन की(कइ)' रई। 'तउ रे चाद भरि आकुर' गई।
'भए उनिद लोयन' रतनारे। 'दुहु दिसि' 'खाए तबोल पियारे'।
'चोली' चीरु सवारहि(हि) सीस 'सिदूरहि(हिं)' माग।
भवर 'फूल पर बइठेउ' लाग 'दीख तेहि' आग॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १७८, बी० ६७७-६७९।

शीर्षक—मैं० आब आवरदने कनीजगान वरूए चादा शुस्तन (?) व आमदने सहेलियान।

पाठान्तर—(१) बी० उठि चेरी ले पानी। २. बी० धुवाय। (२) १ बी० भ्यभर। २ बी० कहुवा लै। (३) १ मैं० उधयाने। २. बी० फूर जोर हिरदी। ३ मैं० कुमिलाने। (४) १ बी० सषियन। २ मैं० रवा कैं। ३ बी० तो र चाद भरि आकुरि। (५) १ बी० भइन नी[द] लोइन। २ बी० चहु दिस। ३ बी० षाइ तवोर अडारे। (६) १ बी० चोरा। २ बी० सिदुरेहि। (७) १ बी० फूर पर बैठ्यौ। २ बी० दसौ नख।

अर्थ—(१) प्रभात मे चेरिया पानी ले आई, चादा ने मुख धोया और सखियो को बुलाया। (२) [सखियो ने कहा,] "ऐ चादा, तुम्हारा मुख भेभर (तमतमाया हुआ) है, क्या रात मे तुम सोई नही ? तुम्हारा चीर फट गया है, कहा तक तुम उसे छिपाओगी ? (३) [तुम्हारी] माग फिरी हुई है, [तुम्हारे] केश उद्ध्वस्त हो गए हैं, और [हार के] फूल सूख कर हृदय पर कुम्हला गए हैं।" (४) सखियो ने देखा कि वह रावण (रमण) के द्वारा रमण की हुई थी, तभी चाद अकुर (पुलक) से भरी हुई थी। (६) उसके उन्निद्र नेत्र लाल हो रहे [थे], [मानो] दोनो ओर के उन प्यारे [नेत्रो] ने तावूल खाया हो। (६) [जब] वे उसकी चोली और उसके चीर को ले कर सवारने लगी और उसके सिर की माग सिंदूरित करने लगी, चादा से उन्होने कहा, "फूल पर भौंरा बैठ चुका है, [और उसका] लाग (लगाव—चिह्न) [तुम्हारे] शरीर पर दिखाई पड रहा है।"

(२२१)

चाद 'सहेलिन सो' अस कहा। 'एकउ' चेरि न जागत रहा।
'रइनि' चौखडी 'चढि(ढी) बिरारी'। 'लइ' उदिरु खसि परी 'मझारी'।
ऊपरि परी 'तउहि मइ' जागा। नख 'थन' लाग चीरु फुनि भा(भा)गा।
'तउहि' हुते 'मोरि नीदि उड़ानी'। 'इहि परि' जागत 'रइनि' बिहानी।
हाथ 'पाउ मइ निरु' 'न सभारा'। फिरी माग 'सीस' अउ बारा।
'तेहि गुन' नैन रात मोर मुख 'भेभर' कुबिलान।
'अइसि' राति मोहि 'दूभरि' मदिर न कोऊ जान॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १७९, बी० ६८०-६८२।

शीर्षक—मै० जवाब दादने चादा बर सहेलियान रा अज वहान' ।

(२)।२ के अतिम दो शब्दो पर मै० मे चित्र का रग उभड आया है ।

पाठान्तर—(१) १ बी० सहेल्योह सौ । २ बी० येक । (२) १ बी० राति । २ बी० चरी बिलारी । ३ बी० ले । ४ बी० मजारी । (३) १. बी० तैहु मौ । २ बी० फुनि ('फुनि' आगे ही पुन आया है) । (४) १ बी० ते । २ बी० मोरी नीद गवानी । ३ मै० इत फुनि । ४ बी० रैनि । (५) १. बी० पाव मै सिरु । २ मै० नसभारा (न सभारा) । ३ बी० केस । (६) १ बी० तिहुते । २ बी० भ्यभर । (७) १ बी० अस । २ बी० दूभर ।

अर्थ—(१) चादा ने सहेलियो से ऐसा कहा, "एक भी सेविका जाग नही रही थी, (२) रात मे चौखडी पर बिल्ली चढी, और वह मार्जारी उदुर (चूहे) को ले कर गिर पडी । (३) जब वह ऊपर पडी (गिरी), तब मैं जागी, उसका नख [मेरे] स्तनो पर लगा, तदनतर चीर फट गया । (४) तभी से मेरी नीद उड गई और इसी प्रकार जागते-जागते रात बीत गई । (५) हाथ-पैर मैं निश्चित रूप से न सभाल पाई । सिर मे मेरी माग फिर गई और मेरे बाल फिर गए । (६) उसी कारण मेरे नेत्र रक्त वर्ण के हो रहे है, मेरा मुख भेभर (तमतमाया हुआ ?) और कुम्हलाया हुआ है । (७) रात मुझे ऐसी दूभर हुई, फिर भी मदिर (भवन) मे यह कोई नही जानता है ।"

(२२२)

जाइ बिरसपति महरि जुहारी । कइ जुहारु फुनि बात उभारी ।
'रइनि' डरानी चाद दुलारी । 'बिसवइ ऊपर' परी 'मझारी' ।
चीरु फाट मुखु गा 'कुबिलाई' । चाद 'कुमन होइ बहुत' लजाई ।
चेरी 'बिसवइ(इ)' भा अधियारा । जागत चाद 'भएउ भिनुसारा' ।
अन न रूच 'अउ भाव न' पानी । फूल घाम जस चाद सुखानी ।
'चलहु महरि कछु देखउ' 'अउ' कछु धरहु उतारि ।
'बिसई जस को' छरगी 'अैस (अइसि) चाद बि(बे)करार' ।।

सन्दर्भ—मै० १८०, बी० ६८३-६८६ ।

शीर्षक—मै० रफ्तने बिरस्पति बर महरि व कैफियत गिरिय उफतादने बाज नमूदन ।

पाठान्तर—(२) १ बी० रैनि । २ बी० विसइ उ परी । ३ बी० मजारी । (३) १ मै० कुमिलाई । २ मै० चितहि मह रही । (४) १ बी०

विसइ । २. बी० किया उजियारा । (५) १. बी० भाव नहि । (६) १ बी० अवहि महरि तुम्ह देपहु । २. बी० औ । (७) १ मैं० सोवत जइसे । २. मैं० असि भइ चादा नारि ।

बी० मे उपयुक्त के अतिरिक्त उसके पूर्व निम्नलिखित दोहा और है, जिससे उसकी चतुष्पदी-सख्या एक अधिक हो गई है .

चली महरि उठि उठि देवें चरी धौरहर जाई ।
मुष कुबिलान सूषि गौ चाव देषि तिहि आई ।।

यह सभवत ऊपर स्वीकृत दोहे के पाठान्तर के रूप मे हाशिए मे लिखा हुआ था, और प्रतिलिपि मे मूल मे सम्मिलित हो गया ।

अर्थ—(१) बृहस्पति ने जा कर महरी को जुहार की, और जुहार कर तदनतर बात उभाडी (उठाई) । (२) [उसने कहा,] "रात मे चादा दुलारी डर गई, [क्योकि] विश्राम करते मे ही [उसके] ऊपर बिल्ली गिरी । (३) [उसका] चीर फट गया और मुख कुम्हला गया, जिससे चादा कुमन होकर वहुत लज्जित होगई है । (४) अधेरा था और चेरिया विश्राम कर रही थी, [इसलिए अकेली] चादा को जागते-जागते सवेरा हो गया । (५) उसको अन्न नही रुच रहा है और न पानी भा रहा है और धूप मे फूल जिस प्रकार सूख जाता है, उसी प्रकार चादा सूख गई है । (६) ऐ महरी, चलो, कुछ देखो और कुछ द्रव्य उस पर उतार (वार) कर [दान-पुण्य के लिए] रख दो । (७) जैसे कोई विश्राम करते (सोते) मे छली गई हो, चादा इस प्रकार वेचैन है ।"

(२२३)

माता पिता 'लोकु' जनु 'आवा' । 'कनवडि' चाद न मुखु 'दरसावा' ।
'एक' आपुहिअस 'अकरकुलाएसि' । 'अउ तेहि' ऊपरि 'सुरिजु' लुकाएसि' ।
'चाद सुरिजु' घर धरा 'छपाई' । 'राहु गरह दुइ गरहइ' आई ।
लोरु 'चउखडी' दई सभारा । 'कउहु' दिवसु 'अथवइ' करतारा ।
'अइस कुलखना मूड कटाउब' । 'पापधि चोर परि' रूंखि 'टंगाउब' ।
'नियरि' मीचु होइ ढूकी रगत न रहा सुखान ।
बिनु जिय 'लोरिकु सेजि तराही' 'आपनि' कया न जान ।।

सन्दर्भ—मैं० १८१, बी० ५८७-६८६ ।

शीर्षक—मैं० आमदने मादर व पिदर जानदन (?) व दरख्वाव साख्तन चादा खुद रा ।

पाठान्तर—(१) १ बी० लोगु । २ बी० आवै । ३. बी० कनवडि । ४ बी० दरसावै । (२) १ बी० इक । २ बी० अकुरकु लायसि । ३ बी० औतिहि । ४ मै० सूरुज (सुरुज) । ५. बी० लुकायसि । (३) १ मै० चादा सूरिजु (सुरिजु) । २ बी० लुकाई । ३ बी० राहृ गरहृ दोय गरहे । (४) १ बी० चौखडी । २ बी० १ कवहि । २ बी० अथवै । (५) बी० अव को लहै तो महरु मरावै । २ बी० वाधि चोरु लै । ३ बी० टगावै । (६) १ बी० नेर । (७) १ बी० लोरु सेज तर । २ बी० आपन ।

अर्थ—(१) माता-पिता, लोक (आत्मीय ?) तथा जन आए तो कनावडी (लज्जित) चादा ने [अपना] मुख न दिखलाया । (२) [वे कहने लगे], "एक तो इसने अपने आप ही ऐसा कलक लगा रक्खा था [कि अपने विवाहित पति को यह छोड कर आई थी], उस पर इसने सूर्य (प्रेमी) को छिपाया !" (३) [जब] चादा ने सूर्य (लोरिक) को घर मे छिपा कर रक्खा था, दो राहु ग्रह (राजा के सेवक ?) उसे ग्रहण लगने के लिए आए । (४) लोरिक ने [यह देखकर] उस चौखडी मे दैव का स्मरण किया [और कहा,] "ऐ सृष्टि-कर्त्ता, कभी तो दिवस को अस्तमित कर । (५) मैं ऐसा कुलक्षण [हुआ] कि सिर कटाऊगा, पापर्द्धिक (वधिक—जीवघात करने वाले) और चोर की भाति अपने को वृक्ष पर टगवाऊगा ।" (६) मृत्यु [जब इस प्रकार] निकट आ पहुँची, [उसके शरीर मे] रक्त नही रह गया, वह ऐसा सूख गया । (७) विना जीव के लोरिक शैया के नीचे [छिपा हुआ] अपनी काया को नही जानता था ।

(२२४)

अथवा सरिजु चाद 'दिखरावा' । 'अम्रित छिरका' लोरु 'जियावा' ।
'आपनि' मीचु नैन 'मइ' देखी । मीचु 'आइ फी(फि)रि गई' बिसेषी ।
'हौ (हउ) जैजिया चाद कुबिलानी' । 'अत अवसान भया तेहि वानी ।
'एहि परि रइनि जउ' दई जियावइ । ताकहु मीचु न 'नियरे' 'आवइ' ।
'अधर चूबि भर दै (दइ) अकवारी' । चाद पाय 'परि' वाह पसारी ।
'सुनहु लोर' 'एक बिनती अब तुम्ह काह मखाहु' ।
'हउ तुम्हरइ जइसि' ब्याही 'तू मोर ब्याहू नाहु' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १८२, बी० ६६०-६६२ ।

शीर्षक—मै० विदाअ करदने लोरिक वा चादा ।

पाठान्तर—(१) १ बी० दषिरावा । २ मै० अमरित छिरिकि ।

३ बी० जगावा। (२) १. बी० आपनु। २ बी० मै। ३ बी० देपि घन मुवो। (३) १ मैं० सूर जिया अउ चादा रानी। २. बी० अति औसान पयौ नहि पानी। (४) १ बी० याह बरिया जे। २. बी० नीरी (नियरे—फा०)। ३ मैं० आवा। (५) १ मैं० काहे अस मन करहु मुरारी। २ बी० पर। (६) १ बी० अहो लोर यही न गौहन अव जिन काहु सकाहु। (७) १ बी० हो तुम्हरै जस। २ बी० तुम्ह मोरे व्याहे नाह।

अर्थ—(१) सूर्य अस्तमित हुआ और चाद दिखाई पडा, तो [चादा ने] अमृत छिडका और लोरिक को जीवित किया। (२) [उसने कहा,] "अपनी मृत्यु मैने नेत्रो से स्वय देखी, [मैने देखा कि] मृत्यु आकर और मुझ को पहचान कर चली गई। (३) और यदि मै जीवित [भी] हुआ तो चादा कुम्हलाई हुई है, [अपनी] उस वणिका मे मैं इतना अवसन्न हुआ! (४) इस रीति से रात मे यदि दैव ने जिला दिया है, तो मै देखूगा कि मृत्यु [फिर] निकट न आए।" (५) लोरिक के अधर चूव कर और भरी अकवारी देकर [तदनतर] बाहे फैला कर चादा लोरिक के पैरो मे पड़ी। (६) [उसने कहा,] "ऐ लोरिक, नुम [मेरी] एक विनती सुनो, अव तुम क्यो माख (ममता-मोह) कर रहे हो? (७) मैं अब तुम्हारी वैसी ही हू जैसी विवाहिता हो और तुम मेरे [जैसे] विवाहित स्वामी (पति) हो।"

(२२५)

बोला बीरु बाट 'दिखरावहु'। 'अउ' तुम्ह चाद बार 'लहि' आवहु।
उतरी चाद मदिर चलि आई। 'भूपर' सूरिजु 'गोहनि' लाई।
'छाडिसि' मदिर बेगि 'घरसारा'। पवरि पवरियहि जागि खखा [रा]'।
चलत 'पाय कर आरौ' पावा। कहा 'पवरियहि' तसकरु आवा।
चाद कहा 'मइ चेरि बुलाउब'। 'फूलन्ह कहु फुलवारि पठाउव'।
उघरी 'पवरि' बजर 'कइ' बीरु 'समदि गा भागि'।
चाद 'चढी चौखडी' 'पवरि' बजर 'होइ लागि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १८३, बी० ६९३-६९५।

शीर्षक—मै० फुरूद आमदने लोरिक अज कस्रे चादा व खबर याफ्तने दरवानान।

पाठान्तर—बी० मे कडवक के पूर्व और है . आपनु मरमु चाद जै कहा इनका महल लौर ईव रहा, पुन दूसरा चरण काट कर अन्य द्वारा सशोधित है

सुरजह वौहत सु अहा। किन्तु इस अर्द्धाली का प्रथम चरण २१६ १ है। (१) १ वी० दिषरावाहु। २ बी० औ। ३ बी० लैहि। (२) १ वी० भवरै। २ बी० गौहनि। (३) १ मैं० छाडि। २ वी० गौहनि। (३) १ मैं० छाडि। २ बी० पसारा। ३ बी० पौरि पैरिया जागि पघारा। (४) १ वी०पाव षभरारू। २ बी० पैरिहि। (५) १ वी० मै चेर पठायौ। २ बी० फूलाह कौ वरहलु बुलायो। (६) १ वी० पौरि। २ वी० की। ३ वी० सभरिगा भाग। (७) १ बी० चरी पड सतषणै। २ वी० बहुरि। ३ वी० होय लाग।

अर्थ—(१) [लोरिक] वीर बोला, "तुम मार्ग दिखाओ, और हे चादा, तुम [स्वय] द्वार तक आओ।" (२) चाद (चादा) उतर कर मदिर (भवन) [की सीमा] तक चली आई और भूमि पर सूर्य (लोरिक) को [अपने] साथ लाई। (३) [लोरिक ने] वह मदिर छोड दिया और वह तेजी से घर की ओर चला, तो पौरी पर पौरिए ने जाग कर खखारा। (४) [उसके] चलते (जाते) समय उसने [उसके] पैरो की आहट पाई, इसलिए पौरिए ने कहा, "चोर आया है !" (५) चादा ने कहा, 'मैं चेरियो को बुलाऊगी और फूलो के लिए उन्हे फुलवाडी मे भेजूगी।" (६) [इस बहाने से जव] वह वज्र की पौरी खुल गई, तो वीर [लोरिक] [चादा से] विदा लेकर भाग गया। (७) [तदनतर] चादा चौखडी पर चढ गई और पौरी [पुन] वज्र हो कर लग गई (बद हो गई)।

१४. मैनां-समाधान खण्ड

(२२६)

मैना 'पूछ' कहा निसि 'कीन्हेहु'। 'कवनि नारि भुव बरु गिय दीन्हेहु'।
रगत न देह 'हरदि जनु' लाई। 'अउ मसि' मुख 'सभ दीन्हि चढाई'।
'पियर' पात 'जस' लोरिकु डोलसि। 'मुरि मुरि' हससि निरगु भा बोलसि।
'हउ मनुसहि ओहट पहिचानउ'। 'नैन न लाव सूत जस' 'जानउ'।
'ढेल काजहि' सतु आपु गवावा। सत 'क' हीन 'जस तुम्ह घर' आवा'।
हसि 'लोरिकु' अस बोला 'राधा' राति 'कछाइउ।
'कउतिगु रइनि बिहानि तेहि देखत नैन न लाइउ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १८४, वी० ६९७-७०० (दो अतिरिक्त अर्द्धालियां होने के कारण चतुष्पदी-सख्या मे एक की वृद्धि हो गई है)।

शीर्षक—मै० पुरसीदने मैना वर लोरिक रा केह शब कुजा वूद ।

वी० मे नीचे के हाशिए मे अन्य हाथ के द्वारा लिखी हुई निम्नलिखित दो अर्द्धालिया और हैं—(तुल० क्रमश पॉचवी तथा दूसरी अर्द्धाली) :

ढील गात सम आप गुवाये सग हुतै जैसे तुम्ह घर आये ।
औस मुप सव लीन्ह छराई औस मुप दीस जु वराई ।

पाठान्तर—(१) १. बी० पूछि । २ बी० कीन्ही । ३. बी० कौन नारि तुम्ह भव (भुव—फा०) वरु दीन्हा । (२) १ बी० हरद जानौ । २ बी० औ रस । ३. बी० रस लीन्ह छिडाई । (३) १. वी० पीर (पियर—फा०) । २ वी० जैसे । ३ वी० मरि मरि (मुरि मुरि—फा०) । (४) १ वी० हौ मानस औ अते पिछानौ । २ मै० वात कहइ मइ देखेहि । ३ बी० जानौ । (५) १ वी० तेज काटि । २ बी० के । ३ वी० जैसे तुम्ह । (६) १ मै० लोर । २ वी० मैं राधा । ३ वी० कछाये । (७) १ वी० कौतिगु रैनि भान (विहान—फा०) लहु देष्या मैना नैन न लाये ।

अर्थ—(१) मैना [लोरिक से] पूछने लगी, "राते कहा की (गवाई) ? वल्कि, [कहो] किस नारी की भुजाए तुमने [अपने] गले मे दी ? (२) देह मे रक्त नही है, [मानो] हल्दी लगाई हुई है, और सम्पूर्ण मुख पर मसि (कालिमा) चढा दी गई है। (३) [ऐ लोरिक,] तुम पीले पत्ते के जैसे डोल (हिल) रहे हो, तथा मुड मुड कर हस रहे और निरग (नि स्नेह) होकर वोल रहे हो। (४) मैं मनुष्य को ओहट (दूर) से ही पहचान लेती हू, और नेत्रो से (के निकट) लाए हुए सूत के सदृश उसे मैं जान लेती हू । (५) तुमने ढेले (मिट्टी के शरीर) के लिए ही [अपना] सत गवा दिया [है], और जैसे तुम सत से हीन [हो कर] घर आए [हो] ।" (६) [उत्तर मे] हस कर लोरिक इस प्रकार वोला, "मैंने रात्रि मे राधा [की रास या स्वाग ?] कछाई थी । (७) उसी कौतुक मे रात वीत गई और उसे देखते हुए मैंने आखे न लगाई (मै सोया नही) ।"

(२२७)

चाद धौराहर चढि 'अस' चाहा । सुरिजु कौन मदिर 'दहु' आहा ।
जनम 'अस्थान' जाइ पगु धरा । 'बाचि एहि सत्रुहि दिन' भरा ।
मीन रासि 'जउ' करकेहि 'जाइहि' । सिघ परोसि 'नियर होइ आइहि' ।
'तुला रइनि' दिन 'दोउ सम आवहिं' । पथ वरावरि 'पइ रे' धावहि ।
'पाछे वरउ गगन चढि आवइ' । 'रइनि' चाद 'कस तहु रे पावहि'

वहु दिन होइ 'मेरावा' चाद गिनि देखी रासि ।
गाग लाघि 'कइ' लोरिक 'जउ हरदी लइ' जासि ॥

सन्दर्भ—मै० १८५, वी० ७०१-७०३ ।

शीर्षक—मै० मुअज़िमे (?) शिमुरदने लोरिक चादा वर कस्र खुद रफ्तन ।

पाठान्तर—(१) १ वी० दिनु । २ वी० धौ । (२) १ वी० थान । २. वी० पाच आठ सतराहनि । (३) १ वी० जौ । २ वी० जाई । ३ वी० नीरे होइ छाई । (४) १ वी० तुरा रैनि । २ वी० दुसमहि आवैहि । ३ वी० नित उठि । (५) १ वी० पाछै परै गवनु चरि धावै । २ वी० रैनि । ३. वी० थोरे पिउ पावै । (६) १ वी० मिरावा । (७) १ वी० कै । २ वी० हरदी पाटन ।

अर्थ—(१) चाद (चादा) ने धवलगृह [के ऊपरी खड] पर चढ कर ऐसा (इस अभिप्राय से) देखा कि सूर्य (सूरज और लोरिक) किस मदिर मे है । (२) [दोनो ने] जाकर जन्म के स्थान मे पैर रक्खा था और इस प्रकार शत्रुओ से वच कर दिन भर (पा) लिया था । (३) [चादा ने कहा,] "जव मीन राशि से सूर्य कर्क पर जाएगा, तव पडोसी सिह उसके निकट आ जाएगा । (४) तुला राशि मे रात और दिन दोनो समान होते है और दोनो, हो न हो, वरावर का भाग दौड कर तै करते हैं । (५) पीछे भले ही तुम (सूर्य और लोरिक) गगन मे चढकर आओ, रात मे चाद (चद्र ओर चादा) को तुम तव किस प्रकार पाओगे ?" (६) वहुत दिनो पर ही [पुन] मिलना होगा, यह वात राशियो की गणना कर चादा ने देख ली, (७) [और यह तव होगा] जव गगा को पार कर लोरिक [मुझे] लेकर हरदी [पाटन] जाएगा ।

(२२८)

'महरिइ महर पाई असि' चाहा । मदिरि पुरुखु इक 'आवति' आहा ।
चेरी चेर नाऊ 'अउ' वारी । 'तिह(न्ह)'सुनि 'पुर घर वात' सचारी ।
घरि घरि महरी 'कहि मिसु' करही । 'सुनि कइ अकरकु चितहि न' धरही ।
'गोवरा' बात 'कहनाभन' भई । 'अउ' कछु मैना पहि फुनि गई ।
फूल घाम 'जसि' रही सुखाई । विहसति मैना गई कुविलाई ।
'ता दिन कहा लोरिकहि रोवत मैना जाइ' ।
आगि लागि 'सुनि' 'बस्तर' 'जरतइ जाइ' वुझाइ ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १८६, बी० ७०४-७०६ ।

शीर्षक—मैं० ख़बर याफ्तने मादर व पिदरे चादा अज आमदने कसी वेगाना वर कस्र ।

पाठान्तर—(१) १ बी० महरि महर पै अस मुष । २ मैं० आवहि । (२) १ बी० औ । २ बी० तिव । ३ बी० परकन जाइ । (३) १ बी० घेमसि । २ बी० सुनिकै अकरकु मन महि । (४) १ बी० गोवर । २. बी० घनाहुन । ३ बी० कछु । (५) १ बी० जैसी । (६) १ बी० मारनि कहा सुर लै चादहि तू परहाउ । (७) १ बी० सो । २ बी० वस्तर तोरै । ३ बी० अव फुनि जरत ।

अर्थ—(१) महरी और महर ने ऐसी चाह (ख़बर) पाई कि मदिर (प्रासाद) मे एक पुरुष आता रहा था । (२) सेविकाओ-सेवको और नाइयो-वारियो ने सुनकर यह वात पुर (गोवर) के घर-घर मे सचारित कर दी । (३) घर-घर मे महरिया [इस समाचार की] चर्चा कर उसका मिस (चर्चा का वहाना ?) कर रही थी, और इस कलक [की बात] को सुन कर वे चित्त मे नही धारण कर रही थी । (४) पुन गोवर मे यह वाता-कथनी (चर्चा) हुई, और तदनतर यह कुछ मैना के पास भी पहुची । (५) जैसे कोई फूल धूप मे [पडने पर] सूख रहता है, [उसी प्रकार] विहसती हुई मैना [इस चर्चा को सुनकर] कुम्हला गई । (६) उसी दिन जाकर लोरिक से रोते हुए मैना ने कहा, (७) "[तेरे इस दुष्कृत्य को] सुनकर [जैसे मेरे] वस्त्रो मे आग लग गई [है] और वह [मेरे] जलने से ही [वह जैसे] बुझेगी ।"

(२२९)

'खोलिनि' मैनहि 'देखत' अहा । कहसि न 'किर' 'धिय केइ कछु' कहा ।
वरन रात सावर 'तोर' काहे । 'वरन स तोर रात होइ चाहे' ।
'मोहि कहु सुनी कछू तइ' वाता । 'लोर वीर बहुयरि कहु राता' ।
वारी उत्तरु देसि न मोही । 'केइ' कछु आइ कहा हइ तोही ।
जीभ काढि 'ताकरि हउ जारउ' । 'घरहि छडाइ तेहि देस निसारउ' ।
उरध 'काटि' 'हउ मरिहउ' कहसि न वेदन 'काहि' ।
'सुहर रूप तोर वहुयरि' 'विड' रे ढाकत आहि ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र १८७।१, बी० ७०७-७०९ ।

शीर्षक—मैं० पुर्सीदन खोलिन वर मैना रा अज़ तगैयुरे हाले ऊ ।

पाठान्तर—(१) १ बी० षौलनि। २ मैं० देखतहिं। ३. बी० कुर। ४ बी० घी के कुछु। (२) १ बी० तू। २ बी० करौ सरात होइ नहि जाहे (चाहे—फा०) (३) १ बी० मो कौं कहु जु हीये की। २ बी० सावर [बर]नु भयो तोहि राता (तुल० अर्द्धाली २)। (४) १ बी० कैं। (५) १ बी० ताकर हौं जारौं। २ बी० नाकु काटि जा देस निकारौं। (६) १ मैं० फाटि (काटि—ना०)। २ बी० हौं मरिहौं। ३ बी० काहु। (७) १ बी० ससि जु रूपु तोर भइ है (वहुयरि—फा०)। २ बी० बहु।

अर्थ—(१) खोलिन मैना को देख रही थी, [उसने कहा,] "ऐ बेटी, बता न कि किसी ने तुझे कुछ कहा है? (२) तेरा रक्त वर्ण क्यो सावला [हो रहा] है, तेरा वर्ण तो रक्त होना चाहिए! (३) मुझ से कह कि क्या तूने कुछ [यह] बात सुनी है कि लोरिक वीर, ऐ वधूटी, कही [अन्यत्र] अनुरक्त है। (४) ऐ बालिका, मुझे तू उत्तर नही दे रही है, तो क्या किसी ने आकर तुझे कुछ कहा है? (५) उसकी जिह्वा निकाल कर मै जला दूगी और घर छुडाकर उसे देश से निकलवा दूगी। (६) मै ऊर्ध्व (शिर) काट कर मर जाऊगी, [क्योकि] तू यह नही कह रही है कि तेरी वेदना क्या है। (७) ऐ वधूटी, तेरे सुघड रूप को [लगता है कि कोई] विट (दुष्ट, दुराचारी) ढाक रहा है।"

(२३०)

काह 'कहउ हउ खोलिनि' माई। 'हउ फुनि आहउ' धीय पराई।
धिय 'कै' जाति आहि सभ 'केरी'। 'हउ फुनि भई तेहि कइ चेरी'।
जानि 'बूझि कउ मोहि कस गोवहु'। होइ 'तुम्हार त[इ?]स करि रोवहु'।
'जाकरि कोई(ही) जरइ सो जानइ'। 'अनजरते' कस काह 'बखानइ'।
तुम्ह 'जानति मोसेउ' कर चोरी। लोरिकु 'रवइ पराई' गोरी।
'हउ जो' कहति तुम्ह दिन दिन लोरु रइनि कत जाइ।
'घरह दाख रस परिचा' चरि चरि 'आउ' पराइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६०, बी० ७१०-७१२। मैं० मे इस कडवक के सामने अब जो चित्र है वह लोरिक द्वारा की जाने वाली मैंना की मनुहार का है, जो आगे आती है। इसलिए मैं० यहाँ पर अस्त-व्यस्त लगती है।

शीर्षक—मैं० जवाबदादन मैंना बर खोलिन रा।

पाठान्तर—(१) १ बी० कहौं तुम्ह षौलनि। २ बी० हौं फुनि आहौं।

(२) १ वी० की । २ वी० केरै । ३ वी० फुनि आहौं तिहकै औभेरै । (३) १. वी० बूझि कै मुहि का गोवोहु । २. बी० तुम्हर तटस कह रोवोहु । (४) १ वी० जिहि कर जरै सोइ पै जानै । २ मैं० बिन जरते । ३ बी० वखानै । (५) १ बी० जानत मो सौ कर । २ मैं० बीरु रवइ किहुं । (६) १ वी० हौ जु । (७) १ मैं० घर न दाख रस पिउ रे (तुल० २४२ ७) । २ वी० आवै ।

अर्थ—(१) [मैना ने कहा,] "ऐ खोलन मा मैं क्या कहू ? मैं तो पराई कन्या हू । (२) समस्त [कन्याओ] की जाति [चेरी की][होती] है, फिर मैं तो उसकी सेविका हो चुकी हू । (३) जान-बूझकर तुम मुझसे क्यो गोपित कर रही हो ? वह तुम्हारा है, उसी [नाते] से तुम रो रही हो । (४) जिसकी कोही जलती है (जिसका कलेजा जलता है), वही जानता है, विना जलते हुए [होने से] कोई कैसे और क्या कहे ? (५) तुम जानती हो कि मुझसे चोरी करता है और लोरिक वीर अन्य की गोरी (स्त्री) के साथ रमण करता है । (६) तुम से इसलिए मैं कहती रहती हू कि प्रति दिन लोरिक रात मे कही जाता है, (७) और वह घर के द्राक्षा-रस का परित्याग कर पराए का [खेत] चर-चर कर आता है ।"

(२३१)

'अउ ही पोह मोरि' माटी हो ऊ । 'मोहि आगे जउ कह' 'कस' कोऊ ।
'हउ दोखी जउ' कछू न जानउ' । अनजानते कस काहि बखानउ ।
दई 'ठाउ' भल 'बार न पावउ' । जानि बूझि 'जउ' तोहि लुकावउ ।
सो कस 'आहि राडहि भडहाई' । सेज छाडि 'जो अपुनिइ' जाइ ।
घर 'कइ' 'सुदरि' 'कीन्हि' बिराई ।
'आपनी(नि) कीत्यो(तेउ)' आनि पराई ।
तोहि लागि चितु 'वाधेउ' 'जीउ' मोर तू आहि ।
'कहहि न कवन' भडिहाई देस 'निसारउ' ताहि ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १८७।२, वी० ७१३-७१५ ।

शीर्षक—मैं० मुनकिर शुदने खोलिन केह मन हेच न मी दानम ।

पाठान्तर—(१) वी० पोही पूतु मोरौ । २ वी० मुहि आगै जौ कहि । ३ मैं० कुछ । (२) १ वी० हौ दुपई (दोपी—फा०) जौ । २ वी० जानौ । (३) १ वी० ठाव । २ वी० कवहि न पाउ । ३ वी० जौ ।

(४) १ वी० राड अहि झौहाई। २ वी० तुहि वा पैहि। (५) १ वी० की। २ मैं० धीय। ३ बी० कीन्ह। ४ मैं० अपनी कीने। (६) १ बी० बाध्यै। २ वी० जीव। (७) १ वी० कहु सो कौन। २ बी० निकारौ।

अर्थ—(१) [मैंना ने कहा,] "इसी समय मेरी मिट्टी (मेरा शरीर) पोह (गोबर की छोत) हो जाए, यदि मेरे आगे कोई कहे कि यह कैसा है। (२) मै इसलिए दोषी [कही जा सकती] हू कि [इस विषय मे] कुछ जानती नही हू, किंतु बिना जाने किसी के बारे मे क्या वखानूं (कहू)? (३) दैव के स्थान पर [जाने के लिए?] मैं भला द्वार न पाऊ यदि जान-बूझकर तुझसे कुछ लुकाऊ (छिपाऊ)। (४) [किन्तु] किसी राड (विधवा या परित्यक्ता) से भडता [जैसी] यह कैसी वात है कि कोई अपनी शैया को छोड कर [अन्य की शैया पर] जाए? (५) घर की सुदरी को उसने [जैसे] अन्य की कर डाला है और दूसरे की स्त्री को ला कर उसने अपनी कर लिया है। (६) मैंने तेरे लिए (तुझ से लगा कर) ही अपने चित्त को वाध रक्खा है, तू ही मेरा जीव है। (७) तू कह न कि किसने वह भडता की है, मैं उसे देश से निकाल (निकलवा) दूगी।"

(२३२)

माइ 'मोरि' तुम्ह सासु न होहू। 'बोलिउ चितहि उठा जो' कोहू।
'जाकर नित उठि बार बोहारउ'। 'ताकर ओछ कहइ का पारउ'।
'कइ बियाह बारी हउ' आनी। 'चूल्हि न फूकि गइउ नहिं' पानी।
भवरु बासु 'केवरे कइ' राता। 'कवल कली' 'रोहि' पूछ न बाता।
'अम्रितु 'सरवरु आछत' भरा। सो सरवरु 'लइ अनतइ धरा'।
जाइ 'देहु मोहि खोलिनि' लोरिक 'कीन्ह(न्हि)' दुहेलि।
'सारसि परि ररि मरुऊ' 'पिउ बिनु रइनि' अकेलि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १८८।१, वी० ७१६-७१८।

शीर्षक—मैं० बाज गुफ्तने मैना वर खोलिन रा।

पाठान्तर—(१) १ वी० मोर। २ वी० बोल्यौ चिताह उठ्यौ जौ। (२) १ वी० जाकौ बालु उभर न पारै। २ बी० ताकौ वोछ वोल कर मारै। (३) १ बी० कै वियाहि बरी हौ। २ वी० चूल्ह न फूक्यौ गइ न। (४) १ बी० केवरै कि। २ बी० केवर करी। ३ मैं० फुनि। (५) १ मैं० अमिरित। २ वी० सरवरु अछतु, मैं० कुड जो आछत। ३. वी० अन पासेहि

ढरा (धरा—फा०)। (६) १ मैं० देखहु भाई पोलिनि, बी० देहु मोहि षोलनि। २ मैं० हइ सत्त। (७) १. बी० सारस जौ परि मरिहौ। २ बी० सग विनु रैंनि।

अर्थ—[मैंना ने उत्तर दिया,] "तुम मेरी मा हो, सास नही हो; [जो-कुछ] मैंने कहा है, वह इसलिए कि मेरे चित्त मे क्रोध उठा हुआ है। (२) जिसका मैं नित्य उठकर द्वार बुहारती (झाडती) हूँ, उसकी ओछी बात (निंदा की बात) क्या कह सकती हू ? (३) विवाह करके मैं तभी लाई गई थी जब मैं बालिका थी, [जब तक] न मैंने चूल्ही फूकी थी (रसोई करती थी) और न पानी के लिए गई थी (पानी भरती थी)। (४) किन्तु [अब] भौंरा (प्रिय) केवडे की सुवास पर अनुरक्त है, [इसलिए] वह कमल-कलिका को रोध (रोक) कर उससे बातें भी नही पूछता है। (५) जो [प्रीति का] अमृत-सरोवर भरा हुआ था, उस सरोवर को ले जा कर उसने अन्यत्र रख दिया है। (६) खोलिन, मुझे जाने दो, क्योकि लोरिक ने मुझे दु खित किया है। (७) [अब] मै सारसी की भाति रट लगाती (चिल्लाती) हुई प्रिय (पति) के बिना रात मे अकेली ही मर जाऊगी।"

(२३३)

'रोस' न जाइ होइ 'हरुवाई'। 'हरुई' बात जाइ 'गरुवाई'।
'हरुव बोल भार सहि' लीजा। 'हरुए कह' जिउ 'करुव' न कीजा।
'हरुव होइ बुधि केर' अयाना। 'हरुवै होय कैरु (?)' सयाना।
'हरुव सो फूकेहि' जाइ उडाई। 'पाउ न डोल जेहि चितहिं गरुवाई'।
'गरुई' होइ घर अपने 'रहहू'। 'उहि हरुवै' 'कै(कइ)' चित न करहू।
'उत्तिउ' जाति 'कुरवती' मैंना 'कीज न' कोहु।
'गाल्ह फारि कै(कइ)'जीभ 'उपारउ' पीउ(ऊ)लोरिक 'लोहु'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १८८।२, बी० ७१९-७२१।

शीर्षक—मैं० जवाव दादन खोलिन वर मैंना रा।

पाठान्तर—(१) १ बी० रोसि। २ बी० हरवाई। ३ बी० हरइ (हरुई—फा०)। ४ बी० गरवाई। (२) १ बी० हरुवो वोलु भारि सुनि कै। २ बी० हरुवैं को। ३ बी० करू। (३) १ बी० हरू जिय बुधि करे। २. मैं० हरुव न सेइय कहा। (४) १ बी० हरु जु फूकत। २ बी० आधी न डोलो जीह गरवाई। (५) १ बी० गरइ। २ मैं० रहू। ३ मैं० अस

हरुए। ४ मैं० कह। (६) १ वी० उत्तिम। २ मैं० गुन आगरि। ३ मैं० न कीजइ। (७) १ मैं० गाला फरि डुइ। २ वी० उपारौ। ३. मैं० आहु।

अर्थ—(१) [खोलिन ने कहा,] "रोष यदि नही जाता है तो हल्कापन होता है, और हल्की बात से गुरुता चली जाती है। (२) हल्के वोल का भार सहन कर लेना चाहिए और हल्के [बोल] के लिए जी को कट्ट नही करना चाहिए। (३) हल्कापन बुद्धि के अज्ञान से होता है, क्या हल्का [व्यक्ति] सज्ञान हो सकता है? (४) जो हल्का होता है, वह फूकने से ही उड जाता है और जिसके चित्त मे गुरुता होती है, वह डोलने (हिलने) नही पाता है। (५) गुर्वी होकर अपने घर मे [पडी] रहो, उस हल्के (हल्का कार्य करने वाले) की चिन्ता न करो। (६) तुम उत्तम जाति की हो और कुलवती हो, ऐ मैना, तुम क्रोध न करो। (७) [यदि लोरिक ऐसा कर रहा हैतो] मैं उसके गाल फाडकर उसकी जिह्वा खीच लूंगी, और उस लोरिक का लहू पिऊँगी।"

(२३४)

बारि बियाहि 'जु (जो) तर(रु)नि उदाटी'।
वेर बाधि 'औ(अउ) नाव उसाटी'।
गुन 'जो' तोरि 'धरि' नाउ 'चढाई'। 'तेहिं रे निगुनियहि को' 'पतियाई'।
'तेहि' सेती कसि होइ हियारी। लेजु काटि 'कइ कुवइ' उसारी।
'लावइ आगि सेज दिन' 'मोरी'। सूरिजु चाद रवइ निसि चोरी।
'जउहिं' 'सूरुज' चांद पहिं आवा। सरग 'तराइन महिं दिखरावा'।
'लाज भइउ तेहिं' सावरि 'जइसि' राति 'अधियारि'।
निलज चाद मुख 'कारे' 'फिरइ' 'राति उजियारि'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १८६, का०, वी० ७२२-७२४।

शीर्षक—मैं० : तकरीर करदने खोलिन बर मैना रा।
का० जवाब दादन मैना खोइलिन रा।

पाठान्तर—(१) १ मैं० जउ तइ हुत आनी, का० तरनि जउ राती। २ मैं० कइ दीन्हि अस्तानी। (२) १. वी० जु, मैं० मे नही है। २ मैं० धनि (धरि—ना०)। ३ वी० चरावैं। ३ मैं० तेहि निगुनिहि को कवनु, वी० तिह रगनेह (निगुनिहि—ना०) कोइ। ४ वी० पतिआवैं। (३) १ मैं०

ओहि, वी० तिहि। २ का० खट, वी० जिहि कुवा। (४) १ का० लावइ आगि सेज दिन, वी० लावै आगि सेज तनि। २. का० मोरी। ३. बी० रवै। (५) १ वी० जोवोहु। २ का० सूरुज सो। ३ वी० तरायन मोहि दिपावा। (६) १ का० हो गइउ तसि, वी० भयो तिहि। २. बी० जैस। ३ बी० अधियार। (७) १ मैं० कारे, बी० कारौ। २ का० भवइ, बी० फिरै। ३ वी० रैनि अधियार (पूर्ववर्ती चरण का तुक भी यही है)।

अर्थ—(१) [मैना ने कहा,] "बचपन मे ही ब्याह कर यदि किसी ने अपनी तरुणी स्त्री को अलग डाल दिया (?), बेडे से बाँधकर यदि किसी ने नौका को दूर कर दिया, (२) गुण (नाव की रस्सी) तोड कर यदि किसी ने किसी को पकड कर नाव पर चढाया, तो उस निर्गुणी की प्रतीति कौन करेगा ? (३) उससे हृदय का सबध कैसे हो जो रस्सी को काट कर [किसी को] कुए मे से उस्सारे (ऊपर उठाए) ? (४) वह मेरी शैया मे प्रतिदिन आग लगाता है, और चाद (चादा) से वह सूर्य (लोरिक) रात्रि मे चोरी-चोरी रमण करता है। (५) [क्योकि] वह सूर्य (लोरिक) चाद (चादा) के पास आता (जाता) है, तभी तो आकाश (धवलगृह) की तारिकाए (चादा की सेविकाएँ) मुख दिखाने लगी है। (६) उसी लज्जा से मैं ऐसी सावली हो गई हू, जैसी अधेरी रात होती है। (७) भगवान करे निर्लज्ज चादा के मुख पर कालिमा हो और मेरी उजाली रात पुन आए।"

(२३५)

निसि दूभर (रि) तहा गई बिहाई। दिनु भा लोरु पहूता आई।
मदिर चहू दिस रबि उजियारा। तउ सु(सो) मैना मुषु अधियारा।
आगि न चूल्हे धरा न पानी। लोरिक चरची रबिनु(?) सुखानी।
दरसनु न करै लोर सौ(सौ) मैना। श्रवन नहि सुनै बगत(ति) नहि बैना।
लोरिक चाहि नारि मुख जोवै। चीरु खाचि धन तिह रस(?)गोवै।
मरइ सनेह स मैना उठी प(पा)य सिरु झार।
रगत धार दुहु नैनाह रोयसि घालि डभा(फा)र॥

सन्दर्भ—वी० ७२५-७२७। यह कडवक मैं० मे नही है, किन्तु इस समय मैं० पत्र १९० पर जो चित्र है वह इसी का लगता है, इसलिए असभव नही कि यह कडवक उसमे से निकल गया हो। कडवक प्रसग मे आवश्यक लगता है, क्योकि इसके अभाव मे अगले कडवक का विषय आकस्मिक रूप से प्रस्तुत किया हुआ लगेगा।

अर्थ—(१) जब [मैना की] दूभर रात्रि वहाँ छोडकर चली गई (व्यतीत हो गई), दिन हुआ और लोर आ पहुँचा। (२) मदिर मे चारो ओर सूर्य का प्रकाश हो गया था किन्तु मैना के मुख पर तब भी अधेरा ही था। (३) उसने चूल्हे मे न आग जलाई थी और न पानी [भर कर] रक्खा था, लोरिक ने अनुमान कर लिया कि नलिनी (?) सूख गई है। (४) लोरिक के सम्मुख मैना देखती न थी, न कानो से कुछ सुनती थी और न वचन बोलती थी। (५) लोरिक नारी (मैना) का मुख [यह समझने के लिए] ध्यानपूर्वक देख रहा था [कि उसका रोष कहाँ तक वास्तविक है], और इसलिए वह [उसके मुख पर से] उसका चीर खीचता था, किन्तु स्त्री (मैना) रोष(?) के कारण उस (अपने मुख) को छिपाती रहती थी। (६) मैना के सबध मे उसे यह सन्देह हुआ कि वह मर जाएगी, पैर से सिर तक ऐसी ज्वाला [उसके शरीर मे] उठी, (७) उसके दोनो नेत्रो से रक्त की धारा बह चली, और वह डफार छोड कर रो पडी।

(२३६)

'कइ' गियानु मनि लोरिक 'गुना'। 'अवसिउ' मैना 'कछु हइ' सुना।
'तउ रे' बिरोधु 'मोहि' सेती कीन्हा। नारि अतरपटु अतरु दीन्हा।
'कर गहि कै धन(नि) पासि बईठा'।
रगत 'झरत' 'ताते औ(अउ)र न' दीठा।
आसु 'पोछि 'मुख' पानी धोवा। मोहि देखि 'तुम्ह' काहे रोवा।
निससति रहइ न पारइ सैना'। 'दिस्टि न करइ' 'बकति' 'नहि बैना'।
'कइ मन सोग सोगाइहु' 'कइ' कछु 'भएउ बिसाउ'।
रस महि बिरसु 'सचारइ' 'चितहि चढा कस भाउ' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १९१, बी० ७२८-७३०।

शीर्षक—मैं० दर खातिर गुजरानीदने लोरिक मैना शुनीदने अस्त।

पाठान्तर—(१) १ बी० कै। २. बी० गना। ३ बी० अैसै। ४ बी० कुछू न। (२) १ बी० तें। २ बी० मुझ। (३) १ मैं० बर कइ लोर पास धनि बइठा। २ बी० झार। ३ मैं० मुख रोवत। (४) १ बी० पूछ(पोछि—फा०)। २ मैं० मे नही है। ३ बी० तैं। (५) १ बी० निसिसत रहै न बारी मैना (पारइ सैना—फा०)। २ बी० श्रवन न सुनै (तुल० २३५.४)। ३ बी० बगत। (६) १. बी० कै मन सुरग सुकन्युहु। २ बी० कै। ३ बी० भयो बिपाऊ। (७) १ बी० सचारौहु। २ बी० चितेहि चरा कास भाऊ।

अर्थ—(१) लोरिक ने मन मे ज्ञान करके विचार किया, "मैना ने अवश्य ही कुछ सुना है। (२) तभी तो उसने मुझसे विरोध कर रक्खा है और उस नारी ने [मेरे और अपने वीच] अतर-पट का अतर दे रक्खा है।" (३) [यह सोच कर] लोरिक [स्त्री का] हाथ पकड कर उसके पास बैठ गया, किन्तु [उसके नेत्रो से] रक्त झड रहा था इसलिए उसे और कुछ न दीखा। (४) उसके आसू पोछ कर [लोरिक ने] उसका मुख पानी से धोया और बोला, "मुझे देखकर तू क्यो रो पडी ? (५) तू नि.श्वास ले रही है और कोई सकेत नही डाल (कर) रही है, तू [मेरी ओर] दृष्टि नही कर रही है और न कोई वचन वोल रही है। (६) तू या तो मन मे शोक से शोकायित हो गई है, अथवा तुझे कुछ विस्वाद हो गया है। (७) रस मे तू विरसता का सचार कर रही है, [इसलिए वता कि] तेरे चित्त मे कैसा भाव चढा हुआ है ?"

(२३७)

'तेहि लइ' भाउ 'चढावहि' लोरा। 'जेहिं' सेती मन 'लागा' तोरा।
तजि मारगु 'जो' कुमारगि जाई। सो कस मुख 'दरसावइ' आई।
सुद्ध सात 'जनु कछुव न जानइ(इ)'।
'मागति' पान तउ पानी 'आनइ(इ)'।
'जे' छद नौ खडि 'काहि न आवै(वइ)'।
ते लोरिक 'कहूवा(हुवा) अवरावै (वइ)'।
सेज छाडि 'तू' सरगेहि जासी। 'चाद रवसि' 'अउ' बोलसि 'भासी'।
'वारि भोरि मोहि डहकसि' जानसि 'कछुव' न जान।
'नारि कीन्हि तइ बाउरि' 'तेहि पथ बहुल' सयान ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६२, वी० ७३१-७३३।

शीर्षक—मैं० . कैफियत दादन मैना वर लोरिक रा बा गुस्स ।

पाठान्तर—(१) १ वी० तिह लैं। २ वी० चरावोहु। ३ वी० जिह। ४ मैं० लागेउ। (२) १ वी० जु। २ वी० दरसावें। (३) १ वी० जानौ कछू न जानौ। २. वी० भागै। ३ वी० आनौ। (४) १. वी० जै। २ मैं० काउ न आए। ३. मैं० तुम्ह कहवा पाए। (५) १ वी० तहु। २ मैं० चादहि रव। ३ मैं० औंर। ४. मैं० मे शब्द नही है। (६) १ मैं० भानु वोलि मोहि डहकसि। २ वी० कछु। (७) १ वी० वार कीन्ह तैं बावरि। २ वी० तुह्य (तुम्ह) पहि आहि।

अर्थ—(१) [मैना ने उत्तर दिया,] "ऐ लोरिक, उसको लेकर भाव चढा, जिससे तेरा मन लगा हुआ है। (२) जो मार्ग को छोड कर कुमार्ग पर जाता है, वह कैसे आ कर मुख दिखाता है ? (३) [ऊपर से] तू ऐसा शुद्ध (सीधा-सादा और शात है मानो कुछ जानता ही नही है, पान माँगती हू तो पानी लाता है। (४) जो छद्‌म नौ खडो मे किसी को नही आते हैं, ऐ लोरिक, तू उनका अभ्यास कहाँ पर कर लेता है ? (५) [मेरी] शैया को छोडकर तू आकाश (चादा के धवलगृह) मे कहाँ जाता है ? तू चाद (चादा) से रमण करता है और भासित कर (वना वना कर ?) बोलता है। (६) मुझ वालिका और भोली को तू डहक रहा (धोखा दे रहा) है और जानता (समझता) है कि मै कुछ भी नही जानती हू। (७) नारी को तूने वावली कर रक्खा है, और इस मार्ग मे तू वडा सयाना है।"

(२३८)

अस 'धनि' 'पुरुखहि' बेगि 'मरावा'। 'अनसभवइ अस उत्तरु पावा'।
ठाकुर 'कइ धिय बिरिछहि' लावा। 'बास घनइ लइ' मूड़ु कटावा।
सरग चादु धर लोरिकु 'आहा'। 'इन्ह बातइ दहु कहियइ काहा'।
सरग गए धर 'बहुरि न आवइ'। 'जियतइ' सरगेंहि जान न 'पावइ'।
'अउ जउ तुम हम सरग पठाउबि'। सरग गए 'फिर' बहुरि न 'आउबि'।
जीभ सकोरहु मैना 'रानी' 'होइ' बहुल पछिताउ।
'जइ मोहि' सरगि 'चलाव(उ)बि' 'तुम सो कहा मेराउ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १९३, बी० ७३४-७३६।

शीर्षक—मैं० जवाव तरसानीदने लोरिक बर मैना रा।

पाठान्तर—(१) १ बी० धन। २ बी० पुरखहि। ३ वी० मरावै। ४ वी० अनसभौ जिहि उतरु न आवै। (२) १ बी० की धी अकरकु। २ वी० अस अनसभये (तुल० अर्द्धाली २)। (३) १ वी० अहा। २ वी० यह र वात घन कहिए कहा। (४) १ वी० फिरे न आई। २ वी० जैतिहि। ३ वी० पाई। (५) १ बी० अैसे तुम्ह हौ सरगि पठावबि। २ वी० धर। ३. बी० आवबि। (६) २ मैं० मे नही है। १ वी० होय (७) १ वी० जौ हौं। २ मैं० चलावहु। ३ वी० तुम्ह सौ कहौ मिलाऊ।

अर्थ—(१) "ऐसी स्त्री", [लोरिक ने कहा,] "पुरुष (पति) को शीघ्र ही मृत करती है।" इस प्रकार का असभाव्य (जिसकी कल्पना नही की जा

सकती थी) उत्तर [मैंना ने] पाया। (२) [उसने कहा,] "एक ठाकुर (क्षत्रिय) की दुहिता ने एक वृक्ष लगाया, तो [उसकी] सघन वासना को लेकर उसने सिर कटाया ! (३) चाद (चादा) स्वर्ग (आकाश) मे है और लोरिक धरती पर है, [अत] इन [वेतुकी] बातो के सबध मे क्या कहा जाए ? (४) स्वर्ग जा कर कोई धरती पर लौटता नही है, और जीवित अवस्था मे कोई स्वर्ग जाने नही पाता है। (५) अब यदि तुम मुझे स्वर्ग भेजोगी, तो स्वर्ग जा कर मै पुनः न आऊँगा। (६) ऐ मैना, तुम [अपनी] जिह्वा सिकोडो (कम बोलो), [अन्यथा तुम्हे] वहुत पछतावा होगा। (७) यदि तुम मुझे स्वर्ग चलाओगी (भेजोगी), तो तुम से कहा [मेरा] मिलना [होगा] ?"

(२३९)

सुनि 'खरभरि खोलिनि तसि' धाई। 'जनु फुकरति बिहिलागनि' आई।
'लोरहि' अचगरु 'बकति' न आवा। अब 'हउ एहि(ही) भूखिइ' खावा।
केस गहे कर माथ 'ओनाएसि'। 'झूट(ठ) पचारि' 'दुहुं गालहि' लाएसि।
'जाकरि चेरी पियाव न पानी। ता करि धिय चेरी कै(कइ)' आनी।
'अउ तेहि ऊपरि' 'दिहसि' अगारा। दहि दहि 'कुइला' भई सो 'बारा'।
'आगि' लाइ घर 'अपने' लोर 'दहा दिसि धावहि'।
वेगि 'पइसि' जरि मैनां 'अम्रित' 'छिरकि' 'बुझावहि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १९४, वी० ७३७-७३९।

शीर्षक—मै० . व आमदने मादर लोरिक व आश्ती करदने मियाने लोरिक व मैना।

पाठान्तर—(१) १ वी० करहु षौलनि तस। २. वी० जानौ फिकरति विहिलागनि। (२) १ वी० लोरैहि। २. वी० वगत। ३ वी० हौ यहि पहि भूष्या। (३) १ वी० नवाईसि। २ मै० कूचि झालि। ३ वी० दौहु गालहु। (४) १ वी० जाकर चेर। २. मै० कह। (५) १ वी० औ तिहि। २ वी० वरमु। ३ मै० कोतला। ४. मै० नारा। (६) १. वी० अग। २ वी० आपन। ३ वी० दहा दिस धाउ। (७) १ वी० पैसि। २ मै० अमिरित। ३ मै० छिरकि छिरकि। ४ वी० बुझाउ।

अर्थ—(१) खलवली सुनकर खोलिन इस प्रकार दौड़ पड़ी जैसे फूत्कार करती हुई कोई विहिलाग्नि (?) आ जाए। (२) [यह देख कर] अचगर (अपराधी) लोरिक को वाक्य न आया, [क्योकि] उसने समझ लिया कि इस

भूखी [अग्नि ?] ने मुझे खा लिया। (३) खोलिन ने दोनो के केशो को हाथो से पकड़े हुए [दोनो के] मत्थे झुकाए और झूठ-मूठ डाट-डपट कर दोनो को [एक-दूसरे के] गालो से लगा दिया। (४) [उसने कहा,] "जिसकी चेरिया पानी नही पिलाती हैं, उसकी कन्या को तुम [अपनी] सेविका (पत्नी) बनाने को लाए, (५) और उस पर तुमने [इस प्रकार] अगारा दिया कि वह बाला जल-जल कर कोयला हो गई। (६) अपने घर मे आग लगा कर, ऐ लोरिक, तुम दसो दिशाओ मे दौड रहे हो! (७) तुम शीघ्र [घर मे] प्रविष्ट हो, क्योकि मैना जल रही है, और तुम उसको अमृत छिड़क कर बुझाओ।

(२४०)

'लोर' हरकि 'खोलिनि' घर आई। बीर नारि कठि लाइ मनाई।
'भुजा झेलि धनि सेज बइसारी'। पान 'बिरी मुख दीन्हि' सवारी।
रग बिनु पान खवावसि मोही। सो रग 'अबहु न देखउ' तोही।
रग बिनु 'बातन्ह भाउ बनावा'। तुम्ह लोरिक रगु 'अनतइ' लावा।
धर 'तोर आछइ' मैना 'पहा'। चितु मनु 'धावइ' चादा जहा।
'सवन न सुनइ नैन नहि देखइ' 'जउ न होइ मन हाथि'।
सेज न भाव रूच नहि कामिनि 'तिल न रहइ' सग साथि॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १९५, बी० ७४०-७४२।

शीर्षक—मै० आश्ती करदन लोरिक बा मैना अज़ गुफ्तार मादर।

पाठान्तर—(१) १ मै० लोरिक। २ बी० षौलनि। (२) १ बी० गहि अगुरी सेज बैसारी। २ बी० बीर मुप दीन्ह। (३) १ बी० घूत न देष्यौ। (४) १. बी० बीर भान औपावा (उपावा—फा०)। २ बी० अनतहि। (५) १ बी० तुर आछै। २ मै० जहा ('जहा' दूसरे चरण के तुक मे भी है)। ३ बी० धावै। (६) १ बी० श्रवन न सुनै नैन न देषै। २ बी० जो न होय जिउ हाथि। (७) १ बी० सो न रहै। मै० मे दोहे के दोनो चरणो के प्रथमार्द्ध परस्पर स्थानातरित है।

अर्थ—(१) लोरिक को [इस प्रकार] वर्जन कर खोलिन घर आई, तो वीर [लोरिक] ने स्त्री (मैना) को गले से लगा कर मनाया। (२) भुजाओ पर ले (उठा) कर [उसने] स्त्री को शैया पर बिठाया और [तदनतर] उसने सवार कर मैना के मुख मे पान की बीडी दी। (३) [मैना ने कहा,] "तुम विना रग (अनुराग) के पान खिला रहे हो, वह रग (अनुराग) अभी भी

मै तुममें नही देख रही हू । (४) विना रग (अनुराग) के ही तुम वातो से भाव (स्नेह) का अभिनय कर रहे हो और तुमने, ऐ लोरिक, रग (अनुराग) अन्यत्र लगा रक्खा है । (५) धड तुम्हारा [भले ही] मैना के पास है, किन्तु तुम्हारे चित्त और मन वहाँ दौड रहे है जहाँ चादा है । (६) कान सुनते नही है, नैन देखते नही हैं, यदि अपना मन हाथ मे नही होता है । (७) शैया भाती नही है और कामिनी रुचती नही है, [इसलिए] उसके सग-साथ मे [पुरुप] तिल भर भी नही रहता है ।"

(२४१)

मैना तोहि 'जसि' तिरी न 'आहइ' । तोहि छाड़ि चितु 'लाग न चाहइ' ।
मइ 'तोरे' रसि विरसु बिसारा । 'देखि निभावइ आवु' सहारा ।
मइ तू नारि चाद 'जसि' पाई । चाद जोति सबु गई 'हिराई' ।
'सवन [नि ?] सुनि अपजसु केइ लाए' । लागु न मैनां 'कहे पराए' ।
नैन देख तउ वात 'उभारी' । 'ढांकिय सुनि कइ उघरत बारी' ।
'तोरि चाहि' को 'आगरि' 'मैना' 'मोरे चित(चित्त)न समाइ' ।
'अंम्रितु चूरि जु (जो)' 'बिरसइ' सो 'फर टेटि' न खाइ ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६६।१, वी० ७४३-७४५ ।

शीर्षक—मैं० गुफ्तने लोरिक जमालियत व खूवी मैना ।

पाठान्तर—(१) १ वी० जस । २ बी० आही (आहइ—फा०)। ३ वी० लागै काही । (२) १ वी० तेरै । २ वी० देखहि भावहि अबु । (३)१ बी० जस । २ वी० रहाई । (४) १ वी० झगरु न मैंना अप[ज]सु लाये । २ मैं० कहन पराए, वी० कहे पराये । (५) १ वी० उभारै । २ वी० जौ उघरहि तौ ढाकैहि पारै । (६) १ वी० तोहि । २ वी० आगर । ३ वी० मे नही है । ४ वी० मेरै चितह कराय । (७) १ मैं० अमिरित कुड जेंहि । २ वी० जु विरसै । ३ वी० हर (फर—फा०) नीवु ।

अर्थ—(१)[लोरिक ने कहा,] "मैना, तेरी जैसी [कोई भी] स्त्री नही है, [जिससे] तुझको छोड कर [मेरा] चित्त लगना चाहे । (२) मैंने तेरे रस मे विरस [होना] विस्मृत कर दिया, और तुझे देख कर मुझे आम्र-सहकार भी नही भाता है । (३) मैंने तो तुझे ही चद्र जैसी स्त्री पाया है, और तुझे देख कर चद्र की समस्त ज्योति गुम हो गई है । (४) कानो से तू किसी के लगाए हुए अपयश को सुनकर अन्य के कथन पर, ऐ मैना, न लग । (५) नेत्र से देखे,

तो [कोई] बात उभाडे, [अन्यथा] ऐ बालिका, उघडती हुई बात को सुन कर ढक दे। (६) मेरे चित्त मे यह [बात] नही समा रही है कि तेरी अपेक्षा कोई बढ कर है, (७) और जो अमृत[फल] को तोड कर उसका विलास करता [होता] है, वह टेटी (करीर) का फल नही खाता है।"

(२४२)

'लोर चाद मोरु केर मह काहा'। 'जो केरइ सो आछत आहा'।
'सोरह करा जउ रे दिखरावइ'। 'चादा मोसिउ न सरभरि पावइ'।
लोरिक 'बिसरै(र)हु नारि गवारी'। 'फूर' न बीनि पराई बारी।
'फूर' केतुकी भवरु जो 'रावइ'। सो हरि काटै जीउ 'गवावइ'।
'हउ' जिय 'तोरे' लोर डराऊ। नीद न 'जानउ भुगुति' न खाऊ।
'तोरिइ' बहुलि मन 'सका' पर बेली कत 'जाहु'।
'घर न दाख रस पिउ रे' 'नाह सकोरहु खाहु'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १९६।२, बी० ७४६-७४८।

शीर्षक—मैं० गुपतन मैना वर लोरिक रा।

पाठान्तर—(१) १ बी० लोरिक चादा करिही कहा। २ बी० जो करिही सो आछौहु अहा। (२) १ बी० सोराह करा जो रि दिषरावै। २ बी० चाद कि सरभरि मो पैंहि पावै। (३) १ मैं० तोरे नारिंग बारी (नारि गवारी—ना०)। २. मैं० फूल। (४) १ मैं० बास। २ बी० जु रावै। ३. बी० गवावै। (५) १ बी० हौ। २ बी० तेरै। ३ बी० जानौ भुगति। (६) १ बी० तोर। २ बी० सकौ। ३ मैं० जाइ। (७) १ बी० घरह दाष रस पूरें (पिउ रे—फा०)। २ मैं० चरि चरि आउ पराइ (तुल० २३० ७)।

अर्थ—(१) [मैना ने कहा,] "ऐ लोर, चादा मेरी सापेक्षता मे क्या है ? और जो सापेक्षता मे होता है, [वास्तव मे] वही होता है। (२) यदि चादा अपनी सोलह कलाएँ भी दिखाए, [तो भी] वह मुझसे समानता नही पा सकती है। (३) ऐ लोरिक, तू उस गवार नारी (चादा) को विस्मृत कर दे, तू पराई वाटिका मे फूल न बिने (पर-स्त्री का अग-स्पर्श न करे)। (४) केतकी के फूल से यदि भौरा रमण करता है, तो वह काटो द्वारा हरा जा कर प्राण गवाता है। (५) मै तेरे जी [के विषय] मे, ऐ लोर, डरती रहती हूँ, और उसके कारण न नीद जानती हू और न भुक्ति (भोजन)

खाती हू । (६) तेरी (तेरे लिए) ही मेरे मन मे बहुत शका रहती है, तू पराई बेली के पास क्यो जाता है ? (७) तू घर का द्राक्षा-रस नही पीता है और, हे स्वामी, तू [दूसरो के द्वारा उच्छिष्ठ किए हुए] सकोरे खाता है !"

(२४३)

'बइठि' सात 'हसि लोरिक' कहा । गा 'सो' 'कोपु मैना चितु अहा' ।
'खर उपहर कइ' मदिरु 'सवारा' । 'कीत' रसोइ 'अगिनि परजारा' ।
'सहजि जेउ लोरिकु' अन्हवावा । अउ 'भल' भोजनु काढि जिवावा' ।
रग सुरग 'सेउ' 'लीन्हि' सोपारी । पान बीरी मुख 'दीन्हि' सवारी ।
हसत लोरु बाहरि नीसरा । चाद बात 'मैना' बीसरा ।
सोइ 'पुरुष' 'सो' 'तरिवर' सोइ लोरु 'सो बेर' ।
सोइ 'मिरिघु सो थरहरु सोइ अहेरिया सो अहेर' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १९७, बी० ७४९-७५१ ।

शीर्षक—मै० लहू दर खुशदिली लोरिक व मैना गोयद ।

पाठान्तर—(१) १ बी बैठि । २ बी० धन सौ अस । ३. बी० सु । ४ बी० कोहु रामा चित अहा । (२) बी० घरु उजारि कै । २ बी० सवारी । ३. बी० आनि । ४ बी० आगि पैजारी । (३) १ मै० सेज बिछाइ । २ बी० औ भवि । (४) १ बी० सौ । २ बी० दीन्हि । ३ बी० दीन्ह । (५) १ बी० मैनाही । (६) १ बी० पुरपु । २ बी० सोइ । ३. बी० तर वरु । ४ बी० वरवीर । (७) १ बी० मिरगु सोई पारधी सो घरु सोई अहीरु ।

अर्थ—(१) "तू शात [होकर] बैठ," हस कर लोरिक ने कहा, तो मैना के चित्त मे जो क्रोध था वह चला गया । (२) उसने खूब आडबर-युक्त करके [अपने] मदिर (भवन) को सवारा और अग्नि प्रज्वलित (जला) कर रसोई की । (३) सहज जैसे ही लोरिक को उसने नहलाया और भला भोजन निकाल कर उसे जिमाया । (४) सुरग रग (अनुराग) के साथ सुपारिया उसने ली और पान की बीडी सवार कर उसने [लोरिक के] मुख मे दी । (५) हसते हुए लोरिक बाहर निकला और चादा की वार्ता [के समक्ष] मैना को भूल गया । (६) [पुनः] वही पुरुष था, वही तरु वर था, वही लोरिक था और वही वेला थी, (७) वही मृग था, वही स्थल था, वही अहेरी था और वही आखेट था ।

१५ चांदा-मैनां-विवाद खण्ड

(२४४)

असाढ असाढी 'कइ' तिथि अही । 'दुज गिनि' देव जातरा कही ।
सोम बारु 'स' महतु 'गुनि' कहा । सो दिन 'आगे' आवतु अहा ।
होम जाप 'अगियारि करावहि' । 'परसि देव' कर जोरि 'मनावहि' ।
'जउ धरि' माथ देव पा 'लावइ' । 'सो' जसि चाद 'सुरिजु' बरु 'पावइ' ।
सोमनाथ 'कहु' पूजा 'लीजइ' । अखित फूल 'मार लइ' दीजइ ।
चली 'पिरथिमी नौ खड' 'देव' जात सुनि 'आइ' ।
चाद सुरिजु सुनि रहसी 'देउ मनाइसु' 'जाई(इ)' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १९८, बी० ७५२-७५४ ।

शीर्षक—म० . कैफियते चाद तरावत दरबुत खान गुफ्तन महत ।

पाठान्तर—(१) १ बी० की । २ बी० द्विजगनि । (२) १ मै० मे नही है । २. बी० गिनि । ३ बी० आगै । (३) १ बी० अगियार करावोहु । २ बी० पाइ लागि (तुल० चौथी अर्द्धाली) । ३ बी० मनावोहु (४) १. बी० जौधरि । २ बी० लावै । ३ बी० से । ४ मै० सूरिजु । ५ बी० पावै । (५) १ बी० कोहु । २ म० कीजइ । ३ बी० सिर पाती । (६) १ बी० सु नव षड पिरथमी । २ बी० हेव । ३ बी० आई । (७) १ बी० देव मनायौ । २ मै० मे नही है ।

अर्थ—(१) आपाढ की आषाढी की तिथि [आई हुई] थी, तो पडित ने गणना कर देव [-दर्शन की] यात्रा । (२) उसने सोमवार का महत्त्व समझ कर बताया, और वह दिन आगे आ रहा था । (३) [उसने कहा,] "[यदि कोई स्त्री] हवन, जप और अगियार (अग्नि-कर्म) कराए, देवता का स्पर्श कर उसे हाथ जोड कर मनाए (४) और यदि कोई माथा पकड कर उसे देवता के पैरो मे लगाए, तो वह, हे चादा, सूर्य [का सा सुन्दर] वर प्राप्त करे । (५) सोमनाथ की पूजा [की सामग्री] लीजिए और अक्षत फूल तथा माला ले कर उन्हे दीजिए ।" (६) नौ खड पृथ्वी चल पडी थी, और देव-यात्रा सुन कर आई [हुई] थी । (७) चादा ने जब सूर्य [को पाने] की [बात] सुनी, वह हर्षित हो गई कि वह भी [अपने सूर्य को प्राप्त करने के लिए] जा कर देवता को मनाती ।

(२४५)

'टाकिनि खतरिनि' बांभनि मिली ।
'बैस(सि)नि' 'धगरिनि' भाटिनिचली ।
'चउहानिनि फुनि पहिरि' पटोरा । 'गवन करत जनु समुद हिलोरा' ।
'कइ' सिगार 'श(स)तभिनि' नीसरी । 'कैथिनि डोडिनि अउ' गूजरी ।
'चमकति निकरी रूप' सुनारी । 'निकरी मालिनि अउ' कलवारी ।
'चली वेसवा अनवन' भाती । परजा 'पवनि सो' 'पातिहि' पाती ।
चला महर कर गोवरु देस परा सभ रोरु ।
सोमनाथ 'कह पूर्जाहि' 'सेदुर 'फूल' तबोरु ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १९९, बी० ७५५-७५७ ।

शीर्षक—मै० रवान शुदन औरतान खास व आम वराय परस्तीदन देव रा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० टाकनि खतरनि । २ मै० बैस । ३ बी० ढाकनि भाटनि । (२) १ बी० चौहाननि फुनि पहरि । २. बी० गमन करत जानी समद लेहारा । (३) १. बी कौ । २ बी० वस्तर । ३ बी० कैथनि डडनि औ । (४) १ बी० झमकति निसरी नैन । २ बी० निसरी मालनि औ । (५) १ बी० चली जु वेसा अन अन । २ बी० पौनि सु । ३. बी० पात्यौं । (७) १ बी० देव पूर्जैहि । २ बी० आखत फूर ।

अर्थ—(१) टाकिने, खतरिने और ब्राह्मणिए मिली (आईं), बैसिने, धगरिने, तथा भाटिनें चली । (२) पुन चौहानिनें, जो पटोर पहने हुए थी, इस प्रकार गमन कर रही थी जैसे समुद्र की हिल्लोलें हो । (३) शृगार करके सतभिनें निकली, कैथिनें, डोडिने और गूजरिए भी [निकली] । (४) रूप की चमकती हुई सुनारिने निकली तथा मालिने और कलालिनें भी निकली । (५) वेश्याएं अनहोनी भाति से चल पडी, [इसी प्रकार] प्रजाए और पावनिएं पक्तियो-पक्तियो मे [चली] । (६) महर का गोवर चल पडा, सारे देश मे रोर पड गया । (७) [लोग] सिन्दूर, फूल और ताम्बूल से सोमनाथ की पूजा कर रहे थे ।"

(२४६)

चांद सहेली 'सवड बोलाई' । 'सरग हुते जनु' 'आछरि' आई ।
'फिरि कउ चाद चउद्दसि' दीठी । 'जनु तरई' चहुं पासि बईठी ।

न्हाइ धोइ 'कइ' चीर 'फिराए'। अगर चदन 'घसि सीस भराए'।
सेदुर छिरकि भई रतनारी। मुख 'तबोरु' सभ 'जोबन वारी।
'इद्र' सवद पचतूर बजाए। गरह नखत 'सभ भेषन' आए।
'सोवन सुखासन बइठी' बहु गुन 'कीन्ह' 'सिंगार'।
चाद 'तराइन' सेती गवनी 'देउ' दुवार ॥

सन्दर्भ—पत्र २००, बी० ७५८-७६० ।

शीर्षक—मै० तलवीदने चादा सहेलियान रा व रवान करदन सुए वुतखान ।

पाठान्तर—(१) १ वी० सभै वुलाई। २ बी० सरगा हत्ये जानौ। ३ मै० अछरिन्ह। (२) १ वी० चाद चहू दिसि फिरि वै। २ वी० जानौ तिरियन (तरई—फा०)। (३) १. वी० कै। २ मै० फिरावा। ३ मै० लाइ सीस गुदावा (४) १ मै० तवोलु। २ मै० जोवन नारी। (५) १ वी० यद्र। २ मै० चलि कूकत। (६) १ वी० आयौ सोवन सुषासन चादा। २ मै० किएउ। ३ मै० मे नही है। (७) १ वी०[१] सहेल्यौहु। २ वी० देव।

अर्थ—(१) चाद ने सभी सहेलियो को वुलाया, [वे ऐसी सजी हुई आई] मानो स्वर्ग से अप्सराए आई हो। (२) चतुर्दशी का चाद [चादा के रूप मे] [मानो] पुन॰ दिखाई पडा हो, और वे मानो तारिकाए हो, इस प्रकार वे उसके चारो ओर वैठ गई। (३) न्हा-धो कर उन्होने चीर वदले और अगुरु तथा चदन घिस कर उन्होने सिर भराए। (४) सिन्दूर छिडक कर वे रतनारी हो गई, उन सभी यौवनवती नारियो के मुख मे ताम्बूल था। (५) इन्द्र शव्द (वाद्य) तथा पच-तूर्य वजाए गए, [उस वादन-मडली मे] समस्त ग्रह-नक्षत्र [छद्‌म] वेपो मे आए हुए थे। (६) [चादा] सोने के सुखासन पर वैठी, जिसका वहुतेरे गुणो से शृगार किया गया था, (७) और चाँदा तारागणो (सहेलियो) के साथ देव-द्वार को गई।

(२४७)

हाथ 'सेधउरा' सेदुर भरा। भीतरि मडप चाद 'पउ' धरा।
सखी साठि इक 'गोहनि' भई। नावति सीसु 'देउ' पहि गई।
'देउ' दिस्टि चादा मुखि लागी। वुधि बिसरी 'अउ' सिधि फुनि भागी।

देखत 'देउ गएउ मुरझाई'। चाद 'तराइन' सेउं चलि आई।
'कइ विधि मोह मोहि जिउ' दीन्हा। 'कइ हउ सरग मडप तेहि कीन्हां'।
मडप 'तराइनि' भरि गा 'चादइ किएउ' अजोरु।
होम जाप 'सभ' बिसरा 'कवनु' दिवसु 'यह' मोरु ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २०१, बी० ७६१-७६३।

शीर्षक—मै० रफ्तन चादा दरूने बुतखान व आशिक शुदने देवान दीदने चादा।

पाठान्तर—(१) १ बी० सिधौरा। २ बी० पाउ। (२) १ बी० गौहनि। २ बी० देव। (३) १ बी० देव। २ बी० औ। (४) १ बी० देव गयो मुरझाई। २ बी० तरायन स्यौ। (५) १ बी० कै विधि पूर मोहि वरु। २ बी० कै हौ सरगि मडप सौ लीन्हा। (६) १ बी० तरायन। २ बी० चादेहि कीन्ह। (७) १ बी० सब। २ बी० कौनु। ३ बी० अब।

अर्थ—(१) हाथ मे सिन्दूर-पूरित सिन्दूर-पात्र [लिया] तथा मडप (देव-मदिर) के भीतर चादा ने पैर रखा। (२) वह साठ-एक सखियो के साथ हुई और सिर नमित करती हुई देवता के पास गई। (३) देवता की दृष्टि चादा के मुख पर लगी, [तो उसकी] बुद्धि विस्मृति हो गई और तदनतर [उसकी] सिद्धि भाग गई। (४) उसको देखते ही देवता मूर्छित हो गया, [क्योकि उसने देखा कि] चाद (चादा) तारिकाओ (सहेलियो) के साथ आई हुई थी। (५) [उसने कहा,] "विधाता ने या तो मोह (ममता) करके मुझे जीव ही दिया था, अथवा [अब] उसने मुझे स्वर्ग-मडप मे कर दिया है! (६) मडप तारिकाओ (सहेलियो) से भर गया है और चाद (चादा) ने यहा प्रकाश किया है! (७) [लोगो को] हवन और जप-सब-कुछ भूल गया है, यह हमारा कौन-सा (कैसा) [भाग्य का] दिन है।"

(२४८)

सेदुर 'छिरका' अगरु 'चढावा'। 'नमसकार कइ देउ' मनावा।
'सोवन' आखत 'फूल कड' मारा। 'पाइ' लागि 'विनवइ' अस ना(वा?)रा।
'देउ' मुरिजु 'मागउ' तुम्ह पासा। सेव 'करउ' मन 'पूजइ' आसा।
चाद 'मुरिजु' वरु 'जेहि दिन पावउ'। 'देउ करस बहु घिरित भरावउ'।
'विनवइ चांदा पायन' परी। 'देउ' सूरिज विनु 'जियउ' न घरी।

'इक' चित कइ मोहि 'आपैहु(प)' 'दूसर' राध न जाइ।
देउ पूजि 'कइ चादा' 'बिनती ठाढि' कराइ ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २०२, बी० ७६४-७६६।

शीर्षक—मैं० : परस्तीदने चादा बुत रा व ख्वास्तने मुहब्बत वा लोरिक।

पाठान्तर—(१) १ मैं० छिरकि। २ बी० चरावा। ३ बी० पाइ लागि कर जोरि (तुल० दूसरी अर्द्धाली)। (२) १. बी० सौवन। २. बी० फूर कि। ३ मैं० पाय। ४ बी० विनवै। (३) १ बी० देव। २ बी० माग्यौं। ३ बी० करौं। ४ बी० पूजैं। (४) १ मैं० सूरिजु (सुरिजु)। २. बी० जिहि दिन पाऊ, मैं० जेहि पावउ। ३ बी० देव करस सभ घिरति भराऊ। (५) १ बी० विनवै चादा पायेहि। २ बी० देव। ३ बी० जिउ। (६) १ बी० यक। २ मैं० देइहउ। ३ मैं० विहफै (?)। (७) १ बी० कै विनती। २ बी० चादा ठाढ।

अर्थ—(१) [चादा ने] सिदूर छिडका, अगुरु चढाया तथा नमस्कार कर देवता को मनाया। (२) सोने के अक्षत थे, फूलो की माला थी। वह वाला [देवता के] पैरो मे लग कर इस प्रकार विनय करने लगी, (३) "हे देव, मैं तुमसे सूर्य (लोरिक) को माग रही हू, मैं तुम्हारी सेवा करूँगी यदि मेरी आशा पूरी होगी। (४) [मैं] चाद (चादा) जभी सूर्य (लोरिक) को वर [के रूप मे] प्राप्त करूगी, हे देव, मैं [तुम्हारे लिए] वहुतेरे कलश घृत से भराऊगी।" (५) चादा उसके पैरो मे पडकर विनती करने लगी, "हे देव, मैं सूर्य (लोरिक) के विना एक घडी न जीऊगी। (६) उसको मुझे एकचित्त करके दो [जिससे] वह दूसरे (मैना) के निकट न जाए।" (७) देवता की पूजा कर चादा [उससे] खडे-खडे [इस प्रकार] विनती कर रही थी।

(२४९)

'चढ़ी पालिकी' मैना रानी। 'सखी साठि सेउ' आइ तुलानी।
सोक सताप बिरह 'कइ' जारी। 'किसन' बरन मुख 'दीसा नारी'।
मर 'सेउ' अमर सीस अति रूखा। मुख 'कवलु कदरपु झरि' सूखा।
'बहुल' उदेग उचाट सताई। पूजा 'देउ चढाएसि' आई।
आखत फूल 'लीन्ह' कर काढी। 'देउ परातर उतरि भइ' ठाढ़ी।

'अहो देउ तेहि खाएहु' जो पर 'पुरुखहि राव'।
'अपनिइं सेज छाडि' निसि 'अनतइ' फिरि फिरि धाव ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २०३, बी० ७६७-७६९।

शीर्षक—मैं० आमदने मैना व मुनिदयान खुद दरे बुतख़ान व परस्तीदने देव रा।

पाठान्तर—(१) १ बी० सखी साठि सौ। २. बी० चरी पालिकी। (२) १ बी० की। २ मैं० किशन (किसन)। ३ बी० दीसै कारी। (३) १. बी० स्यौं। २ बी० कवरु कद्रपु झिरि। (४) १ बी० बहुत। २ बी० देव चरायसि। (५) १ बी० लीन्ह। २ बी० देव वरतर उतर। (६) १ बी० अहौ देव तिहि पयुहु। २ बी० पुरखेहि राव। (७) १ बी० अपना छारि सेज। २ बी० अनते।

अर्थ—(१) [इसी समय] मैना रानी [भी] पालकी चढी और साठ सखियो के साथ वह [भी] आ पहुँची। (२) वह शोक, सताप और विरह की जली हुई थी और कृष्ण वर्ण का उस नारी का मुख दीख पड़ा। (३) उसका अमर (जीव) [जैसे] मर [रहे शरीर] के साथ था, उसका सिर अत्यधिक रुक्ष था और उसका मुख-कमल कन्दर्प की ज्वाला से सूख गया था। (४) वहुत उद्वेग और उच्चाट से सन्तप्त हो कर उसने आकर देवता को पूजा चढाई। (५) अक्षत और पुष्प उसने हाथ मे निकाल लिए और वह देव [-मडप] के प्रान्तर मे उतर कर खडी हो गई। (६) उसने कहा, "अहो देवता, उसे तुम खा जाना जो पर-पुरुप से रमण करती है, (७) और जो रात मे अपनी शैया छोडकर वार-वार अन्यत्र दौडती है ?"

(२५०)

'हसि कइ चादइ' मैंनां वूझी। 'कइ ससुरे हुति आइहु झूझी'।
अति 'दूमनि' अउ सावरु वानू। सीस न 'बदनु' अधर न पानू।
'कइ' साई निसि सेज न 'आवइ'। तेहि सताप दुख 'रइनि' बिहावइ।
'कइ तोहि' नारि आहि बुधि थोरी। 'तेहि' औगुन पिउ 'लावइ' खोरी।
'कइ तुम्ह करहु' न अरप 'सिंगारू'। 'कइ सोहागु हिए हुत बारू'।
'तोरि जसि' तिरी न 'देखउ' कवनि खोरि सो 'लाव'।
'कइ' मुगाइ काहू 'सेउ' अपजसु 'आनि' 'चढाव' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २०४, बी० ७७०-७७२।

शीर्षक—मैं० पुरसीदने चादा बर मैना रा अज़ शिकस्तगी हाले ऊ।

पाठान्तर—(१) १. बी० हसि कै चादहि। २ बी० के सुसरें हुत आयेहि जूझी। (२) १. बी० दूमन। २ मैं० वेदनु (वदनु—ना०), बी० चदनु (वदनु—ना०)। (३) १ बी० कै। २ बी० आवौ। ३ मैं० रोइ। (४) १. बी० कै तुम्ह। २ बी० तिहि। ३ बी० लावै। (५) १ बी० कै तुम्ह करौ। २ बी० सिंगारा। ३ बी० गयो सुहागु हियो ही बारा। (६) १. बी० तुम्ह जस। २ बी० देष्यैं। ३ मैं० लाइ। (७) १ बी० के।.२. बी० स्यौं। ३ मैं० सोइ। ४ बी० चराव।

अर्थ—(१) हस कर चादा ने मैना से पूछा, "क्या तुम सासुर (ससुराल) से झगडा करके आई हो, (२) [और इसलिए] तुम अत्यधिक दुर्मन हो, तुम्हारा वर्ण सावला [हो रहा] है, सिर पर वदन (रोली) नही है और अधरो पर पान [का रग] नही है? (३) अथवा (क्या) यह है कि तुम्हारा स्वामी रात्रि मे शैया पर नही आता है, और उसी सताप के कारण दु ख मे रात व्यतीत होती है? (४) या, ऐ नारी, तुम्हे बुद्धि थोडी है, और उस अवगुण के कारण तुम्हारा पति तुम मे खोडि (त्रुटि) लगाता है? (५) या, तुम अल्प शृगार [भी] नही करती हो, और या तुम सौभाग्य को हृदय से दूर रखती हो? (६) तुम्हारी जैसी स्त्री मैं नही देखती हूँ, तब वह कौन-सी खोडि (त्रुटि) [तुममे] लगाता है? (७) अथवा, वह किसी से [तुम्हारे अनुचित सबध का] सन्देह करता है और उसका अपयश तुम्हे ला कर चढाता (लगाता) है?"

(२५१)

सुनहु न 'चादा' उतरु हमारा। 'घरु मुसिया निसि कै(कई) उजियारा'।
नाहुं लीन्ह मोहि परा खभारू। 'काकहु' अटवौ(उटवउ) 'अरप सिंगारू'।
हसि हसि बात 'कहइ बिगराई'। तिल इक 'नैन न देखि' लजाई।
बहु 'खखोट' तोहि 'तिरिया आवहि'। सती 'रूप' परपुरुखहिं 'रावहि'।
आपु छिनारि अउर कहु कहा। सो कस चादा 'ढाके' रहा।
गा सुहागु सुख निंद्रा चाद नाहु 'जउ' लीन्ह।
'सोग' सताप बिरह दुख सेज 'पूरि' मोहि दीन्ह॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २०५, शि०, बी० ७७३-७७५।

शीर्षक—मैं०: जवाव दादने मैना वर चादा रा।

शि० · जवाव दादने मैंना चांदा रा कैफियते इश्क लोरिक वा चांदा वाज नमूदन।

वी० · मैना चाद जुध। किंतु यह शीर्षक वाए हाशिए मे और प्रतिलिपि-कर्त्ता से व्यक्ति द्वारा दिया हुआ लगता है।

शि० मे अधिकाश पाठ अस्पष्ट है।

पाठान्तर—(१) १ मैं० चाद एक। २ मैं० नाह कीन्ह मोहि परा खभारा (तुल० दूसरा अर्द्धाली)। (२) १. वी० काकौहु। २ मैं० करिहउ। (३) १ वी० कहौ विषराई। २ वी० देष नैन न। (४) १ वी० घंघोट। २ मैं० दूषन आर्वाहि। ३. मैं० तीय। ४ वी० रावैंहि। (५) १ वी० ठाढे। (६) १ वी० जौ। (७) १. वी० सोक। २ वी० पूर।

अर्थ—(१) "ऐ चादा" [मैना ने कहा,] "मेरा उत्तर तू सुन न! तूने मेरा घर रात्रि मे प्रकाश करके मूसा (लूटा) है। (२) मेरा स्वामी तूने लिया तो मुझे खभार (उद्वेग) पड़ गया, [अत.] अब किसके लिए मैं अल्प श्रृगार [भी] करने का साहस करूगी? (३) तू हस हस कर और विकृत कर वाते कहती और तिल भर भी नेत्रो से देख कर लज्जित नही होती है। (४) ऐ स्त्री, तुझे खखोट वहुत आता है, तू सती का रूप वनाए हुए पर-पुरुष से रमण करती है। (५) अपने-आप तो तू छिनाल है, और दूसरे को [छिनाल] कहती है। किंतु, ऐ चादा, यह [तथ्य] ढाकने मे कैसे [ढका] रहेगा? (६) मेरा सौभाग्य, मेरा सुख, मेरी निद्रा चले गए, क्योकि तूने मेरे स्वामी को [मुझसे] छीन लिया, (७) और शोक, सताप तथा विरह का दु ख [तुम ने] मेरी गैया मे पूरित कर (भर कर) मुझे दे दिया।"

(२५२)

देखहु वागरि 'कीरु(केरि)' धिठाई'। 'आइ सो वूझति' वात सुगाई।
मइं 'तोहि को' का अचगरु कहा। 'अइस कहत को ऊतर' सहा।
'जसि आपुन' 'तसि अवरहि जानइ'।'जसि छिनारि तसि सूगि वखानइ'।
'पुरुख' छिनारि 'केर' को लेई। वात 'कहत अस ऊतर' देई।
'तइ का दीखि हउ वेसा' दारी। चित 'मुगाइ' मोहि दीन्ही गारी।

तू 'त्रिटारि' जग 'जूठि(ठ)नि' 'देस घेरि' 'लै(लइ)' जासि।
घर घर घालि 'विगोइसि' 'खोरि खोरि' चिललासि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २०६, बी० ७७६-७७८ ।

शीर्षक—मैं० जवाब दादने चादा मर मैंना रा ।

पाठातर—(१) १ मैं० करइ धुताई । २ बी० अैसे पूछत । (२) १. बी० तो कहु । २ बी० अस औहट को काकर । (३) १ बी० जस आपनु । ३ बी० तस और हि जानौ । ४. बी० जानु छिनारि कि सुरगि बषाना । (४) १ बी० पुरषु । २ मैं० कर । ३ बी० बात अनउतरु । (५) १ बी० ते कहि देषति बेसा । २ मैं० सुघाइ । (६) १ बी० छिनारि । २ मैं० कुच छुवतइ । ३ बी० देसि घोरि । ४ मैं० लइ लइ । (७) १ बी० विगोयसि । २ बी० घोरि घोरि ।

अर्थ—(१) [चादा ने कहा,] "इस वागड लडकी की धृष्टता देखो, यह [यहा] आकर सन्देह करती हुई [ऐसी] बाते पूछ रही है ! (२) मैने तुझे क्या अनुचित कहा है, और ऐसा कहते हुए किसने ऐसा उत्तर सहन किया है ? (३) तू जैसी अपने-आप है, वैसी ही औरो को भी जानती (समझती) है, जैसी छिनाल तू है, वैसी ही होने का सन्देह कर तू [अन्य को भी] कहती है । (४) उस छिनाल के पुरुष को कौन लेगा जो बात कहते ही ऐसा उत्तर देती है ? (५) ऐ वेश्या और दारी, तुझे मैं क्या ऐसी दिखी कि तूने चित्त मे [मेरे चरित्र] पर शका करके तूने मुझे गाली दी ? (६) तू विटारी है और जगत् की जूठन है, देश [भर] को तू घेर-घेर कर ले जाती है । (७) घर-घर को [इस निंदित व्यापार मे] डाल कर तूने विगोया (तिरस्कृत किया] है और गली-गली तू चिल्लाती [फिरती] है ।"

(२५३)

'आन होइ डरि कहु' मरि जाई । 'चाद न आछहु' 'मनहि' लजाई ।
'हाथन्हि' 'मोर बियाहा लीजिय' । अउ मोहि सेती 'ऊतरु' 'कीजिय' ।
'यह' 'फुनि' कहिय 'नाउ' मसवावी । 'जो पर पुरुख' न छाडइ पासी ।
आपु 'करावइ' मोहि डरु 'लावइ' । अवरु बिसेखे 'रावरि' 'धावइ' ।
यह उपखान 'कि' 'आछइ' गोवा । 'झूठइ नाए जस बिसहर' रोवा ।

पाटि 'पढी' 'हसि (हसि)' चादा चहू भुवन उजियारि ।
देस 'लोक सब जानइ' 'पितहि 'देवाय(इ)सि' गारि ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र २०७, भो० पत्र २० (नवीन), बी० ७७९-७८१ ।

भो० मे इस कडवक के नीचे तर्क 'वाद' दिया हुआ है, जो आगे आने वाले कडवक का है।

शीर्षक—मै० : जवाव दादने मैना बर चांदा रा।

भो० : मकाशफ गुफ्तन मैना बर चांदा रा व फ़ोहश गुफ़्तन इश्क वा लोरिक रा।

पाठान्तर—(१) १ बी० अन (आन—फा०) होई दर केहि। २ भो० चादहि आछरि, मै० चाद आछिय। ३ बी० मनह। (२) १. बी० हाथौहु। २ बी० मोरि बियाही लीजै। ३. भो० सरभरि। ४ बी० कीजै। (३) १ बी० याह। २ मै० सो। ३ भो० काहू, बी० मा। ४. बी० जौ पर पुरखु। (४) १ बी० करावै। २ बी० लावै। ३ भो० पर ओर, मै० रांवा। ४ बी० धावै। (५) १ मै० करि। २. बी० आछै। ३ भो० झूठइ पासन विसैभर, बी० झूठे ठाव बैसि भरि। (६) १ मै० बड़ी। २ बी० अस। (७) १ भो० लोक जग जानेसि, बी० देस नर जानै। २. मै० कुरहि। २. भो० देवावसि, मै० देवाइय।

अर्थ—(१) [मैना ने कहा,] "अन्य कोई हो तो डर कर कही मर जाए, किंतु ऐ चादा, तू मन मे लज्जित [भी] नही है। (२) [मेरे] हाथो से तू मेरा विवाहित ले रही है और मुझ से [ही] उत्तर कर रही है! (३) इस पर भी उसका नाम 'मसवासी' कहा जाए जो पर-पुरुष को, यदि वह पासी भी हो तो, नही छोडती है? (४) [जो कार्य] स्वत तू कराती है, मुझे [उसके लिए] डर लगाती (डराती) है, और अन्य को विसेखने (दूषण लगाने) के लिए तू स्वय दौडती रहती है। (५) यह उपाख्यान क्या छिपा हुआ है कि जैसे विपघर [जिसको काट खाता है उसके] नाम पर झूठ-मूठ ही रोता है। (६) ऐ चादा, तूने [ऐसी] पट्टी पढ़ रक्खी है कि चारो ओर भुवनो मे प्रसिद्ध है। (७) देश और लोक मे यह वात सभी-कोई जानता है कि तूने अपने पिता (कुल) को गाली दिलाई है।"

(२५४)

पाटि 'पढी' 'हउ' काहे नाही। पडित 'मुनिवर' सेव कराही।
वार वूढ 'नइ' पायन 'लागहिं'। 'पाप केत पुरसा कर' 'भा(भां)गहि।
तूं 'उभरी' वोलसि भडहाई। 'अउ' मोहिं सेती करसि वड़ाई।
सात छिनारि घालि 'तू करही'। काह करउ जउ 'लीते' मरही।
देवर जेठ 'भाइ सग' लेसी। 'ई(ई)ठ' मीत 'कुनवा' परदेसी।

तेलि भूज औ 'कोयरी' धोबी 'नाऊ' चेर ।
राध 'पास सभ' गाजसि 'काढइ' 'खोरि बिहेरि' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २०८।१, भो० पत्र २१ (नवीन), बी० ७८१-७८३ ।

शीर्षक—मैं० गुफ्तने चादा बर मैना रा व दुश्नाम दादन ।

भो० . इल्म व जमाल खुद नमूदन चादा व फोह्श गुफ्तन बर मैना रा ।

पाठान्तर—बी० मे (४) । २ निकला हुआ है, उसके स्थान पर (५) । १ 'लेसी' का पाठ 'लागी' करके ले लिया गया है, फिर (५) । २ तथा (६) । १ की एक अर्द्धाली बनाने के लिए (६) । १ का पाठ 'तेली घाची और कपरिया' कर दिया गया है, पुन (६)।१ किया गया है ' छीपा नाउ और सुनरिया ।

(१) १ मैं० बडी । २ बी० हो । ३ बी० मुनियर । (२) १ मैं० सव । २ बी० लागैंहि । ३ भो० पायन्ह देखिकर, बी० पाव कीन्ह बर सहसु । ४ बी० भागहि । (३) १ मैं० उभरैंल । २ बी० औ । (४) १ बी० त गाढी । २ मैं० लीन्हे । (५) १ भो० अउर सग, मैं० भाइ सव । २ मैं० ईंट । ३ भो० कुरुबा, मैं० करटा । (६) १ भो० कोयरी वारी । २ बी० बारी । (७) १ मैं० पापघि सव, बी० पा सभ । २ बी० जागसि । ३ मैं० काढहि, बी० गदह । ४ बी० घौर बरेर ।

अर्थ—(१) [चादा ने उत्तर दिया,] "मैं पट्टी-पढी क्यो न होऊ [जव कि] पडित और मुनिवर [आकाश के चद्र के रूप मे मेरी] सेवा करते है, (२) [जवकि मेरे उस रूप मे] बालक-वूढे सभी झुक कर पैरो लगते हैं, और [इससे] उनके कितने ही पूर्व-पुरुषो के पाप भग्न हो जाते हैं ? (३) तू उभडी (मर्यादा का उल्लघन करने वाली) है, भडता [की बाते] बोलती है, और मुझसे [अपनी] बडाई करती है ! (४) तू सात छिनालो को [अपनी तुलना मे] घेलुवा (नगण्य) करती है, मैं क्या करू जो तू [किसी को] लिए हुए मरती है ! (५) देवर हो, जेठ हो, या भाई हो, तू [उसको] साथ ले जाती है, [अथवा] वह सगा हो, इष्ट हो, मित्र हो, कुटुवी हो या परदेशी हो, (६) तेली हो, भूजा हो, कोयरी हो, धोवी हो, नाई हो चेर (सेवक) हो, राध (पडोस) या पास का हो, (७) तू सवको गजती है, और [फिर] तू उसे बिहेड (पीडित) कर तथा दोप लगा कर निकाल देती है ।"

(२५५)

तू 'चउगुन' बहु भेस 'फिरावसि'। 'गिनतकार' लेखे 'बौरावसि'।
'असितिरिया'फुनिसती'कहावै(वइ)'।'घराघरा'जगुफिरिफिरि'आवइ'।
निचलि न 'आछइ एकउ' धरी। धरत दसावन' ऊपरि परी।
'दुमनहु तोर हुत चादा आइहि'। कार'कीत'मुख सरगि'लुकाइहि'।
लीन किये मोर भतार छपाए। देखिउ गइउं दुवार दिवाए।
'तेहि' दिन कर 'तू सभरि' 'कहई पाछे हेरत' आइ।
देस 'मदिर' जगु 'जानइ' 'रहसति सुनहि लजाइ ।।

संदर्भ—मै० पत्र २०८।२, बी० ७८५-७८७।

शीर्षक—मै० गुफ्तने मैना चादा रा आ चे हिकायत बूद।

पाठान्तर—(१) १ बी० जोगिनि। २. बी० फिरायसि। ३ बी० गिनतर-कार। ४ बी० बौराइसी। (२) १ बी० अस् तरिया। २. मै० कहावा। ३. बी० घराह घरह। ४. बी० आवै। (३) १ बी० आछै येकै। २ बी० पिरति (परत—फा०) उसायक। (४) १. बी० दुमहि तिरहु चादा आई। २ बी० कीन्ह। ३. बी० फिराई। (५) १ यह अर्द्धाली बी० मे नही है। (६) १ बी० तिह। २ बी० ती जौहरु। ३ बी० पइ वाचिहीं। (७) १ बी० देसा। २ बी० जानैं। ३. बी० अपने हि मनह।

अर्थ—(१) [मैना ने कहा,] "तू [मुझसे] चौगुनी सख्या मे बहुतेरे वेप धारण करती रहती है, और [आकाश के चद्र के रूप मे] गिनतकार (ज्योतिषी) के लेखे (गणित) [के मिस] [लोगो को] वावला करती रहती है। (२) [विडवना यह है कि] इस प्रकार की स्त्री फिर भी सती कहलाती है जो जगत् मे घर-घर [चद्र के रूप मे वारह राशियो] मे फेरे (चक्कर) लगा जाती है। (३) तू एक घडी भी निश्चल नही रहती है और किसी के बिस्तर धरते ही उस पर जा पडती है। (४) दुर्मनस् होते हुए भी, ऐ चादा, यदि कोई तेरे पास आए तो [अपना] मुख काला कर तू उसको भी आकाश (धवलगृह) मे छिपा लेगी। (५) मेरे भर्त्तार को [अपने मे] लीन कर तुमने छिपा रक्खा, यह मैने तव देखा (जाना) जब मै गई और तेरे द्वार दिलाए (वद कराए) हुए देखे। (६) उस दिन की [वात] तू स्मरण करके कहो, [जिस दिन] तू उसे पीछे-पीछे ढूँढती हुई आई थी। (७) देश, घर और जगत् इसे जानता है, किन्तु तू इसे लज्जित होकर भी हर्षित होते हुए सुन रही है।

(२५६)

'हीनि' बिटारि 'हउ तोहि' 'पिउ' जोगू। अइसउ 'कहा कहि सभव' लोगू।
'जेहि रूपवतहि यह धनि मोहइ'। 'तेहि गिय' 'पाइ' 'निबांधा सोहइ'।
'सुनतहि' देह मोरि 'अगिराई'। देखत मरउ 'आव' 'बिगराई'।
गाइ 'चरावइ करइ' दुहावा। तेहि सेती मोहि 'अकरकु' लावा।
'जेहि' धौराहर मोर बसेरा। सीस टूट 'जइ ऊपर' हेरा।
राय कुवर 'नर नरवइ' 'मोहहिं' एक सिगार।
तोर भतारु चेर उरगावन 'आछइ पवरि' दुवार॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २०६।१, भो० पत्र २३ (नवीन), बी० ७८८-७९०।

शीर्षक—मैं० जवाव दादने चादा मर मैंना रा।

भो० वुजुर्गी व वलदी खुद नमूदन चादा व अहानत व हिमाकत लोरिक वाज़ नमूदन।

पाठान्तर—(१) १ वी० है। २ वी० हीं तुझ। ३ भो० पिय। ४ भो० कहा कहि सभवइ, वी० कहा कैमा · (अपाठ्य)। (२) १ वी० जिह रूपवतिह ·· · मोहै। २ वी० तिहकै। ३ मैं० नारि, भो० वाव। ४ बी० कि वाध्यौ सोहै। (३) १ वी० सुनताह, मैं० सुनतइ। २ वी० अकुराई। ३ मैं० आहि, वी० करौ। ४ बी० बुकराई (बिगराई—फा०)। (४) भो० मे अर्द्धाली के चरण परस्पर स्थानातरित है। १ वी० चरावै करै। २. मैं० अकरकु। (५) १ वी० जिह। २ वी० पर ज (सशोधन के कारण अपाठ्य है)। (६) १ वी० न रवै मुप मडन। २ मैं० मोहि मोहइ, वी० मो पति। (७) १ मैं० आछहि पवरि, वी० आछै पौरि।

अर्थ—(१) [चादा ने कहा,] 'मै हीना हूँ, विटा हूँ और तू ही प्रिय (पति) के योग्य है, ऐसा भी लोग क्या कह सकते है ? (२) जिस रूपवान को यह स्त्री मुग्ध करती है, उसी के गले मे पडा हुआ इसका निर्वध पाव शोभा देता है। (३) [इसका नाम] सुनते ही मेरी देह अगडाई लेने (टूटने) लगती है, और ऐसी विकृति आती है कि इसे देखते ही मैं मरने लगती हूँ। (४) जो गाए चराता और [उन्हे] दुहता है, उससे मुझे यह कलक लगा रही है। (५) जिस धवलगृह (प्रासाद) मे मेरा निवास है, उसके ऊपर यदि देखा जाए तो सिर टूट जाए। (६) राजा, कुमार, नर, नरपति—सभी [मुझ पर] एकमात्र [मेरे] शृगार (सौन्दर्य) के कारण मुग्ध होते हैं,

(७) जब कि तेरा पति [हमारा] दास है और [हमारी] पौरी के द्वार पर एक भृत्य के रूप मे रहता है !"

(२५७)

मोर 'पुरुख खाडइ जगु जानइ'। गन गध्रप 'सभ' रूप 'बखानइ'।
पडितु पढा 'खरा' सहदेऊ। चारि 'बेद जीति जाइ न' कोऊ।
'भीम बली' भोज 'कर' जोरा। राघौ 'बसिक' कूकू लोरा।
'गहनइ पथ जेइ' लीत उबारी। 'अस' न बोलु 'सुनु साथरि' दारी।
'मोर' पिउ सरग 'कइ अछरिहि रावइ'।
'तोहि जइसी' पहि 'पाउ न धुवावइ'।
'तुरै चढे रन' बाग न 'मोरइ' तू कस 'भुजसि' ताहि।
भाई भतारु 'तोर वि(बि)गरैता' 'जानउ' सेवक 'आहि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २०६।२, बी० ७६१-७६३।

शीर्षक—मै० जवाब दादन मैना बर चादा रा।

पाठान्तर—(१) १ बी० पुरषु खाडै जगु जानै। २ बी० मोहि। ३. बी० बपानै। (२) १ बी० खरी। २ बी० वाजनु न जानै। (३) १ बी० अब तौ करै। २ मै० के। ३ बी० बासिक। (४) १ बी० गहन लीत जिहि। २. बी० कस। ३ बी० तू साटनि। (५) १ बी० मोरो। २ बी० आछरि रावै। ३. बी० तुम्ह वैसी। ४. बी० पाय न धुलावैहि। (६) १ बी० तुरी चराह रिन। २. बी० मोरै। ३ बी० देखसि। (७) १ बी० बापु सबु कुनवा। २ बी० जानै। ३ बी० आह।

अर्थ—(१) [मैना ने कहा,] "मेरे पुरुष को खड्ग [चलाने] मे जगत् जानता है, और गण तथा गन्धर्व—सभी उसके रूप का बखान करते है। (२) वह ऐसा पढ़ा हुआ और पडित है कि वह खरा सहदेव है और चारो वेदो मे कोई उससे जीत कर जाता नही है। (३) वह भीम [जैसा] बली है और भोज की जोडी का है, वह कूकू लोर राघव-वशी (राघव की परपरा का) है। (४) जिसने तुझे ग्रहण (सकट) के मार्ग से उबार लिया, [उसके सबध मे] ऐसा न बोल, ऐ साथरी की दारी, सुन। (५) मेरा प्रिय स्वर्ग की अप्सरा से रमण करता है, तुझ जैसी से वह अपने पैर भी नही धुलाता है। (६) जब वह रण मे घोडे पर चढता है, तब वह [उसकी] लगाम नही मोड़ता है, तू उसे कैसे भुज (भोग) सकती है ? (७) तेरे ही भाई और भर्त्तार ऐसे विकृत है मानो सेवक हो।"

(२५८)

'जउ पइ' लोरु 'लीन्हहि मोहिं लावसि'।
'बहुरि न' मैना देखन पावसि।
आइ 'बइस' अब 'करसी' मोरी।
'सपनेहु' सेज 'नावइ (न आवइ)' तोरी।
ढाकी मूठि 'हुती' अंधियारी। अब यह बात 'करउ' उजियारी।
'काह करइ तू' पारसि मोरा। 'दइय' दीन्ह 'मइ पाइउ' लोरा।
'अब गरुई होइ' आछहु मैना। जीभ 'सकोरि राखु मुख' बैना।
जाहि जोग हुत रावनु 'तासो भएउ' मिराव।
मोतिहि हाग्र महि 'घुघुची' मैना 'होइ न' पाव॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २१०।१, वी० ७६४-७६६।

शीर्षक—मैं जवाब दादने चादा वर मैना रा।

पाठान्तर—(१) १ वी० जो पैं। २ वी० नेर मोरैं आवसि। ३ मैं० फिरि कइ। (२) १ वी० बैठ। २ मैं० कुरही। ३ वी सपनैं। ४ वी० न आवैं। (३) १ वी० हुत्यैं। २. वी० करैं। (४) १ वी० काह करौ तोहि। ३ वी० दई। ४ वी० मैं पाया। (५) १ वी० सुघ करहु जिउ। २ वी० सकौरौहु मुष कर। (६) १ वी० तासौ भयो। (७) १ वी० घूघचि। २ वी० सोभ न।

अर्थ—(१) [चादा ने कहा] "यदि हो न हो, तू लोरिक को लेकर मुझको [कलक] लगाती है, तो मैना, तू पुन [उसे] देखने न पाएगी। (२) वह अव आकर मेरी करसी मे बैठेगा और वह स्वप्न मे भी तेरी शैया पर नही आएगा। (३) यह [अव तक] ढकी हुई मुट्ठी [जैसी] अधकारपूर्ण थी, और अव इस वात को प्रकाशित कर रही हूँ। (४) तू मेरा क्या कर सकती है ? दैव ने दिया, तव मैंने लोरिक को पाया। (५) अव, ऐ मैना, तू गुर्वी (गभीर) होकर रह, तू जिह्वा को सिकोड कर वचनो को अपने मुह मे रख। (६) जिसके योग्य वह रमण था, उससे उसका मिलाप हो गया। (७) ऐ मैना, [अव] तू मुक्ताओ के हार मे घुघुची न होने पाएगी।"

(२५९)

'पुरुख सिंघ सो' 'सरभरि' 'पावइ'। मारि 'विधासि' खाइ 'घरि आवइ'।
मछ नियर 'चारा कह धावइ'। 'लइ कइ' भुगुति 'भडार न आवइ'।

'सूवा सेबरु' 'सेवा' जाई। 'खाइ बार हिरि' गएउ उडाई।
'गए कर बहुल होइ' पछितावा। सवरि 'नियर' 'अबरबा(व)हि' आवा।
दिवस चारि 'तुम्ह' 'देह भोगाएहि'। साई मोर 'कर' 'का घटि जाइहि'।
भवर 'कि' 'नियरे' 'वइसइ' 'पइ कलि माति' भुलाइ।
खिन एक 'लइ (लेइ)' बास 'रस' 'सुमिरि कवर सिर' जाइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २१०।२, भो० पत्र २४ (नवीन), बी० ७९७-७९९।

भो० मे इस कडवक के बाद तर्क है 'अरगि', जो आने वाले का है।

शीर्षक—मै० : जवाब दादन मैना बर चादा रा।

भो० : मरदानगी व दिलावरी लोरिक गुपतन मैना वखिजालत नमूदन वर चादा रा।

पाठान्तर—(१) १ मै० पुरुष सिंग सो, भो० पुरुष सिघ सइ, बी० पुरषु सिंध सौं। २ भो सरबरि। ३ बी० पावै। ४ बी० विध्वसि। ५. बी० घरी आवै। (२) १ मै० नियरा, बी० नीर (नियर—फा०)। २ बी० चारै कहु धावै। ३ बी० लोरिक। ४ मै० भंडार नावइ (न आवइ), बी० भडारै पावै। (३) १ भो० सोई सेवर, बी० सूवै सीवरु (सेवरु—फा०)। २ वी० सेयो। ३. बी० घाइ चाच पर। (४) १ मै० तउहु गए कर होउ, बी० करि करि मन मे वहुल। २ भो० सवरि, बी० नेर। ३ मै० अबरामहि, वी० अवराये। (५) १ भो० तुम। २ मै० देह भखाइहि, बी० लीन्ह भुगाई। ३. भो० का, वी० अव। ४ बी० नेर न जाई। (६) १ मै० जउ। २ मै० नियरे, वी० निवरै। ३ वी० बैसै। ४. बी० मैंकर माति, मै० बेलि माहि जो। (७) १ वी० वैठि, मै० मे नही है। २ वी० रस लेई। ३. भो० भवर कवल सिर, वी० सुमिरि कवर तनि, मै० उड़ि रे कवर सिर।

अर्थ—(१) [मैना ने कहा,] "पुरुष तो उस सिह से सादृश्य प्राप्त करता है जो [जन्तुओ को] मारकर, विध्वस कर और खाकर घर आ जाता है। (२) मत्स्य चारे के लिए निकट दौड पडता है, किन्तु भुक्ति (भोजन) ले कर [चुगाने वाले के] भाडार मे नही आता है। (३) सुए ने जाकर सेवल की सेवा की, किन्तु उसे खाने की वेला मे [जव उसे अपनी भूल ज्ञात हुई], वह लज्जित होकर उड गया। (४) [उसको सेवल के पास] जाने का वहुत पछतावा होता है, और आम्रराम का स्मरण कर वह पुन उसके निकट आ जाता है। (५) चार दिन तुमने देह का भोग करा ही लिया तो उससे मेरे स्वामी का क्या घट जाएगा? (६) भौंरा निकट वैठा कि, हो न हो,

कली पर मत्त होकर [अपने-आपको] भूल जाता है किन्तु वह क्षण भर [उसका] सुवास तथा रस लेकर [पुन] कमलिनी का स्मरण कर उसके सिर (निकट) जा पहुचता है।"

(२६०)

'अरगि ठाढि हुति' मैना नारी। दवरि चाद 'बरु' बाहु पसारी।
'इमिरेभा(भा)गि गए'अभरन ताने। हारु'टूटि(ट)''मोती' 'छिरियाने'।
एक 'बीर' नगुला 'दुइ' टूटे। 'भा(भा)गि सलोनी' मानिक फूटे।
'सकरी टूटि' दहा दिसि भई। 'चदन चौरी (चोलि)' फाटि गिय गई।
उखरी 'खूट' 'दुवउ' धर परी। मानिक हीर 'पदारथ' जरी।
अभरन टूटि बिथरि गा मैना गइ कुबिलाइ।
चाद बेगि 'कै' देव घर 'मिली' 'तराइनि' जाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २११, बी० ८००-८०२।

शीर्षक—मैं० दस्त दराजी करदने चादा बा मैना।

पाठान्तर—(१)१. बी० अरग ठाढि तुम्ह। २ बी० वरि। (२) १ बी० अम (इम—फा०) र (रे—फा०) भाग(भागि-फा०) कर (गए—फा०)। २ मैं० टूटि गा। ३ मैं० मोति। ४ बी० छिहराने। (३) १ बी० वार (वीर-ना०)। २ बी० दोइ। ३ बी० भाग सलूनी। (४) १ मैं० टूटि हार। (तुल० अर्द्धाली २)। २ मैं० चोली चीर। (५) १ बी० खुटी। २ बी० दोउ। ३ बी० पवारी। (७) १ मैं० मे नही हैं। २ मैं० मिली। ३ बी० तरायन।

अर्थ—(१) मैना नारी चुप होकर खडी थी, [तब तक] दौड कर चादा ने [मैना पर] बाहे फैलायी। (२) इस प्रकार ताने जाने पर [मैना के] आभरण भग्न हो गए, हार टूट गया और [उसके] मोती छिटक गए।(३)एक वीर (कर्णाभरण-विशेष) तथा दो नगुले टूट गए, सलोनी (बाहु का आभरण-विशेष) भग्न हो गई, और [उसके] माणिक्य फूट गए। (४) सकरी टूटकर दसो दिशाओ मे हो गई, और ग्रीवा पर चदनौटे की चोली फट गई। (५) खूटे (कर्णाभरण-विशेष) उखडी हुई दोनो धरा पर आ पडी, जो माणिक्य, हीरो और पदार्थो (बहुमूल्य पत्थरो) से जटित थी। (६) आभरण टूट कर छितरा गए, इसलिए मैना कुभला गई, (७) और चाद (चादा) शीघ्रता कर देवगृह मे तारिकाओ (सहेलियो) से जा मिली।

(२६१)

'जात' चाद नैना फरहरी। 'जानु सत्तुरुइ' 'सारसि' धरी।
'तानिसि' चीरु चाद भइ नागी। परा हाथु 'गइ फाटि पतागी'।
दस नख लाग 'दुहू' थनहारा। 'औ(अउ) देवरा भौ रगत मझारा'।
केस 'छूटि दहु दिसि छिरियाए'। 'जनु' नावित अभुवां 'किर आए'।
'सोरह' करा चाद 'कइ' गई। 'कुरां उतार' 'घरी' इक भई।
'घालि रूप बागरि कर' 'मैना गई सिरानि'।
बाधि चाद 'करि कायर' कीतेसि बइरि' परानि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २१२, बी० ८०३-८०५।

शीर्षक—मैं० मुहकम गिरफ्तने चादा बर मैना रा व मैना नीज।

पाठान्तर—१. बी० जातै। २ बी० जानौ सूरै। (सत्रुइ—फा०)। ३ बी० सोसिर। (२) १. बी० तानसि। २ बी० गै फाटी आगी (आगी—ना०)। (३) १ बी० दोउ। २ मैं० चाद राति भइ रगतहि धारा। (४) १. बी० जूर दहु दिस छरहराई। २ बी० जानौ। ३. बी० देहि आई। (५) १. बी० सोराह। २ बी० की। ३ बी० करा उतारि। ४ बी० करा। (६) १ बी० ठालि रूप वागर। २ बी० मैना गइ सिरानि। (७) १ बी० केरा कापर। २ बी० लीतसि वीर (कीतेसि वैरि—फा०)।

अर्थ—(१) चादा के जाते समय मैना फडफडा उठी, [और उसे ऐसा पकडा] मानो शत्रु (वहेलिए) को सारसी ने पकड लिया हो। (२) उसने चादा का चीर खीचा तो चादा नग्न हो गई, और [उसका] हाथ पडा तो [चादा का] पतागी (पत्रागिका—चोली) फट गई। (३) उसके दोनो भारी स्तनो मे [उसके हाथो के] दसो नख लगे और देवकुल (देवालय) रक्त के मध्य हो गया [इतना रक्त वहा]। (४) उसके केश छूट कर दसो दिशाओ मे छिटक गए, [और वह ऐसी लगने लगी] मानो निश्चय ही नावित (दरसनिया) अभुवाने (सिर के वाल खोलकर उसे चक्कर देने) के लिए आने पर लगता हो। (५) चादा की मोलहो कलाएँ चली गयी, एक घडी भर [इस प्रकार की] कुल-उतार (कुल मर्यादा को विकृत करने) की वह घटना हुई। (६) तव मैना शीतल होकर गई, जव उसने उस वक्रा (चादा) का रूप (शृगार) गिरा दिया। (७) उमने चादा को वाघ कर (?) उसे कादर वना दिया और [उस] वैरी को पलायित कर दिया।

(२६२)

'मलिन कामि दोऊ' परजरी। 'जनु' गैबर मैमत ऊभरी।
दोउ नारि 'अभिरी' सतमूला (समतूला)।
'नखहन(हिं)' आग 'जनु' 'टेसू' फूला।
'अतैनित (अतियत) करहि हाथा बाही।
थन उघार 'तस' 'ढाकहि' नाही।
मरन सनेह 'सो तिरियन्ह' रेसा।
चीर न 'सभरहि' मोकर केसा।
कहा न सुनैहि(नहिं) 'उतरु न(नहि) देही।
सीस नाग 'जनु' भौ(भ)वरी लेही।
'अते स बरबर' 'लागी' दुहु महि हार न कोइ।
'लोगन्ह' 'जात बिसरि गई' 'मडपि नटार(र)भ' होइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २१३, बी० ८०६-८०८।

शीर्षक—मै० दर ख़ून लाल शुदन चादा व मैना व हज़ीमत नमी खुरदन।

पाठान्तर—(१) १ बी० मदन कामि दूनौ। २ बी० जानौ। (२) १ बी० उभरी। २ मै० नख। ३ बी० दहु। ४ बी० टेस। (३) १ मै० ऊभी। २ बी० सिर। ३ बी० ढाकै। (४) १ बी० जु तिरिया। २ बी० समरेहि। (५) १ मै० मुह नहि बोल। २ बी० जानै। (६) १ मै० आए भर भर। २ बी० लागेहि। (७) १. बी० लोगाह। २ मै० जाप विसरिगा। ३ मै० तेहि लरव बिटारीन्ह (बिटारिन्ह—ना०)।

अर्थ—(१) वे दोनो [नारियाँ] मलिन काम से प्रज्वलित हो कर उठी और मानो [दो] मदमत श्रेष्ठ गज हो, [ऐसी] वे उभड (उठ) पडी। (२) दोनो नारिया समतुल्य रूप से भिड गई और नख-क्षत से [उनके] अग ऐसे हो रहे थे मानो किंशुक फूल उठे हो। (३) वे अत्यधिक हाथा-बाही कर रही थी, उनके स्तन खुले हुए थे और वे उन्हे ढाक भी नही रही थी। (४) उन स्त्रियो के सवध मे मरने का सन्देह [हो रहा] था, उनके चीर नही सभल रहे थे और उनके केश मुक्त हो रहे थे। (५) वे कहना नही सुन रही थी, न वे उत्तर दे रही थी और उनके सिर ऐसे नग्न थे मानो वे भवरी ले रही हो। (६) वे अत्यधिक वर्बरता पूर्वक लिपटी, किन्तु दोनो मे से कोई

हारी नही रही थी। (७) लोगो को यात्रा विस्मृत हो गई [क्योंकि], मडप मे [यह] नाट्यारभ (नाटकीय समारोह) हो रहा था।

(२६३)

'पउदर ओदरि' 'धरनि मिलि गएऊ'। देवहि जिय 'कर सासउ भएऊ'।
देवधर रगत 'भएउ तेहि लोही'। हिए लाग डर 'भुगुति न होई'।
'देउ कहइ' बिधि 'मइ न बोलाई'। 'इद्र' सभा की 'आछरि' आई।
अब जउ 'दुहु' महि 'एकउ मरई'। 'इद्र' राय 'मोहि जीउ कह घरई'।
चला देउ 'हत्या मोहि लागी'। छाडि मडपु 'निसरा डरि भागी'।
'सुर आए देखहि' सकइ न कोउ छडाइ।
मुनिवर जाप बिसरि गा बरभा सीस डोलाइ॥

सन्दर्भ—मै० . पत्र २१४, बी० ८०९-८११/१।

शीर्षक—मै० : गुरीख्तन बुत अज बुतखान : अज जग अशियान।

बी० मे दोहा नही है।

पाठान्तर—(१) १ बी० पौदर मडपु। २ बी० धरा मिलि गायो। ३ बी० कौं सासै भायो।(२) १ बी० भयो सब लोहू। २ बी० वगत न मोहू।(३) १ बी० मनाह कहै। २ बी० मैं न बुलाई। ३ बी० यद्र। ४ मै० अछरिन्ह। (४) १ बी० इह। २ बी० एकौ मरै। ३ बी० यदु। ४ बी० जिय मोकोहु धरैं। (५) १ बी० नहि तिय मो लागैं। २ बी० निसिरा डरु भागैं।(६)१ मै० मे इस चरणार्द्ध मे कोई शब्द छूटा लगता है।

अर्थ—(१)[उस झगडे के परिणाम-स्वरूप] मदिर का पौदर टूट-फूट कर [जब] धरती मे मिल गया, तब [उसके] देवता को अपने जीव (प्राणो) का सशय हुआ। (२) देव-गृह उनके लहू से रक्त हो गया था, और [देवता को] हृदय मे डर लग रहा था, इसलिए [चढाया हुआ] भोजन उससे नही किया जा रहा था। (३) देवता कह रहा था, "हे विधाता, मैंने इन्हे नही बुलाया था, इन्द्रसभा की ये अप्सराएँ [स्वतः] आई। (४) यदि अब इनमे से एक भी मर जाएगी तो इन्द्रराज मुझे मेरे प्राणो के लिए पकडेगा।" (५) [इसके अनतर] यह सोच कर कि उसे हत्या लग जाएगी, [मदिर का] देवता चल पडा और डर के मारे मडप को छोड़कर भाग निकला। (६) देवता आ कर [उन्हे झगड़ते] देख रहे थे, किन्तु उन्हे कोई भी छुडा नही सक रहा था। (७) मुनिवरो को जप करना भूल गया [था] और ब्रह्मा सिर हिला रहे थे।

(२६४)

कवरि 'तराइनि' सूरिजु आवा । देसु 'लोकु' मिलि आगे धावा ।
जन पठए 'हुत' बेगि 'बुलावहु' । करम 'हमार सहिइ' चलि 'आवहु' ।
चादा 'मैनहि असि कइ' गही । अब लहि 'असि' न 'काहू' 'सेउ' भई ।
'सुनहि' न बोलु 'न करहिं' 'मिरावा' । तस न कोउ 'जो आइ' छुडावा।
'जउ इन्ह' महिं 'एकउ' मरि 'जाई' । हत्तिया 'लागी' देस बुराई ।
कवरि 'तराइनि' सूरिजु 'दुहु' 'तुम्ह' 'पइसि छुडावहु' ।
लागि जाइगी हत्तिया उजरत देसु 'बसावहु' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २१५, शि०, बी० ८११।१२-८१४ ।

शीर्षक—मैं० ' आमदने लोरिक नजदीक बुतखान व मअलूम करदन खल्क कैफियते जग । शि० अपाठ्य है ।

पाठान्तर—(१) १ बी० तरायनि । २ बी० लोगु । (२) १ मैं० सो । २ शि० बुलावउ, बी० बुलाये । ३ बी० हरसही । ४ शि० आवउ, बी० आये । (३) १ मैं० मैं ना कइ असि, बी० मैं न होइ कर । २ मैं० अईसि, बी० अस । ३ मैं० काहू (काहु) । ४ बी० स्यौ । (४) १ मैं० सुनहि । २ मैं० को करहि, बी० न करैहि । ३ मैं० मनावा । ४ शि० जो इन्हा, बी० जौ पैसि । (५) १ मैं० जउ रे दुहू, बी० अब इन्ह । २ मैं० एक बी० येको । ३. मैं० नाई । ४ बी० लागै, शि० लागहि । (६) १ बी० तरायनि । २ बी० दहु । ३ बी० वा, मैं० मे नही है । ४ बी० पैसि छुडाउ, शि० अस्पष्ट है । (७) १ शि० वस, बी० बसाउ ।

अर्थ—(१) [मदिर के देवता ने पुकारा,] "ऐ कमलिनियो (सुदरियो) और तारिकाओ (दासियो-सखियो) तथा सूर्य (लोरिक), आ जाओ, देश तथा लोक मिल कर आगे दौड पडो । (२) जो जन भेजे हुए हैं, उन्हे शीघ्र बुलाओ, यह हमारा कर्म (भाग्य) होगा कि सभी चले आएँ । (३) चादा और मैना ने [एक-दूसरे को] इस प्रकार पकड रक्खा है कि ऐसी [लडाई] अब तक किसी से नही हुई है । (४) वे [किसी की] बातें नही सुन रही है, इसलिए कौन उनमे मेल कराए ? ऐसा कोई नही है जो आकर उन्हे छुडा सके । (५) यदि इन [दोनो] मे से एक भी मर जाएगी, तो मुझे हत्या लगेगी और देश मे बुराई (निन्दा) होगी । (६) ऐ कमलिनियो (सुदरियो), तारिकाओ (सहेलियो-दासियो), और सूर्य (लोरिक), तुम प्रविष्ट होकर

दोनो को [एक-दूसरे से] छुडाओ। (७) [अन्यथा] हमे हत्या लग जाएगी, तुम उजड़ते हुए देश को बसा लो !"

(२६५)

'मेरई (ई) सूधि कइ' 'दोऊ' नारी। 'भेभर' भोरी जोबन बारी।
'कइ' 'खडवानी' 'दोउव' 'पियाई'। 'कोह परजरती' छिरकि बुझाई।
वासि 'कपूरे' पान 'खियाई'। 'एक' खंड छाप आनि 'पहिराई'।
'यह गियानु' तुम्ह चांद न 'बूझउ'। मैना 'सहु को झूझ' न 'झूझउ'।
'ओछि' वात सुनु चाद 'न कीजिय'। ऊतर 'दइ अनु' 'ऊतर' 'लीजिय'।
'सिराजुद्दीन' सेउ 'कवि' छद 'दाउद' कहे सवारि।
'मेरई सूधि कइ' दोऊ नारी 'लाइ' धरी अकवारि ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २१६, भो० पत्र २५ (नवीन), बी० ८१५-८१७।

शीर्षक—मै० आश्ती करदने लोरिक मियाने चाद व मैना।

भो० . रिहा करदन अमीर मसऊद व जग व सामान दादन मैना रा व मनअ करदन चादा रा। [यह शीर्षक सर्वथा अशुद्ध है और (१) तथा (७) के पाठ-भ्रम से सवद्ध है।]

पाठान्तर—(१) १ भो० वी० मीर मसऊद कि (मसूद की-बी०)। २ वी० दून्यौ। ३ वी० भ्यंभर। (२) १ वी० कै। मै० खडवानि (खंडवानी—ना०)। ३ वी० दुवै। ४ वी० पिवाई, भो० वनाई। ५ वी० कापर जारी। (३) १ वी० कपूरी। २ भो० खवाई, वी० खियाए। ३. वी० यक। ४ वी० पहिराए। (४) १ वी० योहु ग्यानु। २. भो० बूझिय, वी० बुझाये। ३ भो० सेउ को जूझ, वी० सेती क जूझ। ४ भो० झूझिय, वी० जाये। (५) १ वी० वोछी। २ वी० व कीजा। ३ मै० देडय। ४. भो० उतर न। ५ वी० दीजा। (६) १ वी० सिराजदि के। २ वी० मे नही है। ३ वी० दाउदि। (७) १ भो० वी० मीर मसूद कि (मसउद की-वी०)। २ वी० लई।

अर्थ—(१) दोनो नारियो को [लोरिक ने] शुद्ध (सीधी-शात) कर मिलाया। वे [दोनो] योवनवती वालिकाए भेभर (विह्वल) और भूली हुई [हो रही] थी। (२) खडवानी [तैयार] करके दोनो को उसने पिलाया, और क्रोध मे जलती हुई दोनो को [मीठे शब्दो का जल] छिडक कर बुझाया (शान्त किया)। (३) दोनो को [उसने] कर्पूर मे सुवासित कर पान खिलाया और [दोनो को] एकखडी छपी साडिया लाकर पहनाई। (४) [फिर उसने

कहा,] "ऐ चादा, यह ज्ञान तुम नही समझती हो कि मैना से तुम्हे कोई युद्ध न जूझना (करना) चाहिए। (५) ऐ चादा, सुनो, ओछी बात न करे, उत्तर दे और उत्तर ले।" (६) सिराजुद्दीन से काव्य के ये छद दाऊद ने सवार कर कहे है। (७) सीधी (शात) कर दोनो नारियो को [लोरिक ने आपस मे] मिलाया और [तदनतर दोनो को] ला (ले) कर [उसने उन्हे] अकवार मे पकडा।

१६. चांदा-लोर-परदेश-प्रस्थान खण्ड

(२६६)

चाद सुखासनु मदिर चलावा। देउ मनाए 'ला(ला)छनु' पावा।
'जउ देव बारहि लाछनु' लागा। 'जानउ चद्र' मेघ 'तर' भागा।
'सोरह' करा करत 'उजियारी'। 'पूनिउ राति भई' 'अधियारी'।
चाद कलकी 'चितहि स(स)खानी'। एक खड 'नाही नौ' खड जानी।
'एहि' परि जाइ मदिरि ऊतरी। कनवडि 'होइ तउ पाछे' परी।
'चढी चाद धौराहरि' सिरु धनि' बइठि नवाइ'।
'नैन गाग मुख धोवइ' मुख मसि धोइ न 'जाइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २१७, बी० ८१८-८२०।

भो० मे पूर्ववर्ती कडवक के नीचे तर्क है, 'चाद सुखासन' है, जो इसी कडवक का है।

शीर्षक—मैं० वाज गश्तन चादा अज वुतखान सूए खान खुद।

पाठान्तर—(१) १ बी० लछिनु। (२) १. बी० जो हुत वारेहि लछिनु। २ बी० जानौ कि चाद। ३ बी० रत। (३) १ बी० सोराह। २ मैं० उजियारा। ३ बी० पून्यो चाद कि भइ। ४ मैं० अधियारा। (४) १. बी० चितह लजानी। २ बी० छाडि नौव। (५) १ बी० इहि। २ बी० होइ तौ पीछे, मैं० दीख तउ पाछें। (६) १ बी० चरी राम धैराहर। २ बी० वैठि नवाई। (७) १ मैं० पक नेक रे। २ बी० धोवै। ३ बी० जाई।

अर्थ—(१) चादा ने सुखासन मदिर (घर) की ओर चलाया, [तो] [उसने मन मे कहा,] "देवता को मनाने से मैंने लाछन [ही] पाया।" (२) जब देवता के द्वार पर [उसे] लाछन लगा, तव [वह छिप कर इस प्रकार भागी] मानो चद्र मेघ के नीचे (पीछे) छिप कर भागा हो। (३) जो

सोलह कलाओ से उजाला करती थी, वह पूर्णिमा की रात्रि अधकारमयी हो गई। (४) कलकित चादा चित्त मे शकित हो गई, [क्योकि यह बात] एक खड तक [सीमित] नही रही, वह नौ खडो मे प्रसिद्ध हो गई। (५) इस प्रकार से जाकर जब वह [अपने] मदिर (घर) मे उतरी, वह कनावडी (लज्जित) होकर पीछे [के भाग मे] पड रही। (६) चादा धवलगृह (प्रासाद) पर चढी, तो वह सिर पकड कर और उसे नीचा कर वैठ गई। (७) [अपने] मुख को वह नेत्र-गगा से [भले ही] धो रही थी, किन्तु मुख की कालिमा नही धोई जा सकती थी।

(२६७)

'चढी' पालिकी मैना नारी। बिहस 'कवरि सब' जोवन बा(वा)री।
'गोवा पूजि कइस सुख आई'। 'जइ सब गोहन देउ घर गई (?)'।
'खिनहि चाद कुर पानि' उतारा। 'हम सहि' नारि छिनारि 'बिटारा'।
हसि हसि पान अडाकर खाही। मिली सहेली कोड कराही।
'पानी उत(ता)रा' 'मसि मुख' लाई। सो मसि 'मुख थे धोइ' न जाई।
'झमकति' आई पालिकी सुख 'सउ' मदिरि 'पईठि'।
'गई' सहेली घर 'घर' मैना 'सेजि वईठि'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २१८, वी० ८२१-८२३।

शीर्षक—मैं० वाज गश्तन मैंना अज बुतखान सूए खान खुद।

पाठान्तर—(१) १ वी० चली। २ वी० कवर पर। (२) १. वी० गोवरा बात घनाहुनि भई (तुल० २२८·४)। २ वी० सषी बुलाई सभै तिनि लई। (३) १ वी० कहेंहि (खिनहिं—फा०) चाद कर पानी। २. वी० मौंसौ। ३. वी० नचारा। (५) १ मैं० पानि उतारी। २ वी० औ मसि। ३ वी० मुख की कदे। (६) १ वी० सुष स्यो (तुल० चरण का उत्तरार्द्ध)। २ वी० स्यौ। ३ वी० पईठी। (७) १ वी० गइ। २ वी० घरह। ३ वी० सेज वईठी।

अर्थ—(१) मैना नारी जव पालकी पर चढी, सव यौवनवती कमलिनिया (सुदरिया) हस रही थी। (२) [मैना ने कहा,] "हम किस सुख के साथ गोवा (ग्राम-देवता ?) की पूजा कर आई जव साथ-साथ हम देव-गृह मे गई। (३) [किन्तु] "चादा ने क्षण भर मे [हमारे] कुल का पानी उतार लिया [और कहा,] कि हम सभी नारिया छिनाल और विटारिनें हैं। (४) [उसकी]

सहेलिया [किस प्रकार] हस-हस कर अडाकर (बिना कुचले हुए) पान खा रही थी, और मिल कर कोड (क्रीडा-खिलवाड) कर रही थी। (५) मैंने तो [उसका] पानी उतार कर [उसके] मुख मे मसि (कालिमा) लगा दी है, और वह मसि (कालिमा) मुख से धोई नही जा सकेगी।" (६) यह कहती हुई वह पालकी पर झमकती हुई आई और सुख-पूर्वक [अपने] मदिर (घर) मे प्रविष्ट हुई। (७) सहेलिया अपने-अपने घर गईं और मैना शैया पर जा बैठी।

(२६८)

'खोलिनि पूछहि कहु दहु' मैनां। 'देउ' बारि कस 'पाइहु' बैना।
'हउ' तुम्ह 'पूजइ देउ' पठाई। 'अउ पाछे तेहि चादा आई'।
'हम जाना यह सहिय' तुम्हारी। 'ऊपर घालति करति धमारी'।
थोर बहुल 'जइसइ किछु परतिउ'। 'आजु सेउ चादा कइ कीत्यौ(तिउ)।
'ए सब' लोरिक के उपगारा। 'बाजी मो सौ(सउ)' देव दुवारा।
बहुल 'भएउ नोचियाऊ' चाद 'सकूसर आइ'।
नागि नगि कइ छडतिउ 'लेतिउ' चीर छिनाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २१९, बी० ८२४-८२६।

शीर्षक—मैं० पुरसीदने खोलिन मैना रा कैफियते बुतख़ान।

पाठान्तर—(१) १ बी० षौलनि पूछ कहौ धौं। २ बी० देव। ३ बी० पायो। (२) १ बी० हौ। २ बी० पूजा देव। ३ बी० औ पीछैं कैं चाद बुलाई। (३) १ बी० जौ हौ जानौ सगी। २ बी० जे पर घालि बिपरीति अमारी। (४) १ बी० जैंस कछु हूत्यौं। २ बी० आजु सु चादा परगट। ३ मैं० करतिउ। (५) १ बी० जे (ये—ना०) सभ। २ मैं० बाचें तूसिउ (?)। (६) १ बी० भयो पछिताव। २ बी० सकोसर (सकूसर—फा०) आई। (७) १ बी० नगन करि छरत्यौ। २ बी० लेत्यौं।

अर्थ—(१) [खोलिन पूछने लगी,] "ऐ मैना, कहो तो, देव-द्वार पर तुमने कैसा बैना पाया?" (२) [मैना ने कहा,] "तुमने मुझे देवता की पूजा करने को भेजा और उसके पीछे ही चादा [वहा] आ गई। (३) हमने जाना (समझा) कि तुम्हारी यह [चेष्टा] सहृदयता-युक्त (?) है कि तुम ऊपर [कुछ] डाल रही हो और धमार कर रही हो। (४) [फिर तो] थोडा-बहुत जैसा-कुछ हो सका आज मैंने [भी] चादा की सेवा की। (५) और ये सब

लोरिक के उपकार हैं कि वह मुझ से देव-द्वार पर भिड गई। (६) [वहा] बहुत नोचियाव (नोच-चोथ) हुआ, [तब] चादा कुशल-पूर्वक [अपने घर] आई, (७) [अन्यथा] उसको मैं नगी और नग्न करके छोडती और उसका चीर छिना लेती।"

(२६९)

'मैनहि मालिन तउहि बोलाई'।
'उरहन दे (दइ) महरीनि (इ ?)' पठाई।
चांद 'भुजगि' राइ 'कइ' घिया।
'अइस नकीज (न कीज) जइस ओइ किया'।
'पूनिउ मुखु देखत' उजियारा। 'आपु कलके' भा अधियारा।
महर महरि कइ भइ मोहि कानी। 'लउतिउ' आगि 'उतरतिउ' पानी।
'असि कइ धीय दीन्हि मोकराई'। 'अबहि सकोरहु' अनत न जाई।
चारि भुवन जगु देखत मो 'सिउ' 'बागरि' लागि।
जेहि 'अकरक' अस 'लागइ' 'जाइ' देस तजि भागि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २२०।१, बी० ८२७-८२९।

शीर्षक—मैं० तलबीदने मैना मालिन रा व फिरिस्ता[द]न बर महर।

पाठान्तर—(१) १ बी० मैना मारनि तोहि बुलाई। २. मैं० ओरघन देइ महरा। (२) १ बी० भनीजै। २ बी० की। ३ बी० अैस न कीजै जस उनि कीया। (३) १ बी० पून्यो मुषु देस (दीस—फा०)। २ बी० अवरु कलकी। (४) १ बी० लवत्यौं। २ बी० उतारत्यौं। (५) १ बी० अस कै धिया दीन्ह मुकराई। २ मैं० मे अस्पष्ट है। (६) १ बी० सौ। २ बी० वागरी। (७) १ बी० अकुरक। २ बी० होइहै। ३ बी० जाई।

अर्थ—(१) मैना ने मालिन को तभी (तत्काल) बुलाया, और उलाहना देकर (देने को) उसे महर के पास भेजा। (२) [उसने कहलाया,] "राजा की दुहिता चादा भुजगिनी है, उसे ऐसा न करना चाहिए था जैसा उसने किया है। (३) उसका पूर्णिमा का (के जैसा) मुख देखने मे उज्ज्वल था, किन्तु अपने द्वारा ही कलकित किए जाने के कारण वह अधेरा (अधकारपूर्ण) हो गया [है]। (४) महर-महरी की मुझे कानि हुई, नही तो उसे आग लगा [कर जला] देती और उसका पानी उतार लेती। (५) [तुमने अपनी] दुहिता को ऐसा मुक्त कर रक्खा है! अभी ही उसे सिकोड़ो (नियत्रण मे

करो), जिससे वह अन्यत्र न जाए। (६) चारो भुवनो और जगत् के देखते हुए वह वक्रा मुझसे लग (उलझ) गई। (७) जिसे ऐसा कलक लगता है, वह देश को त्याग कर भाग जाता है।"

(२७०)

'मालिनि पुहुप करडि भरि लिई'। राजमदिर चलि भीतर 'गई'।
'महरिहि' सीसु नाइ भइ ठाढी। कुसुम 'करी लइ दीतिसि' काढी।
हार 'जोरि' 'फूला पहिराई'। 'अउर' फूल भरि सेज 'बिछाई'।
फुनि 'मालिनि बिनती' औधारी। 'सुनहु त बिनवइ दासि' तुम्हारी।
आजु लोर 'के' मदिर 'बुलाइउ'। चाद 'क ओरहन' देइ 'पठाइउ'।
जस 'उन कहा सो कहिसि अस 'तस' 'हउ कहइ न पारउ'।
बहुल 'मात हउ दोखी' 'कह' लगि कहत 'सभारउ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २२०।२, बी० ६३०-६३२।

शीर्षक—मैं० रफ्तन गुलफरोश दरखान राय महर व पेश इश्तादन।

पाठान्तर—(१) बी० मारनि पहुप कडड भरि लाई। २ बी० आई। (२) १ बी० महरिह। २ बी० जोर लेहसि करि (तुल० अर्द्धाली तीन का पूर्वार्द्ध)। (३) १ बी० जोर। २ बी० फूल पहिरावा। ३ बी० और। ४ बी० बिछावा। (४) १ बी० मारनि तीय। २ बी० सुनि बिनवौ अविचार। (५) १ बी० कै। २ बी० बुलायो। ३ बी० उराहन। ४ बी० पठायो। (६) १ मैं० ओरहन ओइ कहा। २ बी० हौ कहौ न पारौ। (७) १ बी० बात कहि देपी। २ बी० कहाँ। ३ बी० सभारौ।

अर्थ—(१) मालिन ने पुष्पो की करण्डी (डलिया, टोकरी) भर ली और राजमदिर जाकर वह [उसके] भीतर गई। (२) महरी को सिर नमित कर वह खडी हुई और [एक] कुसुम-कलिका निकाल कर उसे दी। (३) उसने [इसके अतिरिक्त] हार जोड (गूथ) कर फूला (महरी) को पहनाया, तथा और फूलो से भर कर [उसकी] शैया बिछाई। (४) तदनतर उस मालिन ने बिनती प्रस्तुत की, "यदि तुम सुनो, तो यह तुम्हारी दासी तुमसे विनती करे। (५) आज मैं लोर के मदिर मे बुलाई गई और चादा [के सबध] का उलाहना देने के लिए मै भेजी गई। (६) जैसा [उलाहना] उस (मैना) ने कहा है—कि ऐसा कहना, वैसा मैं नही कह सकती हू, (७) [इसके लिए] हे माता, मैं बहुत दोषी (दोष-पूर्ण) हू, [क्योकि] उसे कहते हुए मैं कहा तक स्मरण करू ?"

(२७१)

महरि कहा 'सुनि मालिनि' माई। जस 'तइ' सुनां 'तइस' कहु आई।
'कालिह जउ' चाद देव घर' गई। देव 'दुआर' 'बिटारित भई'।
चारि भुवन जग 'जानहु' आवा। कछु आपनु 'अउ बहुल' परावा।
चाद न आछइ 'अपने' पानी। बिनु पानी अति जीभ सुखानी।
घर घर बात'देस' फिरि आई। 'कार(र)क दिए मुह निकरि' न जाई।
तू राजा 'कइ घिय' 'सो चादा' 'कैसे लोक' हसावसि।
'अउ जो पुरुखा सात गए' सरगि तू 'तिन्हहि लजावसि'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २२२, बी० ६३३-६३५।

शीर्षक—मैं० पुरसीदने महरि बर गुलफरोश रा व बाज नमूदन गुल-फरोश अतावे चादा।

पाठान्तर—(१) १ बी० कहु मारनि माई। २ बी० तैं। ३. बी० तैंस। (२) १ बी० कालि जु। २ बी० दुवार। ३ बी० जस होई षई। (३) १ बी० जातेहि। २ बी० औ बहल। (४) १. बी० आपन। (५) १ बी० जगाह। २ बी० कार कीन्ह मुष निसरि। (६) १. बी० की धीय। २ बी० मे नही है। ३ बी० वारिक पिता। (७) १ बी० औ पनि पुरपह सात। २ बी० तिन्ह लाज लगावसि।

अर्थ—(१) महरी ने कहा, "ऐ मालिन सखी, सुन, जैसा तूने [मैना से] सुना, वैसा तू आकर कह" (२) [मालिन ने कहा,] "कल जब चादा देवगृह गई, देव-द्वार पर वह लाछित-अपमानित हुई। (३) मानो जगत् के चारो भुवन वहा पर आगए थे, कुछ अपने थे और बाहुल्य से पराए थे। (४) चादा अपने पानी (मर्यादा) मे नही रहती है, [इसलिए] बिना पानी (मर्यादा) के उसकी जिह्वा अत्यधिक शुष्क [हो रही] थी। (५) देश मे घर-घर यह बात फिर आई है कि उसने [अपने] मुंह मे ऐसा कालिख दिया (लगाया) है कि उससे [बाहर] निकला नही जा रहा है। (६) 'ऐ चादा' [लोग कहते हैं,] 'तू राजा की कन्या होकर कैसे लोक मे [अपनी] हसी करा रही है, (७) ओर जो तेरे सात पूर्व-पुरुष स्वर्ग जा चुके है, उन्हे लज्जित कर रही है।"

(२७२)

'सुनतहि फूला' महरि लजानी। 'घरी' सहस 'जनु' मेला पानी।
'जइस तुसार पुरइनि दहि' दही। तस होइ महरि बात सुनि रही।

'कवनि' भांति 'बरु गई बोलाई' । 'इंहिं' कुर बोरनि लाज 'गवाई' ।
काहे 'कहं बिधि तइ अवतारी' । 'बरु अवतरतइ मरतिउ बारी' ।
अस 'ओरहन दहुं कैसे' सहिए । जहा 'बियाही तह' का कहिए ।
'दुइ' कुर बोरनि 'अकरनि' 'गोत लजावनि' दारि ।
'पाय लागि कह मालिनि' 'हरकी(किय) आहि छिनारि' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २२३, बी० ८३६-८३८ ।

शीर्षक—मैं० शरमिन्द शुदने महर व फूला अज अतावे चादा ।

मैं० मे इस कडवक के सामने जो चित्र है, वह बाद वाले कडवक का है, जो मैं० मे त्रुटित है ।

पाठान्तर—(१) १ बी० सुनते फूलाह । २ बी० घरे । ३ बी० जानौ । (२) १. बी० जस तूसरि परयनि दह । (३) १ बी० नून । २ बी० कर गई बिलाई । ३ बी० यह । ४ बी० लगाई । (४) १ बी० कौ बिधि तू औतारी । २ बी० कोरि सहस चौहु देसेहि गारी । (५) १ बी० उरहन धौ कैसै । २ बी० बियाहि तहा । (६) १ बी० दोई । २ बी० अकुरनि । ३ मैं० लोक हसावनि । (७) १. बी० पाई लागि कै विनइ मारनि । २ मैं० हरकही । ३ बी० वहुल विचारि ।

अर्थ—(१) यह सुनते ही महरी फूला [ऐसी] लज्जित हुई मानो उस पर एक सहस्र घटियाँ (छोटे घडे) जल डाल दिया गया हो । (२) जैसे तुषार मे दग्ध होने से पुटकिनी (कमलिनी) जल जाती है, वैसी ही [दग्ध] होकर महरी उसकी वात सुनती रही । (३) [उसने कहा,] "किस भाति (क्यो) यह [ससुराल से] बुलाई ही गई कि इस कुल को डुवाने वाली ने लज्जा गवा दी ? (४) विधाता के द्वारा किसलिए अवतरित ही की गई ? वल्कि अवतरित होते समय ही, ऐ वालिका, तू मर जाती (गई होती) । (५) ऐसा उलाहना भला कैसे सहन किया जाए और जहा पर तू विवाहित है, वहा पर क्या कहा जाए ?" (६) "यह दोनो कुलो को डुवाने वाली, अकरणीय को करने वाली और गोत्र को लज्जित करने वाली दारी हुई", पैरो मे लगकर मालिन ने कहा, "इस छिनाल को हटकिए (मना कीजिए) ।"

(२७३)

राज मदिर हुते मार(रि)नि आई ।
मैना नारि आइ सम(मु) झाई ।

महरि बिरूना (बिरवना) करै(रइ) बि[र]राई।
चाद केर मुषि लै(लइ) मसि लाई।
माइ बाप बधु कुट(टु)बु बिगोवै(वइ)।
रोइ रोइ चाद कार मुष धोवै(वइ)।
समदि(समुद ?) पैठि(बैठि ?) दिनु ले(लइ) मुसकाई।
मुषि जु चरी मसि धोई(इ) न जाई।
अ(आ)न होइ हीयो द[र]केहि फाटै।
पुरपु नारि कर नासिक काटै।
मैना आगि बुझान कह (इ ?) अस मारनि आई।
चाद कीन्ह सत ढील राह(हि ?) निरग ही आई॥

सन्दर्भ—वी० ८३९-८४१। मैं० मे अव यह कडवक नही है किन्तु अव उसके पत्र २२३ पर जो चित्र है वह इसी कडवक का है, पूर्ववर्ती का नही है, क्योकि उसमे मालिन और मैना का सवाद चित्रित है।

अर्थ—(१) मालिन राजमदिर से आई और आकर उसने मैना नारी को समझाया। (२) [उसने कहा,] "महरी विलपना करती और बिललाती है [और कहती है] कि चादा का मुख लेकर उस पर कालिख पोतनी चाहिए। (३) [चादा] माता, पिता, वधु और कुटुव को विगो रही है और रो-रोकर आमुओ से अपना काला मुख धो रही है। (४) वह हर्षपूर्वक (?) बैठ कर (?) [भले ही] दिन भर मुसकराती रहे, किन्तु उसके मुख पर जो कालिमा चढ गई है, वह धोई नही जा सकती है। (५) अन्य कोई होता तो उसका हृदय दरक कर फट जाता, [क्योकि] पुरुष ऐसी नारी की नाक काट लेता है।" (६) मैना की आग (रिस) बुझ गई जब मालिन ने आकर उससे कहा, (७) "चादा ने सत्व ढीला कर दिया है, [क्योकि] सुसज्जित (?) होने (हो कर जाने) पर वह निरग ही आई (लौटी) है।"

(२७४)

चाद विरसपति 'सो' अस कहा। भा सो कुछ 'जो चित(चित्त)मह'अहा।
'सग्ग हुते' धर परा 'अठाऊ'। उठा सवदु जग मेट न काऊ।
अव 'यह' वात देस फिरि आई। 'अउ धइ ढांके रह' न लुकाई।
'हउ जो न मुनतिउ' वोलु परावा। 'जेहि डरिउ सो आगे' आवा।
अव 'हनि मरिहउ' पेट कटारी। 'केइ रि (रे)' सहव देस कइ' गारी।

लोरहि कहसि बिरसपति 'मोहि लइ निकरि पराइ'।
आजु राति 'लइ निकरउ' 'न(ना?)तरु मरउ भोर' बिसु खाइ ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २२४, बी० ८४२-८४४।

शीर्षक—मैं० तलबीदने चादा बिरस्पति रा व फिरिस्ताने वर लोरिक।

पाठांतर—(१) १ बी० सौ। २ बी० हौनैं कौ। (२) १ बी० सरगौ हुतैं। २ बी० निहाऊ। (३) १ बी० याह। २ बी० ढाकी वाढी रहै न। (४) १ बी० हौ जनु सुनत्यौं। २ बी० जिहि दिन डरौ सु आगैं आगैं। (५) १ बी० लैं मरिहौ। २ बी० कोरि, मैं० केइ दुख। ३ बी० सहस चहु देसहि गारी। (६) १ बी० मो लैं निसरि पराय। (७) १. बी० ले निसरौहु। २ बी० ना तौ भोर मरिहैं।

अर्थ—(१) [उधर] चादा ने बृहस्पति से ऐसा कहा, "कुछ वही हुआ जो मेरे चित्त (ध्यान) मे था। (२) स्वर्ग से [वह पदार्थ] अस्थान मे धरा पर आ पडा और उसका शब्द (शोर) ऐसा उठा कि जगत् मे वह कभी भी न मिटेगा। (३) यह वार्ता अब देश भर मे चक्कर लगा आई है और पकड कर (जबर्दस्ती) ढक रखने से छिप नही रही है। (४) [कहा तो] मैं ऐसी थी कि जो दूसरे का बोल नही सुनती थी, [और कहा अब ऐसी हो गई कि] जिस [बात] के लिए डर रही थी, वही आगे आई! (५) अब मैं पेट मे कटारी मार कर मरूँगी, क्योकि मैं किस प्रकार देश [भर] की गाली सहूँगी? (६) लोरिक से, ऐ बृहस्पति, [तू मेरी ओर से] कह कि अब वह मुझे लेकर निकल भागे। (७) आज रात को [ही] वह मुझे लेकर निकल चले, नही तो मैं सवेरे विष खाकर मर जाऊगी।"

(२७५)

आइ बिरस्पति कहा सदेसू। लोर चाद 'लइ' 'चलु' परदेसू।
सावनु लाग 'देउ' घरराई। पावस 'पथ न हाडे' जाई।
नार खोर नदि 'जर(ल?)' भरि 'रहे'। 'एहि सयसारु जहा लहि अहे'।
'ओनइ' लाग 'धर' बादर 'आई'। 'दादुर ररहि' 'बीजु चमकाई'।
पावस 'पथ कवन निरबाहइ'। 'जीउ' डराइ हिय 'फाटइ चाहइ'।
सरद सिसिर 'रितु हेवतहि' जात न लागी वार।
'चलब' चाद 'कहु विहफइ' 'होइ' बसत उजियार ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २२५, बी० ८४५-८४७।

शीर्षक—मैं० गुप्तने बिरस्पति लोरिक रा सुखुने चादा ।

पाठान्तर—(१) १ वी० लै । २ मैं० मे नही है । (२) १. बी० देव । २ वी० पंथाह चले न । (३) १ मैं० पानि । २ वी० रहै । ३. वी० वहि संसारू ज लहु औ अहे । (४) १ वी० उनै । २ वी० दर । ३ मैं० वरिसइ । ४ वी० दादु रढँ । ५ मैं० वीजुरी लौकइ । (५) १ वी० राति कौन निरवाहै । २ वी० जाइ । ३ वी० फाटन चाहै । (६) १ बी० रुति होवत । (७) १ वी० जाइ । २ वी० कौ विहपै । ३ बी० होय ।

अर्थ—(१) बृहस्पति ने आकर [लोरिक से चादा का] सदेश कहा, "ऐ लोरिक, तू चादा को लेकर परदेश चले (जाए) ।" (२) [लोरिक ने कहा,] "सावन लग गया है और दैव गर्जन करने लगा है, वर्षा मे मार्ग चलने से नही जाता (समाप्त होता) है । (३) जहा तक भी ससार मे नालिया, खोरिया और नदिया थी, वे पानी से भर रही है । (४) वादल आकर और अवनमित होकर धरा से लग रहे है, दादुर (मेढक) चिल्ला रहे हैं, और विजली चमक रही है । (५) वर्षा मे मार्ग कौन निवाह पाता है ? [मार्ग चलते हुए] जी डरता है, और हृदय फटना चाहता है । (६) शरद, शिशिर तथा हेमत ऋतुओ मे जाने मे देरी न लगेगी, (७) [अथवा,] चादा से, ऐ बृहस्पति, कहना कि जब उज्ज्वल बसत होगा, [तब] चलूगा ।"

(२७६)

मुरिज सुमतु विरसपति पावा । चाद वारि कौ (कह ?) जाइ जनावा ।
होहि न उतावरि चादा रानी । उवै(वइ)अगस्ति घटै(ट)हि सर पानी ।
पथ थाक साइर भरि रहे । गरै बूड जहा लहु अहे ।
तर उपरि पानी न सभारै । चलै (चले) न जाइ बीचि होइ हारै ।
तौ निकरे कर होइ पछितावा । जान न जाई फिरि को आवा ।
जो अइवे कहुं आहि वीर कहि (कह) विहपौ(फइ ?) आयहु ।
फुनि रु(रे) होइ पछिताऊ वहुरे मोहि न पायहु ॥

सन्दर्भ—वी० ८४८-८५० ।

मैं० यहा पर अत्रुटित है, जो उसके चित्रो से ज्ञात होता है । किन्तु यह कडवक प्रसग मे आवश्यक है । अत असभव नही कि यह मैं० के पूर्वज मे त्रुटित रहा हो अथवा, मैं० की प्रतिलिपि करते समय रह गया हो ।

अर्थ—(१) बृहस्पति ने जब सूरज (लोरिक) का सुमत्र (विचार)

पाया, तो उसने चादा बालिका को जाकर सूचित किया। (२) [लोरिक के शब्दो मे उसने कहा,] "ऐ चादा रानी, उतावली न हो, अगस्त को उदित होने और सरोवरो का पानी घटने दो। (३) [इस समय तो] मार्ग बद है और सागर (जलाशय) भर रहे है, वे जहा तक भी थे, आकठ [जल से] बूडे (डूबे) हुए हैं। (४) [पथिक के लिए] एक तो तले जल है, और दूसरे ऊपर [वर्षा का] जल है, दोनो को [एक-साथ] वह सभाल नही पाता है और चल कर भी वह जा नही पाता है, तथा बीच मे ही हार पडता है। (५) तब निकल पडने का पछतावा होता है, और यह नही जान पडता है कि लौट कर कौन आएगा।" (६) [यह सुनकर चादा ने कहा,] "यदि लोरिक को आना है, तो वीर (लोरिक) से कहना, ऐ बृहस्पति, कि वह आ जाए, (७) [क्योकि] फिर पछतावा होगा, और पुन मुझे न पाएगा।"

(२७७)

'बिहफइ जाइ' लोरु 'समुझावा'। वीर चाद 'चित' कोपु उचावा।
'छाडि गोवर अइसइ बहिराउबि'। बरु जीउ जाइ बहुरि 'कोइ आउबि'।
'मइ आपन जिउ अस परिछेवा'। राति दिवस घन 'बरसइ' देवा।
'पटुवइ' केर देखि बौसाऊ। हाथ ऊभ 'भुइ परइ' न पाऊ।
'पुरुखहि' पानि आगि का कहिए। 'जइस परइ' सिर 'तइसइ सहिए'।
'कहा लोर सुनु बिहफइ' 'हउ तउ रासि गिनाउ'।
कालि धरउ 'लइ' पाइतु 'तउ हउ' चाद 'पलाउ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २२६, बी० ८५१-८५३।

शीर्षक—मैं तफहीम करदने विरस्पति बर लोरिक रा।

बी० मे उपर्युक्त (३) के बाद अधिक है

दीजै जीव तौ पायोहु गोरी . जौ जिउ जाइतौ कुवरि बहोरी।

पाठान्तर—(१) १ बी० बिहपै आइ। २ बी० समझावा। ३ मैं० चित (चित्त—ना०)। (२) १ बी० छाडि लोर अैसै भुवरावबि। २ बी० को आवबि। (३) १ बी० मै अपना जिउ सब परछेवा। ३ बी० बरसहि। (४) १ बी० तिरियाह। २ बी० धर परै। (५) १ बी० पुरषैहि। २ बी० जैस परै। ३ बी० तैसि र रहिये। (६) १ बी० लोरिक कहा बिरसपति। २ बी० आजु जु गवन गिनाऊ। (७) १ बी० ले। २. बी० तौ ही। ३. बी० बुलाऊ (पलाउ—फा०)।

अर्थ—(१) वृहस्पति ने जाकर [तव] लोरिक को समझाया, [और कहा,] "ऐ वीर, चादा ने चित्त मे कोप उठाया (किया) है। (२) उसने कहा है, 'गोवर को छोडकर मैं इसी प्रकार वाहर चली जाऊगी और लौट कर न आऊगी, भले ही जीव जाए और कोई लौट कर आए। (३) मैंने अपने जीव को इस प्रकार परिच्छिन्न कर लिया है, भले ही रात-दिन दैव घना वरसे। (४) वुनकर का व्यवसाय (पुरुपार्थ) देखो, [जव] उसका हाथ उठता है, [उसका] पैर भूमि पर नही पडता है। (५) पुरुप के लिए पानी या आग की वात क्या कही जाए? जैसा कुछ उसके सिर पर पड़ जाता है, वैसा ही वह सह लेता है।'" (६) लोरिक ने कहा, "ऐ वृहस्पति, तव मैं राशि गिनाता हूं। (७) कल मै पाइत (प्रस्थान की वस्तु) लेकर रक्खूंगा, और उसके वाद मैं तथा चादा पलायित हो जाएगे।"

(२७८)

'रइनि खेलि' 'दिनु' भा 'भिनुसारा'। पडित 'के' घरु लोर सिधारा।
'विसवा पडित जाइ' 'जगावा'। 'पाटा' पानि 'बीर कह' आवा।
पाट 'वइसारि' 'दीन्ह आसीसा'। चद्र 'भायं' सूरिज 'मुख' 'दीसा'।
'काह चित वरु' भा परगासू। 'तू रबि जो कीन्हां' 'हम बासू'।
काह मया हम 'कह चित' चढी। भइ 'उजियारि बिप्र की (कइ)' मढी।
कहु जजमान 'सो' कारनु 'जेहि लगि इहवा आएहु'।
चद्र जोति मुख उदिनल 'केहि लगि' 'चित्त' 'उचाएहु'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २३७, म० पत्र १४५।२, वी० ८५५-८५७।

शीर्षक—मैं० रफ्तने लोरिक दर खानए जुन्नारदार व पुरसीदने वक्ती साद।

म० . दास्तान रफ्तने वर नजूमी पुरसीदन ऊ रा।

पाठान्तर—(१) १ वी० रैनि खल। २ मैं० गइ। ३ वी० भुनसारा। ४. वी० कै। (२) १ वी० विसवा सिवु रिपि लोर, मैं० पवरि जाइ कइ आपु। २ मैं० जनावा। ३ वी० पाट। ४ वी० वीर कौहु, म० विप्र लइ। (३) १ वी० विठाइ। २ वी० कि दीन्ह असीसा, मैं० फुनि दीन्ह असीसा। ३ वी० गुसाइ, म० भाव। ४ म० मुह, वी० मति। ५. म० दी [सा]। (४) १ म० काह चेति चित, मैं० कहहु चेति वरु, वी० काह चित च। २ मैं० पवितर निजुइ कीन्ह, वी० तैं [र] वि जोग कीन्ह। ३ वी० परगासू।

(५) १ मैं० कह चित (चित्त), बी० उपरि। २ मैं० अजोरि जेइ हमरी। (६) १ बी० सु। २ मैं० जेहि इहवा तुम्ह आएहु, बी० जिहि मनसा चलि आइ। (७) १ बी० कह लगु। २ बी० जीउ, मैं० चित (चित्त)। ३. बी० उचाई।

अर्थ—(१) रजनी ने [खेल] खेल लिया, और दिन का भिनुसार (प्रभात) हुआ तो लोरिक पडित के घर को चला। (२) विश्राम करते हुए पडित को जा कर उसने जगाया, तो वीर (लोरिक) के [बैठने के] लिए पाटा (पीढा) और [हाथ-पैर धोने के लिए] पानी आया। (३) [पडित ने] उसे पाटे पर बिठा कर आशीर्वाद दिया [और कहा,] "सूर्य के मुख पर [आज] चद्र का भाव (प्रभाव) दिखाई पडा है! (४) क्या चिता हुई कि उसके कारण तुम्हारा प्रकाश हुआ—वह प्रकाश जो, ऐ सूर्य, तुमने हमारे आवास पर किया है। (५) मेरे लिए ऐसी क्या मया (ममता) [तुम्हारे] चित्त मे चढी कि इस विप्र की मढी प्रकाशित हुई है। (६) हे यजमान, वह कारण कहो जिसके लिए तुम यहा आए। (७) तुम्हारे मुख पर उदीर्ण चद्र की ज्योति है, [तव] किसलिए तुमने [अपना] चित्त उठाया (उचटाया) है?"

(२७६)

सूरुज कहा मइ 'चाद' पलाउब। 'सुकुर' बाजु दइ पूरुब चलाउब।
घरी 'माडि' कइ रासि गिनाई। सब ही सिधि ओइ पडित पाई।
मोर 'गनित' तुम्ह लोरिक जानहु। 'कहउ बोल' 'सो सच करि' मानहु।
दिन दस तुम्ह कह 'बाट चलावइ'। 'पर भुइ पथ' 'बहुल सिधि पावइ'।
एक दोइ काल 'जइस मइ' 'देखी(ख)उ'।
औगुन होइ पइ नाही 'लेखी(ख)उ'।
आधी राति 'जउ' जाइहि तब उठि चालेहु वीर।
सूर उवत तुम्ह उतरेहु 'बूढि' गाग के तीर॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २२८, म० पत्र १४६।१, बी० ८६१-८६३।

म० मे इस कडवक के बाद तर्क है 'आत (रात)', जो बाद के कडवक का है।

शीर्षक—मैं० गुफ्तने जुन्नारदार वक्ती नेक व साअती खूब।

म० मुकाम करदन लोरिक वर नजूमी व कैफियत जग।

बी० मे इस पाठ की तीसरी और चौथी अर्द्धालिया यथा दूसरी और तीसरी है, शेष तीन अर्द्धालिया और दोहा भिन्न हैं, जो इस प्रकार है —

(१) सिधि रिषि रासि गिनै परवाना : गिनि सम भाव क रासि वषाना।

(४) अगनित देव भला है वारू पूरब दिसि चाली अवतारू।

(५) सूर अथव तौ लै चलु लोरा षोजु न पावसि कोऊ तोरा।

सूर चलै ले चादहि के गोवर अधियार।

वीजु लवे धनु गरजे निसरी [न ?] कोउ वार ॥

(यही दोहा आगे कडवक २८१ मे आया है)

पाठान्तर—(१) मैं० चादा। २ भो० सगुन। (२) १ म० मागि। (३) १ वी० गिनत। २ वी० कहा जु बोलु। ३ म० सबइ तुम्ह, वी० सोइ तुम्ह (४) १ म० पथ चलावइ, मैं० बाट चलावहि। २ मैं० पुनि एहि पथ, म० पूरुव पथ। ३ मैं० वी० भला सिधि (अस—वी०) पावहि। (५) १ मैं० मइ किछु। २ म० देखउ। ३. म० लेखउ। (६) १. म० जव। (७) १ मैं० बूडि।

अर्थ—(१) सूर्य (लोरिक) ने कहा, "मैं चाद (चादा) को भगाऊँगा। शुक्र (ग्रहा, वार तथा काने वावन) को वर्जित कर (बचा कर) उसे पूर्व की ओर चलाऊगा।" (२) घडी का निश्चय कर [पडित ने] राशि गिनी, तो उसने समस्त सिद्धिया [उस यात्रा मे] पाईं। (३) [उसने कहा,] "मेरा गणित, ऐ लोरिक, तुम जानते हो, [इसलिए] मैं जो वचन कर रहा हूँ उसे सच करके मानो। (४) दस दिनो तुम्हे मार्ग चलाएगा, [तदनतर] परभूमि (परदेश) के मार्ग मे वहुतेरी सिद्धिया तुम पाओगे। (५) एक-दो काल जैसे मैं देख रहा हू, किन्तु [उनसें तुम्हारा] कोई अपगुण (अपकार) होगा, ऐसा मैं नही देख रहा हू। (६) जव आधी रात चली जाएगी तब, ऐ वीर, तुम चल देना (७) और सूर्य उगते तक तुम वूढी गगा के तीर (तट) पर उतर जाना।"

(२८०)

राति 'भई' 'तउ' लोरिक आवा। मेलि वरहु 'गै' आपु जनावा।
'वाट चहति फुनि' 'चादा होती'। 'लीतिसि' अभरन मानिक मोती।
अकुरी लाड 'लोर तस ताना'। आवत 'सुरिजु चाद' 'पइ जाना'।
परथमि मेलि अरथु सत्रु 'दीतेसि'। 'पाछे सुरिजु चाद' 'धनि लीतेसि'।
चाद 'सुरिज के पायन' परी। 'सूरिज' चाद लइ 'माथे' धरी।

निसि अधियारि 'नीरु' घन 'बरिसइ' 'चादहि सुरिजु' लुकाई।
बेगि बेगि 'कइ चाले दोऊ' 'जानउ जाइ' उडाई॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २२६, म० पत्र १४६।२, बी० ८७०-८७२।

शीर्षक—मैं० फुरूद आवरदने लोरिक चादा रा व वाखुद बुरदन। म० दास्तान आमदन लोरिक दर खान चादा बर लोरिक।

पाठान्तर—(१) १ मैं० परी। २. बी० तौ। ३ बी० तौ। (२) १ म० बी० कहत तौ। २ बी० चाद अहोती। ३ बी० लेतस (लीतिस—फा०)। (३) १ बी० लौर अस ताना, मैं० लोर तस तानेसि। २ मैं० सूर। ३ बी० निसि जान्या, मैं० न जानेसि। (४) १ बी० लीतसि। २ मैं० औ पाछे चाद। ३ बी० भरि लीतसि। (५) १ मैं० सूरिजु के, बी० सूरिजु कै। २ बी० पायहि। ३ बी० माथै, म० माथहि। (६) १ मैं० मेघ। २ बी० बरसै। ३ मैं० चाद सूर। (७) १ बी० कै चालेहि, म० चलु चाद गुवारी। २ बी० जानौ जाह, म० जाहिं केहा दोउ।

अर्थ—(१) रात हुई तब लोरिक आया, [वहा] बरहा (रस्सा) फेंक कर और जाकर उसने अपने को जताया। (२) चादा भी उसकी बाट जोह रही थी, उसने आभरण, माणिक्य और मोती ले लिए थे। (३) बरहे की आकडी लगाकर लोरिक ने [उसको] ऐसा ताना कि चाद (चादा) ने सूर्य (लोरिक) को आते हुए, हो न हो, जान लिया। (४) पहले उसने समस्त अर्थ (धन-आभरणादि) [वस्त्रो मे] डाल दिए (लिए) और पीछे सूर्य (लोरिक) ने चादा स्त्री को ले लिया। (५) चाद (चादा) सूर्य (लोरिक) के पैरो मे पडी और चाद (चादा) को सूर्य (लोरिक) ने लेकर मस्तक पर धारण किया। (६) रात अधेरी थी और मेघ सघन रूप से बरस रहे थे, चाद (चादा) को सूर्य (लोरिक) ने [उस अधकार मे] छिपा लिया (७) और फुर्ती-फुर्ती करके दोनो [इस प्रकार] चले मानो वे उडे जा रहे हो।

१७. कुंवरू-भेंट खण्ड

(२८१)

'काले झगा पहिरि दोइ' चाले। 'रचे किरीज चाद सिर' घाले।
ओडन 'खाड' लोर कर गहा। दुइ जन 'चले' न तीसर अहा।
कर गहि निसरी 'धनुक गोवारी'। इहि बिधि 'चली' 'सो' चादा नारी।

गोवरु छाडि कोस 'दस' 'गए'। छाडि बाट ऊबट होइ भए।
'खरग बिसाहत' कुवरू भाई। 'चलहु चाद सो भेटती(ति) जाई'।
'सुरुज' चला लइ चांदहि कइ गोवर अधियार।
बीज लवइ घन गरजइ निसर (रि) न कोउव 'पार'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २३०, म० पत्र १४८।२, बी० ८७६-८८१।

शीर्षक—मै० लिबासे सियाह पोशीद रवान शुदने लोरिक व चादा। म० पीश्तर रवान शुदने लोरिक व चादा।

पाठान्तर—(१) १. म० कार झटक (झग) पहिरि के, बी० कारी राति फिरे दोइ। २ बी० अभरन वहुत चाद गैं। (२) १ म० खरग। २ बी० चाले। (३) १ बी० धनुपु गुवारी। २. मै० कीन्हि। ३ बी० स। (४) १ बी० चहु। २. मै० भए (दूसरे चरण का भी तुक यही है)। (५) १ मै० तहवा हुत सो, बी० खरक बिसैतिहि। २ बी० चलहु चॉद तिह मिलियेहि जाई, मै० चलत लोर सो भेटहु आई। (६) १ मै० सूर। (७) १ म० वार। बी० मे दोहा इस प्रकार है —

चाद कहा मै सभ को छाड्यो कहू न काहू वात।
तुहि सनेह लोर भल दिषत्यो नाउ वीर मन रात॥

अर्थ—(१) दोनो काले झगे (वस्त्र-विशेष) पहन कर चले, उन्होने किरीज (किरिञ्ज—वास का टोकरा ?) रचा था, उसे चाद (चादा) के सिर पर डाल दिया। (२) ओडन और खड्ग को लोरिक ने हाथो मे पकडा और दोनो जन चल पडे, तीसरा कोई [साथ] न था। (३) हाथो मे धनुष लेकर वह ग्वालिन निकली और इस प्रकार वह चादा नारी चली। (४) गोवर को छोड कर वे दस कोस (गए) थे कि वे मार्ग को छोड कर अटपटे मार्ग से हो पडे। (५) [लोरिक ने कहा,] "यहाँ पर मेरा भाई कुवरू खड्ग मोल ले रहा [होगा], ऐ चाद चलो, उससे भेट करते हुए चलें।" (६) [इस प्रकार] सूर्य (लोरिक) चाद को लेकर और गोवर को अधकारपूर्ण करके चला। (७) उस समय बिजली 'लप-लप' कर रही थी, घन गरज रहा था और कोई निकल नही सकता था।

(२८२)

कुवरू 'अगुमन' चीन्हा लोरु। 'धावा' सिंघु चला 'सभ' गोरू।
'पाछे' 'हेरत' चांदा आई। जिउ 'कुवरु कर गएउ' उडाई।

'कहेसि' लोर 'तुम्ह' भला न किया । 'कित' लइ 'चले' महर कइ धिया ।
'तिरियहि जरम' 'टाक बुधि' होई । 'तिन्ह के' सग 'न' लागइ कोई ।
बूढिय 'खोलिनि' तुम्हरी माई ।
'तेहि कइ' 'मया' 'न तुम्ह चित(चित्त)' आई ।
'बारि' बियाही मैना 'माजरि' लोरिक आहि तुम्हारि ।
'बारि बूडि(ढि)' 'ररि' 'मरिहहिं' 'करहु न चिंत हमारि' ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र २३१, म० पत्र १४६।१, बी० ८६५-८६८ । म० मे इस कडवक के नीचे तर्क है 'चाद', जो आगे के एक कडवक का है ।

शीर्षक—मैं० · शिनाख्तन कुवरू लोरिक रा दरमियाने राह अज पसेऊ चादा ।

म० शिनाख्तन कुवरू लोरिक रा ।

पाठान्तर—(१) १ मैं० अउतहि, बी० येकमैं । २ म० रहा, बी० धावैं । ३ म० चला सब, बी० मिलावैं । (२) १. बी० पाछैं । २ म० देषइ । ३ बी० कवरू कर गयो । (३) १ बी० कहा । २ मैं० तइ । ३ बी० कथ । ४ मैं० चला (४) १ म० तिरियहि जरहि, बी० तो यह जनम । २ म० नाक वडि, बी० ना बढ (बुधि—फा०) । ३ म० निकरे, बी० तिहकैं । ४ बी० कि । (५) १ म० वूढी खोइलिन, बी० बूढी षौलनि । २. मैं० तेहिक, बी० तिहकी । ३ बी० चिंता । ४. म० न चित मह, बी० चितह न । (६) १ बी० बार । २ म० मे नही है । (७) १ बी० बार वूढ । २ म० दोउ, बी० चरि । ३. बी० मरिहैं । ४. म० करु न चिंत तुम्हारि, मैं० मानइ वचन हमार ।

वी० मे उपर्युक्तयो के पूर्व एक अर्द्धाली और है

चाद कहा कवरू सुनि बाता लोर मोर मनु येकैं राता ।

किन्तु यह आगे आने वाले कडवक की है ।

अर्थ—(१) कुवरू ने आगे से ही लोरिक को पहचान लिया [और वह दौड कर उसके पास जा पहुँचा], [जैसे] जब सिंह दौड पडता है तो समस्त गोरू (जन्तु) चल पडते हैं । (२) [किन्तु] उसके पीछे चादा को आई हुई देखते ही कुवरू का जीव उड गया । (३) [उसने कहा,] "ऐ लोरिक, तुमने यह अच्छा नही किया । तुम महर की दुहिता को लेकर कहा जा रहे हो ? (४) स्त्रियो को जन्म (जीवन) भर एक टक ही बुद्धि होती है, [इसलिए] उनके सग कोई नही लगता है । (५) तुम्हारी माता खोलिन

बुड्ढी है, तुम्हे चित्त मे उसकी ममता [भी] नही आई ? (६) [फिर] मैना माजरि (मदन-मजरी), ऐ लोरिक, तुम्हारी बचपन की विवाहिता है ! (७) वे दोनो बालिका (बाला) और बुड्ढी चिल्ला चिल्ला कर मर जाएगी, [भले ही] तुम मेरी चिंता न करो ।"

(२८३)

चाद कहा कुवरू सुनि बाता । लोर मोर 'जिउ एकइ' राता ।
'जियतइ जीउ' 'न छाडउ' काऊ । 'दुहु दिसि भए सो लोग बटाऊ' ।
हउ 'ओहि के वहु चित (चित्त)' 'बस' मोरे ।
'काह कुवरू होइ' 'रोए' तोरे ।
इहिं बिधि 'देखि देसतर' 'लेऊ' । काहु 'कहउ' 'अनु' अतर 'देऊ' ।
तुम्ह 'हम' तजि 'जाइबि परदेसू' । मइ दुख 'कीन्ह' पुरुख कर भेसू ।
हउ 'महरी कइ धिय सो' चादा 'चहू भुवन' उजियारि ।
'कवन अजोगि सग मिलीयो (लेउ)' 'कुवरू' भाइ तुम्हार ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र २३२, म० पत्र १४६।२, भो० पत्र २६ (नवीन), बी० ६४४-६४६ ।

शीर्षक—मैं० गुफ्तने चादा कुवरू रा हिकायते इश्क ।
म० गुफ्तने चाद कुवरू रा जवाब ।
भो० जवाव दादने चाद अज कुवरू रा ।

पाठान्तर—१ म० जिउ अव केहि, भो० जिउ एकइ, बी० मनु ऐकै । (२) १ बी० जवते जीव, भो० जियतइ जीय । २ मैं० न छाडीउ (छाडिउ), बी० नु छाडो । ३ म० दुइ दिसि होइ कि बाट बटाऊ, भो० दुइ दिसि भए यह लोग बताऊ, बी० दह दिस भये ति लोर वटाऊ । (३) १ म० ओहि के वह जिय, भो० ओहि के वह चित (चित्त), बी० उहि कै वोहु चित । २ बी० वसि, मैं० मे नही है । ३ बी० काहु कहा होइ, म० का होइ कुवरू । ४. भो० रोए । (४) १ बी० देषु दिसतर । २ मैं० लेहू, बी० लीयो । ३. भो० करउ, बी० कही । ४ म० कस, भो० किसु । ५ मैं० देहू, बी० दीयो । (५) १ म० मे नही है । २ मैं० जाइहिं परदेसू, बी० लै जाइ विदेसू । ३ भो० लीन्ह । (६) १ म० महरी कै धिय, मैं० सो महर धिय, बी० महरे की धीय सु । २ बी० आछी जग । (७) १ म० लोर लागि चित

वाधिउ, मैं० कवन अजोग सध किएउ, बी० कौन औजोगि सजो मिलीयो, भो० कवन अजोग सग मिल । २ बी० कवरू ।

अर्थ—(१) चादा ने कहा, "कुवरू, [मेरी] बात सुनो, लोरिक का और मेरा जीव एक है और वह रक्त (अनुरक्त) है । (२) जीव के जीवित रहते [लोरिक को] कभी न छोड़ूँगी, दो दिशाओ मे वे ही लोग हो जाते है जो पथिक होते है । (३) मै उसके और वह मेरे चित्त मे वसते है, [इसलिए] कुवरू तुम्हारे रोने से क्या होता है ? (४) इस प्रकार [घर से निकल कर] मैं देशान्तर देख लूगी, [इससे अधिक] क्या कहू तथा दू ? (५) तुम्हे (तुम सब को) छोडकर हम परदेश जाएगे, इसी दु ख के कारण मैंने पुरुष का वेप कर लिया है । (६) मैं महरी की कन्या वह चादा हू जो चारो भुवनो का प्रकाश है । (७) [तव] कौन-सी अयोग्य के साथ, ऐ कुवरू, तुम्हारा भाई मिला है ?"

(२८४)

'असि' चादा तुम्ह लाज 'गवाई' । सरग हुते 'धर ऊतरि' आई ।
'मुख कारे निसि रहै(हइ)''गोवारी' । 'पाख पाख दिन''होइ'अधियारी'।
'रहु नहिं चाद(दा)''मनहि लजाई' । 'असि कि होइ गोवर कइ' जाई ।
'बारह मदिर रइनि 'दिन' धावसि । सूरुज सेजि 'उजियारे' रावसि ।
'तजि जिउ सोग रबि रहइ' लुभाई । 'कहउ बात तू खिन न लजाई' ।
दान खरग कर 'निरमल' लोरिक भाइ हमार ।
'तू रे निलज्जि अमावसि कुर जो कीन्ह' अधियार ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २३३, म० पत्र १५२।१ (म० मे इस पत्र के बाद पत्र-सख्याए बदली हुई है—प्रति के दो पत्र यहा पर त्रुटित हैं), बी० ९४७-९४९ ।

शीर्षक—म० जवाव दादने कुवरू वा एहानत चादा रा ।

म० मलामत करदन कुवरू चादा रा ।

भो० मे पूर्ववर्ती कडवक के नीचे इसी कडवक का तर्क है 'असि चादा', जिससे यह ज्ञात होता है कि अत्रुटित अवस्था मे उसमे भी यह छद रहा होगा ।

पाठान्तर—(१) १ बी० अस । २ म० लवाई, बी० गमाई । ३ बी० उतरि भुइ, मैं० भुइ उतरी । (२) १. मैं० मकु कारे मुख तैं फिरसि, म० मुख कारे निसि रहु न । २ बी गुवारी । ३ मैं० पाखहि पाख । ४ बी० होय । (३) १ म० रहसि त (न) चादा, बी० रही न चादा । २ बी० मनह

सुजाई । ३ बी० अस क्यौ होइ महर की । (४) १. बी० बाराह मंदिर रैनि । २ म० तू । ३. म० अधियारे । (५) १ म० तजि जिउ सोक मरि रह, मैं० तजि जिउ सोक अरु रहइ, बी० तुझहि सूग रबि रह्यो । २ म० आन होइ तउ मरइ लजाई, बी० कहौ बात ता कहनु न जाई । (६) १ बी० निरमर । (७) १ म० तू तउ मैन असि निलजि अमावस कै, बी० तू निलज अमावस कुरह कीन्ह ।

अर्थ—(१) "ऐ चादा (चाद)", [कुवरू ने कहा,] "तूने लज्जा गवा दी जो तू आकाश (धवलगृह) से उतर कर भूमि पर आ गई ! (२) काले [किए हुए] मुख के साथ, ऐ ग्वालिन, तू रात मे रहे और पक्ष-पक्ष भर के दिन तू अधकारमयी होती रहे ! (३) तू मन मे लज्जा लाकर के [चुप] नही रह सकती है ? क्या गोवर की कन्या ऐसी होती है [जैसी तू है] ? (४) रात-दिन तू बारह मदिरो (बारह राशियो) मे दौडती रहती है, और सूर्य (लोरिक) की शैया मे उजाले मे (सबकी जानकारी मे) मे रमण करती है । (५) तू [लोक-निंदा का] शोक त्याग कर सूर्य (लोरिक) को लुब्ध कर रखती है । मैं तुझसे ये बाते कह रहा हू और तू क्षण भर के लिए भी लज्जित नही हो रही है ! (६) मेरा भाई लोरिक खड्ग-दान मे निर्मल है, (७) जब कि तू निर्लज्ज अमावस्या है, जिसने अपने कुल को ही अधकार पूर्ण कर लिया है ।"

(२८५)

'धरि कुवरू लोरिकु' कठि लावा । नैन नीरु भरि 'गाग' बहावा ।
'गी(गि)य छोडि' कुवरू 'पाइनि' परा । बिरह दगध 'घाए जनु ररा' ।
'देखि सु(सो)' चादा 'चितहिं सकानी' । 'म कहुं लोर छाडइ मोरि कानी' ।
कातिग मास 'खेलि रितु' गाई । हम 'फुनि कुवरू खेलत' आई ।
'ठाढे कुवरू हरदी बाटा । चलन देहु [?] चाद सघाता' ।
'माई खोलिनि औ मैना' 'कहु सदेस अस जाइ' ।
'पीहर जान न पावइ माजरि रहइ खोलिनि के पाइ' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २३४, म० यहाँ पर त्रुटित है, बी० ६५०-६५२ ।

शीर्षक—मैं० विदाअ करदने लोरिक बा कुवरू व पेशतर रफ्तन ।

म० मे पिछले कडवक के बाद तर्क है 'कुवरू', जो इसी कडवक का है, अत अत्रुटित म० मे भी यह कडवक रहा होगा ।

पाठान्तर—(१) १ बी० हरका क [illegible] रुडवक १. बी० केस छोरि। २ बी० पाइ। ३. बी० [illegible] देखहु। २ मैं० चितहि सखानी, बी० चिताह सकानी। [illegible] ने छाडै मन जानी। (४) १ बी० खेल रुति। २ बी० कव [illegible] (५) १ बी० मे ऊपर की (४) यथा (५) है और (४) निम्नलिखि

तौ लहि चाद खेत चहु गई   लाबी बीष उतावरि भई।

(६) १ बी० मा खौलनि औ माजरि। २ बी० कहौ सदेसा जाई। (७) १ बी० बाहरि जान न देयो मैना पुरुऔ पौलनि पाई।

अर्थ—(१) कुवरू को पकड कर लोरिक ने कठ से लगाया, और नेत्रो मे (अश्रु) भर-भर कर उसने गगा वहा दी। (२) उसकी ग्रीवा को छोड कर कुवरू उसके पैरो मे [गिर] पडा, और मानो विरह-दाह के घावो से [पीडित होकर] चिल्लाने लगा। (३) यह देखते हुए चादा चित्त मे [पुन] शकित हुई [क्योकि उसने सोचा,] 'कही लोरिक मेरी कानि न छोड दे।' (४) [तव तक लोरिक ने कहा,] "कार्तिक मास को खेल कर (सुख-पूर्वक व्यतीत कर) और उसके ऋतु-गीत गाकर हम, ऐ कुवरू, पुन [गोवर] आकर खेलते (सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करते। (५) ऐ कुवरू, हम हरदी के मार्ग मे खडे हैं, चाद के साथ [मुझे] जाने दो। (६) मा खोलिन तथा मैना से जा कर ऐसा सदेश कहना, (७) "माजरि (मैना) पीहर न जाने पाए, और वह खोलिन के पैरो मे (उसकी सेवा मे) रहे।"

१८ बावन-युद्ध खण्ड

(२८६)

'चले दोउ भुइ पाउ न धरही। पैग बेगि उतावर भरही।'
'चला लोर मिलि चादा आई। खोलिनि मैना पसरी माई।'
'चादहि देखि लोर कह कहा।
कइसे भउ मलिन जो चित (चित्त) अहा।'
'अउ अस कहा सुनहि तू लोरा।
नीके मन चित करिहइ(उ ?) तोरा।'
'तोरे सनेह छाडिउ घरु बारू। कइ बोरहि कइ लावहि पारू।'

'सांझ परी दिन अथवइ' लोरिक चांदा दोइ ।
'अवघट' घाट 'गांग के' रहे पुरुष तिरि 'सोइ' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २३५, म० यहाँ पर त्रुटित है, बी० ६५३-६५५ ।

शीर्षक—मैं० : रवान शुदने लोरिक व चादा व शिताब ।

पाठान्तर—(१) १ बी० चला लोर धरि पाउ न धरै. इक इक बीष खेत लौहु भरै । (२) १. बी० मिल्यौ बीरु चादा चलि गई . मैना षौलनि मन अस भई । (३) १ बी० चादा देषि लोर चितु गहा ले उसास फुनि बेदन कहा । (४) १ बी० चाद कह सुनि तुहि लगि लोरा . बहुतक महतु गयो है मोरा । (५) १ बी० तुम्ह लगि छाडे पास परिवारू . कै बूडहु कै लावोहु पारू । (६) १ बी० साझ परी दीनु आथवा । (७) १ बी० औघट । २ बी० गंगा कै । ३ बी० सोय ।

अर्थ—(१) दोनो चल पडे किन्तु भूमि पर वे पैर नही रख रहे थे, उतावली के पग वे जल्दी-जल्दी भर रहे थे । (२) लोरिक चल पडा था और चादा आकर उससे मिल गई थी, [फिर भी लोरिक के मन मे] खोलिन और मैना की माया (ममता) प्रसार कर रही थी । (३) यह देख कर लोर से चादा ने कहा, "जो तुम्हारा मन था, वह मलिन कैसे हो गया ?" (४) उसने पुन ऐसा कहा, "ऐ लोरिक तू सुन, मैं अच्छे मन से तेरी चिंता करूँगी । (५) तेरे ही स्नेह मे मैंने घर-बार छोडा है । तू या तो (चाहे) मुझे डुबाए और या तो (चाहे) मुझे पार लगाए ।" (६) संध्या पड गई, दिन अस्तमित हो रहा था, [इसलिए] लोरिक तथा चादा दोनो (७) गगा के एक औघट घाट पर पुरुप और स्त्री सो रहे ।

(२८७)

'गाग' 'सरस्सइ अउ तेहि तरना' । लोरिक जाइ लीति एक छरना ।
चादा फिरि फिरि आपु 'दिखावा' । 'मकु खेवट मोहि देखत आवा' ।
सरगा 'ठाउ' जउ 'खेवट' आवा । कर कगन चादइं 'चमकावा' ।
'खेवट' देखि 'अचभइ' रहा । तिरिया एक 'अकेरिइ' अहा ।
'खेइ नाउ दहु' देखउ जाई । कवनि 'नारि कहवा हुत' आई ।
सरगा 'पेलि' चलाएसि खिन खिन चित(चित्त)हि 'सखाइ' ।
काह 'कहिअ कस पूछिअ' कइसे इहवा आइ ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २३६, म० पत्र १५२।२। बी० मे इस एक कडवक के स्थान पर चार कडवक हैं [दे० परिशिष्ट]।

शीर्षक—मैं० रसीदने लोरिक व चादा बरे गगा व इशारत करदने चादा मल्लाह रा।

म० दास्तान नमूदन चादा व दास्तान मल्लाह रा।

पाठान्तर—(१) १ म० गग। २ मैं० सरिस बहा मनकरना। (२) १ म० दिखावइ। २ म० मोहि देखत मकु केवट आवइ। (३) १ म० तीर। २ म० केवट। ३ मैं० झमकावा। (४) १ म० केवट। २ म० अचभउ। ३ म० अकेली। (५) १ म० कहइ नाउ लइ। २ मैं० तिरी यह इहवा [तुल० (७)]। (६) १ म० वेगि। २ म० सपकाइ। (७) १ म० कहउ केउ पूछउ।

अर्थ—(१) गगा सरस हो रही (बढ रही) थी और उसे पार करना था, [यह देखकर] लोरिक ने जाकर एक छलना (छलपूर्ण युक्ति) का आश्रय लिया (२) [स्वय वह छिप गया—दे० बाद के कडवक, और] चादा पुन -पुन अपने को दिखाने लगी कि कही (कदाचित्) उसे देखकर केवट आ जाए। (३) जब एक केवट [अपने] सरगे (नाव) के स्थान पर आया, चादा ने हाथ का कगन चमकाया। (४) केवट यह देखकर अचभे मे हो रहा कि एक स्त्री [वहा] अकेली ही थी। (५) [उसने मन मे कहा,] "नाव को लेकर और [वहा] जाकर देखू कि यह कौन-सी स्त्री है और कहा से आई हुई है।" (६) उस सरगे (नाव) को उसने ढकेल कर चलाया, [किन्तु] क्षण-प्रतिक्षण वह चित्त मे शका कर रहा था (७) कि इससे क्या कहा जाता और कैसे पूछा जाता कि यह यहाँ किस प्रकार आई हुई थी।

(२८८)

'खेवट' देखि बिमोहा 'रूपा'। अभरन बहुल सो नारि 'सुरूपा'।
दइय 'गोसाईं' पूजइ आसा। असि तिरिया जउ आवइ पासा।
'कहा नाउ परदेसी चाहू (चहाहू)'। 'बइसि' सरगा बाट गहाहू।
लोर चाद 'दोइ सरगा' चढे। 'एक काठ के दोऊ' गढे।
'खेवट ठाढ उरवारहिं रहा'। करिया 'लोर आपु कर' गहा।
'आगे' 'चाद सयानी' 'पाछे' लोरिकु वीरु।
दइय 'सजोगे' गाग 'तिरि आए' 'बूडत पाएउ' तीरु॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २३७ (१)-(३)+२३६ (४)-(७), म० पत्र १५३, बी० ६६८-६७० ।

मै० मे इस कडवक मे दो और कडवको की पक्तिया हैं, जो प्रक्षिप्त ज्ञात होती है (दे० परिशिष्ट के कडवक २८८ अ–२८८ आ) ।

म० मे इस कडवक के वाद तर्क है 'तउ लहि', जो अगले कडवक का है।

शीर्षक—मै० : आशिक शुदन मल्लाह अज़ दीदन जमाल सूरत चादा ।।

म० : दस्तान मुश्ताक शुदन केवट अज़ दीदन ऊ ।

पाठान्तर—बी० मे प्रथम तीन अर्द्धालिया भिन्न है

(१) षेवट षाचि सुरग लै आवा : विनु इक लोरिकु माथु उठावा ।

(२) उठा लोरु षेवट तस मारा वैंसि रही घन उठै न पारा ।

(३) देहि तराइ तौ षेवट पेंवा . दोइ जने चरे न तीसर लेवा ।

(१) १ म० केवट । २ मै० रूप । ३ मै० सुरूप । (२) १. मै० विघाता । (३) १ मै० खेवट कहा उतर दिसि जाहू । २. म० लइ कइ । (४) १. वी० दोउ सरगह, म० आइ सरंगहि । २ म० अति सुरूप दइय के, बी० ऐक घाटि जानौ दोऊ । (५) १ म० केवट उतरि करियावन गहा, बी० ऊभा पेवटु पारे रहा । २. म० लोर आपुन कर, बी० लोरिक योही । (६) १ वी० आगैं, मैं० आगू । २ बी० षेव सु चादा । ३ म० पाछू । (७) १ म० सजोग । २ १ वी० सव लाघी, म० सब उतरे । ३. मै० बूडत पावा, वी० वूडन पायो ।

अर्थ—(१) केवट उसके रूप को देखकर विमोहित हो गया, [और उसने मन मे कहा,] "इसके शरीर पर वाहुल्य के साथ आभरण है और नारी सुरूपा भी है। (२) हे दैव स्वामी, मेरी आशाएं पूरी हो जाए यदि ऐसी स्त्री मेरे पास आ जाए ।" (३) [केवट ने कहा,] "ऐ परदेशिनी, क्या तुम नाव चाहती हो ? इस सरगे (नाव) पर वैठ कर मार्ग पकड़ो ।" (४) [यह सुनकर] लोरिक और चादा दोनो ही उस सरगे (नाव) पर चढ़ गए [केवट को उन्होने चढने न दिया], दोनो एक ही काठ के गढे हुए थे (एक-से चतुर थे) । (५) केवट [नदी के] इस पार ही खड़ा रह गया और लोरिक ने करिया (डाड) अपने हाथ मे कर ली । (६) आगे सयानी चादा थी, और उसके पीछे लोरिक वीर था । (७) दैव के सयोग से वे गंगा को पार कर आ गए, और डूवते-डूवते दोनो ने तट प्राप्त किया ।

(२८६)

'तउ' लहि बावनु आइ तुलाना। पूछा 'खेवट' 'पिरम' भुलाना।
'चेरा चेरी मोरे' 'दोई'। इहिं मारग 'तइ' देखे 'कोई'।
'सुनि' 'खेवटु मुखु देखत' हसा। 'कुवर कुवरी इक इहवा' बसा।
पुरुख लुकान 'तिरी' दिखरावा। हउ रगि 'राता' तेहि 'के' आवा।
'ओहि राजा ओहि' रानी जाने। 'कहउ साच तोहिं जानि नखाने'।
'उहइ नाउ लइ डाडइ लाए' ऊभी चेरि न 'जोवइ'।
'बावन देखि दौरि' धसि 'लीती' 'एहि(ही) परिहस रोवइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २४०, म० पत्र १५३, बी० ६७१-६७३।

शीर्षक—मैं० आमदने बावन वर किनारह गगा व पुरसीदन मल्लाह रा। म० दस्तान आमदन बावन शौहर चाद पुरसीदन।

पाठान्तर—(१) १ बी० तौ। २ मैं० केवट। ३ बी० परम। (२) १ मैं० चेरी चेर मोर दुइ। २ मैं० आए, बी० दोऊ। ३ मैं० तोहि, बी० तैं। ४ मैं० पाए, बी० कोऊ। (३) १ बी० सु। २ म० कइ केवट मुह देखि। ३ बी० कवरि कवरु यकु ईहिवा। (४) १ म० तिरिया, मैं० तिरियइ। २. म० रातैं। ३ बी० तिह कैं। (५) १ बी० वोह राजा वाह। २ बी० कहैं साच तोर झूठु बषाने। म० मे अर्द्धाली है अति रूपवत विचक्खन सोई रन खत्तिरी पुरुष औ जोई। (६) १. बी० बहु सुरग दिषरावा। २ बी० जेऊ। म० मे चरण है वह देखु सरगा लागा तीरहि धनी निचोरइ चीर। (७) १ बी० देषि बावन, म० बावन दौरि ऊभि। २ म० लीतेसि। ३ बी० परिहस परिहस रोऊ, म० परिहस गने न नीर।

अर्थ—(१) तब तक बावन आ पहुचा और [चादा के] प्रेम मे भूले हुए (भ्रमित) केवट से उसने पूछा, "(२) मेरे चेरी और चेर (सेविका और सेवक)—दो जन—[इधर आए] हैं, इस मार्ग मे क्या तुमने [दोनो मे से] किसी को देखा है?" (३) यह सुनकर केवट उसका मुख देखते हुए हस पडा [और उसने कहा,] "एक कुमारी और एक कुमार यहा वसे थे। (४) पुरुष छिप गया और स्त्री ने अपने-आपको दिखलाया। मैं उसी के अनुराग मे रगा हुआ [यहा तक] आया। (५) मैने उसे राजा और उसे रानी समझा, मै सच कह रहा हू, तुम्हे [पीछा करते हुए] जानकर वे [नदी] पार कर गए। (६) [तुम्हारे] उसी [चेरे] ने नाव को लेकर डाड लगाया

चेरी खडी रही और उसने [फिर कर] देखा भी नही।" (७) यह देखकर वावन दौडा और [नदी मे] धंस कर इस परिहास [की स्थिति] पर [कि उसकी स्त्री को एक अन्य पुरुप भगाए जा रहा था] वह रोने लगा।

(२९०)

'धनुक' बान बावन 'सिर' धरा। लोरिक देखि 'गांग' महि परा।
'जउ लहि वावन' 'पार न भएऊ'। 'तउ लहि लोर' 'कोस चिहु' गएऊ।
सास 'मारि' बावनु तस धावा। 'मारि पबारउ' 'जान' न पावा।
'जस रे' 'गोवारु चरावइ' गाई। अपनी 'करइ सो धाइ' पराई।
'जउ जउ' 'धावइ' पावइ खोजू। 'एहि परिहस तउ' रहइ न रोजू।
'ओइ रे चलहि' यहु धावइ' 'मिला' कोस दस जाइ।
ऊचा 'रे बिरिख' सुहावन 'एक हुत' 'लोरिक लीन्हा 'आइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २४१, म० पत्र १५४, बी० ९७४-९७६।

म० मे इस कडवक के वाद तर्क है 'चादइ देखा', जो अगले कडवक का है।

शीर्षक—मैं० . दर गाग उपतादने बावन व दुबाल लोरिक करदन।

म० दस्तान दुवाल . चाद व लोरिक दोबारन वावन।

पाठान्तर—(१) १. वी० धनुष। २ म० कर। ३. बी० गगा। (२) १. वी० वावन वीर। २ म० पारहि गोऊ, बी० पार जौ भए। ३ बी० तौलहि लोरिक। ४ म० कोस दुइ गएऊ, बी० जिउ लै गये। (३) १ बी० मारि (?)। २ वी० मारि बिपारौ। ३ म० जाइ। (४) १ म० जइसन, मैं० जाति। २ बी० गुवारु चरावै। ३ वी० करैसु धाय। (५) १ बी० जौ जौ, मैं० जेउ जेउ। २ म० धाव न, बी० धावै। २ म० एहि परिहस, बी० अति परिहस चषि। (६) १. म० ओइ रे चलइ, वी० वैं रु चले। २ वी० वहु धावैहि। ३ वी० मिल्या। (७) १ बी० मदिर, म० खेर। खेडा। २ वी० म० मे नही है। ३ मैं० लोरहि लीन्हा। ४ बी० धाय, म० जाइ।

अर्थ—वावन ने धनुप-वाण को सिर पर रक्खा और लोरिक को [नदी के उस पार] देखकर वह गगा मे [कूद] पडा। (२) [किंतु] जव तक वावन [नदी के] पार भी न हुआ था, तव तक लोरिक चार कोस आगे चला गया था। (३) सास रोक कर वावन उसी प्रकार से दौडा [और उसने कहा,]

"मैं उसको मार कर फेक दूगा, और वह जाने न पाएगा। (४) [जिस प्रकार दौड-दौड कर] जाति के उस ग्वाले ने गाए चराई है, अपनी [जैसी] वह कर रहा है और दौड कर भाग रहा है !" (५) [किंतु] जैसे ही जैसे वह दौडता था उसका खोज (चरण—चिह्न) पाता था, इस परिहास से तब उसका रोना [भी] न रहा। (६) वे चल रहे थे और यह दौड रहा था, [इस प्रकार पीछा करते-करते] यह उनसे दस कोस पर जा मिला। (७) एक ऊचा और सुहावना वृक्ष [वहा पर] था, उसे लोरिक ने आ लिया।

(२९१)

'चादइ' देखा बावनु आवा। बचनु न 'आवइ' 'दात कपावा'।
'फिरि जउ' लोरिक पाछे हेरा। बावन आइ 'बाघ' जस घेरा।
'मुख(मुक्ख)फिराइ' लोर 'सेउ' कहा। 'अइ' देखु बावन आवत अहा।
'धनुक चढाइ बावन कर गहा'। 'तस मारउ जस देह न रहा'।
'ओहट' 'हुतं' बावन सरु मेला। 'सो रे' लोरिक ओडन 'ठेला'।
'ओडन फूट लुहावट फूटा अउ लोरिक कइ' बाह।
'ऊजा बिरिख आब कर लोरिक लीन्ही छाह' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २४२, म० पत्र १५४, बी० ६७७-६७९।

शीर्षक—मैं० खबर करदने चादा बावन मी आयद व आमदने बावन।
म० दास्तान नरसीदन चाद अज आमदन बावन।

पाठान्तर—(१) १ बी० चादेहि। २ बी० आवै। ३ बी० ओठ कपावा, मैं० थाके पावा। (२) १ मैं० चादइ। २ बी० पाग, म० वाग। (३) १. बी० मन ठहराइ, म० मुह निहुराइ। २ बी० स्यो। ३ म० वह, बी० ये। (४) १ बी० धुनषु चराइ बावन सिर धरा [तुल० २९० १]। २ बी० तस मारा जस तनु भुई परा। (५) १ बी० दूर। २ म० ओहट। ३ म० सोई, बी० सो सरु। ४ बी० पेला। (६) १ बी० वोडन फूटि लुहावटि फूटी औ लोरिक की। (७) १ बी० ऊचा रूख अबर कर लोरिकि लीन्ही छाह, मैं० परा बिरिक्ख आव कर लोरिक ऊभा तेहि छाह, म० ऊजा विरिख सुहावन लोरिक लीतेहि छाह [तुल० २९० ७]।

अर्थ—(१) चादा ने देखा कि बावन आ गया था, [इसलिए] उसके मुख से बोल नही आ रहे थे और उसके दात काप रहे थे। (२) [तब तक] बावन ने आकर व्याघ्र के सदृश [उसे] घेर लिया, जब तक लोरिक ने घूम

कर पीछे [लोरिक] की ओर देखा। (३) उसने मुख फिरा कर लोरिक से कहा, "यह देख, बावन आ रहा है।" (४) [लोरिक ने यह सुनकर] धनुष चढा कर हाथ मे बाण लिया [और कहा,] "इसे मैं ऐसा मारूगा कि इसका देह न रहेगा।" (५) [तब तक] ओहट (दूर) से बावन ने शर छोडा [तो] उसे लोरिक ने [अपने] ओडन से ठेल दिया (रोक कर व्यर्थ कर दिया)। (६) [पर] उसका ओडन फूट गया, लुहावट भी फूट गया, और लोरिक की [एक] बाह [फूट गई], (७) तथा वह आम वृक्ष उखड गया जिसकी छाया लोरिक ने ली थी।

(२९२)

'सुनु बावन कह' 'चाद गोवारी'। काहि लागि 'तुम्ह कीन्हि' गुहारी।
माइ बाप 'जउ' दीन्ह बियाही। 'बरिस दिवसु' 'हउ तुम्ह पह' आही।
पिरम कहानी 'कीन्हि न' बाता। 'तइ नहि देखेउ' कार कि राता।
'सवन' 'मना हुत तुम्ह रे ओनाइउ'। 'तरसि मुइउ पइ सेज न पाइउ'।
'जसि आइउ तसि मइके गइऊ। दइय क लिक्खा सो मइ पइऊ।'
बहुरि 'जाहि' घरि आपने 'कहा सुनहि जौ(जउ)' मोरु।
राव रूपचद बांठा 'मारा' 'सो यह कूकू' लोर॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २४३, म० पत्र १५५, बी० ९८०-९८२।

मैं० मे इस कडवक के बाद तर्क है 'अरे', जो अगले कडवक का है।

शीर्षक—मैं० गुफ्तने चादा मर लोरिक रा बावन रा।

म० दस्तान दबाल चाद व लोरिक दूवद बावन व गुफ्तन चादा बावन रा बहुजूर लोरिक।

पाठान्तर—(१) १ मैं० बावन कह कौन, बी० सुनु बावन कहै। २. बी० चादा नारी। ३ म० तू करसि, बी० तुम्ह लाग। (२) १ बी० जौं। २ बी० बरसु द्यौंसु। ३ बी० हौं तुम्हरैं। (३) १ म० कही जो, बी० कहौ न। २. बी० नैंन न देख्यौ। (४) १ बी० म० स्रवन। २ बी० सुना हम तुम्हरा नाऊ। ३ बी० तिसर मुये दहि सेज क ठाऊ। (५) १ म० जसि देखिउ तसि मइकइ आइउ दइय क लेखा हुत सो पाइउ, बी० मे यह अर्द्धाली नही है। (६) १ बी० जाहु। २ म० बावन कहा सुनहि तू, मैं० बावन सग तजि। (७) १ बी० मार्यो। २ म० अहइ सो कूकुहि, मैं० आहि सो कूकू।

अर्थ—(१) चादा ग्वालिन ने कहा, "ऐ बावन, सुनो तुमने किसलिए यह गुहार (पुकार) की है? (२) मा-बाप ने जब [मुझे तुम्हारे साथ]

ब्याह दिया और मै बरस-दिन तक तुम्हारे पास रही, (३) तुमने प्रेम कथन करने पर [भी] बाते न की, और तुमने न देखा कि मैं काली (कुरूप) हू कि राती (सुदरी)। (४) कानो और मन से मैं तुम्हे ओनाती रहती (तुम्हारे बोल सुनने के लिए आतुर रहती), किन्तु तरस कर मर गई और [तुम्हारी] शैया मैंने न पाई। (५) जैसी [क्वारी] मैं आई थी, वैसी ही [लौट कर] मैं मायके गई, दैव का जो लेख था, वह मैने प्राप्त किया। (६) ऐ बावन, तू अपने घर लौट जा, यदि तू मेरा कहना सुने। (७) जिसने राव रूपचद के बाठ को मारा था, यह वह कूकू लोर है।"

(२९३)

'अहे' 'पापिनि हउ तोहि का मारउ'। नाकु काटि 'कस' देस 'निसारउ'।
तोहि जसि तिरी 'कुवडा' 'धसि लेई'। बात कहत 'आन' ऊतर देई।
कस 'लोरिक सेउ' मोहि 'डरावसि'। 'तउ बडबोलि जान जउ' 'पावसि'।
'तोहि' लगि लोरिक जीउ 'गवावा'। 'भेट भई' अब जान न 'पावा'।
'बिसिख' मारि ओडन 'सेउ' 'फोरउ'। 'काटउ' मूड भुआडड 'तोरउ'।
अस सुनि लोरिक 'सिघ जस' 'कोपा' ओडन लइ पटतारि'।
'बावन एक फुक(पुख)सर छाडा गएउ बिरिख सउ फारि'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २४४, म० पत्र १५५, बी० ९८३-९८५।

शीर्षक—मैं० जवाब दादने बावन चादा व अन्दाख्तने तीरे दु अम्बरू।
म० दस्तान जवाब गुफ्तन बावन बा चादा।

पाठान्तर—बी० मे ऊपर दी हुई (२) नही है, ऊपर की (३), (४) (५) उसमे क्रमश (२), (३), (४) है, और यथा (५) है

जौ पर आइ सि करह उचावा ले बोडन कस सौहा आवा।

(१) १ म० अरे, बी० है। २ बी० पापनि अब का तुझ मारौ। ३ म० तोहि। ४ बी० निकारौं। (२) १ म० कुवा। २ मैं० अस, म० कइ। (३) १ म० लोर सेउ, बी० लोरिक पे। २ म० डरपावसि। ३ बी० तौ बड बोलु जान जौ, म० तू पइ बोलि जाइ जनि। ४. मैं० पावइ। (४) १ बी० तुहि। २ मैं० गवावहि। ३ बी० भइ सहेट। ४ मैं० पाइहि। (५) १ मैं० बी० बिरख। २ मैं० तेहि, बी० सौ। ३ बी० फोरौ। ४ बी० काटौ। ५ बी० तोरौ। (६) १ बी० मे नही है, मैं० सिग जस। २ म० गाजा। ३ बी० बोडन लै पटतार, मैं० ओडन खाड सभारि। (७) १ बी० बावन भुवग सर

छाड्यौ मार्यो विरिखु दुफार, म० वावन इक जउहि सर छोडा अगवहि वीर सभारि ।

अर्थ—(१) [वावन ने उत्तर दिया,] "हे पापिनी, मै तुझे क्या मारूं, और [तेरी] नाक काट कर तुझे देश से क्या निकालू ? (२) तेरी जैसी स्त्री तो कुअडे (छोटे-मोटे कुए) मे धस लेती (कूद पडती), किंतु तू [ऐसी निर्लज्ज है कि] वाते कहते हुए अन्य ही उत्तर देती है । (३) कैसे तू मुझे लोरिक से डरा रही है ? तब तो तू ऐसी लवी-चौडी बाते करे जव तू जाने पाए ? (४) तेरे ही लिए लोरिक [अब] प्राण गवा रहा है, अब उससे भेट हो गई है, वह जाने नही पा सकता है । (५) वाण मार कर मै [लोरिक का उसके] ओडनके साथ फोड दूगा, उसके मुड को काट लूगा और उसके भुजा-दडो को तोड डालूगा ।" (६) ऐसा सुन कर लोरिक सिह के सदृश कुपित हुआ, उसने ओडन पटतार (संभाल) कर ले लिया था । (७) [तव तक] वावन ने एक फुक (पुख—वाण का अग्र भाग) तथा शर (सरकडा—वाण का पिछला भाग) छोडा, जो वृक्ष को [अपने] साथ फाडता हुआ [निकल] गया ।

(२९४)

चांद 'कहा' अब देवरु 'लीजइ' । 'गाढे ओखदि ढीला दीजइ' ।
दो[इ] सर गए रहा अब एकू । 'लोर' बीर 'कइसेउ कइ' टेकू ।
'वह सर मेलि फुनि नियर न आवइ' । 'जउ आवइ तउ जीउ गवावइ' ।
'गाढे रोस जो घात सचारू । गरजा देवरु उठा झनकारू' ।
'वावन वान पहूता आई' । मारिसि देवरु 'गएउ उडाई' ।
वर बावन कर 'भा(भा)गा' 'चादइ' कहा 'पचारि' ।
'अथवा सुकुर सुरिजु' परगासा 'जानइ' 'सभ' 'सयसारि' ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र २४५, म० पत्र १५६ ।

वी० ९८६-९८८ । म० मे इस कडवक के वाद तर्क है 'वावन', जो अगले का है ।

शीर्षक—मै० पन्दादने चादा लोरिक रा व अन्दाख्तने वावन तीर सो अम ।

म० दस्तान चाद गुफ्तन पनाह देवर वकराड लोरिक ।

पाठान्तर—(१) १ वी० कहै । २ वी० लेजै (लीजै—फा०) । ३. वी० गाढहि ढील लावै सो कीजै, मै० गाढे ओखदि ढील न दीजइ । (२) १ म० लोरिक । २ मै० कइसे कइ, वी० देवर कर । (३) १ वी० वोहु मेलहु जस

नेर न आवै, मैं० सर मेलेसि कसि नियरें आवइ। २ वी० जौ आवै तौ जीउ गवावै। (४) १ म० गाढे रोस जो घात सचारू गरजा देवर उठा झनकारू, वी० गाढ परोय जौ धरह सचारी गरजा देवरु उठी छिहारी (झनकारी—फा०)। (५) १ म० बावन तब ही धनुक चढाई, वी० बावन वीरु पहूता आई। २ वी० पर्‌यो षहराई। (६) १ म० नहा। २ म० चाद, वी० चादेहि। २ वी० बिचारु (पचारि—फा०), म० पचारि पचारि। (७) १ मैं० अथवा सुरुजि बहुरि, वी० उठा (अथवा—फा०) सूकुसूर। २. वी० जानै। ३ मैं० मे नही है। ४ वी० सैसारु।

अर्थ—(१) [लोरिक से] चादा ने कहा, "अब देवकुल (देवालय) [का आश्रय] लेना चाहिए, गाढे समय मे ओषधि यह होती है कि ढील दीजिए [और बचाव कर लीजिए]। (२) दो शर बावन के व्यर्थ जाने से अब तो एक ही [उसके पास शेष] रहा है, ऐ लोरिक वीर, तू उसे किसी प्रकार से भी करके टेके (रोके)। (३) वह बाण [भी] छोड कर वह निकट न आएगा, क्योकि यदि [तब] वह [निकट] आएगा तो अपने प्राण गवाएगा। (४) बावन ने जब गाढे रोष मे [लक्ष्य पर] घाव चलाया (बाण छोडा) और वह गर्जा, देवकुल (देवालय) मे झकार उठी। (५) बावन का त्राण आ पहुचा, उसने [बाण] देवकुल (देवालय) मे मारा था, [किन्तु] वह [बाण] उड (चूक) गया। (६) चादा ने ललकार कर कहा, "बावन का बल [अब] भग्न हो गया, (७) शुक्र (बावन) अस्त हो गया और सूर्य (लोरिक) प्रकाशित हो गया, यह ससार मे सभी जान जाएँ।"

(२९५)

देवर 'माझ लोर सिर' काढा। ओडन 'फूट पेट' 'हुत ठाढा'।
'लइ' चादहि 'आगे कइ चला'। लोर बीर पाछे भा भला।
बावन कहा बाच 'यह' 'मोरी'। 'तू रे पुरुख वह' तिरिया 'तोरी'।
लोक कुटुबु 'हउ आखउ' जाई। 'मइ' तोहि दीन्ही 'गाग' 'अन्हाई'।
लोरिक 'फिरि घर अपने जाई'। 'बोलिय पाछें' 'लखिय' 'बुराई'।
चाद 'कहइ सो मूरुख' 'जो अैसे (अइसे) पतियाइ'।
'जाकरि' बारि बियाही लीजइ 'सो होइहै(हइ) कस भाइ'॥

सन्दर्भ—मैं पत्र २४६, म० पत्र १५७।१, वी० ९८९-९९१।

म० मे इसके बाद तर्क है 'धीमर', जो २९५ अ (दे० परिशिष्ट) का ज्ञात होता है।

शीर्षक—मैं० गुफ्तने वावन लोरिक रा बअद उफ्तादने हर सेह तीर खाली।

म० · दास्तान गुफ्तने वावन व सुखुन खुद रा।

पाठान्तर—(१) १ बी० माहि वावनु सरु। २ म० फूट ठाउ। ३ बी० हुते गाढा। (२) १ बी० लै। २ बी० आगैं कै चाला। (३) १ म० हइ। २ बी० मेरी। ३ बी० तू रु पुरषु याह, मैं० लोर बीर यह। ४ बी० तेरी। (४) १ म० महि कहेऊ, बी० महि लीन्ह न। २ बी० मैं। ३ बी० गगा। ४ म० नहाई, बी० न्हाई। (५) १ म० चाद वहुरि घर जाई, बी० कहा बहुरि घर जाये। २ बी० वोले पीछै। ३ मैं० लखिय, बी० लषमी। ४ बी० पराये। (६) १ बी० कहै सो वावर, मैं० कहइ मन मोरे लोरिक। २ मैं० अइसे वहुरि को जाइ। (७) १ मैं० जेहिं कइ, बी० जाकर। २ मैं० तेहि कइसे पतियाइ, म० सो काहे कर पतिहाइ।

अर्थ—(१) देवालय मे [से] लोरिक ने सिर निकाला, फूटा हुआ ओडन [उसके] पेट पर खडा था। (२) वह चादा को लेकर और उसे आगे करके चल पडा, भला वीर लोरिक [उसके] पीछे हुआ। (३) बावन ने कहा, "यह मेरी वाचा है कि, ऐ लोरिक वीर, तू पुरुष है और वह स्त्री है। (४) लोक तथा कुटुव से मैं जाकर कहूगा कि मैंने गगा-स्नान कर तुझे उसको दे दिया। (५) ऐ लोरिक, तू लौट कर अपने घर जा, यदि पीछे कोई बुराई देखे तो कहे।" (६) चादा ने कहा, "वह मूर्ख होगा जो ऐसे की प्रतीति करेगा। (७) जिसकी वाल्यावस्था की विवाहिता (स्त्री) को लीजिए, बह कैसे भाव (सद्भाव)-पूर्ण हो सकता ?"

(२९६)

वावन 'धनुकु सो दीन्ह अडारी'। 'बारेहि परखि तजी मइ' नारी।
'हम जाना' 'धनुकहि' सिधि पाई। 'वान' भरोसे 'तिरी' 'गवाई'।
'गै धसि लेइ गांग मह परऊ'। 'बूडिहि मरउं' 'न करि लइ धरऊ'।
'अव हउ धनुक हाथ कस करऊ'। 'वरु' कठ 'सारि कटारी' 'मरऊ'।
'वरु यह आखि न देखत आई। लइगा सूरुज चाद भुलाई'।
'जउ यह मोरी वारि वियाही' 'माइ दीन्ह अउ' वाप।
'राज करउ जम लोरिक चादहि खाइहि सांप'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २४७, म० पत्र १५६, बी० ६९२-६९४।

शीर्षक—मैं० अन्दाख्तन बावन कमान व अफसोस करदन ।

म० : दास्तान अन्दाख्तन बावन तीर व कमान खुद रा बर जमीन ज़द ।

पाठान्तर—(१) १ बी धुनुपु स घालि अडारी, म० धनुष जो लीन्ह उतारी । २ बी० बाराह बरष तजी हम । (२) १ बी० मै जानी । २ बी० धुनष, म० धनुक । ३ बी० तिह र । ४ मैं० जोइ । ५. बी० गमाई । (३) १ बी० घर लै हौ गगा महि पर्यौ । २. मैं० बूडि मरउ, बी० बूड न मुयो । ३ मैं० गै सक न धरऊ, बी० मगर नही धरचौ । (४) १ बी० बहुरि धुनपु कर गहि नहि धरौ । २ बी० बर । ३ मैं० सारा कटारा (सारी कटारी—ना०), म० मारि कटारिइ । ४ बी० मरौ । (५) १ म० बरु यह रूख न देखउ काही लइगा लोरिक चाद चलाही, बी० यहु दुष नैन न देय्यो अपनै जिह की चाद रैनि जैसै सुपने । (६) १ बी० जौ तै वार वियाह । २ बी० दीन्ही माई औ । (७) १ म० लोर बहुरि फिरि एकसर भादिया मोरेउ बरउ (परउ) सताप, बी० राजु करी भरि लोरिका चादा पई जो साप ।

अर्थ—(१) बावन ने [अब] उस धनुप को डाल दिया, [और कहा,] "मैंने इस नारी को [इसकी] बाल्यावस्था मे ही परख कर त्याग किया था । (२) मैंने जान रक्खा था कि धनुष से सिद्धि प्राप्त हो जाएगी, किन्तु बाण के भरोसे मैंने स्त्री गवा दी । (३) अब मैं जाकर और धस (कूद) ले कर गगा मे पडूँगा (गिरूगा) और उसमे मैं जाकर डूब मरूगा किन्तु अब धनुष हाथ मे न धरूगा । (४) अब मे हाथ मे धनुष कैसे करूगा (पकडूँगा) ? उससे अच्छा यह होगा कि कठ को कटार से काट कर मर जाऊ । (५) मैं आखो से आकर यह न देखता कि चाद को सूर्य (लोरिक) भुला कर ले गया, तो अच्छा होता । (६) क्योकि यह मेरी बाल-विवाहिता है और [इसके] मा-बाप ने [इसे मुझको] दिया है, (७) हे लोरिक, तुम यम (यमपुर) मे राज्य करोगे और चाद को साप खाएगा (डसेगा) ।"

१९. कलिंग-युद्ध खण्ड

(२९७)

बावन फिरि गोबर दिसि 'भए' । 'लोर चाद दुइ आगे' 'गए' ।
'राइ करिंगा बोदिया' दानी । 'मागइ' दान 'जइस जग नानी(नआनी)' ।
'बान दिलावहि' 'लेहि' न सोई । 'पुरुख माग कइ मागइ' जोई ।

'अइस' दान जगि 'काउ' न ली(लि)या ।
'कहु तइ जउ काऊ सुने 'दी(दि)'या ।
देस 'देसतर मानुस जाई' । मेहरी 'पुर(रु)ष' बाप 'अउ भाई' ।
'ठौर ठौर जउ' 'दानिय' दुहु महि इक इक 'लेहि' ।
घर 'मह लोग सगहरि मरहिं' बाहरि पाउ न 'देहि' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २४८ । बी० ६६५-६६७ । म० यहा पर त्रुटित है ।

शीर्षक—मैं० बाज़ गश्तने बावन व मुलाकात करदने लोरिक व चादा बा बोदिया ।

पाठान्तर—(१) १ मैं० गए । २. बी० लोरिक चादा आगैं । ३. मैं० भए । (२) १ बी० राव करटेका (करिंगा—फा०) बधिया । २ बी० मागहि । ३ बी० जैस जगदानी (?) । (३) १ बी० बाह (वान—फा०) डुलावहि (दिलावहि—फा०) । २ मैं० लीन्हा ३ बी० पुरषहि मागि कि मागहि । (४) १. बी० अस रि । २ बी० काहू । ३ बी० कहौ मोहि जौ काहौ । (५) १ बी० दिसतर मानइ जाये (जाई—फा०) । २. बी० महेरी पुरुष, मैं० मेहरी मनुस । ३ बी० औ भाये (भाई—फा०) । (६) १ बी० ठाव गव जौ । २ मैं० मनुसइ । ३. बी० लेई । (७) १ बी० सभ लोगा ह (हु ?) सत धराह । २ बी० देई ।

अर्थ—(१) तदनतर बावन के गोवर की दिशा मे होने (जाने) पर लोरिक तथा चादा दोनो आगे बढे । (२) बोदिया नाम का करिंगाराय का एक दानी (कर उगाहने वाला) था, वह इनसे ऐसा दान मागने लगा जैसा कि ससार मे अन्य नही मागता है । (३) ये वाने (वस्तुए) दिला रहे थे, किन्तु उसने उन्हे न लिया, वह या तो पुरुष को और या तो स्त्री को—दो मे से एक को माग रहा था । (४) "ऐसा दान जगत् मे कभी भी नहीं लिया गया है", [लोरिक ने कहा,] "तू ही कह, यदि कभी तूने [ऐसा दान] दिया गया सुना हो । (५) मनुष्य देश-देशान्तर को जाता है और स्त्री, पुरुष, वाप और भाई [साथ-साथ] होते हैं । (६) स्थान-स्थान पर दानी यदि दो मे से एक-एक करके उन्हे ले लिया करे (७) तो घर ही मे लोग साथ-साथ मरे, वे वाहर पैर न रक्खे ।"

(२६८)

'लीन्हे डाग फिरा' कोटवारा । वोलत वोलु माझ 'मुख' मारा ।
देखि 'अकेरे चितहि न लावहिं' । 'दुहु' महि 'एक' 'लेन पइ धावहि' ।

'देहि दान अउ बिनति' कराही। 'कहा चलहु राजा पहि जाही'।
कहा न 'सुनइ अउ दान न लेही'। 'भल बोलत' अन ऊतरु देही।
'लोरिक चादा कुमपी भई(ए)'। 'असि बिनती कहि ओहट गए'।
'लोरिक' 'बीर' 'हथवासा' 'चादा' 'धनुक चढाव'।
'दुइ' जन 'सभै(भइ)' 'सघारे' 'जान न' 'कोऊ पाव'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २४६, भो० पत्र ४४ (नवीन), बी० ६६८-१०००। म० यहा पर त्रुटित है।

भो० मे इस कडवक के नीचे तर्क 'बोदिया' है, जो अगले का है।

शीर्षक—मै० जग करदने लोरिक बा कोतवाल व वोदिया दानी।

भो० . नशिस्तन जक वातियान दरमियान राह अजा चादा व लोरिक।

पाठान्तर—(१) १ भो० बइठे दानी अउ कोटवारा, बी० भीन्ही (लीन्हे-ना०) डाग पितर पटतारा। २ मै० मुह। (२) १ भो० अकेले चितहि न लावा, बी० अकेले चितह न लावैहि। २ बी० दोहु। ३ मै० मे नही है, बी० येकै। ४ भो० लेन पै धावा, बी० लीन (लेन—फा०) पथावहि (पै धावहि—ना०)। (३) १ बी० मागहि दानु औ नेत (बिनति—फा०)। २ भो० कहइ चलहु राजा पहि जाही। (४) १ बी० सुनैहि दानु ना लैही, भो० सोभ न दानु न लेही। २ मै० वात कहत। (५) १ मै० लोरिक चादहि अस मत किहे, भो० लोर चाद तउ कुमखी भए। २ मै० अस मनुसइ गै बैरी भए, बी० अस रि मतेहि बिरहे पर गई (गए—फा०)। (६) १ भो० लोर। २ मै० खरग। ३ भो० हथवासा ओडन। ४ मै० चादइ। ५ बी० धुनषु चराय, मै० धनुष चढाए। (७) १ बी० दहु। २ मै० सवही मारे। ३ भो० जा नहि। ४ बी० येको पाई।

अर्थ—(१) [फिर लोरिक ने देखा कि] डाग (लट्ठ) लिए हुए [एक] कोट्टपाल फिर रहा था, जो बोल वोलते ही मुह मे (पर) मार वैठता था। (२) अकेले [पुरुष] को देखकर [वे लोग] उसे चित्त मे न लाते थे, [किन्तु पुरुप और स्त्री दोनो के होने पर] दो मे से एक को लेने के लिए वे दौडते ही थे। (३) वे (लोर-चादा) दान (कर) दे रहे थे और [उनसे] विनती कर रहे थे, [वे कह रहे थे,] चलो हम राजा के पास चल रहे हैं।" (४) किन्तु वे उनका कथन नही सुन रहे थे, दान (कर) नही ले रहे थे, और भली वात भी कहते समय वे अन्य (बुरा) उत्तर देते थे। (५) [यह देख कर] लोरिक और चादा को रोष हुआ और वे ऐसी विनती कर ओहट (कुछ दूर)

हो गए। (६) लोरिक ने हाथ मे खड्ग लिया और चादा ने धनुप चढाया, (७) [फिर] इन दोनो जनो ने [मिल कर] सबको मार गिराया और कोई भी [भाग कर] जाने न पाया।

(२९९)

'बोदिया लोर चेति कर गहा'। दस 'अगुरी' मुख 'मेलत' अहा।
'कहा' बीर 'मोहि दै जिउ दानू'। 'जीउ छाडु काटु मकु कानू'।
'मूडि मूडि' 'सिर जोरे धरे'। हाथ 'गात अंगुरा भुइ 'परे'।
नौ खड 'प्रिथिमी' सुना न काऊ। अइस दान को देहि बटाऊ।
'अस कि' 'दानि अनियाई' होई। जो जस 'करइ' पाव तस 'सोई'।
'मुख कारी' 'कइ' 'बोदिया' 'पठवा' 'बेल बधाइ'।
आपन राउ 'करिंगा' 'वोदिया' 'बेगि हकारहि' 'जाइ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २५०, म० पत्र १५९, भो० पत्र ४५ (नवीन), बी० १००१-१००३।

भो० मे इस कडवक के बाद तर्क है 'हाथ काटि', जो अगले का है।

शीर्षक—मै० गिरफ्तार शुदने बोदिया व दस्त बुरीदने लोरिक।

म० दास्तान अजज़ व इलहाज करदनेबोदई पेश लोरिक।

भो० खुसूमत शुदन बाज कवातियान व लोरिक बा चादा।

पाठान्तर—(१) १ बी० फुनि बधिया अस लोरि कहा, म० बोदई जाइ जियत घर कहा, मै० बोदिया दानि चेति कर गहा। २. मै० बी० अगुरी। ३ म० झेलत। (२) १. म० बी० कहै। २ भो० मोहि देहिं जिय दानू, बी० मुहि दीजै दानू। ३ म० भो० छाडउ (गहा—भो०) नाक अउर काटउ कानू, बी० जैय (जीय—फा०) छाडौं अस ले तुम्ह कानू। (३) १ म० मूड मुडाइ। २ बी० अस जो रैं धरा, म० सिर जोरि धरे, भो० सिर जोरिया धरे। ३ म० गात अगुरी भुइ परी, भो० गात अगुरी भुइ परी, बी० काटि अगुरी भुई परा। (४) १ म० पिरथी। बी० मे अर्द्धाली है : बधिया चाद पाई परि रहा · अब सो सुनहु जो रु तुम्ह कहा। (५) १ म० अइस, बी० अस न। २ भो० अनियाई दानि, बी० नियाई दान न। ३. बी० करै। ४. म० होई। (६) १ मै० मुह कारा, बी० मुख कारौ। २ भो० करि बी० कै। ३ म० बोदई, बी० बधिया। ४ म० पठए, बी० बैठो। ५ बी० बोलु बधाय। (७) १ बी० करुटेका (करिंगा—फा०)। २ बी० म० मे नही है, भो०

बोदई। ३ भो० वेगि बोलावहिं, बी० उठै जाइ वलु। ४. बी० भाई, म० जाइ जाइ।

अर्थ—(१) बोदिया ने लोरिक को चेत कर (पहचान कर) [उसका] हाथ पकडा और वह [अपने] मुह मे [हाथ की] दसो उगलिया डालने लगा। (२) उसने कहा, "ऐ वीर, मुझे जीव-दान दे, मेरा जीव (मेरे प्राण) छोड दे, भले ही [मेरे] कान काट ले।" (३) [लोरिक ने कहा,] "सिरो को तूने मूड-मूड (मडवा-मुडवा) इकट्ठा कर रक्खा है, और [मृतो के] हाथ, गात्र और उगलिया भूमि पर पडी हुई है। (४) नौ खड पृथ्वी मे ऐसा कभी नही सुना [गया] है कि ऐसा दान भी कोई पथिक देता है। (५) क्या कोई दानी (कर उगाहने वाला) ऐसा भी अन्यायी होता है ? जो जैसा करता है, वह वैसा पाता है।" (६) [तदनतर] बोदिया का मुह काला कर और उसके बालो से वेल बधवा कर [लोरिक ने] उसे भेज दिया, (७) [और कहा,] "ऐ बोदिया, अपने कर्रिगा राजा को तू जा कर शीघ्र बुला [ला]।"

(३००)

'काटि हाथ मुख कीन्हा' कारा। 'बाधी(धि) बेल तेहि चूरे बारा'।
'इहि परि बोदिया' जाइ तुलाना। देखि नगर सभ परा भगाना'।
'देखत लोगु अचभइ' रहा। 'पूछत' बात न 'बोदियहि' कहा।
'बोदियइ राइहिं कीन्ह पुकारा'। 'हुत जेवनार तह राउ हकारा'।
'बोदियहिं राइहि कीन्ह' जोहारा। 'पूछा राव केइ यह सारा'।
'कौन बरी अस राजा आवा देस हमार'।
'राउत पाइक ओहि को लागउ जाइ' गुहार॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २५१, म० पत्र १६१, बी० १००४-१००६।

म० मे इस कडवक के बाद तर्क है 'बोदई', जो अगले कडवक का है।

शीर्षक—मैं० आमदने बोदिया पेशे राव व फरियाद करदन।

म० दास्तान दस्त व गोश बुरीदने लोरिक ऊ रा।

पाठान्तर—(१) १ म० काटि हाथ मुख कीत्हा (न्हा ?), बी० काटे हाथ कीन्ह मुप। २ म० वाधि वेल अउ चूरे बारा, बी० वाघ वेल कै चोरै पारा (चूरे बारा—फा०)। (२) १ म० ईहि विधि वोदई, बी० वैठ ग बधिया। (३) १ बी० देषि स लोगु अचभै, म० देषत लोगु अचभउ। २ म० पूछहिं। ३ म० वोदई, बी० बधिये। (४) १ बी० बधिया जें दिन

जाइ पुकारा, म० दानी केतइ जाइ पुकारा । २. म० बइठ राइ जहा जेवनारा, बी० हुत जियनार भीतरहि हकारा । (५) १. बी० राजा बधिये जाइ, म० वोदई राजहि जाइ । २ म० पूछ भडारी गएउ अस बारा, बी० पूछै भर री अस कँ मारा । (६) १ म० भीउ बरी अस राजा केइ रे आएउ बसति हमारि, वी० कौन बीर अस राजा जु आवा सेव हमार । (७) १. म० दानी मारि कोटवार जो मारइ लागहु वेगि, बी० रावत पाइक साजि कर लागहु जाइ ।

अर्थ—(१) [लोरिक ने बोदई के] हाथ काट कर उसका मुख काला कर दिया और बेल बाध कर उसके बाल तोड़ डाले । (२) इसी प्रकार से वोदिया जा तुला (पहुँचा) और उसे [इस प्रकार आहत] देखकर समस्त नगर मे भग्नता (भगदड) पड़ गई । (३) [उसे] देखकर लोग अचभे मे हो रहे, किन्तु प्रश्न करने पर बोदिया ने कुछ न कहा । (३) बोदिया ने राजा से पुकार की, तो राजा ने उसे वहां बुलवाया जहा वह भोजन पर [बैठा हुआ] था । (५) बोदिया ने राजा को जुहार की, तो राजा ने पूछा, "यह [दशा] किसने की ? (६) कौन ऐसा वली राजा हमारे देश मे आया हुआ है ? (७) रावतो तथा पायको, जाकर उसको गुहार लगो (उसका सामना करो) ।"

(३०१)

'वोदियइ आनि घोर' एकु 'दीन्हा' । पूछि बाट सो 'आगे कीन्हा' ।
'दर नर पुरुख केर कस अहइ' । 'करत' 'सजोग कवनि बिधि' 'रहइ' ।
एकु 'पुरुख अउ दूसरि' नारी । 'तीसर न कोऊ' 'नाऊ अउ बारी' ।
अति 'वड होति बिचक्खन' सोई । 'ओइ' खत्तिरी 'पुरुष अउ' जाई ।
वह रे 'अचूक' बान सर मारइ । वह 'रन खतरी खरग सघारइ' ।
'देई' सजोग 'राइ तिन्ह बोलिउ' 'मागिउ' अचगर दानु ।
'जन मानुस सभ जीउ गवाडउ आपन' नाक 'अउ' कान ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २५२, म० पत्र १५८, वी० १००७-१००९ ।

शीर्षक—मैं० पुरसीदने राव वोदिया रा व जवाव दादने ऊ ।

म० . दास्तान पुरसीदन राव वोदई रा ।

पाठान्तर—(१) १ म० वोदई तुरी पलानि, वी० वूढि (वोदई—फा०) पलानि घोर । २. वी० दीया । ३. म० आगेउ कीन्हा, वी० आगँ कीया । (२) १. वी० दरस पुरषँहि पकर आहै, मैं० दर नर पुरुप सो कइसइ अहा ।

२ म० करत, बी० कैस । ३ बी० सजोव कौन बड । ४ म० रहइ, बी० आहै । (३) १ मैं० पुरुष दूसरि हइ, बी० पुरषु औ दूसर । २ म० तस नहि कौनउ, बी० तीसर नाउ न । ३ बी० आहिउ बारी । (४) १ बी० रुपवत विचषण । २ बी० रिण महि । ३ बी० पुरषु अ । म० मे अर्द्धाली है रूप दुहू के सम जग मोहइ रैंनि माझ चाद जस सोहइ । (५) १. म० चूकि । २ म० रन खेलइ खरग सभारइ । बी० मे अर्द्धाली है वोहु राजा जोगु धनष सर मारैं बहुरि न कहि कहि षरग उभारैं । (६) १ मैं० देषि । २. म० देहि मस्ट मोहि कह, बी० आइ मति भूलो । ३ बी० माग्यो । (७) १ म० जिहि मागे जीउ गवाएउ अव रे, बी० जानु मानु सब जीउ गवायो काट । २ बी० औ ।

अर्थ—(१) [राजा ने] बोदिया को ला (मगा) कर एक घोडा दिया (दिलाया), और उससे मार्ग पूछ कर उसको आगे किया । (२) [फिर उससे पूछा,] "उस नर (योद्धा) पुरुष का दल कैसा है, और वह सयोग (शस्त्रास्त्र-सज्जा) किस विधि से करता रहता है ?" (३) [बोदिया ने कहा,] "एक पुरुष है औ दूसरी नारी है, [उनके साथ] तीसरा कोई नाई-बारी भी नही है । (४) वे अत्यधिक विचक्षण है, वे पुरुष और स्त्री—दोनो ही क्षत्रिय (योद्धा) हैं । (५) वह [स्त्री] अचूक बाण (पुख) और शर मारती है, और वह रण-क्षत्रिय (योद्धा) खड्ग [से] सहार करता है । (६) दैव-सयोग से, हे राजा, उन्हे मैंने बुलाया और एक अचगरा (औद्धत्य-पूर्ण) दान (कर) [उनसे] मागा । (७) [किन्तु परिणाम यह हुआ कि] अपने जनो-मनुष्यो सब जीवो को गवाया और अपने नाक और कान गवाए ।"

(३०२)

बात 'सुने' 'सभ' मिले सियाने । 'तुम्ह भनि' 'नरवइ भए' अयाने ।
'जउ परदेसी एक नर' होई । 'लखि जउ मिलइ मान रे सोई' ।
'वह करि साहन जउ' सिधि 'पावइ' । 'दइय सजोग वह दर बिचलावइ' ।
'जानइ बात सभइ' 'सयसारा' । इकु 'हारइ अउ' होइ मुहु कारा ।
'बाह बाच दइ ओहि' 'हकराइय' । 'अस खतरी' जउ रह' 'ओरगाइय' ।
'वहु परसाध कइ बोलाइय' 'अबरित बचन सुनाइ' ।
'गाउ ठाउ सब ओहि को' दीजिय 'जित भावइ तित' 'जाइ' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २५३, म० पत्र १५९, बी० १०१०-१०१२ ।

शीर्षक—मै० मशावरत करदने राव करिंगा बा दानायाने खुद रा।
म० दास्तान तकसीम करदने वजअ साख्तन मर्दमान।

पाठान्तर—(१) १ मै० सुनत। २ बी० कै। ३ बी० तुम्ह फुनि, म० गै तुम्ह। ४ बी० नरवै भयहु। (२) १ म० जउ परदेसी आएउ, बी० जौ परदेसी येकै। २ म० एकहि एक पबारइ सोई, बी० कौन जानै साहस करै कोई। (३) १ बी० जो कर साहस सो। २ बी० पावै। ३ मै० दइय सजोगइ दल न चलावइ, बी० दई सजोग देइ बिचलावै। (४) १ बी० जानै बात सभै। २ म० ससारा, बी० सैसारा। ३ म० हारा औ, बी० हारै औ। (५) १ बी० बाही बाच दे कोहु। २ बी० हकराये। ३ बी० जौ रहि। ४ म० ओलगाइय, बी० उरगाये। (६) १ बी० यह परसाद करै हकराये। २ मै० अमिरित बचन सुनाइ, बी० जस आवै उहि गाऊ। (७) १ म० गाउ ठाउ तेहि दीजिय, बी० वावनु छाडि चादा दै पुठि गौ। २ म० तित जित भावइ तर, बी० जह भावै तहा। ३ बी० जाउ।

अर्थ—(१) यह वार्ता सुनने पर समस्त सयाने लोग मिले [और उन्होने कहा,] "ऐ नरपति, तुम जैसे अयाने हो गए हो। (२) यदि परदेशी एक (अकेला) पुरुष [भी] हो और वह दिखाई मिले (पडे), तो उसे मानना (सम्मान देना) चाहिए। (३) वह साधन [एकत्रित] कर यदि सिद्धि प्राप्त कर लेता है, तो दैव-सयोग से [अकेला ही] दल को विचलित कर देता है। (४) समस्त ससार इस वात को जानता है कि एक (कोई) हारता है तो उसका मुह काला होता है। (५) उसको वाहुओ (सुरक्षा) का वचन दे कर बुलाइए और यदि वह क्षत्रिय (योद्धा) रहे, तो उसकी सेवा लीजिए। (६) वहुतेरे प्रसाद (उपहारो) के साथ और अमृत [जैसे मधुर] वचन सुना कर उसे बुलाइए, (७) उसको गाव-ठाव सब दीजिए और [उसे इस बात की छूट दीजिए कि] जहा-कही उसे भाए, वह जाए।"

(३०३)

'वाभन दस' 'विदवास' वुलाए। 'बाह' 'वाच दइ' 'राइ चलाए'।
'जेहि परि' आवइ 'तेहि भनि' 'आथड'। जो 'वह कहइ' 'सोइ तुम्ह माथइ'।
'कहउ दानि हुत यहु' 'अनियाई'। नाक 'कान' भल 'कूचि' 'कटाई'।
'अवर जो मारे यहि कोटवारा'। 'तिन्ह औगुन ही नियाउ' तुम्हारा।
'राइ' 'वाह' 'दइ तुम्ह हकराइय'। 'जव जित भावइ तव उतहि जाइय'।

'हम राजा कइ परजा' 'बिदवास पडित सभ आहि' ।
'दिस्टि पसारि देखन को पावइ' ऐती जोगिति 'काहि' ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र २५४, म० पत्र १६१, बी० १०१३-१०१५।

शीर्षक—मैं० फिरिस्तादने राव करिगा दह जुन्नारदारान रा बर लोरिक।

म० दास्तान तलबीदन राय जुन्नारदारान रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० वभन सव। २ मैं० बिधवास। ३ मैं० बोल। ४ बी० होइ कै। ४ म० राव चलाए, बी० आनहु जाए। (२) १ मैं० जेहि विधि, बी० जिह परि। २ म० तेहिं विधि, बी० तिह परि। ३ मैं० आवहु, बी० ल्यावोहु। ४ बी० वोहु कहै। ५ मैं० सोइ तुम्ह मानहु, बी० सु तुम्हहि मनावोहु। (३) १ म० कहहिं दानी हुतइ, बी० कही दान वहि हुत। १ बी० अमनाये (अनियाई—फा०)। ३. बी० काटि। ४ म० कीन्ह, बी० हाथ। ५. बी० कटाये। (४) १ बी० अरु जिय मारे वहु कुटवारा। २ बी० वोहु औगुन आनिये। (५) १ बी० राजा। २ मैं० पूर। ३ बी० देय अस करियोहु। ४ म० भन जित भावइ तुम्ह जाइय, बी० जितही जाइ तितई तुम्ह जइयहु। (५) १. म० हम रे अभागी बजा, बी० पूछा राजा कहि अस। २ मैं० विधवास पडित सभ आहि, बी० हम सौ बाभन आह। (७) १ बी० द्रिष्टि पसारि देषि कै आवैं, म० दिष्टि अपार देखि को पारइ। २ बी० एत आजुगति वाह, म० एती जोगिति केहि आहि।

अर्थ—(१) [राजा ने यह मत सुनकर] दस विद्वान् ब्राह्मणो को बुलाया और बाहो (सुरक्षा) का वचन देकर राजा ने उन्हे [लोरिक के पास] रवाना किया। (२) [राजा ने कहा,] "जिस प्रकार से वह आए, उसी प्रकार से वह रहे और जो वह कहे, वही तुम्हारे मत्थे हो। (३) [उससे] कहो कि यह दानी (बोदिया) ही अन्यायी था, और भले ही इसके नाक-कान कुचलवा कर कटाइए। (४) और जो तुमने इसके कोट्टपाल को मारा है, सो उनके अवगुणो (अपराधो) के कारण ही तुम्हारा [कार्य] न्याय्य है। (५) राजा ने तुम्हे बाह (सुरक्षा) [का वचन] देकर बुलाया है, जव जहा भाए, तव वहा जाना। (६) हम राजा की प्रजा हैं और सव विद्वान् पडित हैं। (७) [किन्तु] दृष्टि को पसार (फैला) कर [अदृष्ट को] कौन देख सकता है ? इतनी योग्यता किसे [होती] है ?"

(३०४)

'बाभन जाइ सो दीन्ह असीसा' । बात 'सुनत मन' 'उतरी' रीसा ।
लोरिक 'कहा' चाद कस 'कीजइ' । 'एइ बभनहि कस' ऊतरु 'दीजइ' ।
'बहुते जन' हम 'इन्हके' मारी । 'मूड काटि कइ दीन्ह अडारी' ।
'जिय ऊपर अब उठइ गोवारी' । 'जूझि मरइ जउ लाग गुहारी' ।
'राजा आहि भल अहइ नियाई' । 'नीकी बात तेहि कहेसि पठाई' ।
'मता' जो हम तुम 'उपजइ चांदा' 'अउर न कोऊ' आहि ।
'भाई बापु बधु नहि कुनबा' 'फिरि पूठौ (?) आ काह(हि)' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २५५, भो० पत्र २७ (नवीन), बी० १०१६-१०१८ ।

शीर्षक—मै० आमदने जुन्नारदारान व गुफ्तन लोरिक रा ।

भो० रसीदन जुन्नारदारान बर लोरिक ।

पाठान्तर—(१) १ भो० बाभन दीन्ह आइ आसीसा, बी० बैठे जाइ कै दीन्ह असीसा । २ भो० सुने मन, मै० सुनत सभ । ३ बी० गई सु । (२) १ भो० कीहा (किहा ?) । २ बी० कीजा । ३ मै० एँहि बाभन का, बी० जै (यै) है वैठ कस । ४ बी० दीजा । (३) १ भो० बहुत लोग । २ बी० उनके । ३ भो० मूड मुडाइ जो देसहि निसारे, बी० दान रवूषी दीन्ह निसारे । (४) १ बी० जे ऊपर एम उठै स नारी, मै० जइ परि राजा लाग गोहारा । २. बी० जूझि मरइ जिय (जइ—फा०) लाग गुहारी, मै० झूझि मरत गै दई उवारा । (५) १ भो० राउ बडा अउ अहइ नियाई, बी० राजा बडु डरावन जाई । २ भो० धनु बानहि दइ वाजि पठाई, बी० भली बात कहते न रिसाई । (६) १ भो० बी० मता । २ भो० उपजइ, बी० आई । ३. भो० सोइ पै, बी० और न कोई । (७) १ मै० वाई वाप बधु कोउ नाही, भो० भाइ बधु लोग नहि कुटुवा । २ भो० वहिनि भौजि अब चाहि, मै० वाभन पूछहिं काहि ।

अर्थ—(१) [तदनुसार] एक ब्राह्मण ने जाकर आशीर्वाद दिया, उसकी बातें सुनते ही लोरिक के मन से रोष उतर गया । (२) लोरिक ने कहा, "चादा, कैसा (क्या) किया जाए ? इस ब्राह्मण को कैसा उत्तर दिया जाए ? (३) हमने इनके बहुतेरे जनो को मार कर और उनके मुड (सिर) काट कर डाल दिए । (४) ऐ ग्वालिन, अब तो जी पर उठती (लगती) है [क्योकि] यदि राजा गुहार लगता है तो हमे जूझते हुए प्राण देने होगे । (५) राजा भला है और न्यायप्रिय है और [इस ब्राह्मण को] भेज कर उसने अच्छी बात

कही है। (६) ऐ चादा, मत वही है जो हममे-तुममे उत्पन्न हो, क्योकि और कोई नही है [जिसमे परामर्श किया जा सके]। (७) [यहा] भाई, पिता, वधु तथा कुटुवी नही हैं, फिर यह किससे पूछो ?"

(३०५)

इक बाभन 'का वहुरि' दस आए। बचन राइ के आइ मुनाए।
चलहु लोर 'अपुने' 'पउ' धारहु'। 'हम जियतइ' 'जीवन जनि हारहु'।
'चला' 'लोरु संजोइ' उतारा। 'जाइ करिंगा राउ' जुहारा।
'वहुतइ भूई' 'चलि' हम आए। 'राजा सोग' 'खरे' सताए।
नैन न देखा सुना 'न काऊ'। 'दुहु' महि एक दानु 'लेइ राऊ'।
'वैरि' विरोधे 'नरवइ' छाडि चले घर बार।
'हम रे अकेले' 'दुमने भाई वीर परिवार'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २५६, म० पत्र १६२ (?), भो० पत्र २८ (नवीन), वी० १०१९-१०२१।

भो० मे इस कडवक के वाद तर्क है 'सुनि राजा अस', तथा म० मे इस कडवक के वाद तर्क है 'सुनि' जो अगले कडवक के हैं।

शीर्षक—मैं० वाज आवर्दने जुन्नारदारान वर लोरिक कलामे राव करिंगा।

म० . व रफ्तन लोरिक पेश करिंगा।

भो० गुफ्तन जुन्नारदारान वर लोरिक व चादा अज जेहत रवाना करदन अज पेशराह।

पाठान्तर—(१) १. भो० गै फुनि, वी० पडित दस। (२) १ वी० आपनु। २ भो० पा, वी० पगु। ३ वी० धारौहु। ४ भो० हम्ह जियतइ, वी० जैति हमार। ५ वी० मनहि जिन हारौहु। (३) १ म० चलि कै। २ वी० लोर सजोन, म० लोर सजोह (सजोइ—ना०), भो० लोरहि सजो। ३ मैं० राइ करिंगा राउ, वी० जाइ करनीका (करिंगा—फा०)। (४) १ वी० पहलै भुमी जु। २ भो० चले। ३ म० रे सो हम, वी० राइ न किनहू, भो० राइ सेउ हम। ४ वी० हम न। (५) १ वी० नरु कोऊ। २ म० दो, वी० दौहु। ३ मैं० लेहि वटाऊ, वी० ले राऊ। (६) १ मैं० वरिहि, वी० वीर (वैरि—फा०)। २ वी० नरवै। (७) १ वी० हमहि राप ले।, २ म० दुइ मानुस वैरी भा ससार, भो० आहि दोउ जन भाई वीर परिवार, मैं० दुमने भा वैरी कोटवार।

अर्थ—एक ब्राह्मण क्या ? फिर तो दस [ब्राह्मण] आए और आकर उन्होने राजा के वचन सुनाए। (२) [उन्होने कहा,] "ऐ लोर, चलो और अपने पैर रखो (पधारो), हमारे जीते जीवन न हारो।" (३) लोर चला, उसने सयोग (रण-सज्जा) को उतार लिया और करिंगा राजा को जुहार किया। (४) [लोरिक ने कहा,] "बहुतेरी भूमि चल कर हम आए हैं, और हे राजा, हम शोक से बहुत सतापित है। (५) हमने नेत्रो से यह [कभी] न देखा और कभी सुना है कि दो मे से एक [पथिक] को राजा दान (कर) के रूप मे ले लेता हो। (६) बैरी के विरोध के कारण ही, हे राजा, [हम दोनो] घर-बार छोड कर चले थे, (७) हम अकेले है और भाई, बधु तथा परिवार [हमसे] दुर्मनस् हैं।"

(३०६)

सुनि 'राजइ' अस ऊतरु 'दीन्हा'। जो 'हम्ह बूझिय' सो तुम्ह 'कीन्हा'।
'अजहू कहु सो बात करावउ'। 'जिय' 'मारउ कै सूरि भरावउ'।
सीसु नाइ 'लोरिक' अस 'कहा'। 'गरुव नरिंद' राउ 'तू अहा'।
'मेदिनि कहइ' 'बड आहइ' राऊ। 'राइ' हुते 'हइ बडा नियाऊ'।
'तुम्ह' 'नरवइ नियाउ सब' जानहु। 'जउ बर करहु देस धरि आनहु'।
'मारग चलइ चहू दिसि लोक असीसइ तोहि।
'राजा मया मोह कइ' 'हरदी पठवहु मोहि' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २५७, म० पत्र १६२ (?), भो० पत्र २९ (नवीन), बी० १०२२-१०२४।

शीर्षक—मै०. जवाव दादन राव वर लोरिक रा।
म० जवाव दादन राव बर लोरिक रा।
भो० जवाव गुफ्तन राव करिंगा लोरिक व चादा रा।

पाठान्तर—(१) १ भो० बी० राजा, मै० राजड। २ बी० दीया। ३ म० हम चाहहि, मै० बी० हम पूछें (पूछे—बी०)। ४ बी० कीया। (२) १ म० अजहू कहु वहोरि हउ करउ, भो० कहु अवहू सो वात करावउ, बी० अजहू कहौहु त सासति करौ। २ मै० कै। ६ म० बी० मारौ कै सूरी भरउ (भरौ—बी०)। (३) १. मै० लोरहिं। २. बी० कहै। ३ भो० गरुवा नरिंद, बी० गरू मारिदु। ४ बी० त अहै। (४) १ बी० मेदनि कहन। २ म० भल आहइ, मै० वडा हुत, बी० वडे तुम्ह। ३ भो० राउ।

४ म० बर होइ न काऊ, वी० फुनि औ बड न्याऊ। (५) १ म० अउ तुम्ह, बी० तुम्हि फुनि। २ म० नरवइ नियावहु, भो० नरवइ अनियाउ न, बी० बडे नियावहु। ३ वी० जानौहु। ४ म० जो भल होइ सोइ तुम्ह मानहु, भो० जउ बर करहु देस कह भानहु, बी० जौ बर करहु देस कर आनौहु। (६) १ तू सुमया करि नरवै हरदी पठवौहु मोहि (तुल० परवर्ती चरण)। (७) १ भो० राजा मया करउ तुम, मैं० जउ वर लइ (कइ) सतावइ कोई, बी० जो रु दिनइ (दीनहि) बसि करहु। २ मैं० वी० सो हत्या पुनि मोहि (फुनि तोहि—बी०)।

अर्थ—(१) यह सुन कर राजा ने ऐसा उत्तर दिया, "जो हम को पूछना (कहना) था, वही तुमने किया, (२) और आज (अव) भी जो कहो, वह बात मैं कराऊ इनके जीव मारू, या इन्हे शूली भराऊ।" (३) सिर नमित कर लोर ने ऐसा कहा, "ऐ राजा, तुम गुरु (बडे) नरेन्द्र हो। (४) मेदिनी कहती है कि 'राजा वडा है, और राजा के द्वारा वडा न्याय है। (५) हे नरपति, तुम समस्त न्याय [का विषय] जानते हो, यदि तुम वल [-प्रयोग] करो तो देश [भर] को पकड कर ला सकते हो। (६) लोग चारो ओर मार्गो पर [निर्भय होकर] चलते है और तुम्हे आशीर्वाद देते हैं। (७) हे राजा, तुम मया-मोह करके मुझे हरदी [पाटन] भेज दो।"

(३०७)

सुनि 'राजा अस कीन्ह' पसाऊ। 'भाइ हमार' 'जो' आहि बटाऊ।
'दीन्ह' सुखासनु 'अउर' 'तुरगू'। पथ 'लागि तुम्ह लागि करिंगू'।
'टका सहस' 'परसाध' दिवाए। 'तुरित बेगि बलदा लइ' आए।
'सेव करहु' 'जउ इहवा' रहहू। 'नहि जउ मन होइ तहवा चलहू'।
'तेहि करि' बात 'न पूछन' कोई।
तिह(जिहि) की(के) सक(ग) एक जन होई।
राइ वाभन 'दस' दीन्हे 'अगुवा' जित भावइ तित जाहु।
खर कइ कहइ न पारउ 'मयाह' करहु तउ रहाहु॥

सन्दर्भ—म० पत्र १६२ (?), भो० पत्र ३० (नवीन), वी० १०२५-१०२७।१।

म० मे इस कडवक के बाद तर्क है 'सुनहि', जो अगले कडवक का है।

शीर्षक—म० मरहमत करदन राव करिंगा बर लोरिक ।

भो० : शुनीदन गुफ्तार लोरिक मरहमत करदन राजा बा लोरिक ।

पाठान्तर—(१) १. बी० हसि राजा किया । २ बी० हमरै भाइ । ३ बी० मे नही है । (२) १ बी० देहि । २ बी० और । ३ भो० तुरगा । ४. भो० लागि तुम्ह राइ करिंगा, बी० लाग तुम्ह नेह यकगू । (३) १. म० टका लाष । २ बी परसाद । ३ भो० अपाठ्य है, बी० नित वै वेग बराई । (४) १ भो० सेव करउ, बी० सोय करहु । २ बी० जो ईह ही । ३ भो० जउ मनमान तहहि तुम्ह जाहू, बी० औ जसु भाव तहा ही जहहू । (५) १ बी० तिह थी । २ म० करइ नहि, भो० न पूछइ । ३ म० जो परदेसी सहगा, भो० जेहि के साथ तिरी इक । (६) १ मो० दुइ । २ भो० मे नही है । (७) भो० मया । बी० मे दोहा नही है ।

अर्थ—(१) ऐसा सुन कर राजा ने पसाव किया, और कहा, "यह हमारा भाई है, जो [इस समय] पथिक है । (२) मैंने [चादा के लिए] सुखासन और [तुम्हारे लिए] तुरग दिए, जो तुम्हारे कलिंग तक के लिए मार्ग के लिए होगे । (३) मैंने एक सहस्त्र टके उपहार के रूप मे दिलाए हैं, जिन्हे तुरत और शीघ्र ही वलद (बैल) ले कर आ रहे है । (४) यदि तुम यहा रहो तो तुम [हमारी] सेवा करो, अन्यथा जब [और जहा के लिए] तुम्हारा मन हो, तुम वहा के लिए प्रस्थान करो । (५) उसकी कोई बात नही पूछनी है जिसके साथ एक ही जन हो ।" (६) [यह कहते हुए] राजा ने अगुवो के रूप मे उसे दस ब्राह्मण दिए [और कहा,]" तुम्हे जहा भाए, वहाँ जाओ, (७) जोर देकर मैं नही कह सकता हू, किन्तु यदि तुम मया (ममता) करो तो [अभी] रहो ।"

२०. प्रथम सर्पदंश खण्ड

(३०८)

'सुनु नरवै' 'एक' वचन 'हमारा' । 'रहे चले सो बांध' 'तुम्हारा' ।
हरदी आहि 'हमारेउ' लोगू । मन धरि 'चले दोउ तिन्ह' जोगू ।
'अस मुनि राइहि' बीरा 'दीन्हा' । सीसु 'नाइ' 'कइ' 'लोरहि लीन्हा' ।
उतरे 'आइ' 'बाभन के' अवासा । 'मगता मिलिया आइ चहु' पासा ।
'जो जिसु जोगु दानु तिस दी(दि)या' ।
जस कीरति आपनि करि ली(लि)या ।

'पूनिव राति सपूरनि' 'सूते फूलन्ह' सेज 'बिछाइ'।
'बास लुबुध भुवगु' 'एक आवा' 'अउतहि चादहि खाइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २५६, म० पत्र १६३ (?), बी० १०२७-१०३०।

मैं० मे इस प्रसग का यही कडवक है, शेष चार नही हैं, जिससे स्पष्ट है कि मैं० का पाठ यहा पर त्रुटित है।

शीर्षक—मैं० अर्जदाश्त करदन लोरिक पेशे राव करिंगा।

म० अर्ज करदन लोरिक राव रा वअज़ी मरदुम।

पाठान्तर—(१) १ मैं० सुनु राजा, म० सुनहु राउ। २ बी० निजु। ३ बी० हमारे। ४ म० हउ चालसि चाहउ चेर, बी० रहे कुभेज फुनि वासि। ५ बी० तुम्हारे। (२) १ बी० हमारो, मैं० हमारा। २ बी० चलहु आहि तिहि। (३) १ बी० याह सुनि राजा, म० राइ उतर सुनि। २ बी० दीया। ३ म० चढाइ। ४ बी० सो। ५ म० लोरिक लीया। (४) १ म० जाइ। २ बी० वभन कै। ३ म० मगता आइ मिले चहु, बी० सभ ते आनि मिलाये। (५) इस अर्द्धाली के स्थान पर मैं० मे यथा चतुर्थ निम्नलिखित है—

दीन्ह सुषासन अउर तुरगू ॰ पथ लाइ तिन्ह राइ करिंगू। (तुल० ३०७ २) और म० मे है जा कह कछू हाथ कै देई जस कीरति आपु कह लेई। (६) १ बी० पून्यौ राति निरमल। २ म० भए आपनि, बी० फूलह। ३ बी० डसाई। (७) १ बी० वासु भुवग बिरूधा। २ म० न मानइ, बी० मे नही है। ३ बी० सूत चाद गौ खाइ, म० चादहि खाइ अघाइ।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "ऐ राजा, हमारी (मेरी) एक वात सुनो, हम रहे और अब चले, तो भी हम तुम्हारे वध हैं (हमारा जीवन तुम्हारे पास वन्ध-गहन रख उठा है)। (२) हरदी [पाटन] मे हमारे लोग (स्वजन) हैं, उनका योग (उनसे मिलना) मन मे रखकर हम दोनो चले है।" (३) ऐसा सुनकर राजा ने उसे [विदा का] बीडा दिया, जिसे लोरिक ने सिर नमित करके लिया। (४) [तदनतर] वे [चल कर] एक ब्राह्मण के आवास पर उतरे, तो उनके चारो ओर भिक्षुक आ मिले। (५) जो जिस योग्य था, [उन्होंने] उसको वैसा दान दिया, और अपनी यश-कीर्ति कर ली। (६) सपूर्ण रूप से पूर्णिमा की रात्रि थी, वे फूलो की शैया विछा (वना) कर सोए। (७) [पुष्प-राशि की] सुवास पर लुब्ध एक सर्प आया, और आते ही उसने चादा को [काट] खाया।

टिप्पणी—कलिग उस समय सभवत एक अनुर्वर राज्य था, जिससे वहा के

भिक्षुक पडोस के राज्यो तक मे जाकर भिक्षा मागते थे। अवधी प्रदेश मे अब तक ऐसे फटे-हाल मगतो को 'करिंगा' कहा जाता है।

(३०९)

'डसतहि चाद भई अधियारी। पैग भरत बिसभरि भइ बारी'।
खतरी खाइ 'चला फुफुकारी'। लोर बीर सुनि लाग गुहारी।
'पैसत बामी लोर' कर गहा। तस 'पटकेसि' जस 'ठावँहिं' रहा।
मारि भुवग 'लोर जउ' आवा। चांद मुई लोरिक गुहरावा।
'लोरिक बाभन सोवत जगाएउ'।
घर घर 'कहही' 'अै(अइ)स' 'केहि खाएउ'॥
'नगर सोर जब अथवा परा घरहि घर सोग।
तिरिया पुरुख उवरि गएउ(गए?) तह बिधि दीन्ह बिजोग॥'

सन्दर्भ—म० पत्र १६३ (?), बी० १०३४-१०३७।

म० मे इस कडवक के बाद तर्क है 'सात', जो अगले का है।

मैं० यहा पर त्रुटित है, उसकी पत्र-सख्या २६० नही है। सभवत यहा पर उसका आदर्श भी त्रुटित था, क्योकि पत्रो के साथ के चित्र उन्ही के कडवको के हैं।

शीर्षक—म० . दास्तान बेहोश शुदन चादा अल मुजरंद खुरदन मार।

पाठान्तर—(१) १ बी० चादा द्रिष्टि भइ उजियारी बिसु चरि गयो न उठी नारी। (२) १ बी० चले रभकारी। (३) १ बी० पेट पान जाइ। २. बी० पटसि। ३ बी० ठावैं। (४) १ बी० बीर जौ। (५) १ बी० बाभन सूत जागसि अस भाई। २ बी० सब। ३ बी कौहु घाई। (६-७) १ बी० मैं दोहा है

नगर फिकारा उभथा परिहै सभा पभोरु।
तिरी पुरपु जो निया विधि दीनौ र विछोरु॥

बी० मे इसके पूर्व अधिक है . बारा चाद जै कीन्ह अजोरा चाद राह लै गगेवैहि जोरा।

अर्थ—(१) डसते भर मे चाद अधकार-पूर्ण हो गई (काली पड गई), डग भरते ही वह बालिका बेसभाल (अचेत) हो गई। (२) स्त्री (चादा) ने कहा, "ऐ क्षत्रिय (वीर), वह काट कर और फुफकार कर चला जा रहा है।" यह सुनकर लोरिक वीर (चादा की) गुहार लगा (सहायता

के लिए दौड पडा)। (३) [सर्प के] बिल मे प्रविष्ट होते ही लोरिक ने उसे हाथ से पकड लिया, और उसे [भूमि पर] ऐसा पटका कि वह उसी स्थान पर रह गया। (४) जब सर्प को मार कर लोरिक आया, तो उसने पुकार लगाई, "चादा मर गई!" (५) लोरिक ने ब्राह्मण को [जिसके आवास पर वह ठहरा हुआ था] सोते हुए से जगाया, घर-घर मे लोग कहने लगे "किस [जतु ने] ने [चादा को] इस प्रकार काट खाया है?" (६) नगर मे जब यह शोर अस्तमित हुआ, घर-घर मे शोक पड गया। (७) [लोग कह रहे थे,] "स्त्री-पुरुष जब [किसी प्रकार सकटो से] बचे भी, तो विधाता ने उन्हे [एक-दूसरे का] वियोग दे दिया!"

(३१०)

रइनि 'भुवग परि' काहू न सोवा। 'जेइ रे' सुना सो 'धाहहि' रोवा।
ततु न मतु न ओखधु 'जोरा'। 'अउर सहेलिन्ह बन्हन तोरा'।
लोरिक बीर बहु 'कारनु करई'। 'चाह कटारइ कठ दइ मरई'।
'जेहिं' 'लगि तजेऊ सभ घर बारू'। 'तेहि बिन कस अब जिवन' अधारू।
'चदन काटि कइ चितइ रची। आनि आगि तेहिं ऊपर सची'।
'लइ बैसदरु बारइ कइसे [इ ?] धर सियराइ'।
'दई गुनी एक आना चादा लीन्ह जिलाइ'॥

सन्दर्भ—म० पत्र १६४, बी० १०३८-१०४०।

म० मे इसके बाद तर्क है 'सावन', जो अगले कडवक का है, मैं० के विषय मे दे० पूर्ववर्ती कडवक की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शीर्षक—म० व अजज व इलहाज व जारी करदन लोरिक।

पाठान्तर—(१) १ बी० नगर महि। २ बी० जिहि र। ३ बी० झोहैं। (२) १ बी० मोरा। २ बी० कैसे उपरि करिये सोरा। (३) १ बी० करनु करिये। २ बी० चाहि कटार कठ गै सरिये। (४) १ बी० जिहि। २ बी० तज्यौ सभै परिवारू। ३ बी० अब तू कह (हु) न जिये। (५) १ बी० चदन काटिहि चिहि चिरावा ले चादेहि उहि उपरि छावा। (६) १ बी० षेव बैसदरु बीना मार्‌यो रहहि बराई। (७) १ बी० दई सजोग लोरिक कर येत्यो चादा आनि दिवाई।

अर्थ—(१) उस रात मे, जो सर्प के प्रकार की [ही] थी, कोई भी न सोया, जिसने भी वह सुना, वह धाड मार कर रोया। (२) न तत्र,

न मत्र और न ओषधो का योग चल सका, और सहेलियो ने भी चादा के [वस्त्राभूषणादि के] बधन तोड दिए। (३) लोरिक वीर बहुत कारुण्य [-पूर्ण प्रलाप] कर रहा था, और चाहता था कि कंठ मे कटार दे कर वह मर जाए। (४) [वह कहने लगा,] "जिसके लिए मैंने समस्त घर-बार छोड़ा, उसके बिना अब जीवन का आधार किस प्रकार [होगा] ?" (५) [चादा के साथ भस्म होने के लिए] उसने चदन की लकडिया काट कर चिता रची और अग्नि [भी] लाकर उस पर सच दी। (६) आग लेकर जव वह [चिता] जला रहा था कि उसका धड किसी प्रकार [भी] [उस पर जल कर] शीतल हो, (७) दैव (ईश्वर) [वहा पर] एक गुणी को ले आया और उसने चादा को जीवित कर लिया।

(३११)

'सरवन लागि मत्रु इन्ह कहें'। 'सुनतहि' लोगु 'अचभइ रहे'।
पहर 'इक राति चाद हुति' डसी।
'डंसतहि मुई न निसि करि बसी'।
अगनित गुनी 'सभइ चलि आवा'। 'होइ अकारन मरन न पावा'।
'जियतइ जीवनु काहूं पाए। 'डसतहि मुनी परत खरि आए'।
अब 'सो' गुनी मंत्र 'इक बोलइ'। 'तिसु बाचा' हीरा कस 'तौलइ'।
'देखि गुनी मन चिंता' 'आखउ' मतरु इक बार।
गुरु के बचन 'सभारउ' जीउ देइ करतार॥

सन्दर्भ—म० पत्र १६४, बी० १०४१-१०४३।

मैं० के सबध मे देखिए पूर्ववर्ती कडवक की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शीर्षक—दास्तान आमद गारुरी व गुफ्तन मतर बर चादा।

पाठान्तर—(१) १ बी० सुगनि येकु मत्रु उनि कहा। २ बी० सुनि कै। ३. बी० अचंभै रहा। (२) १ बी० येक रहतेहि बाह। २ बी० डसते न जानौ गहनै कसी। (३) १ बी० आयो तिह ठावा। २. बी० भई उकार मरन नहि पावा। (४) १ बी० जसतें जीवनु काहू पाई। २. बी० तब ही मुवा जहा हूते पाई। (५) १ बी० योहु। २. बी० कस बोलै। ३. बी० विनुत करी। ४. बी० तौलै। (६) १. बी० देखु गुनी जु सभैं जसवता। २. बी० कहे। (७) १ बी० सभारैं।

अर्थ—(१) इसने [चादा के] कानो मे लग कर एक मत्र कहा, और

उसको सुनते ही लोग आश्चर्य-चकित रह गए। (२) एक प्रहर रा० औ। (रात्रि व्यतीत होते) चादा [सर्प के द्वारा] डसी गई थी, और उसके डसते ज ही वह मृत हो गई थी और रात भर के लिए भी नही बसी थी (जीवित रही थी)। (३) [वहा] अगणित गुणी थे ओर वे सभी [उसका उपचार करने को] चले आए थे कि अकारण मरण न होने पाए। (४) जीवित रहते हुए जीवन [भले ही] किसी ने पाया हो, [अन्यथा विषधर के] डसते ही वे मुनि भी पड (मर) जाते हैं जो खरी (वडी) आयु वाले होते है। (५) अब वह गुणी एक मत्र कह रहा था और उस [मत्र] की वाचा (शब्दावली) को हीरे के जैसा तौल रहा था। (६) [उसकी अवस्था] देख कर गुणी मन मे सोचने लगा, "एक बार मैं मत्र कहू (७) और [साथ ही] गुरु के वचनो का स्मरण करू, तो [सभव है] कर्त्ता (ईश्वर) जीव-दान कर दे।"

(३१२)

'चादहि फिरि जिउ नवा सचारू। फुनि लोरिक मनि सुषै (ख) अपारू'।
कर 'कगन' अभरन सभ 'दीन्हा'। 'अउ सो गारुरि मागि कइ लीन्हा'।
'हिरदइ सुमति चली फिरि आई'। 'कीन्ह' सुखासनु चाद चलाई।
'दुहु के मन कइ' पूजी आसा। करहिं बहुत मन' भोग बिलासा।
अलख निरजनु 'जाहि जियावइ'। 'दइअ क लिखा सो मानुस पावइ'।
अरथ दरब 'सभ होइहि' 'चादा' 'जउ जीवन सयसारि'।
तुम्ह मुए 'हम फुनि चादा' मरत न 'लागति' बार ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १६५, बी० १०४४-१०४६।

मैं० के सबध मे दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी। म० मे इस कडवक के बाद तर्क है 'दसीदन', जो बाद के कडवक के फारसी शीर्षक का ज्ञात होता है। म० मे इस कडवक के बाद के दो पत्र नही है, जिन पर चार कडवक रहे होगे।

शीर्षक—म०. दास्तान नरिंद. शुदन चादा अली फरमान खला इन माली।

पाठान्तर—(१) १ म० पिरम मत्र जउ गारुरि पढा · विख लहरि सुनि चादहि चढ़ा। (२) १. बी० ककन। २ बी० दीया। ३. बी० बोटैं लोर बाधि कर लीया। (३) १ बी० चला लोर तिल इक न रहाई। २ बी० फाद। (४) १ बी० चला लोर मन। २ बी० बहुते करिहैं। (५) १ बी० भुवाह जिवावैं। २ बी० जोइ लिष्या सु सोई पावैं। (६) १ बी० सब होय-

है । २. वी० मे नही है । ३ बी० जे जीवत सैसारि । (७) १. म० तुहु मइ होत जिउ देतउ । २ वी० लागैं ।

अर्थ—(१) चादा को फिर नए जीवन का सचार हुआ, तो लोरिक के मन मे अपार सुख हुआ । (२) हाथो का कगन और समस्त आभरण [लोरिक ने गारुड़ी को] दे डाला, और गारुड़ी ने भी उनको माग कर लिया । (३) [चादा के] हृदय मे सुमति (चेतना) पुन आ गई, तब लोरिक सुखासन (एक प्रकार की पालकी) [का प्रबध] करके [अपने साथ] चादा को ले चला । (४) दोनो के मन की आशा पूरी हुई, और वे मन में बहुत भोग-विलास [की कल्पना] करने लगे । (५) [लोरिक ने कहा,] "अलख-निरजन जिसको जिला देता है, वह मनुष्य दैव (विधाता) का लिखा (कर्म का भोग) [भी] पाता है । (६) इसलिए ऐ चादा, यदि ससार मे जीवन रहा, तो अर्थ-द्रव्य आदि सभी होगे । (७) किन्तु तेरे मृत होने पर मुझे [भी] मरते देरी न लगती ।"

२१. द्वितीय सर्पदंश (बिसहर) खण्ड

(३१३)

चलत चलत जउ भइ गइ 'साझा' । 'कीन्ह' बसेरा बन खड 'मांझा' ।
'पाकरि रूख' देखि 'छतनारी' । 'तेहि' तरि बसे पुरिखु 'अउ' नारी ।
'जेइ' भूजि सुख सेजि डसाई । 'सूता सूरिज चांद गिय' लाई ।
'अथए जोन्ह' 'भएउ' अधियारा । 'पाछिलि' राति होत 'भिनुसारा' ।
'तेहि' खिन विसहर दीन्ह दिखाई । 'चादहि' 'डसि कइ' 'गएउ' लुकाई ।
'असि सुकुवारि' 'जो लहरि न आई' 'खात' गई मुरुझाइ ।
एकु वोलु 'पइ वोलिसि चादा' 'लोरहि सोवत' जगाइ ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६१, भो० पत्र ३३ (नवीन), वी० १०७१-१०७३ । म० यहा पर त्रुटित है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की सन्दर्भ-टिप्पणी ।

शीर्षक—मैं० मादने लोरिक व चादा शब्द दरे बयावा व मार खुरदने चादा रा ज़ेरे दरख़्त ।

भो० . अज रपतन राह शव दर आमद व फरूद आमदद जेरे दरख़्त पाकर व मार गुजीद चादा रा ।

पाठान्तर—(१) १ वी० सझा । २ वी० लीन्ह । ३ वी० मझा ।

(२) १ बी० पाकुरि रूखु। २ बी० छतभारी। ३ बी० ता। ४. बी० औ। (३) १. भो० जेइ, बी० जीय (जेंइ—फा०)। २ बी० सोवत चाद सुरिज गै (गिय—फा०)। (४) १ मं० अथए जोन, बी० अथई जोन्हि। २ भो० भए, बी० भयो। ३ बी० पिछली। ४ बी० भुनसारा। (५) १ बी० तिहि। २ मं० चादइ। ३ मं० डसि कइ, बी० डसि कै। ४ बी० गयो। (६) १ भो० अति सुकुवारि, बी० अस कुवरि। २ बी० लहरि न आई, मं० लहरि जउ आई। ३ भो० खातहि। (७) १ बी० पै बोलसि, भो० पइ बोली चाद। २ बी० सोवत लोरु।

अर्थ—चलते-चलते जब सध्या हो गई, तब उन्होने [एक] वन-खड मे बसेरा किया। (२) एक पाकर का छतनार (पत्र-बहुल) वृक्ष देख कर वे पुरुष तथा स्त्री उसी के नीचे बस रहे। (३) खा-पीकर उन्होने सुख-शैया बिछाई, और सूर्य (लोरिक) चाद (चादा) को गले लगा कर सो गया। (४) ज्योत्स्ना (चन्द्रिका) के अस्तमित होने पर जब अधेरा हो गया था, और पिछली रात मे जब भिनुसार (प्रभात) हो रहा था, (५) उसी क्षण (बेला) मे [एक] विषधर दिखाई पडा और वह चादा को डस कर छिप गया। (६) वह ऐसी सुकुमार थी कि उसे [सर्प-दश की] लहर भी न आई और वह [सर्प के] काट-खाते ही मुर्झा गई। (७) केवल चादा लोरिक को सोते हुए से जगा कर एक बोल बोल सकी।

(३१४)

चादा लोरहि कहा जगाई। उठहु नाह धन बिसहरि खाई।
चरि गै बिसु औ नारि न बोलै। जाग्यो(गेउ) नाहु सोवत धन तो लै।
चाद चाद कै मेलसि धाहा। रोइ रोइ लोर खेह सिर बाहा।
झगा फारि पाग भुई मारी। कहै पेट हनि मरौ कटारी।
कुकरमु करि सग लाग्यो(गेउ) तोरै। तू फुनि हाथ न लागहि मोरै।
बाट माझ ठसकावसि किय(ए)सि बिरहि मोहि जारि।
लहन मोर अस ही है चादा कवन खोरि तुम्हारि॥

सन्दर्भ—बी० १०७४-१०७६।

मं० यहा पर त्रुटित है। उसके पत्र २६१ पर जो चित्र है वह इसी कडवक का है, उसमे लोरिक खडा और चादा विष-मूर्छित दिखाई गई है। भो० मे पूर्ववर्ती कडवक के नीचे जो तर्क है वह इसी कडवक का है। म० यहा पर त्रुटित है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की सन्दर्भ-टिप्पणी।

अर्थ—(१) चादा ने लोरिक को जगाकर कहा, "हे स्वामी उठो, [तुम्हारी] धन्या (स्त्री) विषधर (सर्प) द्वारा खा (काट) ली गई है।" (२) [तब तक] विष चढ़ गया था, और स्त्री बोल नही रही थी, स्वामी उठा तो वह स्त्री [तब तक] सो (पड) गई थी। (३) "चाद, चाद" [कह] कर वह धाड मारने लगा, और वह लोरिक रो-रोकर सिर पर मिट्टी फेंकने (डालने) लगा। (४) उसने झगा (वस्त्र) फाड़ कर पाग भूमि पर पटक दी, और कहने लगा, "मैं पेट मे कटार मार कर मर जाऊगा। (५) कुकर्म कर (अपनी विवाहिता को छोड़कर) मैं तेरे सग लगा, फिर भी तू मेरे हाथ न लगी! (६) तू मुझे वाट मे ही धोखा दे रही है और मुझे विरह मे जला रही है। (७) मेरा प्राप्य (भाग्य) ही ऐसा है; हे चादा, इसमे तुम्हारा कौन-सा दोप है?"

(३१५)

'छाडेउ' भाइ वाप महतारी। 'तजेउ बियाही' 'मैना नारी'।
लोगु 'कुटुवु' घरु वारु 'विसारेउं'। देसु छाडि परदेस 'सिधारेउ'।
'गांउ ठांउ' पोखर अवराई। 'परिहरि निसरेउ' 'कूवा बाई'।
अरथ दरव 'कर' लोभु न 'कीन्हेउ'। चांद सनेहि 'देसंतरु लीन्हेउ'।
विचि 'हौं(हउ)''वाट' परी करतारा। 'ना' धनु 'भएउ' न मीतु पियारा।
'यह रे' वात 'सभ जानहि' 'चाद मोर होत परान'।
जउ जिउ 'जाइ कया कस दीखइ' 'मइ' का 'करबि' अपान॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६२, भो० पत्र ३४ (नवीन), वी० १०७७-१०७६। म० यहा पर त्रुटित है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शीर्षक—मैं०. गिरिय. करदने लोरिक अज़ वेहोशी चादा।

भो० तनहाई व वेकसी ख़ुद नमूदन लोरिक अज़ वराय चादा मुतअल्लिक शुदन।

पाठान्तर—(१) १ वी० छाड्यो। २. वी० तज्यौ विवाही। ३. वी० मै नारी। (२) १ वी० कुटवु। २ वी० विसार्यां। ३. वी० सिधार्यां। (३) १ वी० गाव ठाव। २ वी० परहरि निकर्यो। ३. मैं० गवन उपाई। (४) १ वी० का। २ वी० कीन्हा। ३ वी० दिसतरु लीन्हा। (५) १. मैं० होइ। २ मैं० वाट वाट। ३. मैं० नहि। ४ वी० हुवा। (६) १. मैं० इहइ, वी० यह र। २ मैं० अव जानउ, वी० सभ जानसि। ३. मैं० तोरे

मरन निदान। (७) १. बी० होय कया ह्रौ देषौ। २. बी० ह्रौ। ३. बी० करिव।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "मैंने भाई, बाप, मा को छोडा, और विवाहिता नारी मैना को छोडा, (२) लोक, कुटुब और घर-बार को विस्मृत किया, देश को छोड कर परदेश चला, (३) गाव, स्थान, पोखर (तालाब) आम्राराम, कूप तथा वापी को छोड कर निकला, (४) अर्थ और द्रव्य का लोभ मैंने न किया और चादा के स्नेह मे देशान्तर [का वास] ग्रहण किया, (५) वीच मे, ऐ सृष्टि कर्त्ता, मुझ पर यह बाट पडी (यह डाका पडा) कि न धन [मेरे साथ का] हुआ, और न [मेरी] प्रिय मित्र [मेरे साथ की] हुई ! (६) ऐ चादा, यह बात सभी जानते है कि तू ही मेरा प्राण है। (७) यदि जीव चला गया (तुम चली गई), तो काया कैसे दीखेगी (मैं कहा जीवित दिख सकूगा) ? तव मैं अपने आत्म (जीव) को [रख कर ही] क्या करूगा ?"

(३१६)

जीउ 'पइसारा' निसरि न जाई। बिसु 'न' 'गाठि' 'मरतेउ जेइ' खाई।
'मरिहउ' 'कवनै करि' उपगारा। जीभ खाडि हनि मरउ कटारा।
चाद 'मुए' कत 'पावइ' लोरा। 'साथि गए' 'सोवहि गिय मोरा'।
नैन नीर 'भरि' सायर 'पाटी'। 'नाउ चढाइ' चाद गुन 'काटी'।
'दई' गुसाइ सिरजनहारा। तोहि छाडि 'किसु' करउ पुकारा।
जस 'कीन्हेउ तस पाएउ' 'रहेउ' चाद मनु लाइ।
जो 'बाउर मनुसइ' 'चितु' 'बाधइ' सो 'अइसेहि' पछिताइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६३, म० पत्र १६५ (?), भो० पत्र ३५ (नवीन), बी० १०८०-१०८२।

शीर्षक—मैं० 'अँजन। म० गिरीस्तन लोरिक फरियाद करदने ऊ।
भो० जाने खुद फिदा साख़्तने लोरिक अज बराए चादा वाकयाए हाल खुद बाज़ नमूदन।

पाठान्तर—(१) १ बी० पपिया, म० पियारा। २ म० नहि। ३ बी० गठिना, ४ म० मरब जा, भो० जो मरतेउ, बी० त्यो मरत्यो। (२) १ बी० मरिहौ। २ म० कवनउ कइ, मैं० कोई करी (करि), बी० कौन करि। ३ बी० षडि। (३) १ बी० मुइ। २ म० पावहि, भो० पाउब, बी० पाइहौ। ३ बी० साथनि गई, मैं० म० साथ गए। ४ म० सोइहि तोरा,

भो० सोइहि गिय सभनहि मोरा, वी० सोभ लै। (४) १ म० भो० मइं, वी० मो। २ वी० फाटे। ३ वी० नाव चराय। ४ वी० काटे। (५) १. म० दया। २ म० भो० केहि, वी० कस (किसु—फा०)। (६) १ वी० जस कीन्हौ तस पायो। २ वी० रह्यो। (७) १. म० बाउर मनुसहि, वी० बावर मनसहि। २ मै० चित (चित्त)। ३ वी० बाध्यो। ४. वी० अैसै।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "[मेरे शरीर मे] जो जीव का प्रवेश है, वह निकल कर जा नही रहा है, गाठ मे विष भी नही है, जिसे खाकर मर जाता। (२) [फिर] किस उपकार (उपाय) के द्वारा मरूगा ? जिह्वा को खडित करके और कटार का आघात करके मरूगा। (३) ऐ चादा, तू उसके मरने पर लोरिक को कहा पा सकेगी ? साथी के जाने पर तू ग्रीवा मोड कर सोया करे। (४) नेत्रो के नीर से सागरो को भर कर मैंने पाटा, तो [उस अश्रु-सागर से पार करने के लिए] ऐ चादा, तूने नाव पर मुझे चढाकर उसका गुण (रस्सा) काट दिया।" (५) "ऐ दैव, स्वामी और सृष्टि कर्त्ता, तुझे छोड कर किस की पुकार (गुहार) करू ? (६) मैंने जैसा किया, वैसा पाया, [क्योकि] मैने अपने मन को चाद (चादा) से लगा कर रक्खा था। (७) जो बावला मनुष्य से चित्त को बाधता है, वह इसी प्रकार पछताता है।"

(३१७)

'वैरिनि भइ सो पाकरि' रूखा। 'जेहिं' तरि बसे 'परा' मोहि दूखा।
काटि पेड 'जरि मूरि उपारउ'। 'डारि डारि' 'चइरी कइ' 'फारउ'।
सरु रचि आगि चहू दिसि'बारउ'। चाद 'लाइ' 'गिय आपुहि' 'जारउ'।
देस 'देस मोरी भइ गइ' लाजा। सूरिजु 'चाद क निसि' 'लइ' भाजा।
'अत्र जउ पिरिति नहि ओर निरीबाहउ'। नरक कुड सभ पुरुपा बाहउ।
पति न होइ सत 'छाडे' हानि होइ कुर कानि।
'तउ रे बीर' 'जउ सिर पहुचावउ' धीय 'पराई' आनि॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २६४, म० पत्र १६७, वी० १०८३-१०८५।

म० में इसके बाद तर्क 'कारी' है जो अगले कडवक का है। भो० मे पूर्ववर्ती कडवक के नीचे तर्क 'वैरिनि' है, जो इसी का है।

शीर्षक—मै० गुफ्तने लोरिक दरख्त पाकर रा।

म० . मलामत करदन लोरिक अज दरख्त रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० बैरनि भयो सु पाकुरि। २. बी० जा। ३ बी० परै। (२) १ बी० जरमूर उजारौ। २ बी० डार डार। ३ बी० छेदि कै। ४ मै० बारउ, बी० फारौं। (३) १ बी० बारी। २ म० लागि। ३ बी० गै आपनु। ४ बी० जारौ। (४) १ मै० देसतर भइ मोरि। २ म० चादहि, बी० चाद कै। ३ बी० लै। (५) १. मै० जउ एह बात ओर निरबाहउ, बी० अब जे पिरति न वोरि निबाहौ। (६) १ बी० हारे। (७) १ मै० तोरें बूत, बी० तौरे पुरषु। २. बी० वोरि निबाहौ। ३ म० परारी।

अर्थ—(१) पाकर का वह (यह) वृक्ष मेरा वैरी हुआ, जिसके नीचे निवास लेने के कारण मुझे दु ख [झेलना] पडा। (२)[इस] पेड को काट कर इसको जड-मूल से मै उत्पाटित कर रहा हूँ और [इसकी] एक-एक डाल को चैलियो के रूप मे फाड (चीर) रहा हू। (३)[उससे] शर (चिता) रच कर चारो ओर से आग जला रहा हूँ और चाद को गले से लगा कर अपने आपको उसमे जला रहा हूँ। (४) मेरी यह लज्जा [की बात] देश-देशान्तर मे हो चुकी है कि सूर्य (लोरिक) चाद (चादा) को रात मे लेकर भाग गया है। (५) यदि अव प्रीति का समाप्ति तक निर्वाह न करूँ, तो मै [अपने] समस्त पूर्व-पुरुषो को नरक कुड मे झोक दूगा। (६) सत्य छोडने से पत (प्रत्यय) नही रहता है, और कुल-कानि की हानि होती है, (७) [अतः ऐ चादा,] तुझ पराई कन्या को लाकर यदि इस प्रीति को सिरे (समाप्ति) तक पहुँचाऊँ, तभी मैं वीर हूँ।"

(३१८)

'कारे' नाग 'सतुर' 'बटवारे'। मीत 'बिछोह' दीन्ह हतियारे।
'बरु मोहि खातिसि' फिटु रे कुजाती। काहे 'दूखे' मोर 'सघाती'।
'तोरें' 'ठाउ आइ जउ बसई'। 'पुरुख छाडि मेहरिहि कत' 'डसई'।
मतरु सकति 'किए' सतुरु 'चलावा'। 'केइ रे' 'नाग तू गोहनि लावा'।
'कइ तू' बावन बीर पठावा। 'चादहि डसइ' नाग होइ आवा।
'जेहिं' कारनि 'मइ जीव निबारा' 'देखउ' बहुल सताप।
तेहि सेती बिच 'बाहे' 'अरु पचि' मारे 'साप'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २६५, म० पत्र १६७, भो० पत्र ६२ (नवीन), बी० १०८६-१०८८।

शीर्षक—मै० गुफ्तने लोरिक बर मार रा व तास्सुफ खुरदन।
म० मलामत कर्दने लोरिक व बददुआए करदने मार रा।

भो० : वामाद गुफ्तने लोरिक वाकए हाल खुद अज़ बुराई चादा अदेश मद ।

पाठान्तर—(१) १ भो० काले । २ वी० सतर । ३ म० भो० बट-वारे । ४ वी० विछोर । (२) १. वी० वरि मोहि षात कि । २ वी० डसिया, मैं० देखे (?), म० दूखे तइ । ३ वी० सगाती । (३) १ मैं० तोरे, बी० तोरी (तोरे—फा०) । २ वी० ठाव आइ जौ वसे । २ म० पुरुख छाडि कस तिरि ही, मैं० पुरुष छाडि कत नारी, बी० पुरषु छडि कत मिहरी, भो० पुरुख छाडि मेहरिहि कस । ४ वी० डसै । (४) १ मैं० केई, वी० के । २ म०, भो०, वी० सतुरु (सतरु—वी०) पठावा (तुल० पाचवी अर्द्धाली) । ३ वी० कै र । ४. म० भो० काल तू गोहनि (गोहनहि—भो०) लावा, मैं० नाग तू गोहनि आवा । (५) १ भो० कै तोहि, वी० कै तहु । २ वी० चादहि डसे, मैं० चादइ डसहि । (६) १ वी० जिहि । २ म० हउ जीव निवारेउ, वी० हौं जीउ उवारौं । २ वी० देपौं । (७) १ वी० पारा । २ वी० रे विजु, भो० पचि र (रे) । ३ मैं० साप साप ।

अर्थ—(१) ऐ काले नाग, सत्वर डाका डालने वाले, ऐ हत्यारे, तूने मुझे मित्र का वियोग दिया ! (२) भले ही तूने मुझे खाया होता ! ऐ कुजाति, तू नष्ट हो जा, तूने मेरे सगी को क्यो दोप (दुःख) पहुँचाया ? (३) यदि [कोई] तेरे स्थान पर आकर वसे, तो तू पुरुष को छोड कर नारी को क्यो डसे ? (४) [अथवा] तू शक्ति से सत्वर चलाया हुआ मत्र है ? ऐ नाग, तुझे किसने साथ लगा दिया था ? (५) अथवा, तू वावन वीर का भेजा हुआ था, और चाद को डसने के लिए नाग वन कर आया हुआ था । (६) जिस [चादा] के कारण मैंने [गोवर से भागकर] अपना जीव वचाया, और [जिसके कारण] मैंने वहुतेरे संताप देखे, (७) उसी [चादा] से तूने वीच डाल दिया, और हार कर, ऐ सर्प, [उसी को] तूने मारा !"

(३१९)

'कइ रे' कुदिन 'हम' पायतु धरा । 'कइ रे कलापु' 'माजरि' 'कर' परा ।
'कइ रे कुटुव' जिउ भारी कीन्हा । 'कइ रे' सरापु माइ मोहि दीन्हा ।
'घरी' धरन 'कइ' पडितु भुलाना । 'कइ हम' 'कुसगुनि' कीत पयाना ।
अन 'घट भएउ न चाटु दुखाएउ' । 'कवन' पाप दइया 'मइ' पाएउं ।
'यह रे' महर धिय 'नारि' 'अदोसी' । 'केइ रे' निपूती चांदा कोसी ।

'कइ केहु' किच्छु 'देइ मोकरावा' दोसु भुवगहि लाग ।
'कवनि नीदि' तुम्ह 'सूतिहु' चादा 'सपनहि भएउ' सुहागु ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६६, म० पत्र १६८, भो० पत्र ३६ (नवीन), बी० १०८६-१०६१ ।

म० मे इस कडवक के वाद तर्क 'नाग भेस' है, जो अगले कडवक का है । भो० मे पूर्ववर्ती कडवक के नीचे तर्क 'कँ' रे कुदिन' है, जो इसी कडवक का है ।

पाठान्तर—(१) १ वी० कँ र । २ भो० मइ । ३ वी० कँ सरापु, म० कइ कराप । ४ मैं० मैंना । ५ वी० का । (२) १ बी० कँ कुटव । २ वी० कँ रु । (३) १ वी० षरी । (घरी—फा०) । २ मैं० गा, वी० कँ । २ भो० कँ मइ, वी० कँ हम । ३ मैं० कुसगुन कुसगुन, बी० कुसुगनि । (४) १ वी० वर भयो उचाटु दुषायो । २ बी० कौन । ३ म० हुउ, बी० मैं । ४ वी० पायो । (५) १ बी० रु । २ म० भो० चाद । ३ भो० निदोषी । ४ वी० कँ रु । (६) १ मैं० कइ केउ, वी० कँ काहू । २ म० देइ मोगलावा, भो० देइ मोगराए, वी० दौ सुकरावा । (७) १. बी० कौन नीद । २ मैं० सूती, बी० सोवोहु । २ मैं० सपनेइ भयेउ, बी० सुपनै भयो ।

अर्थ—(१) "या तो हमने किसी बुरे दिन को पायत रक्खा (प्रस्थान किया), अथवा हम पर माजरी (मैंना) का कलाप (दु खित होने का प्रभाव) पडा है ? (२) अथवा, मेरे कुटुबियो ने जी भारी किया है ? अथवा, मेरी माता ने मुझे शाप दिया है ? (३) अथवा, [यात्रा की] घडी निर्धारित करते हुए पडित ने भूल की है ? अथवा, हमने कुशकुनो मे प्रयाण किया है ? (४) इतना बडा (इतनी वडी अवस्था) का हो गया हू, [किन्तु] मैंने चीटे को भी दु खित नही किया है, [तब] यह कौन-सा पाप (किस पाप का भोग), हे दैव, मैंने पाया है ? (५) महर की यह दुहिता निर्दोष नारी है, [फिर] किस निपूती के द्वारा चादा कोसी गई है ? (६) अथवा, किसी ने कुछ दे (खिला) कर इसे मुक्त किया (आने दिया), और दोष भुजग को लगा है ? (७) ऐ चादा, तुम कौन-सी निद्रा मे सो गई हो कि स्वप्न ही मेरा सौभाग्य हुआ है ?

(३२०)

नाग भेस होइ 'केइं' धनि 'हरी' । 'लोरहि' राम अवस्था परी ।
रामहि हनिवतु 'भएउ सघाता' । मोहि न 'कोइ' बिनु दई बिधाता ।

'दुसर न कोउ जो कर' उपगारा । सिरजनहार 'देहि' निस्तारा ।
'हनिवत सीता कह धसि बारी' । लका खूट खूट 'परजारी' ।
'हउ फुनि' 'चाद हरी जउ' 'पावउ' । लंका 'छाडि पलका' 'धावउ' ।
'ओखदि मूरि' चांद 'जेहि बहुरइ' 'जउ' 'कोइ देइ बताइ' ।
'सातउ बादर' 'सात भुइ' इक इक 'ढूढउ' जाइ ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६७/१, म० पत्र १६८, भो पत्र ३७ (नवीन), बी० १०९२-१०९४ ।

शीर्षक—मैं० अँजन लहू । म० फरियाद व ज़ारी करदन लोरिक व गुरवी व तनहाई ख़ुद रा ।

भो० . वाकअ हाल ख़ुद नमूदन लोरिक चुनाचि राम उफतादह बूंद बराए मीता रा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० कै, मैं० मे नही है । २. मैं० बी० धरी । ३. बी० लोरिक । (२)१ बी० भयो सगाता । २ बी०, भो० केऊ, म० कोउ । (३) १ बी० दुसर न कोई करि, म० मरहु कोई जो करइ । २ मैं० देवहि । (४) १ बी० हनिवति सीता की धस मारी । २. मैं० कइ जारी, भो० फिरि जारी । (५) १ बी० हौं फुनि, मैं० हउ पुनि, भो० हौ जउ । २ भो० चाद हरी सुनि, बी० चादँ हिरी ज्यो । ३ भो० पावहु, बी० पाऊ । ४ बी० छोडि विलका । ५ मैं० जावउ, भो० धावहु, बी० धाऊ । (६) १ बी० औषध मूरि । २. मैं० केहु जियई, भो० जेहि जीवइ, बी० जौ बहुरैं । ३ म० जोंति, मैं० मे नही है, बी० है । ४ म० भो० केउ (कोइ—म०) देइ दिखाइ, (७) १ बी० साती बादर, म० भो० सातउ सरग । २ बी० साती भुई इक टक । ३ बी० ढूडी, बी० भो० हेरउ ।

अर्थ—(१)[उसने कहा,] "नाग के वेष मे होकर किसने [इस] स्त्री को हर लिया कि लोरिक को (के ऊपर) राम की जैसी अवस्था (विपत्ति) पड़ गई ? (२) राम को तो हनुमान का सग हो (मिल) गया था, जब कि मुझे विधाता के बिना (अतिरिक्त) कोई नही है । (३)[मेरा] दूसरा कोई नहीं है जो उपकार (उपाय) करे, हे, सृष्टिकर्ता, तू ही मुझे [इस सकट-सागर से] निस्तार दे ! (४) हनुमान ने सीता के लिए [अशोक] वाटिका में धसकर (प्रविष्ट होकर) लका को तनिक-तनिक करके जला दिया था, (५) मैं भी यदि हरी हुई चादा को पा सकूं, तो लका को छोड़कर [उसके आगे] पलका ना दौड़ जाऊ । (६) चादा जिस सेबाहुट (लौट) जाए (आए)

यदि कोई मुझे ऐसी औषधि-मूल बता दे, (७) तो उसे मैं सातो बादलो (आकाशो) तथा सातो भूमियो [मे से] एक-एक मे जाकर उसे ढूढ डालूँ।"

(३२१)

चाद लागि 'मइ' बहु दुख 'देखा'। गनत न 'आवइ' 'एकउ' 'लेखा'।
मारेउ बाठ 'किएउ सुध' राई। 'राखेउ' 'महरा कइ' महराई।
'परेउ खाट लइ' 'पिरम जउ' मारा। आइ बिरसपति दीन्ह अधारा।
एकु 'बरिस' 'मढ देवर जागेउ'। जोगी 'भेख भीख फुनि' 'मागेउ'।
बरहा मेलि सरगि 'चढि धाएउ'। सिर 'सेउ' खेलि चाद 'लइ आएउ'।
चोरु चोरु 'कइ' मारत 'उबरेउ' 'तेइ धनि लिएउ छुडाइ'।
अब 'तेइ' 'धनि' बनखडि 'कइ छाडेउ' 'केहि गुहराऊं(वउ) जाइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६६, म० पत्र १६६, बी० १०६५-१०६७।

म० मे इस कडवक के नीचे तर्क है 'सगि गो' जो कडवक ३२२ का है।

शीर्षक—मैं० ऐजन लहू। म० दर्द मदी खुद गुफ्तन लोरिक दरख्त मुकाबिलन् (?)।

पाठान्तर—(१) १ बी० मै। २ मैं० देखे, बी० देख्यो। ३ बी० आवत। ४ म० कवन सो, बी० बनत न। ५ मैं० लेषे, बी० लेख्यौ। (२) १ बी० षदेर्‌यो। २ बी० राषी। ३ बी० महर केरि। (३) १ बी० पर्‌यौ षाट लै। २. बी० पिरम क, मैं० बिरह जउ। (४) १ बी० बरसु। २ बी० मढु देवरु जाग्यौ। ३ मैं० भेस होइ भीख, बी० भेस भीख फिरि। ४ बी० माग्यौ। (५) १ बी० चरि धायो। २ बी० स्यो। ३ बी० लै आयौ। (६) १ बी० मैं० करि। २ म० छूटेउ, बी० मे नही है। ३ बी० चादा लियो छुडाइ, मैं० चाद लिएउ लुकाइ। (७) १ बी० ते ले, मैं० तेइ। २ बी० धन, म० धनि पुनि। ३ बी० छाड्यौं। ४ म० गहि गहि आनउ जाइ, बी० किहि गुहराउ जिवाय।

अर्थ—(१) "चादा के लिए मैंने बहुतेरा दुख देखा, एक भी लेखे मे वह गिनती मे नही आ रहा है। (२) मैंने बाठ को मारा, राजा [रूपचद] को शुद्ध (सीधा) किया तथा महर की महराई रक्खी। (३) जब प्रेम के द्वारा मैं मारा गया (आहत किया गया) और मैं खाट लेकर पड गया, उस समय बृहस्पति ने आकर मुझे [जीवन का] आधार दिया। (४) एक बरस तक मैं मढ-देवालय मे जागता रहा और योगी के वेश मे होकर भीख माँगता रहा।

(५) वरहा (रस्सा) डालकर मैं आकाश (धवलगृह के ऊपरी खड) पर चढ दौडा, और सिर (जीवन) के साथ खिलवाड कर [वहाँ से] चादा को लेकर आया। (६) 'चोर' 'चोर' [पुकारा जा] कर मैं मारे जाने से वचा, [उस समय] उस स्त्री ने ही मुझे छुडा (वचा) लिया [अन्यथा न बच पाता]। (७) अव उसी स्त्री को, मैंने वनखड मे [ला] कर छोड़ (गवा) दिया, तो किसको जा कर पुकारू ?"

(३२२)

'सगि' न साथी 'भइ भइ' रोवा। मित 'जो होत'(हुत)'सो' दई बिछोवा।
आंसू 'सायर भरि' 'उपटाए'। 'नयनन्ह' बनखड 'रोइ बहाए'।
'कहि कहि' चाद चांद 'गुहरावइ'। 'धुनि धुनि' सीसु नारि'पइं'लावइ'।
उतरु 'न देइ लोर मुह' जोवा। 'नाग' डसी बिसु 'लहरी(रि)न्ह'सोवा।
'गाउ ठांउ होइ तह' 'धांवउ'। विखम उजारि गुनी कत 'पावउ'।
माइ वाप 'गुरु दूलह' दुख न जान कस होइ।
जउ सिर 'परइ' 'तउ हि पइ' 'जानिय' दुखी 'होइ जनि' कोइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६७।२, म० पत्र १६६, भो० पत्र ४६ (नवीन), वी० १०६८-११००।

शीर्षक—मैं० अंजन लहू। म० दर तनहायगी व गरीवी खुद गुफ्तन लोरिक।

पाठान्तर—(१) १ वी० सग। २ वी० भैं भैं। ३ म० जो हुता, वी० जु होत। ४ वी० सु। (२) १ वी० सैर भरैं। २ मैं० उपटावइ। ३ वी० नैनहु। ४ म० रोड पहाए, मैं० रोइ वहावइ। (३) १ म० करि करि। २ वी० गुहरावैं। ३ म० घरि घरि। ४. म० वी० पा, भो० पाय। ५ वी० लावैं। (४) १ मैं० न देहि, भो० न देहिं। २ मैं० वी० नारि मुप। ३ म० वी० नाप। ४ लहरन्हि, मैं० लहरइ, वी० लहरेहि। (५) १ वी० गाव ठाव होइ तो व, मैं० गाउ ठाउ होइ तहंवा। २ मैं० धावउं, वी० धाऊ, भो० धाएउ। ३ मैं० पावउं, वी० पाऊ, भो० पांएउ। (६) १ वी० जो दुलही, मैं० गुरु दूखहि। (७) १. भो० मैं० जो सिर परा, वी० जिह सिर परै। २ भो० तउ, मैं० मो, वी० मु। ३ वी० म० जानसि, भो० जान्या। ४ वी० होउ जिन।

अर्थ—(१) उसका [अव] न कोई सगी था और न साथी वह घूम-

घूम करके रोया, क्योकि उसका जो मित्र था, उसे दैव ने उससे वियुक्त कर दिया था। (२) आसुओ से सागर भर कर [उसके द्वारा] उमडाए जा चुके थे और नेत्रो के द्वारा रो-रोकर वनखड वहाए जा चुके थे। (३) वह 'चाद-चाद' कह कहकर पुकार (चिल्ला) रहा था, और अपना सिर पीट-पीट कर उस नारी के पैरो से लगा रहा था। (४) वह उत्तर नही दे रही थी, [इसलिए] लोरिक उस का मुह देख रहा था, किन्तु वह नाग द्वारा डसी हुई उस के विष की लहरो मे सो रही थी। (५) [लोरिक ने कहा,] "यहा कोई गाव-ठाव होता तो वहा दौड जाता, इस विषम उजाड मे कोई गुणी कहाँ पाऊ ? (६) मा, वाप, गुरु और दूल्हा (विवाहित पति) नही जानते हैं कि दु ख कैसा होता है। (७) जब वह सिर पर पडता है तभी, हो न हो, उसको जाना जा सकता है। [भगवान करे] दु खित कोई न हो।"

(३२३)

'जरमि' न छूट पिरम कर बाधा। पिरम खाड 'आहइ' बिस साधा।
'जेहि यह' चोट 'लागि' 'सो' जानी। 'कइ' लारिक 'कइ' चादा रानी।
'कोइ' न जान दुख काहू केरा। 'सो पै(पइ) जान' 'परइ जेहिं' बेरा।
पिरम 'आच' 'जेहि हियरे लागइ'। नीद 'जाइ तपि तपि' निसि 'जागइ'।
सात सरग 'जउ बरिसहिं' आई। पिरम आगि 'कइसेइ' न बुझाई।
चिनगि एक' जउ 'बाहेर मारइ' 'एहि' पिरम 'कइ' झार।
भसम 'होइ' 'जरि' धरती 'तिल' इक 'सरग पतार'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६८।१, म० पत्र १७०, वी० ११०१-११०३।

म० मे इस कडवक के वाद तर्क है 'जेहि', जो अगले कडवक का है।

भो० मे पूर्ववर्ती कडवक के वाद तर्क है 'जरम', जो इसी का है।

शीर्षक—मैं० . अँज़न लहू। म० दर्द मदी व सोज आशिका ईशा।

पाठान्तर—(१) १ वी० जनमि। २ मैं० होइ, वी० खइये। (२) १ वी० जें याह। २ म० लागी, वी० लाग। ३ वी० ते। ४ वी० कै। (३) १ म० सुखी, वी० को। २. म० जानइ सोइ। ३ वी० परै जिह। (४) १ मैं० झार। २ वी० जिहि हीरै लागै, मैं० जेंहि हिरदै लागइ। ३. मैं० न जान तपत, वी० जाइ तापित। ४ वी० जागै। (५) १ वी० जौ वरषहि। २. वी० कैसैं, म० कैसेहु। (६) १ वी० चिरग (चिनगि—ना०)

ये [क] । २ वी० वाहुरि मारै । ३. मैं० एहि, वी० याहु रु । ४ वी० की । (७) १ वी० होय । २ मैं० जाइ । ३ म० खिन । ४ बी० सुरग पतारि ।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "प्रेम के द्वारा वाधा (वदी किया) हुआ कभी छूटता नही है, [उसके लिए] प्रेम विष से युक्त किया हुआ खड्ग [होता] है। (२) जिसको इसकी चोट लगती है, वही इसे जानता है, या तो [इसे] लोरिक जानता है और या तो [इसे] चादा रानी जानती है। (३) कोई [अन्य व्यक्ति] किसी का दुख नही जानता है, उसे, हो न हो, वही जानता है जिस के वेडे पर वह पडता है। (४) प्रेम की ज्वाला जिसके हृदय मे लगती है, उसकी नीद चली जाती है, और तप्त होकर वह रात मे जागता है। (५) सातो आकाश (आकाशो के वादल) यदि आ वरसें, तो भी प्रेम की आग किसी प्रकार से नही वुझती है। (६) प्रेम की यह ज्वाला इसी प्रकार अपनी एक चिनगारी यदि वाहर मार (निकाल) दे। (७) तो उसके एक तिल मात्र से धरती, आकाश तथा पाताल जलकर भस्म हो जाए।

(३२४)

'जेंहि रे पिरमु तेहि' विरहु सतावा। बिरहु 'जेहि तेहि' नीद नआवा।
पिरम सेलु 'आहइ अनियारा'। 'पैग न जोर' 'पिरम कर मारा'।
पिरम घाउ तेहि पूछहु' जाई'। 'जेइ यह भाल करेजइ' खाई।
पिरम 'घाउ' 'ओखदि नहि मानइ'। पिरम बान जेहि 'लाग सो जानइ'।
भल 'फुनि होइ' 'खाड' कर मारा। जरम न 'पलुह' 'पिरम' 'कर' जारा।
'कवनिहु' भाति न 'छूटत देखेउ' 'तेहि रे' पिरम 'कइ' झेल।
पिरम खेल 'सोई' 'पड' 'खेलइ' जो सिर सेती खेल॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६८।२, म० पत्र १७०, वी० ११०४-११०६।

शीर्षक—मैं० अैजन लहू। म० दर शौक व मुहब्वत ऊ गुपतारी।

पाठान्तर—(१) १ वी० जिहि रि पिरमु तिहि। २ मैं० सतावइ। ३ वी० जिहो तिह। ४ मैं० पिरम मुहावा। (२) १ मैं० विह। २ मैं० सरि पै अनियारी, वी० घाउ अनियारा। ३ म० परग न जाइ। ४. मैं० विरह कर मारी। वी० मे इस चरण के स्थान पर भी पाचवी अर्द्धाली का दूसरा चरण है। (३) १ मैं० विरह पीर तेहि वूझउ, वी० पिरम परी (पीर) तिहु पूछोहु। २ वी० जो याह रि करेजी। (४) १. वी० पीर। २ वी० औषध नहि मानै। ३ वी० लागै सो जानै। (५) १ वी० जु होय। २. मैं० खग्ग।

३. मैं० पलुत, बी० पल्है । ४. मैं० बिरह । ५ बी० का । (६) १ बी० कौनहि, म० कउनिउ । २ बी० षूटइ, मैं० छूटहि । ३ मैं० परे, बी० यह रु । (७) १ मैं० सो । २ म० परि, बी० पैं । ३ बी० षेलैं ।

अर्थ—(१) "जिसे प्रेम होता है, उसे विरह सतप्त करता है, और जिसे विरह होता है, उसे नीद नही आती है । (२) प्रेम एक खरी नुकीली बर्छी है, प्रेम का मारा [इसीलिए] एक पग भी नही जोड पाता है । (३) प्रेम-घाव [के बारे मे] उससे जाकर पूछो जिसने कलेजे मे इस बर्छी को खाया हो । (४) प्रेम (विरह) का घाव ओपध नही मानता है, प्रेम (विरह) का बाण जिसे लगता है, उसे वही जानता है । (५) खाड (खड्ग) का मारा पुनः अच्छा हो जाता है, किन्तु प्रेम का जलाया हुआ जन्म (जीवन) भर नही पलुहता (अकुरित होता) है । (६) उस प्रेम की झेल मे [पडने के अनतर किसी को] किसी प्रकार से छूटते हुए मैने नही देखा है । (७) प्रेम का खेल, हो न हो, वही खेलता है जो उसे सिर से (सिर की बाजी लगा कर) खेलता है ।"

(३२५)

इकु दिनु दूसरि 'रइनि निरिबही' । चाद न 'छूटि गहन जउ गही' ।
मन चिंता 'चखि' नीद गवानी । दई दई 'कइ रइनि' बिहानी ।
लोरिक 'देखि नियर भिनुसारा' । 'चदन' काटि 'कइ चियहि' सवारा ।
'चाद काध कैं(कइ)सरि पहुचाई । आनी आगि चीह(चियहि)सिरगाई' ।
फिर 'जउ' देख गुनी इकु आवा । मतरु 'बोल अउ' डाक बजावा ।
घालि पाग 'गिय अपनी' 'लोरिकु' परा 'पाइ भहराइ' ।
'सोवत' साप डसी 'धनि' चादा 'तू मोहि' देहि 'जियाइ' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २७०, म० पत्र १७१, बी० ११०७-११०९ ।

म० मे इस कडवक के बाद तर्क है 'हाथ', जो अगले का है ।

शीर्षक—मैं० दुअम रोज़ आमदने गुनी व पाय उफतादने लोरिक बर ऊ रा ।

म० दो शब व रोज़ मानदन चाद अज बेहोशी ।

पाठान्तर—(१) १ मैं० रैनि तसि भई, बी० रैनि निरबाही । २ बी० छुटैं गरहनै गाही । (२) १ मैं० कइ । २. बी० कै रैनि । (३) १ बी० देष नेर (नियर—फा०) भुनसारा । २ बी० चादन । ३. बी० कै चीह । (४) १. मैं० चाद माथ ले सरि पहुछाई नैंन नीर तेहि आगि बुझाई; म०

चाद काध कै मेरिहउ जाई आनी आगि चाह (चीहि—ना०) बरि जाई।

(५) १ बी० जौ। २ बी० दे औ। (६) १. बी० गै आपनै। २ बी० लोरु। ३. म० पाव सहराइ, बी० तिसु पाई। (७) १ म० सोवतहि। २ बी० धन। ३ बी० तहु मो। ४ बी० जिवाई।

अर्थ—(१) एक दिन [बीता] और दूसरी रात निबही (व्यतीत हो गई), [किन्तु] क्योकि ग्रहण ने उसे पकडा था, [इसलिए] चादा उससे मुक्त न हुई। (२) मन मे चिन्ता [होने] के कारण [लोरिक की] आखो मे [की] नीद गवा उठी, 'दैव, दैव' करके [उसकी] रात्रि व्यतीत हुई। (३) लोरिक ने प्रभात को सन्निकट देखकर चदन [का वृक्ष] काट कर चिता सवारी। (४) चादा को कधे पर लेकर और चिता पर उसे पहुचा कर वह आग लाया और उसने चिता को सिलगा दिया। (५) वह फिर जो देखता है, तो एक गुणी आया हुआ [दिखाई पडता] है, जो वह मत्र बोल रहा है और डाक वजा रहा है। (६) अपनी ग्रीवा मे पाग डालकर लोरिक उसके पैरो पर भहरा (वेग से गिर) पडा, (७) [और उसने कहा,] "सोते समय साप के द्वारा स्त्री चादा डस ली गई है, उसे तुम मेरे लिए जिला दो।"

(३२६)

हाथ 'क मुदर' 'मकर' कटारा। कान 'क कुडर चाद' 'गिय' हारा।
'अउर जो' सा(सा)ठि 'गाठि हइ' 'मोरी'।
'देहौ(हउ) सभ' 'वलिहारइ तोरी'।
करु उपगारु 'करइ जउ पारसि'। पिता मोर 'जउ' मोहि निसतारसि।
तोरे 'गुनही' चाद 'जउ लहऊ'। दुहू जरम चेर 'होइ रहऊं'।
'जउ न होइ' पतियारु हमारा। 'वचा बाध कइ करु' पतियारा।
'कुवा डाभ' जल 'मेलउ' 'सत सइ होइ तउ' लेऊ(उ)।
जो रे 'वस्तु' 'मइ वोली' चाद 'चेते' 'तुम्ह' देऊ(उ)॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २७१, म० पत्र १७१, बी० १११०-१११२।

शीर्षक—मै० शिरीनी (जरीन ?) कुबूल करदन लोरिक वर गुनी रा। म० जरीन कुबून करदन लोरिक हकीम अफसूगर रा।

पाठान्तर—(१) १ बी० का मूदरा। २ मै० खरग, बी० करि का। ३ म० कुउ चादा, बी० का कुडल चाद। ४ बी० गै। (२) १. बी० और। २. म० हउ गाठी, बी० गाठि है। ३ बी० मोरै। ४ मै० सो फुनि देउ।

५ बी० वलिहारै तोरै, मै० बरिवारी तोरी । (३) १ बी० करनु जो पावसि । २ बी० तू । (४) १ म० बचन । २. म० जउ पइहउ, बी० जौ पाउ । ३ म० तोर होइहउ, बी० तोरौ कहाउ । (५) १ बी० जो न होय । २ मै० वचा बध करि करहि, बी० बाचा बाधि रु करि । (६) १. मै० कुवइ दाब, बी० कुवा डामु । २ बी० मेल्यो । ३ मै० कइ सत सेती, बी० सत सई होय त । (७) १ मै० रे पता, बी० रु बस्त । २ बी० मैं बोल्यो । ३ बी० जिये । ४ म० तउ, बी० सौ ।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "हाथ की मुद्रा, मकर-कटार, कानो के कुडल, चादा की ग्रीवा का हार, (२) तथा और भी जो द्रव्य मेरी गाठ मे है, वह सभी मैं तेरी वलिहारी दूगा । (३) उपकार (उपाय) कर, यदि तू कर सके, तू मेरा पिता [होगा] यदि तू [इस सकट-सागर से] मेरा निस्तार कर देगा । (४) यदि तेरे गुण (उपाय) से चादा को पा जाऊ, तो दोनो जन्मो (इस जन्म और अगले जन्म) मे तेरा सेवक बन कर रहू । (५) यदि मेरा विश्वास न हो, तो वचन-वध करके मेरा विश्वास कर । (६) मै [चाहे] कुए के दाभ मे जल डालू [और डाल कर लू], [चाहे बैठे-बैठे] सत्य से लू, (७) जो भी वस्तुए मैंने कही हैं, चाद के चेतित होने पर तुम्हे दूगा ।"

(३२७)

'कवन' लोग तुम्ह 'गारुरि पूछइ' । 'नाउ कहउ' अउ जातिहु बूझइ ।
जाति 'गुवार' गोवरु 'मोर' ठाऊ । 'धनि' चादा 'मोहि' लोरिक नाऊ ।
गुनी कहा 'जिनि' जीउ डुलावसि । धीरु 'बाधि' 'अब' चार्दाह पावसि ।
'बोलि' मतरु 'छिरकेसि लइ' पानी । उतरा बिसु 'चादा' 'अगिरानी' ।
धाइ लोर 'धरि' बाह उचाई । पिरम 'पियारि' चापि 'गिय' लाई ।
'सरग हुत' चाद उतरि 'जनु' 'आई' देखि 'लोरु' बिहसान ।
'कवल' भाति मुख बिगसा दुखु 'जो हुत कुबिलान' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २७२, म० पत्र १७२, बी० १११३-१११५ ।

म० मे इस कडवक के बाद तर्क है 'दाउद' है, जो कडवक ३२९ का है ।

शीर्षक—मै० मतर ख्वानीदने गुनी व होशियार शुदने चादा ।

म० पुरसीदने हकीम जात व नाम लोरिक व चाँदा ।

पाठान्तर—(१) १ बी० कौन । २ बी० गारुर पूछे । ३ मै० नाउ कहउ, बी० नाव कहसि । ४ म० अउ जातिउ पूछइ, बी० औ जातेहि इछे ।

(२) १ वी० मेरौ। २. वी० धन्न। ३. वी० मोरो, म० अहइ। (३) १. वी० जिन। २. मै० वधि। ३ वी० जौ। (४) १. वी० पढा। २ वी० छिरका लै। ३. मै० चाद। ४. वी० अगुरानी। (५) १ वी० घर। २. वी० गै। (६) १. म० सरगहि, वी० सरगैहु। २. वी० भुई। ३. म० मे नही है। ४. मै० सूर। (७) १. वी० कवर २ वी० सु होय सु वुझान।

अर्थ—(१) गारुडी पूछने लगा, "तुम कौन लोग (किस देश-प्रदेश के) हो ?" "तुम अपना नाम और अपनी जाति कहो," उसने कहा। (२) [लोरिक ने कहा,] 'मेरी जाति ग्वाले की है और गोवर मेरा स्थान है, स्त्री को चादा है और मुझे लोरिक का नाम [मिला] है।" (३) गुणी ने कहा, "अपने जीव को तू मत विचलित कर, धैर्य वांध, अव तू चादा को पा जाएगा।" (४) उसने मत्र कह कर और पानी लेकर छिड़का, विष उतर गया और चादा ने अगडाई ली। (५) लोर ने दौड़ कर और [चांदा की] वाह पकड़ कर उसे उठाया, और अपनी प्रेम-प्रिया को चिपका कर गले से लगाया। (६) मानो चाद [ही] आकाश से उतर कर आई थी, यह देख कर लोरिक हँसा (प्रसन्न हुआ)। (७) उसका मुख कमल की भाति विकसित हो गया, जो कि दु.ख से कुम्हलाया हुआ था।

(३२८)

'हिया' सिरान जरत 'जो' अहा। 'दौरि लोर तौ पौ(पउं)चा गहा'।
'लोरिक' 'रस करि' आहि पियासा। 'चाद मिली मन' पूजी आसा।
'अभरन आनि कीन सभ लोरा। तरिवन हांस अउ सोनइ चूरा'।
'भवर मोर अउ कान क फेरे। मूड मग अउ करइ केजूरे'।
'हाथ क करपा सोवन माठी। अगूठी मानिक कइ कांठी'।
अनवट 'बिछुई' पायर लोर चाद 'कइ' लीन्ह।
अरथ दरब 'अउ खरग कटारा' आनि गुनी 'कह' दीन्ह॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २७३, वी० १११६-१११८।

म० मे कडवक नही है, वह प्रतिलिपि करने मे कदाचित् रह गया है।

शीर्षक—मै० होशियार शुदने चादा व दादने लोरिक गुनी रा जेवर।

पाठान्तर—(१) १ वी० हियरा। २ वी० जौ। ३. मै० छूटि चाद निसि गहनइ गहा। (२) १ वी० लेरिक। २. मै० हुत जो आस। ३. मै० चाद जिई। (३) १ वी० गहना आनि गुनी कौ दीन्हा : हाथ पसारि

गुनी सबु लीन्हा। (४) १ बी० भौर मोर औ कान कि पूटी गौ का हारु औ वरगज मोती। (५) १. वी० हाथ क वाहू सोवन माठी : अगुठी व कुरा अन अन भाती। (६) १. वी० बिछुवा। २ मै० कर। (७) १ वी० औ करि का कटारा। २ वी० कौ।

अर्थ—(१) [लोरिक का] हृदय शीतल हुआ, जो जल रहा था, और तब उसने दौड कर चादा का पहुचा पकड़ा। (२) लोरिक [उसके] रस के लिए प्यासा था, [अत] चादा जी गई तो इससे उसके मन की आशा पूरी हुई। (३) लोरिक ने समस्त आभरण लाकर [इकट्ठे] कि ए, तरिवन, हासली, सोने के चूडे, (४) भवर (?), मोर (?), कान के फेरे, सिर की माग, हाथो मे [के] केयूर, हाथो के करपे, सोने की माठिए, अगूठिए, माणिक्य की कठी (कठमाला), (६) [पैरो के] अगुष्ठ, विछुए और पायल लोरिक ने चाद (चादा) के ले लिए, (७) और अर्थ-द्रव्य, खड्ग तथा कटार लाकर उसने गुणी को दिए।

(३२६)

'दाउद कबि चादायनि(न ?)' गाई।
'जेइ र (रे) सुना सो गा मुरुझाई'।
'धनि ते' 'बोल' धनि लेखनहारा।
धनि ते 'अखिर' 'धनि' अरथु विचारा।
हरदी जात 'सो' चादा रानी।
'साप डसी हउ सोइ' बखानी।
'तउ र (रे) कहा मइ यहु खडु गावउ'।
कथा 'कबित' 'कइ लोग 'सुनावउ'।
'नथन मलिक दुख बात उभारी'।
सुनहु कान 'दइ' बहु गुनियारी।
'अउर केत मइ करउ बीनती' सीसु नाइ कर जोरि।
'इकुइकु सुनिसुनि बोलु बिचारौ(रउ)कहौ(हउ)जो ह्रि(हिर)दौ''तौरि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २७४, म० पत्र० १७२, वी० १११६-११२१।

शीर्षक—मै० आखिर बिसहर खड चद सुख़न फरमूदने मौलाना नत्थन।

म० दास्तान सिफत मौलाना दाउद व गुफ्तार ऊ।

पाठान्तर—(१) १ मी० दाऊद कवि जउ चादा, मैं० मौलाना दाउद यह कबि। २ वी० जे रु सुनी सो गा मुरझाई। (२) १ वी० घनु ति। २ मैं० पडित। ३. वी० घनु। ४ मैं० वोल। ५. वी० जिनि। (३) १ वी० सु। २ मैं० नाग डसी हुति सोहि, वी० साप डसी हुत सवनि। (४) १. वी० तौ मैं कहा कि यहु षडु गाऊ। २. म० कवि। ३. वी० कहि। ४. वी० सुनाऊ, मैं० सुनाएउ। (५) १ म० मलिक नथन सुनु वोल हमारी, वी० नाथ मलिक यह वात तुमारी। २ वी० दै। (६) १ वी० और कवित मैं करौ। २ म० विनती, मैं० विनाती। (७) १ म० एक एक वोल मोति जस पिरोवा कहौ जो हियरा तौरि, मैं० एक एक जउ तुम्ह वूझउ विचारि कहउ जेहु तौरि।

अर्थ—(१) दाऊद कहता है कि जव [भी] उसने 'चादायन' का गान किया है, जिसने भी [इसे] सुना है, वह मुर्झा गया है (वेदना-व्यथित हो गया है)। (२) धन्य वे हैं जो इसे वोलते हैं, और वे धन्य है जो इसको लिखने वाले हैं; वे [भी] धन्य है जो इसके अखरों (शव्दो ?) और अर्थों का विचार करते हैं। (३) हरदी [पाटन] जाते समय चादा रानी साप से डसी गई थी, उसी का मैंने [इस खण्ड मे] वर्णन किया है। (४) मैंने तव (इसलिए) [मन मे] कहा (सोचा) कि इस खड का गान करूं कि कथा-कवित्व कर लोक (लोगो) को सुनाऊ। (५) ऐ नथन मलिक, तुमने यह दु ख [-पूर्ण] वार्त्ता उभाडी थी, [अत] इस वहुत गुणो वाली [वार्ता] को तुम कान दे कर सुनो। (६) सिर को नमित कर और हाथ जोड कर मैं और कितनी विनती करू ? (७) [इस वार्त्ता का] एक-एक वोल तुम सुनो और उस पर विचार करो, [क्योकि] मैं उसे [अपने] हृदय मे तौल कर कह रहा हू।

२२. हरदीं-निवास खण्ड

(३३०)

जाइ कोस दस ऊपरि 'भए'। 'वहुल भांति बिरहइं हुत दहे'।
सभ निसि 'आखै(खइ)' पिरम कहानी। 'बात कहत उन्ह रइनि' बिहानी।
'पहर रात उठि चले कहारा'। कोस 'चारि परि' 'भा भिनुसारा'।
हरदी 'सीम' तुलाने जाई। 'सगुन भली एक पाडुक कहाई'।
'महर दाहिने वाएं करावा(रा)'। 'अउर दाहिने मिरिघ कइ' मारा।

महरि कहा हुत दाहिने बाए सगुन होइ न (नहि) पार।
तिनहि अरथ तुम्ह सिधि पावहु लोरिक जानइ सयसार॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २७५, बी० १०४७-१०४९।

शीर्षक—मैं० . रवान शुदन लोरिक व चादा व रसीदन नजदीक हरदी।

पाठान्तर—(१) १ बी० रहे। २. बी० वहु भाते विरहै हुते अहे (दहे—फा०)। (२) १ मैं० कहहि ते। २ बी० उवा सूर निसि रैनि। (३) १ बी० फाद सुपासनु चले गुहारा (कहारा—फा०)। २ बी० पाच। ३ बी० सूरु दिषारा। (४) १ बी० सेव (सीव—फा०)। २ बी० सुरगा झीवरु आइ तुलाई (तुल० तुलाने जाई—पूर्ववर्ती चरण मे)। (५) १ बी० महुवर धानी (दाहिने—फा०) राउ गुहारा। २ बी० औ दाहिनै मिरगु इकु। (६-७) दोहा बी० मे इस प्रकार है

होय कहा कहु पैसत दाहिन तुम्ह करतार।
और सभै तुम्ह पाये दाहिन सम सैसार॥

दोनो चरणो मे 'दाहिन' की पुनरुक्ति चित्य है।

अर्थ—(१) चलकर वे दस कोस से अधिक जा पहुचे, वे वहुत प्रकार से विरह-दग्ध थे। (२) समस्त रात उन्होने प्रेम-कथन किया और बातें कहते-कहते (करते-करते) उनकी रात व्यतीत हो गई। (३) [तदनन्तर] एक प्रहर रात के रहते ही उठ करके [चादा के सुखासन के] कहार चल पडे, चार कोस चलने पर सवेरा हुआ। (४) वे हरदी [पाटन] की सीमा पर जा तुले (पहुचे), एक भली पाडुक [जहा पर] शुभ शकुन कह (वता) रही थी। (५) दाहिने महर तथा वाए कराल पक्षी (काग) थे, पुन दाहिने मृग-माला थी। (६) महरी (चादा) ने कहा, "दाहिने और वाए इतने [शुभ] शकुन हो रहे हैं कि उनका पार (अन्त) नही है। (७) उनका अर्थ यही है कि तुम सिद्धि पाओगे, ऐ लोरिक, यह (शकुनो का यह अर्थ) ससार जानता है।"

(३३१)

'छेतम' राउ 'अहेरइ' चढा। हरदी 'कह हुत दई जो' गढा।
निकरत राउ 'जोहारेसि सोई'। 'राय बूझ अहिआनहु' कोई।
'अति गुनवत आहि रुपवता'। 'सहस करा जइस' मैमता।
'कोउ न चीन्ह सभ कहहिं' वटाऊ। 'सग सग राजे(जइ?)' पठवा नाऊ।
'जउ तुम्ह चीन्हउ देखि लइ आएसु। जउ परदेसी उतार देवाएसु'।

हरदी 'पइठइ' लोरिकु 'खोरि खोरि' फिरि आउ।
'जावत नगर तह' चीन्ह न कोऊ 'सब ही लोक पराउ' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २७६, बी० १०५०-१०५२।

शीर्षक—मैं० : सलाम करदने लोरिक राव रादर शिकार व पुरसीदने राव छेतम रा।

पाठान्तर—(१) १ बी० जैतम। २. बी० अहेरै। ३ बी० कौ हिते ई जौ। (२) १. बी० झारअस (जुहारेसु—फा०) होई (सोई—फा०)। २ बी० कोइ जाय अहिजानिहै। (३) १ बी० को रूपवतु दीसैं गुनवता। २ बी० ससिहर बरन आहि। (४) १ बी० चीन्ह न कोई आहि। २ मैं० पाछे राउ। (५) १ बी० होय जुहार देषि घर आवोहु होई परदेसी उतारा द्यावोहु। (६) १. बी० पैठा। २. बी० पोर षोर। (७) १. बी० जनि। २. बी० सभै लोगु तह आव।

अर्थ—(१) छेतम राव ने आखेट के लिए चढ़ाई की, जो हरदी के लिए दैव गढा हुआ (निर्मित) था। (२) निकलते ही उस राजा को [लोरिक ने] जुहार की, तो राजा ने पूछा (कहा), "इसे कोई अभिजानते (पहचानते) हो? (३) यह अत्यधिक गुणवान और रूपवान' है, यह सहस्र-कला (सूर्य) जैसा और मदमत्त है।" (४) किन्तु कोई उसे पहचान नही रहा था, सभी कह रहे थे कि वह पथिक था, [इसलिए] राजा ने उसके साथ-साथ नाई को भेजा, (५) [और कहा,] "यदि तुम पहचान सको तो उसे देखकर ले आना, और यदि वह परदेशी हो, तो उसे उतारा (उतर कर ठहरने का स्थान) दिलाना।" (६) हरदी मे प्रविष्ट हुआ और लोरिक गली-गली फिर आया। (७) यावत् नगर मे वहा उसे कोई पहचानता न था, सभी लोक (देश) उसके लिए पराया था।

(३३२)

'राउ दीन्ह राउल एक आए। ऊच मदिर पटसार सोहाए'।
वहु वनान बहु भाति कुदारा। घरे अनेक लाइ सुतधारा'।
'चउतरा ऊच नीक घोरसारा'। 'लइ लोरिक तेहि घर बइसारा'।
अरसी काढि लोर कर दीन्ही। बात वूझि गै नाऊ लीन्ही।
कवन देस हुत आए गोसाई। एहि पाटन गौनइं केहि ठाई।
नाउ कहउ तुम्ह आपन अउ तुम्हं जेहि लगि आइ (आएहु)।
निकरत राउ देखि दरसन तेहि गुन पूछि पठाएहु ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २७७, बी० १०५३-१०५७।

स्वीकृत (४)—(७) के स्थान पर बी० मे सात पक्तियाँ है—दे० पाठान्तर। ऐसा ज्ञात होता है कि प्रति का कोई पूर्वज यहा पर त्रुटित हो गया था, इसलिए छद-व्यवस्था न समझने वाले किसी व्यक्ति ने यह प्रक्षेप कर डाला।

शीर्षक—फिरिस्तादन राव हज्जाम रा बर लोरिक।

पाठांतर—(१) १ बी० नाउ बाषर (रि) जाई झराई ऊच उतारा दीस सुहाई। (२) १ बी० बहु भत के सौ पथर उसारा गरे अनेक आहि-सुतधारा। (३) १ बी० ऊचा जोवरु (चौवरु—फा०) औ करसारा (घुरसारा—फा०)। २ बी० कैं (लै—फा०) लोरिक तेहि ठाव उतारा (४)—(७) के स्थान पर बी० मे है

रावर ते नीरे तैंसैं आही जो जस जोगु सो तस ताही।
पाषर सैं दोइ सेती आवा मारि सुरिज कौ चाद लिवावा।
हाथी औरति मैंमत माते अते बहुत ते भातेहि भाते।
हाक देई के पाइक बाजा लोरिक परग मुठि महि साजा।
परग काटि कैं मूठि उतारसि कोई न राउ उही रन पारसि।
चला राउ देषि मुन साई जिहि उहि कौ अवास।
जाहि लोर तिहि हरदी अब न आवै कोई पास॥

अर्थ—(१) वे (लोरिक-चादा) राजा के दिए हुए एक रावल (राज-भवन) मे आए, मदिर (प्रासाद) ऊचा था और [उसमे] सुन्दर पटसार थे। (२) वह बहुत बनाव का था और बहुत भाति से कुन्दी किया हुआ था, उसको अनेक सूत्रधारो ने लग कर गढा (निर्मित किया) था। (३) उसमे [बाहर बैठने के लिए] एक अच्छा चबूतरा था, और एक अच्छी घुडसाल थी, लोरिक को ले जाकर [नाई ने] उसी घर मे बिठाया। (४) [तदनतर उस नाई ने] एक आदर्शिका (आईना) निकाल कर लोरिक के हाथ मे दी और जाकर नाई ने उसकी वार्त्ता पूछी। (५) [उसने कहा,] "हे स्वामी, आप किस देश से आए है और इस पाटन मे किस स्थान पर जा रहे है? (६) आप अपना नाम कहे और [वह प्रयोजन कहे] जिसके लिए आप आए हुए हैं। (७) [बाहर] निकलते समय राजा ने [आपका ?] दर्शन (रूप-रग) देखा, इसी गुण से उन्होने यह पूछ भेजा है।"

(३३३)

सुनि 'लोरिक' अस ऊतर कहा। सभ परिवार गोवर 'मोर' अहा।
'गरह सताएउ कत घर जावहु'। कहा पडित परदेस दिखावहु।
बैरी होइ 'खर' रकत पिपासा। 'लेन न देइ' सुक्ख महं सासा।
'लोग' 'चाह' अहिताई करही। मुख देखत 'हू' कानि न धरही।
जाति 'गोवरइ' अहउ 'बडवारू'। 'लोर' गोवर कुर नाउ 'हमारू'।
'गोवर' राजा सहदेउ महर ओहि कइ धीय दुलारि।
'जेहि' कारन हम लीन्ह देसतर अहइ सो' चादा नारि॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २७८, भो० पत्र ५ (नवीन)। वी० का कोई पूर्वज यहा पर त्रुटित था—दे० पूर्ववर्ती कडवक की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शीर्षक—मै० जवाब दादने लोरिक वर हज्जाम रा।

भो० पुरसीदन मुजइयन लोरिक रा व गुफ्तन लोरिक।

पाठान्तर—(१) १ भो० लोरिख। २ भो० मोरु। (२) १ भो० गरह सताप आनहि घर आवहिं। (३) १. बी० गएउ। २ मै० लेइ न देहि। (४) १ मै० लोरिक। २ भो० जाइ, मै० चाहि। ३ मै० हम। (५) १. भो० गोवार। २ मै० बडारू। ३ मै० गोर। (६) १ मै० गोवर का। (७) १ भो० तेहिं। २ मै० ऊहइ।

अर्थ—(१) लोरिक ने [उसकी बाते] सुनकर ऐसा उत्तर कहा (दिया), "मेरा समस्त परिवार गोवर मे है। (२) पडित ने [मुझसे] कहा, 'ग्रहो से सतापित होकर घर क्या जाते है? परदेश देख आए। (३) [उनके प्रभाव से] वैरी रक्त का प्यासा हो जाता है, और, वह सुख मे सास नही लेने देता है, (४) [अपने] लोग भी अहित करना चाहते हैं और मुख देखते हुए भी कानि (लिहाज्र) नही करते है।' (५) जाति से मैं ग्वाल ही हू किन्तु (कुल से) वडा हू और लोर गोवर (गोपाल) मेरा कुल का नाम है। (६) गोवर का राजा [जो] सहदेव महर है, [यह] उसी की दुलारी दुहिता है, (७) जिसके कारण मैंने देशान्तर [का प्रवास] लिया (स्वीकार किया), यह वही चादा नारी है।"

(३३४)

होइ अहेरे राउ घर आवा। नाउव जाइ कहइ कर पावा।
बूझा राइ कवन इन्ह अहा। जस (जइस?) सुना तस नाउव कहा।

राउ कहा कह दीन्ह उतारा। ऊच मदिर नीक घोरसारा।
एहि नर नौ खड प्रिथिमी जानइ। जस दिनियर तस किरित बखानइ।
सुनि राजइ असि कीरति कीन्हा। जो कुछु जगत मदिर उन्ह दीन्हा।
आहि गोवर कर लोरिक नाउव कहा जुझार।
जेहि कारन राव रूपचद मारा अउ हइ चादा नारि॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २७६। बी० का कोई पूर्वज यहा पर त्रुटित था—दे० कडवक ३३२ की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शीर्षक—मै० बाज आमदने राव अज शिकार व मअलूम करदन हज्जाम कैफियते लोरिक।

अर्थ—(१) आखेट से होकर राजा घर आया, तब नाई जाकर उससे [लोरिक-चादा के] हाथ-पैर (नख-शिख) बताने लगा। (२) राजा ने पूछा, "ये [दोनो] कौन है?" इस पर नाई ने जैसा कुछ सुना था, वैसा कह सुनाया। (३) राजा ने कहा (पूछा), "कहा उतारा (डेरा) दिया है? नाई ने बताया, "एक ऊचे मदिर और अच्छी घुडसाल मे। (४) इस नर (लोरिक) को नौ खड पृथ्वी जानती है और जैसे दिनकर के वैसे ही इसके कृत्यो का बखान करती है। (५) ऐ राजा सुनो, ऐसी कीर्त्ति करो कि जो कुछ जगत् मे [हो सकता] है, वह सब उनके मदिर मे [प्रस्तुत करा] दो।" (६) नाई ने कहा, "यह गोवर का योद्धा लोरिक है, (७) और जिसके कारण उसने राव रूपचद को मारा (मार भगाया), वह [उसके साथ की] नारी चादा है।"

(३३५)

खेम कुसर निसि खेलि 'बिहानी'। रग राती निसि पिरम 'कहानी'।
देइ पिछौरा राउ जोहारा। राउ मया कइ 'लोर' हकारा।
'राउ बूझ' तुम्ह कैसे आएहु। बाट घाट कस आवन पाएहु।
नगर 'मुगेर(?)' 'जउहि' हम आए। 'राइ' करिंगा भेजि 'हकराए'।
देखन पाय राइ के आएउ। दइय सजोगे आनि मेराएउ।
भले लोर तुम्ह आएहु 'इहवा' राखहु चित (चित्त) हमार।
जो किछु आहि 'हमारे' सो फुनि जानु तुम्हार॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २८०, भो० पत्र १ (नवीन)। बी० का कोई पूर्वज यहा पर त्रुटित था—दे० कडवक ३३२ की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शीर्षक—म० आमदने लोरिक पेश राव छेतम ।

भो० आमदन लोरिक वर राव छेतम व सलाम करदन ।

पाठान्तर—(१) १ मैं० विहानी । २ मैं० कहानी । (२) १ भो० वीर । (३) १ भो० राइ पूछ । (४) १ भो० भुगेर (मुगेर—ना०), मैं० सुगेर (मुगेर—ना०) । २. भो० जउ । ३ मैं० राउ । ४ मैं० बोलाए । (६) १ मैं इहवा । (७) मैं० हमारे ।

अर्थ—(१) क्षेम-कुशल पूर्वक खेल कर रात समाप्त हुई । प्रेम-कथनो के कारण [रात] रग-राती (अनुराग-रक्त) रही । (२) [सवेरा होने पर भेंट मे] एक पिछौरा (बडी चादर) देने के लिये लोरिक ने [आकर] राजा को जुहार की, तो राजा ने मया (ममता) कर लोरिक को बुलाया । (३) राजा ने पूछा, "तुम कैसे आए ? मार्गों और घाटो से तुम कैसे आने पाए ?" (४) [लोरिक ने उत्तर दिया,] "जब हम मुगेर (?) नगर मे आए, राजा करिंगा ने मुझे [भृत्य] भेज कर बुलाया । (५) [वहा से] राजा के चरणो का दर्शन करने आया हू, और दैव-सयोग से ही आकर मिल रहा हू ।" (६) [राजा ने कहा,] "हे लोरिक, अच्छा हुआ जो तुम यहां आए, तुम मेरे चित को [सतुष्ट?] रक्खो (मेरी इच्छाओ के अनुसार कार्य करो), (७) और जो कुछ हमारे पास है, वह तुम जानो कि तुम्हारा [ही] है ।"

(३३६)

सइ हथ राय बान कर लीन्हा । 'नियर' हकारि लोर कह दीन्हां ।
सीस 'लाइ कइ' लोरिक लीतिसि । रहसि 'केकान राइ' फुनि दीतिसि ।
तेहिं तुरिया चढि लोर फिरावा । हनी (नि) ताजनइ घोर दउरावा ।
रहसा लोर तुरिय जउ पावा । बचन सगुन 'जो' इहवा आवा ।
पुरुख सोइ जो परभुइ जाई । जगत सुनइ जेहि किरित भलाई ।
लोर चाद गोवर बिसारा 'कीतें' हरदी बास ।
बरिस देवस अउ 'केतिक' मासा कीन्हा भोग बेलास ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र २८१, भो० पत्र २ (नवीन) । बी० का कोई पूर्वज इस प्रसग मे त्रुटित था—दे० कडवक ३३२ की सन्दर्भ-टिप्पणी ।

शीर्षक—मैं० : असबाब दहानीदने राव बर लोरिक रा व बर्गे सब्ज दादन ।

भो० मरहमत करदने राव छेतम व बर्ग दादन लोरिक रा ।

पाठान्तर—(१) भो० बीर। (२) १ मैं० चढाए। २ भो० कैंकान एक। (३)—(४) मैं० (३)।१=भो० (४)।१ मैं०, (३)।२=भो० (३)।१, मैं० (४)।१=भो० (३)।२, मैं० (४)।२=भो० (४)।२ स्वीकृत क्रम मैं० का है। (४) १ भो० हउ। (५) १ मैं० तेहि। (६) १ मैं० कीने। (७) १ मैं० कातिक।

अर्थ—(१) राजा ने स्वय हाथ मे वाना (पहनावा) लिया, और निकट वुला कर [उसे] लोरिक को दिया। (२) सिर से लगा कर लोरिक ने [उसे] ले लिया, पुन (तदनतर) राजा ने हर्षित होकर उसे एक घोडा दिया। (३) उस घोडे को लोरिक ने चढ कर फिराया, और चाबुक से मारकर उस घोडे को दौडाया। (४) लोर ने जव यह घोडा पाया, वह हर्षित हुआ, [और उसने मन मे कहा,] "यही उस शकुन का वचन था जो यहा आया (प्राप्त हुआ)। (५) पुरुप वही है जो परभूमि (परदेश) मे जाए और जगत् जिसकी भलाई के कृत्य सुने।" (६) लोर और चादा ने हरदी मे निवास कर [इतना सुख पाया कि] गोवर को विस्मृत कर दिया। (७) वरस दिन और कुछ माम [वहा पर] उन्होने भोग-विलास किए।

(३३७)

जना सहस रचि राउ दौराए। चीवर कापर बाग फिराए।
दुलाइयनि बहोरि भरि लीन्हे। ते लइ चेरन्ह माथे दीन्हे।
चेरन्ह का(का)वरि काधइ किया। हरदि लोन तेल सब दिया।
चेरी दस चीर अभरन दीन्हे (लीन्हे ?)। अपर सजोग जो काउ न दीन्हे।
अनवन भाति खजहजा अहे। खाट पालकी पालिक लहे।
बहुल आभरन रायहि दीन्हे चादहि जनहु बरोक।
लोर चाद कह पिता अस कीन्हे कौतुक भएउ सो लोक।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र २८२। यह कडवक परवर्ती से सवद्ध है यह प्रकट है। वी० का कोई पूर्वज यहाँ पर त्रुटित था—दे० कडवक ३२२ की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शीर्षक—मैं० मताअ खान कनीज़गान व गुलामान व जामहा फिरिस्तादने राव लोरिक रा।

अर्थ—(१) राजा ने एक सहस्र जनो को रच (सज्जित) कर दौडाया, जो चीवर (?), कपडे और वागे पहनाए हुए थे। (२) दुलाइयो को तदनतर भर (भरवा) लिया और उन्हे लेकर चेरो (सेवको) के माथे (सिर) पर

दिया। (३) चेरो (सेवको) ने कावरो को कधे पर किया (रखा), हल्दी, लवण तथा तैल —सब उन्हे दिया गया। (४) दस चेरियो ने चीर और आभरण लिए तथा और भी सयोग (सज्जा के सामान) उन्हे दिए गए जो कभी [किसो अन्य को] न दिए गए थे। (५) अनहोने भाति के खाद्य-भ्रज्य थे, खाटें, पालकिएँ तथा पर्यङ्क उन्होने पाए। (६) राजा ने बहुतेरे आभरण चाद (चादा) को दिए मानो उसको वरोक मे (सगाई के उपलक्ष्य मे) दिया हो। (७) लोर और चाद (चादा) को उन्होने पिता के समान किया (माना), जिससे लोगो को कौतुक (कुतूहल) हुआ।

(३३८)

टाका 'सउ एक' लोरिक लीन्हा। बीरइ घालि नाउव कह दीन्हा।
अउरन्ह दीन्ह 'जिनहि' जस जाना। सब ही लोक कह दीतिसि पाना।
फुनि बस्तर आगे लइ आए। जेइ आए सो समंदि चलाए।
खोलि पेटारा कापर देखे। अभरन अछरिन 'कीन्ह' बिसेखे।
'चीर लउक' भरा खरबारू। जस चाहत तस दीन्ह करतारू।
चाद सुरुज मन रहसे तिल तिल करहि बधाउ।
एक समौ गोवर हुत आए हरदी पाटन 'रहाउ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २८३, भो पत्र ४७ (नवीन)। बी० का कोई पूर्वज यहा पर त्रुटित था—दे० कडवक ३३२ की सन्दर्भ-टिप्पणी।

इस कडवक के बाद भो० मे तर्क 'सावन मास' है, जिसका कडवक कदाचित् ३४३ है, जो बहुत बाद मे आता है, इससे ज्ञात होता है कि भो० का भी कोई पूर्वज यहा पर अस्त-व्यस्त अथवा त्रुटित था।

शीर्षक—मैं० वख्श करदने लोरिक दर शहर पाटन रा।
भो० सखावत करदन लोरिक वराए कस्र रा दरे शहर।

पाठान्तर—(१) १ भो० एक सौ। (१) १ मैं० जेहि। २ मैं० लोगन्ह। (३) १ भो० मे चरण परस्पर स्थानातरित है। २ मैं० चीर। (४) १ मैं० आहि (आँहि—ना०)। (५) १ भो० चीरइ चीर। (६) १. भो० जाव।

अर्थ—(१) सौ-एक टके लोरिक ने लिए और उन्हे बीडे मे डालकर उसने नाई को दिया। (२) औरो को भी [इसी प्रकार], जिसको जैसा समझा, उसने दिया और सभी लोगो को पान दिया। (३) तदनतर वस्त्र [उसके]

आगे लाए गए, और जो आते गए उन्हे [उसने] वस्त्रो क
(विदा किया)। (४) पेटारे खोल कर [लोरिक ने] क
[तो] अप्सराओ (के आभरणो से] भी विशेषता युक्त f
हुए थे। (५) चीर खरबारो मे भरे हुए लौक (झलक) रहे थ, [लोरिक] जैसा चाहता था वैसा ही सृष्टि-कर्ता ने उसे दिया। (६) चाद (चादा) और सूर्य (लोरिक) मन मे हर्षित हुए और वे तिल-तिल (पूरे आयोजन के साथ) वधाइया करने लगे। (७) एक समय वह था कि वे गोवर से [सत्रस्त] आए थे, और एक यह हुआ कि हरदी पाटन मे [ऐसे सुख से] रहने लगे।

२३. मैनां-संदेश-निवेदन खण्ड

(३३९)

निसि दुख मैनहि रोइ बिहाए। सभ दिन रहइ नैन पथ लाए।
मकु लोरिक एहि मारग आवइ। कइ पहिया गइ आपु जनावइ।
निसि दिन झुरवइ आस पियासी। रोवइ खिन खिन होइ निरासी।
लोर लोर कहि दिन परि आवइ। अउर बचन हिरि मुखहिं न आवइ।
तपतइ आछइ रइनि बिहाई। जसि मछरी बिनु नीर मुरुझाई।
बिरह सताई मैना एहिं परि दिन अउ राति।
सइहि लीन्हे दुख लोरिकहि केरा बिरहा कीन्ह सघाति॥

सन्दर्भ—भो० पत्र १८ (नवीन)। मै० यहाँ पर अत्रुटित है, जो उसके चित्र से प्रकट है, किन्तु अगले कडवक के लिए प्रस्तुत कडवक नितान्त आवश्यक है, क्योकि अन्यथा उसकी प्रथम पक्ति कर्त्ताहीन हो जाती है। वी० का कोई पूर्वज यहाँ पर त्रुटित था—दे० कडवक ३३२ की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शीर्षक—भो० वयान करदन दुश्वारी मैना।

अर्थ—(१) रात मे दु ख मैना ने रो-रोकर काटे, और समस्त दिन वह नेत्रो को [लोरिक के] पथ मे लगाए रहती, (२) [यह सोच कर] कि सभव था कि लोरिक उस मार्ग से आ जाता, अथवा [पास] जाकर किसी पथिक से अपने को (अपना कुशल) वह विदित करता। (३) वह रात-दिन आशा की प्यासी रहकर सतप्त होती और निराश होकर क्षण-क्षण रोती। (४) दिन भर वह 'लोर' 'लोर' [ही] कह पाती, अन्य कोई वचन लज्जा के कारण उसके मुख से न आता (निकलता) था। (५) तप्त हुए-हुए ही उसकी रात्रि

व्यतीत होती, जैसे मछली विना जल के मुर्झा जाती है। (६) इसी प्रकार मैना दिन और रात विरह से सतापित [रहती] थी, (७) [क्योकि] उसने स्वय ही लोरिक का यह दुःख ले रक्खा था और विरह को [अपना] सगी कर रक्खा था।

(३४०)

'दइ दइ संवन सुनी इक' वाता। आवा टाडु 'खाडु' सै साता।
'गुड़डइ' आइ 'सगति कइ' मेला। 'पूछहु आनि' 'कवनि' भुइ खेला।
'खोलिनि' नायक 'मदिर' बुलावा। पूछेसि टाडु कहवा हुत' आवा।
कवन बनिजु लाधेउ परधानां। कवन 'राट' तुम्ह 'दीत पयाना'।
कवन लोग घरु कहा तुम्हारा। कवनु नाउ कहं कुटुबु' हकारा।
'आसा लुवुधी 'पूछउ' जो परदेसी आइ'।
मोर वारु परदेसि विरूधा 'मकहु चाह' को पाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २८४, भो० पत्र ४८ (नवीन), वी० ११६१-११६३। भो० मे पिछले कडवक के वाद तर्क है 'दिन एक', जिसका कडवक अप्राप्य है। इससे ज्ञात होता है कि दोनो के वीच मे उसमे कुछ कडवक और रहे होगे।

शीर्षक—मैं० पुरसीदने खोलन सुरजन रा पुरसीदन अखवारे लोरिक। भो० शुनीदन मैना व खोलिन कि कसे वाज़रगान अज़ तरफ हरदी आमदह।

पाठान्तर—(१) १ वी० दे दे सुनि सरवनि याह। २. मैं० षाडु, वी० पाड। (२) १ वी० गुइरै, भो० गुडइ। २ भो० सकति किए, वी० सकति कै। ३ वी० पुछसि आन, भो० पूछउ टाड। (३) १ वी० षौलनि। २. मैं० घरहि। ३ मैं० पूछसि टाडु कहा हुत, वी० पूछसि टाडु कहा ते। (४) १ मैं० लाघउ परधाना, वी० लाद परधाना। २ भो० देस, वी० राठ। ३ मैं० देव पयाना। (५) १ वी० कहु कुटवु। (६) १. वी० आस लुवधि मैं पूछौ, भो० आसा लुवधी हउ दिन पूछउ। २ भो० आव। (७) १ वी० मुकु चाहो। २ भो० पाव।

अर्थ—(१) [मैना ने कहा,] "कान दे-देकर एक वात मैंने सुनी है एक विशाल टाडा (व्यापारी-दल) आया हुआ है, जिसमे सात सौ [व्यापारी ?] हैं। (२) [गाव के] ग्वैंडे मे आकर उसने सगति (सार्थ) को डाल दिया है। ला (बुला) कर पूछो कि वह [यहा] आकर किस भूमि को खेल (जा) रहा

है।" (३) खोलिन ने [टाडे के] नायक को घर बुलाया और पूछा, "यह टाडा कहा से आया हुआ है ? (४) हे प्रधान, तुमने कौन-सा वाणिज्य (सौदा) प्राप्त किया है और किस राष्ट्र (देश) को तुमने प्रयाण दिया (किया) है ? (५) तुम कौन लोग (किस देश के ?) हो और तुम्हारा घर कहा है ? तुम्हारा नाम क्या है और कहा पर [तुम्हारा] कुटुव पुकारा जाता (कहलाता) है ? (६) जो भी परदेसी आता है, आशा-लुब्ध [हो कर] मैं [उससे] पूछती (प्रश्न करती) हू, (७) मेरा बालक परदेश मे विलुब्ध (लुभाया हुआ) है, सभव है कि कोई उसकी चाह (खबर) पा जाए।"

(३४१)

मैन मजीठि चिरौजि सुपारी। नरियर 'गुवा लवग' छुहारी।
'मोदक(?)महकउ' कूकू चलावा। पत्रज बभी गिनत न आवा।
पाट पटोर चवर बहु भाती। 'हय मय सहस सहस कइ' पाती।
'हीर पंवार' रूप बहु 'ताबा'। 'बेना चेना' अगरु 'भर' 'लाबा'।
गोवर का बाभनु सुरजनु नाऊ। हरदी पाटन परभुइ जाऊ।
बरद सहस दस आपन अउर मिले बहु आइ।
दखिन हुते भरि 'लाबा' पाटन 'मेलसि' जाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २८५, बी० ११९४-११९६।

शीर्षक—मैं० जवाव दादने नायक खोलिन रा कैफियते वनिज।

भो० मे पिछले कडवक के वाद तर्क दिया हुआ है 'मैन मजीठ', जो इसी कडवक का है।

पाठान्तर—(१) १ भो० लौंग कपूर। (२) १ बी० नषतज पत्रज ('पत्रज' दूसरे चरण मे भी है)। (३) १ बी० हमय साह सहस मैय। (४) १. बी० हरदी पावर। २ बी० तावा। ३ बी० बीना चदनु। ४. बी० भरि लावा। (५) १ मैं० अउ मेला। (६) १. बी० लावा। २ बी० परभुई।

अर्थ—(१) [नायक ने कहा,] "मदन (मोम), मजीठ, चिरौजी, सुपारी, नारियल, गुवा (एक विशिष्ट प्रकार की सोपारी), लवग, छुहाडी, (२) मोदक (?), सुगधिया तथा कुकुम को मैंने चलाया है, और पत्रज (तेजपत्ता) तथा ब्राह्मी (?) गिनती मे नही आ रहे हैं, (३) पाट-पटोर, वहुतेरे भाति के चामर और सहस्र-सहस्र पक्तियो मे हय-मृग (पशु) हैं, (४) हीरे, प्रवाल,

बहुत-सा ताँबा, रौप्य (चादी), वीरण (खस), चेना (कर्पूर) तथा अगुरु लावे (टाँडे) को भर रहे है। (५) मैं गोवर का ब्राह्मण हू, सुरजन मेरा नाम है, परदेश हरदी पाटन को जा रहा हू। (६) दस सहस्र वरद अपने है (वैलो का बोझ अपना है) और [दूसरो के भी] बहुतेरे उनके साथ सम्मिलित हो गए हैं। (७) हम दक्षिण से इस लावे (टाडे) को भर कर [हरदी] पाटन में ले जा कर डालेंगे।"

(३४२)

सुनि पाटनु 'खोलिनि' तसु रोवा। नैन 'नीर' मुख 'बूढिइ' धोवा।
मैना 'दौरि' पाय 'लइ' परी। सुरिजन 'बइसु कहउ एक' घरी।
नाह मोर हउ बारि बियाही। लइ गइ चादा पाटन ताही।
लोरिक नाउ सुरुज कइ करा। सो लइ 'चादइ' पाटन धरा।
मोहिं तजि सुरिजु चाद 'लइ' भागा। दूसर 'समउ' आइ अब लागा।
'सभ' दिन नैन 'चुवहिं अउ' 'सभ' निसि जागत जाइ।
मोर सदेसु 'लोरिकहि' कहियहु एहि परि रोइ बिहाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २८६, का०, बी० ११६७-११६६।

बी० मे तीसरी तथा चौथी अर्द्धालिया नही है।

शीर्षक—मैं० गिरिय करदन खोलिन व पाय सुरजन उफ्तादने मैना।

का० दर पाय सुरजन उत्फादन मैना रा अहवाल गुफ्तन ऊ।

पाठान्तर—(१) १ का० खोइलिन, बी० षौलनि। २ बी० रगत। ३ मैं० बी० बूढी। (२) १ मैं० आइ। २ बी० लै। ३ बी० बैठु कहै येकै। (४) १ का० चादा। (५) १ बी० लै। २ बी० समा। (६) १ का० सब। २ बी० चुवैहि औ, मैं० चुर्वहि पथ। ३ मैं० अउ। (७) १ बी० लोर सौ कहियहु।

अर्थ—(१) [हरदी] पाटन [का नाम] सुनकर खोलिन ऐसा रोई कि उस बुड्ढी ने नेत्रो के नीर (आसुओ) से अपना मुख धो डाला। (२) मैना दौड कर उसके पैरो को पकड कर [उन पर] गिर पडी, [और उसने कहा,] "ऐ सुरजन, तुम बैठो तो एक घडी [अपनी बातें] कहू। (३) मेरे स्वामी ने मुझे वालिका के रूप मे (बाल्यावस्था मे) ब्याहा था, और उसे चादा लेकर पाटन चली गई। (४) [मेरे स्वामी का] नाम लोरिक है, जो सूर्य की कला है, उसको लेकर चादा ने पाटन मे रख छोडा है। (५) मुझे छोड कर वह सूर्य (लोरिक) चाद (चादा) को लेकर भाग गया, [और इतने दिनो से वह

भागा हुआ है कि] दूसरा समय (वर्ष) आकर लग गया है। (६) समस्त दिन मेरे नेत्र चूते रहते है और [समस्त] निशा मुझे जागते हुए जाती है, (७) मेरा यह सदेश लोरिक से इसी प्रकार रोते-रोते गुजारना।"

(३४३)

सावन मास नैन 'झरि लाए'। 'उघरहिं नाहि' दिन 'एकउ' माए।
'वरिसि भरइ भुइ खार खडोला'। 'भुइ तस नव किय चीरु अमोला'।
'चख काजरु चखि रहइ न पावा'। खिन खिन 'मैना रोइ बहावा'।
सावनि चादु लोर 'लइ' भागी। मैनां नैन पूरि 'झरि' लागी।
इहिं परि नैन 'चुवहि' ओरवानी। 'सरि गइ हार डोरि तेहि' पानी।
'जेहि' सावन तुम्ह गवने सो मैना चखि लाग।
सुरजन कहसि 'लोरिकहि' 'माजरि केर अभाग'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २८७, वी० ११६६-१२०१।

भो० मे कडवक ३३८ के वाद तर्क 'सावन मास' तथा का० मे पूर्ववर्ती कडवक के वाद तर्क 'सावन' हैं, जो इसी कडवक के है।

शीर्षक—मैं० कैफियते माह सावन गुफ्तने मैना वर सुरजन आ च दुश्वारी वूद।

वी० वारह मासा।

पाठान्तर—(१) १ बी० झरु लाये। २ बी० उघरैंहि ना। ३ बी० येकैं। (२) १ वी० वरस मेत भुई भरे खडौरा भीनु सूकू नहि चीरु अमोरा। (३) १ वी० चषि चुषु काजरु रहै न पावै। २ वी० लोयन रोय वहावैं। (४) १ वी० लैं। २ वी० झरु। (५) १ वी० चुवैंहि। २ बी० सुरि गाहार ढोर तिहि। (६) १ वी० जिहि। (७) १ वी० लोर सौं। २ वी० औ माजरि के भाग।

अर्थ—(१) "सावन मास मे नेत्रो ने झडी लगाई और वे ऐसे भरे हुए रहते थे कि एक भी दिन खुलते नही थे। (२) वर्षा से भूमि के खार (खाल)-खड्ड (गढे) भर रहे थे, और भूमि ने भी उसी प्रकार [हरीतिमा का] नवीन और अमूल्य चीर कर रक्खा था। (३) आखो का काजल [ऐसे समय मे] आखो मे रह नही पा रहा था, उसे प्रतिक्षण [रो-रो कर] मैना वहा रही थी। (४) [ऐसे] सावन मे चादा जव लोरिक को लेकर भाग गई, मैना के नेत्रो मे पूरित होकर [आसुओ की] झडी लग गई। (५) नेत्र इस प्रकार

से ओलती [की भांति] चू रहे थे कि मेरे हारो की डोरी उस पानी से सड गई। (६) जिस सावन मे [ऐ लोरिक,] तुम गए, वह सावन मैंना के नेत्रो मे आ लगा। (७) ऐ सुरजन, लोरिक से मजरी (मैंना) का [यह] अभाग्य कहना।"

(३४४)

'भादौ मास निसि भइ' अधियारी। 'रइनि डरावनि हउ धनि' बारी।
'बिजुलि''चमकि मोर हियरा' भागइ। मदिरु नांह बिनु धइ धइ 'लागइ'।
सग न साथी न 'सखी' 'सहेली'। 'देखि' फाट हिय मदिर 'अकेली'।
'तेहि दुख' नैन फूटि तस बहे। धरती पूरि सागर भरि रहे।
निकरि 'चलउ पउ' 'चली' न जाई। 'पुहमी' पूरि रहा 'जलु' छाई।
दुरजनु बचनु 'सवन कइ लोर' 'परदेसहि छाएउ''।
'मइ' 'लाए नैननि' दुइ बरिखा 'सुरिजन' रोइ 'बिहाएउ' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २८८, भो० पत्र ४६ (नवीन), बी० १२०२-१२०४।

शीर्षक—मैं० . कैफियते माह भादौ।

भो० सख्तीए माह भादौ गुफ्तन मैना पेश सुरजन पैगाम बजानिब लोरिक।

पाठान्तर—(१) १ बी० भादौ चमकि वरसै, भो० भादौ वरसि चमक ('चमकि' दूसरी अर्द्धाली मे भी है)। २. बी० रैंनि डरावैनि मेघ म। (२) १ बी० चचर। २ भो० चमकि मोर हियउर, बी० चमकि मोरौ हियरा। ३. बी० भागै। ४ बी० लागै। (३) १ बी० सही। २ भो० सहेली। ३ बी० देख। ४ भो० अकेली। (४) बी० इहि परि। (५) १ बी० चलौ मुकु, भो० चलउ पग। २ बी० चाल। ३ भो० भूमिहि, बी० धरती। ४ बी० जरु। (६) १ बी० सुनि कै नाहु, मैं० सवन कइ लोर। २. मैं० विदेसहिं छाएउ, बी० परदेसहिं छायो। (७) १ बी० भो० मे नही है। २ बी० लई नैन। ३ बी० मै सुरिजन। ४ भो० विहाएउ, बी० बुलाये।

अर्थ—(१) "भादौं मास मे अधेरी रात हुई (आई), वह रात डरावनी थी और मैं स्त्री बालिका थी। (२) बिजली चमक कर मेरे हृदय को भग्न करती थी, और [मेरा] मदिर स्वामी के विना [जैसे] पकड-पकड कर मुझसे लग रहा था। (३) न [कोई] सगिनी थी, न साथिनी, न सखी और न सहेली थी, मदिर मे [अपने को] अकेली देखकर मेरा हृदय फट जाता था। (४) उसी दुःख के कारण नेत्र जैसे फूट गए हो, इस प्रकार वह निकले, और

धरती को पूरित कर वे सागरो को भर रहे। (५) यदि मैं निकल चलती, तो पैरो से चला न जाता, [क्योकि] पृथ्वी को पूरित कर [वह] जल छा रहा था। (६) ऐ लोर, तुम दुर्जन का वचन सुनकर (मानकर) विदेश मे छाए हुए हो। (७) ऐ सुरजन [अथवा स्वजन], दोनो नेत्रो मे वर्षा को लगाए हुए मैंने उसे रो-रो कर व्यतीत किया।"

(३४५)

'चढा' कुवारु अगस्ति जनावा। तीर 'घटइ पइ' कतु न आवा।
फूल कास 'हास' सर छाए। सारस 'कुरुलहि खिडरिच' आए।
'चरुवा बारहिं अपुरुब' बारी। 'अति' रस भीनी नाह पियारी।
नव 'रितु' लाग पितरपख होई। राइ 'राक' घर 'सीजि(झि)' रसोई।
'मोहि पीउ बिनु नित परइ' उपासू। 'सग न साथी भुगुति न' गरासू।
बारा 'तुरै' पलानि लोर 'जानिउ' घरि 'आइहि'।
रहा 'चितहि(चित्तहि) धरि मेच्छु सुरिजन बहुल दिन लाइहि'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २८८, बी० १२०५-१२०७।

भो० मे पूर्ववर्ती कडवक के अनन्तर तर्क है 'चढा कुवार', जो इसी कडवक का है।

शीर्षक—मैं० कैफियते माह कुवार।

पाठान्तर—(१) १ बी० चरा। २ बी० घटे पै। (२) १ बी० हस। २ बी० कुररे षडरिट। (३) १ बी० नरुवा परहि अपूरब। २ बी० सभ। (४) १ बी० रुति। २ बी० रक। ३ बी० सचर। (५) १ बी० मै पिय विनु नित करौ। २ बी० सुख न सुहाई भुगति। (६) १ बी० तुरी। २ बी० जनि बेगि। ३ बी० आयहु। (७) बी० चिताह धरि चादा औ सरिजानि वहु दिन लायोहु।

अर्थ—(१) "क्वार का मास चढ (लग) गया और अगस्त्य [तारक] जान (दीख) पडने लगा, जल घटने लगा, किन्तु कान्त (प्रिय) न आया। (२) कास फूल उठे, और सरोवरो मे हस छा गए, सारस बोलने लगे और खजन आ गए। (३) बालिकाए (बालाए) अपूर्व चरुवे (थालियो मे दीप) जला रही थी, [अपने] स्वामियो की वे प्रियाए अत्यधिक रस-सिक्ता थी। (४) नई ऋतु लग गई, और पितृ-पक्ष होने (मनाया जाने) लगा, राजा रक सभी के घर मे रसोई सीझी (पकी)। (५) [किन्तु] प्रिय के विना

मुझे नित्य उपास ही पडा रहता था, न सगी था न साथी, न भोजन था न ग्रास। (६) मै समझ रही थी कि [इन्ही] वारो (दिनो) मे घोड़े पर जीन कसकर लोरिक घर आएगा। (७) किन्तु हे सुरजन, वह म्लेच्छ अपने चित्त को पकडे [रोके] हुए [विदेश मे] रह गया और उसने वहुत दिन लगा दिए।"

(३४६)

कातिग 'निरमलि रइनि' सुहाई। 'जोन्ह' 'डाढि हउ खरी' सताई।
'तेहि परि' कामिनि सेज 'बिछावहि'। 'कतु' अमोलु 'भेटि' 'गिय लावहिं'।
'कहउ' दिवारी 'देखहु' आई। उतिम परब 'रितु खेलहिं' गाई।
मोहि लेखे सबु जगु अधियारा। 'लइ गइ' चाद मोर उजियारा।
'एहि बिरोग जउ' नाहु न आवा। रहा 'छाडि' 'पिउ' 'भएउ' परावा।
पाय लागि कइ 'सुरिजन' मो 'पति जाइ' 'मनाइहि'।
'हूवा' देव 'उठान' बीर 'पूजा' 'मिसु' 'आइहि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २८६, भो० पत्र ५४ (नवीन), का०, बी० १२०८-१२१०।

शीर्षक—मै० कैफियत माह कातिक।

भो० सख्तिए माह कातिक गुफ्तन मैना पेश सुरजन पैगाम बजानिब लोरिक।

का० सख्तिए माह कातिक गुफ्तन मैना पेश सुरजन।

पाठान्तर—(१) १ बी० निरमर रैनि। २ बी० जोबनि। २ भो० का० ढाढि हौ जो, बी० डहि डहि हौरु। (२) १ बी० तिहि बिधि। २ बी० विछावैहि। ३. मै० कतहि। ४ मै० फेरि, बी० भीरि। ५ बी० लै लावैहि। (३) १ बी० कहौहु। २ भो० देखहि, का० देखइ। ३. का० रितु खेलइ, बी० तौ पेलैहि। (४) १ बी० ले गई। (५) १ बी० ईहिं रूप रवि जौ। २ का० छाइ। ३. मै० फुनि। ४ का० भए, बी० भया। (६) १ मै० सुरिजन। २ मै० कतहि जाइ। ३ बी० मनावोहु। (७) १. मै० होई, भो० का० होइहि। २. बी० उठावनु। ३ भो० का० पूजइ। ४ मै० मिसु घर। ५ भो० आउ, बी० आवोहु।

अर्थ—(१) "कार्तिक मे निर्मल और सुहावनी रजनी थी, किन्तु ज्योत्स्ना से दग्ध होकर मैं अत्यधिक सतप्त रही, (२) उसी प्रकार [इससे कि] श्रेष्ठ

कामिनिया शैया बिछाती थी और अमूल्य कान्तो को भेट (अको मे ले) कर गले से लगाती थी। (३) कहती (सोचती) कि वे आकर दीपावली देख जाए और उस उत्तम पर्व और ऋतु को [गीत] गा-गाकर खेल जाए। (४) किन्तु मेरे लेखे (लिए) समस्त जगत् अधकार पूर्ण था, [क्योकि] मेरा उजाला तो चाद (चादा) ले जा चुकी थी। (५) मुझे इसलिए विरोग (दुख) था कि [इस सुऋतु मे] मेरा स्वामी [लौट कर] न आया था, और वह मुझे छोडकर पराया हो गया था। (६) ऐ सुरजन, तुम जाकर और [मेरी ओर से] पैरो मे लग कर मेरे पति को मनाना। (७) [कहना कि] देवोत्थान हो गया, वह वीर देव-पूजन के मिस [घर] आ जाए।"

(३४७)

अगहन 'रइनि बाढि' दिनु खीना। दिन पर दिनु जाइ तनु छीना।
पवनु 'झुरक' तनु सीउ जनावा। 'सियर गहत घर कतु न' आवा।
विरहा 'सतुरु' 'देह' दौ 'लावइ'। भसम करइ मुख अग 'चढावइ'।
काम दगध रामा 'बेकरारू'। अस जीवनु 'जिनि होइ' करतारू।
चाद निसूगी 'हउं रे' बिगूती। 'छाडि सूकु रबि' 'कउ छरि' सूती।
'एहिं' परिहस 'ररि मरिहू' चाद सुरिज 'लइ' भागि।
'आपन छाडि' 'करमुखी' सुरिजन पर 'गिय' लागि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २८६, भो० पत्र ५० (नवीन), बी० १२११-१२१३। भो० तथा का० मे पिछले कडवक के बाद 'अगहन' तर्क है, जो इसी का है।

शीर्षक—मैं० कैफियत माह अगहन।

भो० सख्तीए माह अगहन गुफ्तन मैना पेश सुरतनपैगाम मिनजानिब लोरिक।

पाठान्तर—(१) १ बी० रैनि बढी। (२) १ बी० झरकि। २ भो० सिर भुज लोर कठ नहि, बी० सुरसर घट पे कतु न। (३) १ बी० सतर। २ मैं० देह। ३ बी० लावै। ४ बी० चरावै। (४) १. भो० बेकरार, बी० बिकरारा। २ बी० जिन होय। ३ भो० करतार, बी० करतारा। (५) १ बी० हौं रु। २ बी० छडि सूकु रवि। ३ भो० कूझरि, बी० कौछरि। (६) १ बी० ये। २ भो० दिन भरिऊ, बी० हौ मरिहौं। ३ बी० लै। (७) १ मैं० अवहु न छाडइ, भो० कानिहि छाडि। २ बी० कारमुषी। ३ बी० गै।

अर्थ—(१) "अगहन मे रात बढी हुई थी और दिन क्षीण हो गया था

दिन प्रति दिन [मेरा] तन क्षीण हो रहा था। (२) पवन झुर-झुर करके बहता और शरीर मे शीत ज्ञात होता था, और (जव) शीत मुझे पकड रहा था, तव भी कान्त नही आया। (३) विरह शत्रु [अथवा सत्वर] देह मे दावाग्नि लगाता, और उसको भस्म [बना] कर मुख तथा अगो पर चढाता था। (४) काम से दग्ध रमणी वेकरार (वेचैन) थी, हे सृष्टिकर्ता, ऐसा जीवन [किसी का] न हो! (५) चाद निष्ठुर है और मैं तिरस्कृता हू, वह शुक्र (काने वावन) को छोड और सूर्य (लोरिक) को छल कर सोई हुई है। (६) इस परिहास (अपमान) मे मैं रट लगाती हुई मर जाऊगी कि चाद सूर्य (लोरिक) को ले कर भाग गई है। (७) ऐ सुरजन, वह काले (कलकित) मुख वाली अपने [पति] को छोड कर अन्य [के पति] के गले लगी हुई है!"

(३४८)

'आइ पूस साई पथु जोवउ'। खिनु इकु राति दिवसु 'नहि' 'सोवउ'।
सुरिजन 'केहि परि सीउ सहारबि'। 'मरन न जाइ जियइ केइ पारबि'।
घर घर 'सउरि सुपेतिइ' साजहि। 'घिरित' मास बहु 'भातिहि खाजहि'।
'मइ' तनि चोला चीरु न 'सुहाई'। 'पिउ' बिनु 'रोहितास जनु' लाई।
'जानिउ सिसिर' कतु सुनि 'आवत'। राइ 'राक घर लइ धनि' रावत।
'सुरजन' लोरु बनिजि गा 'हउ' नित 'ढारिउ' आसु।
'कवनु' 'लाभ कह भूलइ' लोरिक पूजी होइ बिनासु॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६०, बी० १२१४-१२१६।

शीर्षक—मैं० कैफियते माह पूस।

भो० मे पूर्ववर्ती कडवक के बाद तर्क है 'आइ पूस', जो इसी कडवक का है।

पाठान्तर—(१) १ बी० आयो पोसु नाह पथु जोऊ। २ मैं० न। ३ बी० सोऊ। (२) १ बी० किहि परि सीउ सराअवि। २ बी० मरि न जाउ कै जीउ उबारवि। (३) १ बी० सौरि सपेटहि (सुपेतिहि—फा०)। २. बी० घिरत। ३ बी० भातेहि षाजैहि। (४) १, बी० मोहि। २ बी० सुहाई। ३. बी० पिय। ४ मैं० लूट पाट जस। (५) १ बी० जावत सुसर (सिसिर—फा०)। २ बी० आवत। ३. बी० रक लै घर निसि। (५) १ बी० सुरजनु। २ बी० हौ। ३ बी० ढारउ। (७) १ बी० कोनु। २. बी० कै भूलै।

अर्थ—(१) "पूस आ गया और मै जो स्वामी का मार्ग (देख) रही थी,

एक क्षण भर भी रात-दिन मै नही सोती थी। (२) [मैं कहती,] ऐ सुरजन [अथव स्वजन,] 'मैं किस प्रकार शीत को सहन करूगी ? मरा नही जा रहा है, [किन्तु] जीना [भी] कैसे सभव होगा ?' (३) घर-घर मे लोग सौर-सुपेती (गद्दे-चादरे) सजा रहे थे और घी तथा मास बहुत भाति से खा रहे थे। (४) किंतु मेरे शरीर पर चोली और चीर [भी] नही सुहाते थे, क्योकि प्रिय के विना ऐसा लगता था जैसे अग्नि लगी हुई हो। (५) मैने समझा कि [मेरा] कात शिशिर [का आगमन] सुनकर आ जाएगा, क्योकि [इस ऋतु मे] राजा-रक सभी घर मे स्त्री को लेकर रमण करते है। (६) ऐ सुरजन, लोरिक वाणिज्य के लिए गया है, और मैं नित्य ही [इसके लिए] आसू गिराती रही हूँ, (७) [और कहती रही हूँ,] 'ऐ लोरिक, तू किस लाभ के लिए [यह] भूल [कर] रहा है ? [देख,] तेरी पूजी (स्त्री) का ही [इस लाभ के लोभ मे] विनाश हो रहा है।"

(३४९)

'माह' मास निसि 'परइ' तुसारू। 'कपहि' हार डोर थनहारू।
'कापहि' डसन नीर चखि झरा। बिरह अगीठी 'हियउरि' धरा।
'एक बिरहे अरु दहिउ तुसारा'। 'भा रे परहि यह जिवनु हमारा'।
तुम्ह बिन नाह 'अइसि हउ' भई। 'पुरइनि जइसि भूजि डहि' गई।
'भरि हेव[त]भोर अक लाइउ'। 'लइ' गई चाद सुरिजु कत 'पाइउ'।
'हेवत मोहि' बिसारि मेछु पर कामिनि 'रावइ'।
'सुरिजन मुडउ' तुसारि बेगि कहि 'सूरिजु आवइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६०।२, बी० १२१७-१२१६।

शीर्षक—मैं० कैफियते माह मास।

पाठान्तर—(१) १ बी० माघ। २ बी० परै। ३ बी० कपैहि। (२) १. बी० कपै। २ बी० हिये उपरि। (३) १ बी० इकु विरहा अरु परै तुसारू। २ बी० भय रु परायोहु जीवनु हमारू। (४) १ बी० अैस हौ। २ बी० परवनि जैस भूजि ठह। (५) १ बी० हीये हियो भीरि गैं लाऊ। २ बी० ले। ३ बी० पाऊ। (६) १ बी० हीया होतें महिन (मुहिं—फा०)। २ बी० रावै। (७) १ बी० सुरिजनु मुयो। २ बी० लोरिकु आवै।

अर्थ—(१) "माघ मास मे रात मे तुपार पडता था, [जिससे] भारी

स्तनो पर [पडी हुई] हारो की डोरिया कापती थी। (२) दात काप रहे थे और आखो से जल (आसू) झड (गिर) रहा था, [दूसरी ओर] विरह की अगीठी हृदय-उर मे रखी हुई थी। (३) एक तो विरह से और दूसरे तुषार से मै दग्ध हुई, इसलिए मेरा यह जीवन [जैसे] पराए का हो गया था। (४) [लोरिक से कहना,] 'हे स्वामी, तुम्हारे विना मैं ऐसी हो गई थी, जैसे [तुषार-पात से] पुटकिनी (कमलिनी) जल-भुन गई हो। (५) हेमत भर [मुझ पुटकिनी ने] अको से भोर (प्रभात) को ही लगाया, क्योकि सूर्य (लोरिक) को चाद (चादा) ले गई थी, इसलिए मैं [पुटकिनी] उसे कहा पा सकी थी? (६) हेमत मे वह म्लेच्छ मुझे विस्मृत कर दूसरे की स्त्री से रमण कर रहा था! (७) हे सुरजन, मैं तुपार से मर गई, तू [जाकर] कहे, 'ऐ सूर्य (लोरिक), तू शीघ्र आ जा'।"

(३५०)

फागुनि सीउ 'चउग्गुन' कहा। 'उछर पवन सतगुन' होइ रहा।
फाग 'सराहउ लोरु जउ आवइ'। 'सीउ मरति गिय लाइ जियावइ'।
घरि घरि रचहि 'डडाहर' बारी। आति सुहाग बहु राज दुलारी।
मुख 'तबोलु' चखि काजर 'पूरहि'। 'आकि माग सिरि चीरि सेदूरहिं'।
'नार्चाहिं फाग होइ' झनकारा। 'तेहि रस भीनी सबइ सयसारा'।
रगत 'रोइ मइ' तस 'कइ' 'चोल चीर' रतनार।
कहि सुरिजन तोरि मैना 'भइ होरी जरि' छार॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २६६ (?), बी० १२२०-१२२२। ऐसा लगता है कि मै० यहा पर त्रुटित हो गई थी और उसके कई पत्र टूट कर निकल गए थे, इसलिए सख्या पुन डालते समय जब बाद की पत्र-सख्या से मिली हुई पत्र-सख्या डाली गई, उसमे भूल हो गई है।

शीर्षक—मै० कैफियते माह फागुन।

पाठान्तर—(१) १ बी० चवगुना। २ बी० आछरि जीउ सूक। (२) १ बी० सर्‌यो जै लोरिकु आवै। २ बी० सीय म मरत गै लाई जिवावै (३) १ बी० डडारसि। (४) १ बी० तबोरु। २ बी० पूरा। ३. बी० भरहिं माग सीस सिदूर पूरा। (५) १ बी० खेलहिं फाग करहिं। २ बी० तिहि रस भीनी सभ सैसारा। (६) १ बी० रोय मै। २ बी० को। ३ बी० चोरा ची[र]। (७) १ बी० जरि भई होरी।

अर्थ—(१) "फाल्गुन मे शीत चौगुना कहा जाता है, किंतु पवन उच्छलित हो रहा था [इसलिए] वह सतगुना हो रहा था। (२) मैं फागु की सराहना करती यदि लोरिक आ जाता और [मुझ] शीत से मरती हुई को गले से लगा कर जिला देता। (३) बालिकाए घर-घर मे डडाहर (?) रचती थी और बहुतेरी राजदुलारिया अत्यधिक सुहाग मे [थी]। (४) मुख मे वे ताम्बूल [लेती थी] तथा आखो मे कज्जल पूरती थी, वे मागे अकित करती और सिर [के केश] चीर कर उसे सिंदूरित करती थी। (५) वे फाग नाचती थी, जिससे झकार होती थी, और उसी रस मे भीनी ससार मे सभी थी। (६) मैंने [इस मास मे] इतना रक्ताश्रु गिराया कि मेरी चोली और मेरा चीर लाल हो गए। (७) हे सुरजन, [लोरिक से जाकर] कह, 'तेरी मैना होली [की आग] मे जल कर राख हो गई'।"

(३५१)

चैति बनसपति करी निकारा। हरियर बरन सेतु (सेत) रतनारा।
बिहसै(से) क(क)वरु अ(अउ)चदनु गधाना।
कुसुम बासु सहि भवरु लुभाना।
सुरिजन आई(इ) बसतु तुलाना। पिउ पर बेली देषि लुभाना।
कतु बसतु जौ(जउ) न घरि आवै। रितु वसत मोहि देष(षि) न भावै।
लोरिक आय(इ) देषि फुलवारी। तुम्ह बिनु सूकै नारि ग(गु?) वारी।
यकसर नारि मरै निसि काटेहि सेज बिछावै।
कहि सुर(रि)जन धन पास तु(तो)र तुल(तिल?) ऐक न पावै॥

सन्दर्भ—बी० १२२३-१२२५। मै० भी यह कडवक रहा होगा—दे० पूर्ववर्ती कडवक की सन्दर्भ-टिप्पणी।

अर्थ—(१) "चैत्र मे वनस्पतियो ने कलिया निकाली, जिससे वे हरी [वनस्पतिया] श्वेत और रत्नालु (लाल) हो रही थी। (२) कमल विकास कर रहे थे, चदन सुगधि-विकीर्ण करने लगा था, एव कुसुमो की सुवास से सारे भ्रमर उन पर भटक रहे थे। (३) [अन्यो के] स्वजन (आत्मीय) वसत मे आ पहुचे थे किन्तु मेरा प्रिय अन्य की वेली (नारी) को देखकर उस पर लुभाया हुआ था। (४) क्योकि मेरा कात (पति) वसत मे घर नही लौट रहा था, वसत ऋतु को देखना [भी] मुझे नही भा रहा था। (५) [मैं कहती,] 'ऐ लोरिक, तू आकर अपनी फुलवाडी (यौवनवती स्त्री) को देख जा, तेरे

विना यह ग्वालिन (?) नारी सूख रही है।" (६) यह अकेली (पति-विहीन) नारी रात्रि मे [अपनी विरह-पीडा के कारण] मरती और [मानो] काटो पर अपनी शैया विछाती थी, (७) [क्योकि] ऐ सुरजन, कहना कि वह धन्या (स्त्री) तेरा-पार्श्व एक तिल भी नही पा रही थी।"

(३५२)

बैसाषा(ष)ह जौ तरवरु फरा। हियरे लाइ लोरिकु ही धरा।
तु (तो) रु अबराउ राषि केउ पारा। बिरसु आई पिउ आब सुहारा।
न जानौ करहु कौन बन रहा। सुरिजन मोकौ(मकहु)सुनौ तोर कहा।
करि कराप दिन दु ष भरि काढौ(ढौ)। नैन रगत नित मारग चाढौ(ढौ)।
आवहु सतुरै बीर गुसाई। षर होय(इ) भानु तपै बिनु साई।
गौ वसत रितु आहि हरि(परि?) साई सेज न आयो (यो)।
सुरिजन नाहु भवर परि दाष बेलि फर रांयो॥

सन्दर्भ—वी० १२२६-१२२८। मैं० मे भी यह कडवक रहा होगा—दे० कडवक ३५० की सन्दर्भ-टिप्पणी।

अर्थ—(१) "वैशाख मे जव वृक्ष फले, तव मैंने हृदय में लगा कर लोरिक को ही धारण किया। (२) [मैंने कहा,] 'तुम्हारे आम्राराम (अपने शरीर) की रक्षा मै किसी प्रकार कर सकी; ऐ प्रिय, तुम आकर [अव] अपने आम्र-सहकार का विलास करो। (३) तुम न जाने किस वन मे रहा करते हो; भला, ऐ स्वजन, मै कही भी तो तेरा कथन (तेरा बोल) सुनू। (४) कलाप करती (चिल्लाती) हुई मै [अपने] दिन दु ख से भर कर काढती (विताती) हू, और नेत्रो का रक्त नित्य ही [तुम्हारे] मार्ग पर चढाती हू। (५) ऐ वीर स्वामी, तुम सत्वर ही आओ; तुम स्वामी के बिना, भानु प्रखर होकर तप्त हो रहा है।' (६) इसी प्रकार से वसत [भी] चला गया किन्तु मेरा स्वामी शैया पर न आया, (७) [क्योकि] ऐ सुरजन, मेरा पति भ्रमर की भाति [अन्य की] द्राक्षा-वेली (नारी-यष्टि) और उसके फलो (अधरो ?) पर अनुरक्त हो रहा था।"

(३५३)

तस कै चाद सुरिजु कनि जपा। जेठ मास महि उपर तपा।
तपताह जम (जग?) आहौ दही। बिरह कहानी मो सौ कही।
अैस तपै षडवानी न जानौ। सीतर नीरु दगध पै मानौ।

तिह गुनि चदनु अगि न चराऊ। बीना परिमलु अ[ग]रु न लाऊ।
रचि रचि मढु छावहि अधियारी। पिउ घरि रवनि रवैहि जग बारी।
सुर(रि)जन तपत जनमु गा सरि ज बारि जनयोहु (जनायेहु)।
मोर सदेस लोरिक सौ कहियहु जरता(त)ह आय(इ) बुझायेहु ।।

सन्दर्भ—बी० १२२६-१२३१। मैं० मे भी यह कडवक रहा होगा—दे० कडवक ३५० की सन्दर्भ-टिप्पणी।

अर्थ—(१) "चाद (चादा) ने सूर्य (लोरिक) को इस प्रकार जपा, तव ज्येष्ठ मास मही-तल के ऊपर तप्त होने लगा। (२) जब जग (?) तप्त हो रहा था, तव मैं भी दग्ध हो गई और उसने [अपनी] विरह-कहानी मुझसे कही। (३) [ज्येष्ठ] इस प्रकार तप्त हो रहा था कि खाड का पानी (शर्वत) [कुछ भी नही] जान पडता था, तथा शीतल जल से, हो न हो, दाह ही का अनुभव होता था। (४) इसी गुण (कारण) से मै अपने शरीर पर चदन नही चढाती थी, और वीना (वीरण—खस), परिमल और अगुरु नही लगाती थी। (५) [वर्षा की सन्निकटता के कारण] बहुतेरे लोग रच-रच कर (सुरुचि पूर्वक) अपने मढ (मदिर—भवन) अधिकता से छा रहे थे, और जिनके प्रिय घर पर थे, जगत् भर मे वे वाल-रमणिया [उनसे] रमण कर रही थी। (६) ऐ सुरजन, [ज्येष्ठ मे] तप्त होते हुए यह जीवन उसी प्रकार गया जिस प्रकार सरिता का जल दिखाई पडा। (७) मेरा सन्देश तुम लोरिक से कहना, कि इस जलती हुई [नारी] को आकर वह बुझाए।"

(३५४)

आय(इ) अषाढ मेघ ग(घ)रराने। नर नरवै पुहमी अगुराने।
छावहि मदिर औ घर सारा। दीप गये बहुरे बनिजारा।
सब को चित करै घर केरी। मोहि घर चित नाहि(ह) अवसेरी।
पिय बिरहै तनि मासु घटावा। गा अषाढु पै कतु न आवा।
जियरा मोर नाक होय(इ) रडा। पिय विनु मरनु नितहि को सहा।
सुरिजन सावन बहुरेहि लागा कहि मैना अब न सभारैं।
हर भ(भ)डार कर टेका नैन लोहू भरि ठा(ढा)रैं।।

सन्दर्भ—बी० १२३२-१२३४। मैं० मे भी यह कडवक रहा होगा—दे० कडवक ३५० की सन्दर्भ-टिप्पणी।

अर्थ—(१) "आषाढ आया तो मेघ गडगडाने (गर्जन करने) लगे,

पृथ्वी पर नर तथा नरपति [सभी] अकुरित होने (अगडाई लेने) लगे। (२) वे अपने मदिर, घर और शालाए छा रहे थे, जो बनजारे (व्यवसायी) द्वीपो को गए थे, वे भी लौट आए थे। (३) सभी-कोई (पुरुप) [अपने-अपने] घर की चिंता कर रहा था, और मुझे अपने घर की चिंता इसलिए करनी पड रही थी कि [मेरा] स्वामी नही था। (४) प्रिय के विरह मे मैंने शरीर का माँस घटा (गला) दिया, और आपाढ [भी] चला गया किन्तु कान्त [वापस] न आया। (५) मेरा जी नाको आ गया था, क्योकि प्रिय के विना मरण नित्य ही कौन सहन करता ? (६) ऐ सुरिजन, सावन पुन' लग गया है, कहना कि मैना अब अपने को नही सभाल [पा] रही है, (७) वह घर और भाडार पर हाथो को टेक कर नेत्रो मे लहू [के आसू] भर-भर कर ढाल रही है।"

(३५५)

मैं सभ दुख तुम्ह 'आगे' रोवा। चाद 'नाह मोर देहु' बिछोवा।
तू 'हरि' पूनिउ चाद 'सपूनी'। खट रितु 'कीनी' सेज 'मोरि' सूनी।
कहि सुरिजन अस चाद न 'कीजइ'। नाहु मोर मोहि दखिना 'दीजइ'।
एकु 'बरिसु मोर गा' बिनु नाहा। दई का(क) डरु' 'कीजइ' चित माहा।
'तुहू आहि तिरिया कइ' जाती। पिय बिनु 'मरसि रइनि हिय फाटी'।
तू 'रे' निसूगी नारि सूग 'नहि मन माहिं' जानसि।
'लीन्हे फिरसि नाह मोर कस अबहू नहि' आनसि॥

सन्दर्भ—भो० पत्र ३८ (नवीन), बी० १२३५-१२३७। मैं० इस अश मे त्रुटित है—दे० कडवक ३५० की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शीर्षक—भो० हम हाले खुद गुफ्तन मैना पेश सुरजन पैगाम बजानिब लोरिक।

पाठान्तर—(१) १ बी० आगैं। २ बी० नाहि मोहि दीन्ह। (२) १ बी० हहि। २ बी० सवानी। ३ बी० गइ (कीनी—फा०) ४ बी० मोरी। (३) १ बी० कीजैं। २ बी० दीजैं। (४) १. बी० बरसु भौ मो। २ भो० कइ। ३ बी० कीजैं। (५) १ बी० तूहैहि आहि तिरी की। २ बी० रैंनि मरत फुटि छाती। (६) १ बी० र। २ बी० [म]न माहि न। (७) १ बी० गई तीनि रुति आहि नाहु मोरैं अजहु न।

अर्थ—(१) " 'ऐ चादा,' [मैना ने कहलाया,] 'मैंने [अपना] समस्त दुख तेरे आगे रो-सुनाया, [तुझसे प्रार्थना है कि] तू मुझ से अलग किया

हुआ मेरा पति दे दे। (२) ऐ पूर्णिमा की सपूर्ण चाद, उसे अपहृत करके तू मेरी शैया [पिछली] छ ऋतुओ मे सूनी कर चुकी है।' (३) ऐ सुरजन, [मेरी ओर से] उससे कहना कि 'ऐ चाद, ऐसा तुझे न करना चाहिए, मेरा स्वामी तू मुझे दक्षिणा [के रूप मे] दे दे। (४) मेरा एक वर्ष बिना स्वामी के जा चुका है, [भला अब भी] तू चित्त मे दैव का डर कर! (५) तू भी स्त्री की जाति [की] है, तू भी प्रिय के बिना रात्रि मे हृदय के फटने से मर जाएगी। (६) [किन्तु] तू निष्ठुर नारी है, और मन मे करुणा करना नही जानती है। (७) तू मेरे स्वामी को कैसे (क्यों) लिए फिर रही है? अब भी क्यो उसे [वापस] नही ला रही है?' "

(३५६)

काहे 'कह बिधि हउ' औतारी। 'बरु औतरतहि मरतिउ' बारी।
चाद मया करि 'दइ' अहिवातू। मोहि बारि सिर 'ऊपरि' छातू।
यह दुखु भारु सहइ को 'पारइ'। 'तेहि निसि रोइ दिवस मोहि जारइ'।
'सोरह' करा 'सरगि' परगाससि। 'बारह' मदिर सेज तू डाससि।
सहस करा सूरिजु उजियारा। 'साई' मोर 'तोहि भएउ' पियारा।
पाइ 'परउ जउ' 'उगवसि' 'अउ' सुरिजन पूजा सारउ।
'जारि करा जो प्रगासइ तासउ कइसे पारउ'॥

सन्दर्भ—भो० पत्र ३९ (नवीन), बी० १२३८-१२४०। मै० इस अश मे त्रुटित है—दे० कडवक ३५० की सन्दर्भ-टिप्पणी।

भो० मे पिछले कडवक के बाद आया हुआ तर्क 'काहे' इसी का है।

शीर्षक—भो० वाकअ हाल खुद गुफ्तन मैंना पेश सुरजन पैगाम बजानिब लौरिक।

पाठान्तर—(१) १ बी० कौ हौ बिधि। २ बी० बा(ब)रि औतरत मरती। (२) १ बी० देहि। २ भो० बारी (बारि—ना०)। ३ बी० उपरि। (३) १ बी० बारा। २ बी० तिहि निसि राई तनु यो जारा। (४) १ बी० सोराह। २ बी० सुरिजु (दे० परवर्ती चरण)। ३ बी० बाराह। (५) १ बी० नाह। २ बी० तुम्ह भयो। (६) १ बी० परौ जौ। २ भो० गौनसि। ३ बी० औ। (७) १ बी० छडि करा परगट हाई तास्यौ कैसैं पारौ।

अर्थ—(१) ["ऐ चाद,] विधाता ने मुझे अवतरित (उत्पन्न) ही क्यो किया? इससे तो अच्छा होता कि अवतरित होते ही मैं, ऐ बालिका, मर

गई होती । (२) ऐ चाद, तू मुझ पर स्नेह करके मेरा अहिवात वापस कर, और [मेरे] सिर पर का छत्र मुझे वार (दे डाल) । (३) यह दुःख-भार कौन सहन कर सकता है ? इसी से रात मे मैं रोती हू और दिवस मुझे जलाता है । (४) तू सोलह कलाओ से स्वर्ग (आकाश और धवलगृह) को प्रकाशित करती [रहती] है, और बारह मदिरो (राशियो और भवनो) मे तू [अपनी] शैया बिछाती है, (५) [और इस समय] सहस्र कलाओ से प्रकाश-पूर्ण सूर्य (लोरिक), मेरा स्वामी, तुझे प्रिय हो गया है ।' (६) ऐ सुरजन, [उससे कहना,] 'यदि तू [उस सूर्य—लोरिक को] उदय कर दे तो मैं तेरे पैरो पडूँ, और तेरी पूजा सारु (करूँ) ।' (७) किन्तु जो मुझे [अपनी] कलाओ से जला कर [अपना] प्रकाश करती है, उससे मै कैसे [अपने प्रिय को पा] सकती हू ?"

(३५७)

चाद निसूगी तो पा सरना । पिय मोर उपरि का तो धरना ।
कौन बैरु मैं(मइ) तो सौ कीन्हा । दे चिल्हवासु नाहु मोर लीन्हा ।
तोरी माग सिंदूर सवारै । मोहि माथै नित करवतु सारै ।
तोहि बहु फूल हारु पहिरावै । मोरै मारगि का(का)ट बिछावै ।
पून्यो चाद देहि घरवासा । लोरिक पाटनि नारि कर पासू ।
सावर चीर मैल तन आग मू(मू)ड अति रूख ।
कहि सुरिजन तोरी मैना माजरि भई अति सूष ।।

सन्दर्भ—बी० १२४१-१२४३ । मै० इस अश मे त्रुटित है—दे० कडवक ३५० की सन्दर्भ-टिप्पणी ।

अर्थ—(१) "ऐ निष्ठुर चाद, मुझे तेरे चरणो की शरण है, मेरे प्रिय के ऊपर तुझे क्या (कौन-सा) अधिकार है ? (२) मैंने तुझसे कौन-सा वैर किया था, कि तूने चील्हवास (चील्हपाश—चील्हो को फसाने का कठिन फदा) करके मेरे स्वामी को [मुझसे ले] लिया ? (३) [अब] वह तेरी माग मे सिंदूर सवारता (रचता) है, और मेरे मत्थे पर नित्य करपत्र (आरा) सारता (चलाता) है, (४) तुझे वह बहुतेरे पुष्पहार पहनाता है, और मेरे [जीवन के] मार्ग मे वह काटे बिछा रहा है । (५) ऐ पूर्णिमा की चाद, तू उसको [उसके] घर का निवास दे, उस लोरिक को जिसे तू [हरदी] पाटन मे, ऐ नारी, अपने पाशो मे कर रही है । (६) मेरा चीर श्यामवर्ण का हो रहा है, मेरा शरीर मैला हो रहा है, मेरे अग और सिर अत्यधिक रुक्ष हो

रहे है। (७) ऐ सुरजन [लोरिक से] कहना, 'तेरी मैना माजरी अत्यधिक शुष्क हो गई है।' "

(३५८)

मोर भतारु 'सरगि लइ रावसि'। 'अउ निसि मोहि' सिर ऊपरि आवसि।
बाभन देव 'लोक' मोहि दीन्हा। सो लइ 'लोर पेलि कइ' लीन्हा।
तू विनु लाज कानि 'तोहि' नाही। नाहु मोर गोवसि परिछाही।
'मोहि राखसि अपने उजियारे'। लोरु रवसि पर घर 'अंधियारे'।
वावन 'पुरुस जउ' तोर बियाहा। 'लोरिक मोरु गहसि दहु' काहा।
मुरिजन 'बिनउ चाद कह पठवहि लोर दिवाइ'।
छाडि देहु घर 'आवइ मोहि जिय' आस 'तुलाइ'॥

सन्दर्भ—भो० पत्र ५२ (नवीन), बी० १२४४-१२४६। मै० इस अश मे त्रुटित है—दे० कडवक ३५० की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शीर्षक—भो० वकिनायत गुफ्तन मैंना हाले खुद पेश सुरजन पैगाम बजानिब चादा।

पाठान्तर—(१) १ बी० सुरगि लै रावसि। २ बी० औ निसि मोहि। (२) १ बी० लोग। २ बी० लोगह देषत। (३) १ बी० तो। (४) १ बी० मुहि रषिसि आपनै उजियारा। २ बी० अधियारैं। (५) १ बी० वीरु सु। २ बी० लोरु मोरु करिसी धौ। (६) १ बी० विनय चाद कर पठई को पियँ सनाहु जाई। (७) १ बी० आवैं मोर जिउ। २ बी० तुलाई।

अर्थ—(१) "[ऐ चाद,] तू मेरे भर्त्तार (पति) को आकाश मे ले जाकर उसके साथ रमण करती है, और रात्रि मे तू मेरे सिर के ऊपर आती है। (२) जिसको ब्राह्मणो, देवताओ और समाज ने मुझे दिया, उस लोरिक को तूने [मुझे] धकेल कर ले लिया। (३) तू बिना लज्जा की है, और तुझे मर्यादा [का ध्यान] नही है, इसीलिए तू मेरे स्वामी को [अपनी ?] परछाही मे छिपा रही है। (४) मुझे तो तू [अपने] प्रकाश मे रख रही है, जब कि [मेरे] लोरिक से तू पराए घर मे और अधेरे मे रमण कर रही है। (५) जब कि तेरा विवाहित पुरुप वावन [विद्यमान] है, क्या (क्यो) तू मेरे लोरिक को पकड रही है ?' (६) ऐ सुरजन, चाद को (से) [मेरी ओर से] निवेदन करना, कि वह लोरिक को मुझे दिला (दे) कर भेज दे, (७) उसे छोड दे कि वह घर आए और मेरे जी की आशा पूरी हो।"

(३५९)

मोर खिलवना अपुर(रु)बु अहा। देषत कीरु मजारी गहा।
दूध भातु जो(जे)वनु नित देत्यौ। सगरी राति हिये परि लेत्यौ।
सेज पिरम रस सून्यौ आवत।
अब सहरा (सहारि) डार चरि रावत।
तिहि तू चाद गगन लै गई। मास हीन हौ (हौ) पिपिना भई।
रसु लै निरसु कीन्ह तुम्ह लोरा। दीजै अबहि बियाहा मोरा।
सुर(रि)जन चाद गवन परदेसाह उजियार।
हौ(हौ)रु निलषनि पिय बिनु मदिर मोर अधियार॥

सन्दर्भ—बी० १२४७-१२४९। भो० मे पूर्ववर्ती कडवक के वाद तर्क 'मोर खिलवना' आता है, जो इसी का है।

अर्थ—(१) "मेरा वह खिलौना—क्रीडापक्षी—(लोरिक) अपूर्व था, मेरे उस [क्रीडा-] शुक को देखते-देखते मार्जारी (चादा) ने ले (छीन) लिया। (२) उसको मैं नित्य ही दूध-भात का भोजन देती थी, और सारी रात हृदय पर लिए रहती थी। (३) शैया मे वह प्रेम-रस मे भर कर शून्य (एकान्त) मे आता था और [मेरी यौवन-वाटिका के] आम्र-सहकार की डालो (विभिन्न अगो) पर चढ कर रमण करता था। (४) उसको, ऐ चादा, तू अपने आकाश (धवलगृह) को चढा ले गई, और मैं मासहीन होकर प्रक्षीण हो गई। (५) लोरिक का समस्त रस लेकर तूने उसको नीरस कर दिया है, [भला] अव भी तू मेरा विवाहित [पुरुष] दे दे।' (६) ऐ सुरजन, चादा तो परदेश जाकर प्रकाशपूर्ण हो रही है, (७) किन्तु मैं प्रिय के बिना लक्षण-हीना [हो रही] हू और मेरा मदिर (भवन) अधकार-पूर्ण [हो रहा] है।"

(३६०)

सुरिजन पाव रही लइ मैना। 'बनिजु' तुम्हार मोर दुखु बैना।
लादि टाड 'तह चलहु' गुसाई। 'जेहि' पाटनि 'गा' लोरिकु साई।
'जेहि' पाटन(नि) गइ चाद सभागी। 'तेहिं' पाटनि 'गवनहु मोहि' लागी।
'जेहि' पाटनि पिउ रहा लुभाई। 'लोभ(भि)नि' 'चादहि लइ' घरि आई।
'तेहि' पाटनि 'लइ बनिजु' 'पसारौ(र)हु'।
'अउ वेसहइ कह' लोरु 'हकारौ(र)हु'।

देउ तुरी 'चढु' सुरिजन 'उडइ' पवनु पखि(ख) लाई(इ) ।
दस 'गुन लाभ देब मइ तो कह' लोरु 'वेसाहइ' जाई(इ) ॥

सन्दर्भ—भो० पत्र ५३ (नवीन), वी० १२५०-१२५२ ।

भो० मे इस छद के वाद तर्क 'खोइलिन नायक' है, जो अगले कडवक का है ।

शीर्षक—भो० पाए उफ्तादन मैना अज वराए रसानीदन पैगाम वजानिव लोरिक ।

पाठान्तर—(१) १ वी० वनजु । (२) १ वी० तू चालु । २ वी० जिहि । ३ वी० है । (३) १ वी० जिहि । २ वी० तिहि । ३ वी० मोकौ गुहनै । (४) १ वी० जिहि । २ भो० लोभी । ३ वी० चाद न ले । (५) १ वी० तिहि । २ वी० लै वनजु । ३ भो० पसारा । ४ वी० औ विसहन कौ । ५ भो० हकारा । (६) १ वी० चरु । २ वी० उडिरु । (७) १ वी० गुनौ लाभ देऊ मै तोकौ । २ वी० विसाहै ।

अर्थ—(१) सुरजन के पैर मैना ने पकड लिए, [और उससे कहा,] "तुम्हारे बनिज के लिए मेरे दुख के वचन है । (२) [इस प्रकार का] टाडा लाद कर तुम, हे गोसाईं, वहाँ जाओ, जिस पाटन (महानगर) को मेरा स्वामी लोरिक गया है । (३) जिस पाटन (महानगर) को भाग्यशालिनी चादा गई है, उसी पाटन (महानगर) को तुम मेरे [कार्य के] लिए जाओ । (४) जिस पाटन (महानगर) मे [जाकर] मेरा प्रिय लुब्ध हो रहा है, [जिससे कि] वह लोभिनी चादा को लेकर [भी] घर आए । (५) तुम उसी पाटन (महानगर) मे यह वनिज ले जा कर पसारो, और इसे क्रय करने को लोरिक को बुलाओ । (६) ऐ सुरजन, मै तुम्हे घोडा देती हू, जिस पर तुम पवन के पखे लगा कर उडो । (७) यदि तुम लोरिक को क्रय करके लाए, तो मैं तुम्हे [अन्यथा होने वाले] लाभ का दम गुना दूगी ।"

(३६१)

'खोलिनि' नाइकु दुहु कर गहा । 'आपनि पीरि हियइ कइ' कहा ।
लकुटि हाथ अधरी कइ लिई । 'हउ' बिनु लकुटि टेक मोरि 'गई' ।
'पियरि' धूप 'अब' जीवन मोरा । बहु पछिताउ' 'रहसि' तुम्ह लोरा ।
वूढि 'बैसि' 'खोलिनि' 'कुबिलानी' । 'तुम्ह' बिनु पूत सीच को पानी ।
आइ देखु 'हउ अथवति आहा' । 'अथए' आइ करउ फुनि 'काहा' ।

मोहि 'जि[यत] जिय' सुरिजन लोरिक आइ 'देखाउ'।
'नैन नीर भरि' 'साइर' [धो]इ 'पियउ दुइ पाउ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २९७, भो० पत्र ४० (नवीन), बी० १२५३-१२५५।

शीर्षक—मैं० गुफ्तने खोलिन सुरजन नायक रा व रवान करदन।

भो० गुफ्तने खेलिन वाकअ हाल खुद व जईफी पैगाम बजानिब लोरिक।

(६) तथा (७) मे कोष्ठको के अश मैं० मे कीट-भक्षित होने के कारण निकल गए हैं।

पाठान्तर—(१) १ भो० खेइलिन (खोइलिन), बी० पौलनि। २ बी० आपन पीर हिये की। (२) १ भो० लकुटि तो अधरी कइ गई, बी० लकुटी हाथ अधर की लई। २ बी० हौ। ३ भो० लिई। (३) १ बी० पियर। २ भो० यह। ३ बी० होय। (४) १ मैं० भइसि, बी० बैसि। २ भो० खेलिन। २ मैं० कुमिलानी। ४ भो० तेहि, बी० अस। (५) १ बी० हौं अथवति अहा। ३ बी० अथवे। ४ मैं० आए करियहु, बी०, आइ तुम्ह करिहौ। ४. बी० कहा। (६) १ बी० जीउ जौ। २ बी० दिषावा। (७) १ बी० दासि तुम्हारी। २ भो० सरवर, बी० होइ रहौ। ३. बी० पीउ दोई पाव।

अर्थ—(१) खोलिन ने नायक को दोनो हाथो से पकडा, और [उससे] हृदय की अपनी पीडा कही, (२) ' "[चादा ने] इस अधी के हाथकी लकुटि (लकडी) ले ली, [अब] मै बिना लकुटि (लकड़ी) की हू, [क्यो कि] मेरी टेक चली गई। (३) अब मेरा जीवन [सध्या की] पीली धूप है, [इसके रहते-रहते तुम न आए तो] तुम्हे, ऐ लोरिक, इसका बहुत पछतावा रहेगा। (४) अपनी वृद्धावस्था मे खोलिन [लता] कुम्हला गई है, हे पुत्र, तुम्हारे बिना उसे पानी से कौन सीचे? (५) तुम आकर देखो, मै अस्तमित हो रही हूँ, अस्तमित हो जाने के बाद पुन तुम आकर [ही] क्या करोगे?'(६) ऐ सुरजन, यदि मुझे [मेरे] जीते-जी लोरिक को आकर दिखाओ, (७) तो अपने नेत्रो के जल से सागर भर कर और [उससे] तुम्हारे दोनो पैर धोकर मैं पिऊ।"

२४ संदेश-प्राप्ति तथा स्वदेश-आगमन खण्ड

(३६२)

'कवनु' वनिजु 'तुम्ह' नाइक 'कीन्हा'। सोक सताप बिरह दुख 'लीन्हा'।
'दुद' उदेग उचाट विसाहा। अति बैराग 'खभार' जो आहा।
अरथु दग्वु' 'सभै(भइ) वीसरा'। बाखर गूनि बिरह 'परजरा'।

'आहर दावरि' 'सभ' दौ लागा। झार न सहइ साथु 'सभु' भा(भा)गा।
मारग 'घर' 'तेही(हि)' 'जरतइ' जाई। मैना काम न आगि बुझाई।
'दानि ते मागत' दानु 'सहारत' 'अउ बैठे' बटवार।
कहत सुनत 'दौ' दाधे सुरिजन 'के पइसार'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६८, भो० पत्र ४१ (नवीन), बी० १२५६-१२५८।

भो० मे पिछले कडवक के बाद तर्क है 'कौन वनिज', जो इसी कडवक का है।

भो० मे इस कडवक के नीचे बाद वाले कडवक का तर्क है 'मिरिग पथ'।

शीर्षक—मैं० रवान शुदन सुरजन सूए हरदी पाटन।

भो० पैगाम फिराक हासिल शुदन सुरजन राव व रवा करदन अज गोवर वजानिव लोरिक।

पाठान्तर—(१) १ बी० कौनु। २ बी० देपु। ३ भो० लीन्हा। ४ बी० भो० दीन्हा। (२) १ बी० बहुल। २ मैं० खवार। (३) १ भो० अरती मरन। २ मैं० सभ पाखर भरा, भो० धरन सम भरा। (४) १ बी० अहिरन दाव। २ बी० सौ, मैं० सव। ३ मैं० सब (५) १ बी० पर (घर—फा०), भो० तन। २ भो० मे नही है, बी० ताह। ३ बी० जरतन (जरतइ—फा०)। (६) १ बी० दानू मागहि। २ बी० मे नही है। ३ बी० औ मागहि। (७) १ बी० सभ। २ मैं० नेकहिं उपकार, बी० के व्यापार।

अर्थ—(१) [लोग सुरजन से कहते थे,] "ऐ नायक, तुमने कौन-सा वाणिज्य किया है कि तुमने शोक, सताप तथा विरह-दुख ले रक्खा है? (२) तुमने द्वन्द्व, उद्वेग, उच्चाट (अरति), अत्यधिक विराग, तथा खभार (क्षोभ) को मोल ले लिया है! (३) अर्थ तथा द्रव्य—सव तुम्हे विस्मृत हो गए है, और [तुम्हारे] वाखर और गून विरह-दुख से प्रज्वलित हो रहे हैं! (४) तुम्हारे आहर और दावर—सव मे [वह] दावाग्नि लग गई है, जिसकी ज्वाला न सह सकने के कारण तुम्हारा समस्त सार्थ (व्यापारी-दल) भग्न हो गया है। (५) मार्ग के घर उससे जलते ही जा रहे हैं, क्योंकि मैना की कामाग्नि नही बुझ रही है।" (६) दानी (कर उगाहने वाले) जो दान मागते हुए [उगाहने का कार्य] सभाल रहे थे, और जो वटपार (डाका डालने वाले) बैठे हुए थे, (७) सुरजन के प्रवेश से कहते-सुनते [भर मे] उस दावाग्नि मे दग्ध हो गए।

(३६३)

'मिरिघ जो' पथु लाधि 'कइ' जाही । धूम वरन होइ 'छाडि' पराही ।
जावत 'पखि' उरध उडि गए । किसन बरन कुइला जरि भए ।
'जेहि सरि जाई होइ सतारा' । करिया 'दहे' नाव 'कडहारा' ।
सायर 'डाहि मछ डहि डहे' । 'डहे कुरुजवा' 'सरवर' अहे ।
'अइसनि झार बिरह कइ' भई । धरती 'डाहि गगन लहि' गई ।
सरगि 'चद्र मुह मइला' 'अउ' 'धूम' मेघ भए कार ।
सुरिजन 'बनिजि' 'तुम्हारे' उबरे 'बूढ' न 'बार' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २६६, भो० पत्र ५१ (नवीन), बी० १२५६-१२६१ ।

शीर्षक—मै० कैफियत दर फिराक सुरजन गोयद ।

भो० अज फिराके मैना अहवान सोख्तन व जानवरान दस्ती व माह-यान दर आव सोख्तन ।

पाठान्तर—(१) १ बी० मिग ज । २ भो० जो, बी० करि । ३ बी० माझ, मै० जाइ । (२) १ बी० पष । (३) १ मै० चालहि सुरजन होइ सुतारा, बी० जिहि याह वातनि भई झारा । २ बी० दाधे । ३ बी० गधारा (कडहारा—फा०) (४) १ बी० माझ मछ सब दहे । २ बी० दहे करजूवा । ३ मै० जलहर । (५) १ बी० अैस झार बिरहै की । २ बी० लागि गगनि लहु । (६) १ बी० चाद महि लागौ जाई । २ बी० औ, भो० मे नही है । ३ भो० धरमर, बी० दर । (७) १ बी० बनजि । २ बी० तुम्हारै, मै० तुम्हारे । ३ बी० बूड । ४ मै० पार, बी० हार ।

अर्थ—(१) [लोग कहते,] "जो मृग [तुम्हारे] मार्ग को लाघ कर जाते है, वे धूम्र-वर्ण के होकर और [मार्ग को] छोडकर पलायित हो जाते है । (२) जितने पक्षी ऊपर से उडकर गए, वे भी जलकर कृष्ण वर्ण के और कोयला जैसे हो गए । (३) जिस सरिता मे सतारा होने (सतरण) के लिए आप जाते है, उस नाव के करिया और कर्णधार जल जाते है । (४) सागर के दग्ध होने से उसके मत्स्य दग्ध हो रहे हैं, और वे क्रौच जल गए है जो सरोवरो मे थे । (५) विरह की ज्वाला ऐसी हुई है कि धरती को दग्ध कर वह आकाश तक चली गई है । (६) आकाश मे चद्र का मुख मलिन हो गया है और धूम से मेघ काले हो गए है । (७) ऐ सुरजन, तुम्हारे इस वाणिज्य से वुड्ढे और बालक [तक] कोई नही बचे है ।"

(३६४)

मास चारि चलि बाट 'खुटाई'। हरदी पाटन उतरा जाई।
पाटन नगर 'पाइ' औधारा। दीख धौरहरु 'ईगुर' ढारा।
सुरिजन बस्तर साजि 'फिराए'। नरियर 'गूवा' थार 'भराए'।
लौग खिजूर चिरौजी 'लिए'। सुरिजन भेंट लोर कहु 'गए'।
पूछ्त गवने 'लोर दुवारा'। 'परतिहार' 'भर बइठे बारा'।
बात 'जनावहु बीर कह' परदेसी 'एकु आएउ'।
सोवत लोरु धौराहर 'पवरियइ जाइ जगाएउ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३००, बी० १२६२-१२६४।

शीर्षक—मै० रसीदन सुरजन दर शहर पाटन व खुद रफ्तन दर मुलाकात लोरिक।

भो० मे पूर्ववर्ती कडवक के बाद तर्क है 'मास चारि', जो इसी कडवक का है।

पाठान्तर—(१) १ बी० घटाई। (२) १ बी० पाउ। २ बी० हीगरु। (३) १ बी० फिरावा। २ बी० गोवा (गूवा—फा०)। ३ बी० भरावा। (४) १ बी० लई। २ बी० दई। (५) १ बी० लोरिक बारू। २ मै० प्रतीहार। ३ बी० भरि वैठ दुवारू। (६) १ बी० जनावोहु जाइ बीर। २ बी० यकु आयो। (७) १ बी० पौरियेहि आई जगायो।

अर्थ—(१) चार मास चल कर (चलते रहने पर) बाट समाप्त हुई और [सुरजन] हरदी पाटन जा उतरा। (२) पाटन नगर मे उसने पैर रक्खा और उसे ईंगुर के वर्ण का धवलगृह (प्रासाद) दीख पडा। (३) सुरजन ने वस्त्र सज कर वदले (पहने), नारियल और गुवा (मुपारी) से थाल भराए। (४) लवग, खजूर और चिरौजी लिए हुए सुरजन लोरिक से भेंट करने को गया। (५) पूछता-पूछता वह लोरिक के द्वार पर गया (पहुचा)। द्वार पर प्रतीहार और भट बैठे हुए थे। (६) [उसने कहा,] "वीर [लोरिक] को यह बात मूचित करो कि एक परदेशी आया हुआ है।" (७) लोरिक धवलगृह मे सो रहा था, उसे पौरिए ने जा कर जगाया।

(३६५)

'खिन इक' नैन नीद 'मह आए'। 'कहतइ' 'पौरिया' आइ जगाए।
'वाभनु एक पवरि हइ' ठाढा। तिलकु दुवादसु 'मसतगि काढा'।

'पोथी काखि' हाथ बइसाखी । अन(न)त 'कानि दुहु 'भेजइ' राखी ।
'जनेऊ काधि' 'तरि' धौति कखाई । 'अउर धौति माथइ पहिराई' ।
रिगु 'जजु' साम अथरबनु पढा । आइ 'परतरि' 'रउरिइ' चढा ।
पडितु पढा 'बिध(द)वासिक 'पोथा बाच पुरान ।
बिरह भाख 'पइ' भाखइ' दूसर 'भाख' न जान ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३०१, बी० १२६५-१२६७ ।

शीषक—मै० वेदार करदन दरवान वर (?) लोरिक रा ।

पाठान्तर—(१) १ बी० तिल यक । २ बी० मै लाये । ३ बी० कतहि । ४. मै० पौइया । (२) १ बी० बभनु देउ परोहितु । २ बी० मस्तकि गाढा । (३) १ बी० पतरी काप । २ बी० भीतरि । (४) १ बी० कधि जनेउ । २. मै० किर । ३ बी० और धोति माथै पहराई । (५) १. मै० जुग । २. बी० बरतर (परतर—फा०) । ३ बी० देहरि । (६) १ बी० सहदे परि । (७) १ बी० पै । २. बी० भाषै । ३ म० भखा ।

अर्थ—(१) एक क्षण [लोरिक के] नेत्र नीद मे आए थे कि [नायक के] कहते भर मे पौरियो ने आकर उसे जगा दिया । (२) [उन्होंने कहा,] "एक ब्राह्मण पौरी पर खडा है, जिसने मस्तक पर द्वादश तिलक काढ (बना) रखा है । (३) काख मे वह पोथी और हाथ मे वैसाखी लिए हुए है, वह [आपके] दोनो कानो के लिए अनत राखिया भेज रहा है । (४) [उसके] कधे पर जनेऊ है, [और उस के] तले कखाई (काखो से होती हुई रक्खी) धोती है, और उसने मस्तक पर भी धोती (धुली हुई पाग) पहन रक्खी है । (५) वह ऋक्, यजु, साम और अथर्वण (वेदो) को पढे हुए है और प्रान्तर मे आकर रावल मे चढ आया है । (६) वह पढा हुआ पडित है, विद्वान् है और पुराणो के पोथे वाचता (पढकर सुनाता है), (७) [किंतु] वह, विरह की भाषा ही भाप रहा है, दूसरी कोई भाषा [जैसे] वह जानता न हो ।"

(३६६)

लोरु 'वचन' सुनि पवरि सिधारा । 'पवरि' बरभनु आइ जुहारा ।
'वीरहि विप्र' 'आसिका(पा)' औधारी । दीरघ 'आइ तुम्ह रूप' मुरारी ।
'सुभ' कल्यान 'रिधि वहुलि' पाएहु । लखि 'औधारि' सहस ओरगाएहु ।
'अनत' कोरि जुग राजु 'करीजउ' । तुरी 'पीठि' खाडइ जसु 'लीजउ' ।
'रूपवत' धनवत सुलक्खिन । सिरीवत जजमान 'विचक्खिन' ।

असि 'कइ बहुतइ आसी(सि)सा' वीर लोरिकहि' दीन्ह ।
'फुनि' पटरइ 'चढि बैठेउ' सुरिजन 'परति(पतरि)' हाथ 'कइ' लीन्ह ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र ३०२, वी० १२६८-१२७० ।

शीर्षक—मै० वेरून आमदन लोरिक व मुलाकात करदन वा सुरजन ।

पाठान्तर—(१) १ वी० वीर । २ वी० पौरि । (२) १ वी० विरह विपरि । २ मै० सुनत । ३ वी० आय तुम्हारौ । (३) १. वी० मै० सिधि । २ वी० वहुत रिधि, मै० वुधि वहुलि । ३ वी० अधार । (४) १ वी० अन । २ वी० करीजा । ३ वी० पूठि । ४ वी० लीजा । (५) १ वी० पुत्रवत । २ वी० विचिषिन । (६) १ वी० कै पढी आसिका । २ वी० लोर कहु । (७) १ मै० पुनि । २ वी० चरि बैठा । ३ मै० पोथि । ४ वी० कर ।

अर्थ—(१) लोर यह वचन सुनकर पौरी पर गया, तो पौरी पर ब्राह्मण ने आ कर जुहार की । (२) [तदनतर] उस विप्र ने वीर [लोरिक] को आशीर्वाद प्रस्तुत किया, "हे रूप-मुरारी, तुम्हारी आयु दीर्घ हो ! (३) तुम वहुतेरे शुभ, कल्याण तथा ऋद्धिया प्राप्त करो और देख तथा अवधार कर सहस्रो को सेवक (अनुचर) वनाओ ! (४) अनत कोटि युगो तक तुम राज्य करो और घोडेकी पीठ पर [सवारी करते हुए] खड्ग से यश लो ! (५) तुम रूपवान्, धनवान् और सुलक्षण हो, तुम श्रीमान, यजमान (यज्ञ करने वाले—पुण्यात्मा) और विचक्षण हो !" (६) इस प्रकार करके उसने वीर लोरिक को वहुतेरे आशीर्वाद दिए । (७) तदनतर सुरजन फलक (पीढे) पर चढ कर वैठा, और उसने [लोरिक की] जन्म-पत्री को हाथ मे कर (ले) लिया ।

(३६७)

भेट 'आपि' 'फुनि परति (पतरि) पसारी' ।
मेख रासि तुम्ह रूप मुरारी ।
मेख 'बिरिख अउ' मिथुन 'भनीजइ' । करक सिघ कन्या 'जो गनीजइ' ।
'तुला व्रिचिक' 'धनु आइ वुलावइ' । मकर कुभ 'गुन बैन सुनावइ' ।
'मेप चद्र' जनम 'घरि' आवा । 'तिसरे' घरि सूरिजु दिखरावा ।
'सतए' मगरु आइ 'अवासू' । 'नवए घरइ' बिहपै 'परगासू' ।
चारि 'नखत' तुम्ह 'दाहिन' गिनि जि जोइसी देख ।
मगरु 'वुद्ध' बिरसपति 'जनमै(म)हि 'चद्र' विसेख ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र ३०३, बी० १२७१-१२७३ ।

शीर्षक—मै० दीदने सुरजन तालअ लोरिक व तासीरे सितारगान शाद व नहस ।

पाठान्तर—(१) १ बी० दीन्ह । २ मै० मे अस्पप्ट है । (२) १ बी० बृष औ । २ बी० कहीजै । ३ बी० जु भनीजै । (३) १ बी० तुल बृश्चिक । २ बी० धन गुन अरथावै । ३ बी० औ मीन सुहावै । (४) १ बी० मेषहि चदु । २ बी० भरि । ३ बी० तिसरै । (५) १ बी० सातवै । २ बी० अवासा । ३ बी० नवमै घरि । ४ बी० परगासा । (६) १. बी० गरह । २ बी० दाहिनै । (७) १ बी० सूरु । २ मै० जनम । ३ बी० चदु ।

अर्थ—(१) भेट अर्पित कर तदनतर ब्राह्मण ने जन्म-पत्री पसारी [और कहा,] "हे रूपमुरारी, तुम मेष राशि के हो । (२) [राशिया] मेप, वृष और मिथुन कही जाती है और कर्क, सिंह और कन्या गिनी जाती है । (३) तुला, वृश्चिक तथा धनु आयु बुलाती (बतलाती) है और मकर तथा कुभ गुणो के वचन सुनाती हैं । (४) मेष का होकर चन्द्र जन्म के घर मे आया है और तीसरे घर मे सूर्य दिखलाई पड रहा है । (५) सप्तम मे मगल आवास मे आया हुआ है और नवम घर मे बृहस्पति का प्रकाश है । (६) चार नक्षत्र तुम्हारे दाहिने है, जिन्हे ज्योतिषी गिन कर देख रहा है (७) मगल, बुध, बृहस्पति और जन्म मे चन्द्र का वैशिष्ट्य है ।"

(३६८)

'चउथे बुध सुख(क्ख)किछु आवइ'। 'बिहफइ सउ जिमि' राजु 'करावइ' ।
दुसरे 'मगर पाज परवानइ' । परिहरि पापु धरम 'पथि' 'आनइ' ।
छठे 'सनीचरु' 'करै(रइ)' मिरावा । 'गइ' लखिमी फुनि 'हाथहि' आवा ।
राहु केतु बहु 'दिवस डोलावहि' । 'मिलइ कुटुबि घर देस ते' आवहि ।
'जउ न होइ अस जीउ उतारउ' । 'गुनित टूट तउ' पोथा 'फारउ' ।
'खाटि निवू(वौ)री रोमथा' दाख बेलि फर 'खाब' ।
'पाप कुड सब तजि' लोरिक गगा 'सुद्ध नहाब' ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र ३०४।१, बी० १२७४-१२७६ ।

शीर्षक—मै० अैज़न लहू ।

पाठान्तर—(१) १ बी० औ चौथर जो सूरिजु आवै । २ बी० विहई सो जमु । ३ बी० करावै । (२) १ बी० सुकरु वाच परवानै । २. मै०

कह। ३ बी० आनै। (३) १. बी० सनीसरु। २ मैं० दीख। ३ वी० गौ। ४ बी० हाथहु। (४) १ वी० द्यौसु डुलावहिं। २ वी० मिलै कुटबु घरि दस वै। (५) १ बी० जौ न होइ तौ जनेउ तोरौ। २ बी० गिनत चूक तौ। ३ वी० वोरौं। (६) १ मैं० गग नीर तुम्ह अन्हउब (तुल० दोहे का दूसरा चरण)। ५ वी० षाई। (७) १ बी० पति परजा सभ (दे० अगला कडवक)। २ वी० सुध होइ न्हाई।

अर्थ—(१) "चौथे स्थान पर बुध है, इसलिए तुम्हे कुछ सुख आएगा (मिलेगा), बृहस्पति जैसे तुमसे राज्य कराएगा। (२) दूसरे स्थान पर जो मगल है, वह तुम्हारा पाज (पर्याय—अधिकार-विशेष) प्रमाणित करेगा और पाप का परित्याग कर (करा कर) तुम्हे धर्म-पथ पर लाएगा। (३) छठे स्थान पर जो शनि है, वह मिलाप कराता है, [उसका प्रभाव यह होगा कि] गई हुई लक्ष्मी पुन तुम्हारे हाथ आएगी। (४) राहु और केतु बहुत दिनो तक घुमाते रहते हैं और [इनके कारण] कुटुबीजन जो घर तथा देश मे आते है, वे मिलते है। (५) ऐसा न हो, तो मैं अपनी जीवा (अपना जनेऊ) उतार दू, और यदि मेरा ज्योतिष का विचार त्रुटिपूर्ण हो तो मै [अपनी] पोथी फाड डालू। (६) तुमने खट्टी (कडवी) निबौरी (पर-स्त्री) को रोमथा है, किन्तु तुम पुन द्राक्षा-वल्ली (विवाहिता स्त्री) के फलो को खाओगे (भोगोगे)। (७) और पापकुड (पर-नारी के सग) को सम्पूर्ण रूप से छोड कर, ऐ लोरिक, तुम शुद्ध गगा का स्नान (विवाहिता का भोग) करोगे।"

(३६९)

'उत्तिम' 'समउ' 'सब सुख घर जाइहु'। पति परजा 'सब दूध अन्हाइहु'।
राजा चद्रु पाटि बडसारा। 'मति' बिरसपति 'सुरिजु उभारा'।
'बिसवा पदरह' धरमु 'जनावइ'। पापु पाच 'बाई दिसि' 'पावइ'।
अनु चौदह 'तृणु(नु)' बिसवा साता। 'बाव' सीउ बिसवा नौ 'बा(पा?)ता'।
'सोरह बिसवा' बिरिधि बखानिय। 'बारह बिसवा मोर तोर जानिय'।

राजपाटु तुम्ह 'गोवरा आहइ' मैना केर 'गोसाइ'।
'चादा' गगनि 'चढाएहु' मैना धरती काइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३०४।२, भो० पत्र ६४ (नवीन), बी० १२७७-१२७९।

शीर्षक—मैं० कैफियते सितारगान गोयद।

भो० तालअ ए सअद नमूदन सुरजन अज़ रफ्तन लोरिक वतन कदीम खुशूद। खुशवद।

पाठान्तर—(१) १. भो० अवौ। २ बी० मास। ३ भो० सब ही सुख जाइहु, बी० भला रहसा जाई। ४ बी० हन्हाई। (२) १ बी० मत्रि। २ बी० कही बिचारा। (३) १. मैं० पदरह बिसवा। २ भो० जगावइ, बी० भनीजै। ३ बी० बिसवा जु। ४ बी० गनीजै, भो० पावा। (४) १ भो० रतन सु। २ बी० बाइ। ३ बी० वाताह। मैं० मे पक्ति है—सतरह बिसवा कहउ तउ मानिय बिसवा दोय पाप गएउ जानिय (किंतु 'पाप' ऊपर आ चुका है)। (५) १. मैं० अन बिसवा दस, बी० सोराह विसुवा। २ बी० बिरधि बखानौ। ३ भो० खर बिसवा दुहुँ सेवन जानिय, बी० विसुवा दसे तेज फनि जानौ। (६) १ बी० गोवर रहै, भो० लोरिक हइ। २ भो० मै केर, बी० मै केर कहा। (७) १ मैं० चादहि। २ बी० चरायहु। ३ भो० नाही गाइ, बी० उतरी काइ।

अर्थ—(१) उत्तम समय मे समस्त सुखपूर्वक तुम घर जाओगे और [तुम] पति (स्वामी) और [तुम्हारी] प्रजा—सभी दूध से स्नान करोगे। (२) [नक्षत्रो का] राजा चद्र सिंहासन पर विठाता है, और सूर्य बृहस्पति को मत्री के रूप मे उभाडता (उठाता—लाता) है। (३) [तुम्हारे राज्य मे] पन्द्रह बिस्वा (२० मे से १५ भाग) धर्म ज्ञात होगा और पाच बिस्वा (२० मे से ५ भाग) पाप बाई दिशा (उपेक्षा) प्राप्त करेगा। (४) अन्न चौदह बिस्वा तथा तृण सात बिस्वा हुए, वात और शीत को नौ बिस्वे प्राप्त हुए। (५) पुन दस बिस्वा (२० मे से १० भाग) वृद्धि कहिए और बारह बिस्वा (२० मे से १२ भाग) मेरा-तेरा (राग-द्वेष) समझिए। (६) तुम्हारा राज-पाट गोवर मे [लिखा हुआ] है, और तुम मैना के स्वामी [लिखे हुए] हो, (७) फिर चाद (चादा) को तुमने आकाश पर क्यो चढा रक्खा और मैना को धरती पर रख छोडा है ?"

(३७०)

मैना सबदु 'बिपर' जु सुनावा। 'सुना' 'लोर' हिए गहबरि आवा।
'चाद बात' बाभन कत पाएहु। अउ 'मैना कइ' आइ सुनाएहु।
कहु पडित 'फिर कित हुत' आवा। 'केइ' 'तू' हरदी नगर पठावा।
मैना नाउ 'कहा' 'तू' मुना। 'अउ' चादा 'कर' कहुवा 'गुना'।
तू न 'होसि' बाभन परदेसी। 'देखउ' लखिन आहि सहदेसी।

खेह पाय तोर 'झारि' 'बरभन' अपने सीस 'चढावउ'।
माइ भाइ 'मैना कर' कुसर खेम 'जउ पावउ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३०५।१, भो० पत्र ६१ (नवीन), बी० १२८०-१२८२।

शीर्षक—मैं० अँजन लहू पुरसीदन लोरिक।

भो० शुनीदन लोरिक हाल वाकअ मैना व गिरिय करदन वा-फिराक वराय मैना।

पाठान्तर—(१) १ मैं० वीर, बी० विपरि। २ मैं० सुनतइ। ३ बी० लोरि। (२) १ मैं० मैना वात। २ मैं० अउ चादा कह, बी० औ मैना की। (३) १ बी० तूं कत हुते। २ बी० के। ३ मैं० तुम्ह। (४) १ भो० कहा। २ बी० तैं, मैं० तुम्हू। ३ बी० औ। ४ मैं० खर। ५ बी० मना। (५) १ मैं० होइ, बी० होहि। २ बी० देष्यो। (६) १ बी० झारौं, भो० मे नही है। २ भो० वाभन, बी० वभन। ३ भो० चढावहु, बी० चराऊ। (७) १ बी० औ माजरि मैना। २ भो० जउ पावहु, बी० जौ पाऊ।

अर्थ—(१) विप्र ने जब मैना का शब्द (नाम) सुनाया, तो उसे सुनते ही लोर के हृदय मे विह्वलता आ गई। (२) [उसने पूछा,] "चादा की वार्ता को, ऐ ब्राह्मण, -तुमने कहा पाया, और मैना [के नाम] को कहा आकर सुनाया है ? (३) ऐ पडित, तदनतर तुम कहो, तुम कहा से आए हो और तुम्हे किसने हरदी [पाटन] नगर भेजा है। (४) मैना का नाम तुमने कहा सुना है, और चादा का कहा गुना है ? (५) तुम, ऐ ब्राह्मण, परदेशी नही हो, तुम्हारे लक्षण देख रहा हू कि तुम सहदेशी (स्वदेशीय) हो। (६) ऐ ब्राह्मण, तुम्हारे पैर की धूल झाड कर अपने सिर पर मै चढाऊगा, (७) यदि [तुमसे] माता, भाई और मैना का क्षेम-कुशल पाऊगा।"

(३७१)

'कुवरू' भाइ 'तोरि' महतारी। लोगु 'कुटुबु घर' मैना 'नारी'।
तोरी चित 'रइनि दिनु आहहि'। नैन 'पसारि तोहि' मारग 'चाहहिं'।
अन पानी चखि देखि न 'भावइ'। 'जागहिं रइनि' दिनु नीद न 'आवइ'।
'पथि बटाऊ' पूछहिं लोरा। 'कोउ न कहइ सु कूसर' तोरा।
सूकि सो मैना 'पाजरि' भई। 'झार बिरह' अधिकु जरि गई।
'डरियहि ताहि निसूगि लोर सुनि' जो दइयहि न 'डराइ'।
तजि 'कइ' 'बार बियाहा आपन' 'लीन्हे फिरै(रइ)' पराइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३०५।२, वी० १२८३-१२८५।

भो० मे पिछले कडवक के वाद तर्क है 'कुवरू', जो इसी कडवक का है।

शीर्षक—मैं० गुफ्तने सुरजन वख़ैरे सलाहे हमा अजीजान।

पाठान्तर—(१) १ वी० कवरू। २ बी० तोर। ३ बी० कुटबु घरि। ४ वी० [ना] री। (२) १ वी० रैनि दिन अहही। २ वी० पसारैंहि। ३. वी० चहही। (३) १. वी० भावै। २ वी० जागैंहि निसि। ३ बी० आवैं। (४) १ वी० देहि वधाई औ। २ वी० कोई कहै न कोसर (कूसर—फा०)। (५) १ मैं० मैना मैना। २ वी० प्यजरु। ३ बी० तोरी झार। (६) १ वी० तिहि रु निमूगे डरिये लोरा। २ वी० पत्याई। (७) १ वी० तजि। २ वी० वार वियाही अपनी। ३ मैं० लीन्हा पुरुख, वी० लीन्हौ फिरैंहि।

अर्थ—(१) [ब्राह्मण ने कहा,] "कुवरू, जो [तेरा] भाई है, तेरी माता, [तेरे] लोग, कुटुवी और घर [वाले] तथा [तेरी] स्त्री मैना (२) तेरी ही चिन्ता मे दिन-रात रहते है, और नेत्र पसार कर तेरा मार्ग देखते हैं। (३) अन्न तथा पानी आखो से दिखने पर उन्हे नही भाते है, रात मे वे जागते हैं तथा दिन मे उन्हे नीद नही आती है। (४) वे पथिको और राहगीरो से, ऐ लोरिक, पूछते है, किन्तु कोई तेरा कुशल नही वताता है। (५) सूख कर मैना पंजर हो गई है और विरह की ज्वाला से [और] अधिक जल गई है। (६) तुम्हे उससे डरना चाहिए जो नि शूक (निष्ठुर) हो, और ऐ लोर, सुनो, जो दैव से न डरती हो, (७) और जो अपने वचपन के विवाहित [पुरुप] को छोड कर अपर पुरुष को लिए फिरती हो।"

(३७२)

'हउ रे बनिजु' 'गोवरा' 'लइ आएउ'। 'घिरित' 'लेइकह कुवरू बुलाएउ'।
'लइ गए' मदिर जहा 'भडसारा'। 'अउ तौलइ किय' 'वया' हकारा।
'पूछिसि' कवन 'बनिजु' तुम्ह आना। कवन 'देस' 'तुम्ह' 'कीत' पयाना।
'कहेउ' देव मइ 'गोवरु छाववि'। 'गए' मास 'दुइ' 'पुरुब चलावबि'।
कहेउं 'सवदु मइ' आपनु ठाऊ। 'गोवर क' वाभनु सुरिजनु नाऊ।
'मोहिको कहा मुरजन हरदी सदेस लइ जाइ'।
जननि तोरि औ 'सावरि मैना' 'परी दुवइ लइ पाइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३०६।१, भो० पत्र ४२ (नवीन), वी० १२८६-१२८८।

इस कडवक के नीचे भो० मे अगले कडवक का तर्क है 'जाउ तुम्ह वरु'।

शीर्षक—मै० कैफियत आवरदन बनिज गुफ्तने सुरजन पेश लोरिक।

भो० कैफियत खेलखान लोरिक गुफ्तन पेश लोरिक पैगाम वजानिव मैना।

पाठान्तर—(१) १ वी० हौ रु वनजु। २ भो० गोवर। ३ वी० लै आये। ४ वी० घिरत। ५ मै० लेन को कुवरू बुलाएउ, वी० लिये कौ कवरू बुलाये। (२) १ वी० ले गयो। २ मै० भो० भटसारा। ३ वी० औ तौलौ काहु। ३ वी० वियाहि। (३) १ वी० पूछसि। २ वी० वनजु। ३ वी० राठ। ४ मै० हुत। ५ वी० दीत। (४) १ मै० कहा, वी० कह्यो। २ भो० गोवरु जावउ, मै० गोवरा आएउ। ३ मै० गए, वी० गयो। ४ वी० दस। ५ मै० भो० पुरुव चलावउ, वी० पूर चलावबि। (५) १. मै० लोर सभ, भो० सवद अउ। २ भो० गोवर क, मै० वी० गोवर का। (६) १ वी० इतनौ सुनि कै उनि दुष कीन्हौ विरह आगि न बुझाइ, भो० कुवरू राषहि जौन मिस अहिरइ दई न जाइ। (७) १ मै० सावरी, वी० सावर। २ भो० पाय परी लइ धाइ, वी० परी पाय लै आइ।

अर्थ—(१) "मैं गोवर मे वाणिज्य ले आया, और घी लेने को मुझे कुवरू ने बुलाया। (२) वह मुझे [तुम्हारे] मदिर मे वहा ले गया जहा भाडशाला थी और तौलने के लिए उसने एक वया (तौलने वाले) को बुलाया। (३) उसने पूछा, 'तुम कौन सा वाणिज्य लाए हो, और किस देश को तुमने प्रयाण किया है?' (४) मैंने कहा, 'हे देव, मैं अभी तो गोवर मे ही रहूगा, फिर दो मास जाने (वीतने) पर पूर्व की ओर प्रस्थान करूगा।' (५) हे लोर, मैंने अपने स्थान का शव्द (नाम) वताया और कहा, 'मै गोवर का ब्राह्मण हू और मेरा नाम सुरजन है।' (६) उन्होने मुझसे कहा, 'हे सुरजन, तू हरदी [पाटन] को [हमारा] सन्देश ले जा।' (७) [तदनतर] तेरी जननी और सावली—मैना दोनो ही मेरे पैरो को पकड कर [उन पर] गिर पडी।'

(३७३)

'जउ तुम्ह पुरुबहि बनिजु' चलावबि। मैना 'कह मइ गोहन' आवबि।
'छाड' न आचरु गहु कइ रही'। 'दुख की(कइ) बूडी 'बिरह 'कइ' दही।
'खोलिनि' आचरु आइ छुडावा। 'कहिसु सदेसु जेहि पिउ' आवा।
'मोहि देखत लइ बइठि' कटारी। अस 'कहि आजु मरउ' कठ सारी।
'खोलिनि' धरि धरि 'करतिइ' अहा। मैना 'दीखि' मरन पइ चहा।

'बनिजु' छाड़ि 'मइं लादेउ' मैना केरु सदेसु ।
बेगि आजु चलु गोवर 'लोर तजहु' परदेस ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३०६।२, भो० पत्र ४३ (नवीन), वी० १२८६-१२९१ ।

शीर्षक—मैं० · कैफियत लहू ।

भो० कैफियत मैना गुपतन सुरजन बाफिराक हाल बाज नमूदन ।

पाठान्तर—(१) १ बी० जब तेहि पूरबि बनजु । २ बी० मैना गौहनि तब तेहि । (२) १ बी० छाडि । २ मैं० कर गहि रही, बी० गहु करिही । ३ मैं० अति दुख पूरि, भो० दुख कइ बूढि । ४ बी० की । (३) १ भो० खोइलिन, बी० षौलनि । २ मैं० कहु सदेसु लोर जेहि, बी० कहि सदेसु जस जिहि पिउ । (४) १ बी० मैं देषत लै पेट । २ बी० कहि आजु मरौ । (५) १ भो० खोइलिन, बी० पौलनि । २ मैं० धर धरि, बी० धर धर, भो० धरहरि । ३ मैं० करति, बी० करती । ४ बी० देषि । ५ भो० मरइ पै । (६) १ बी० बनजु । २ बी० मैं लाद्यौ । (७) १ मैं० लोरिक तजि, बी० लोर तजौहु ।

अर्थ—(१) "मैना ने कहा, 'यदि तुम वाणिज्य पूर्व की ओर चलाओगे, तो मै तुम्हारे साथ आऊगी (चलूगी) ।' (२) वह [मेरा] अचल नही छोड रही थी, और हठ कर रही थी वह दुख [के जल मे] डूबी हुई और विरह [की अग्नि मे] दग्ध थी । (३) खोलिन ने आकर [मेरा] अचल छुडाया [तो मैना ने कहा,] '[मेरा] सन्देश इस प्रकार कहना जिससे मेरा प्रिय आ जाए ।' (४) मेरे देखते ही वह कटारी लेकर बैठ गई और ऐसा कहने लगी, 'आज मैं गला काटकर मरूगी ।' (५) खोलिन धर-पकड करती रही, किन्तु मैना दीखी कि वह, हो न हो, मरना चाहती थी । (६) [अतः] वाणिज्य छोडकर मैंने मैना का सन्देश लाद लिया । (७) आज ही तू शीघ्र गोवर चल, और ऐ लोरिक, तू परदेश को त्याग ।"

(३७४)

'मइल' चीरु सिर तेलु न 'जानइ' । बहु दुख लोरिक तोर 'बखानइ' ।
'कहत' सदेस नैन 'झर पानी' । 'बरिसहिं' मेघ जइस खरंवानी ।
'बुडि बुडि मरइ' थाह नहि 'पावा' । करिया 'बिहुनि' तीरि को 'लावा' ।
मैना रूप देखि का 'देखउ' । अउर रूप 'सयसारि न पेखउ' ।
सीप एक 'कन' 'करइ' अहारू । किहिं परि जियइ जान करतारू

'रवनि ठवनि' गज 'गवनी' मैना बिधि 'असि' औतारी ।
'नैन न सूझहि धीर मुचहि लोरिक नित हिय उर पजरइ नारी' ॥

सन्दर्भ—मैं० ३०७।१, बी० १२९२-१२९४ ।

भो० मे पिछले कडवक के बाद तर्क है 'चीर मइल', जो इसी का है ।

शीर्षक—मैं कैफियत शिकस्तगी हाले मैंना गोयद ।

पाठान्तर—(१) १ बी० मैल । २ बी० जानै । ३ बी० वषानै । (२) १ बी० कहसि । २ बी० भरि पानी । ३ बी० वरसैंहि । (३) १ बी० डवि डवि मरैंहि । २ बी० पावैंहि । ३ बी० नही । ४ बी० लावहि । (४) १ बी० देष्यौ । २ बी० सैंसारि न लेष्यौ । (५) १. बी० दिन । २ बी० करै । (६) १ मैं० रूपवतिहि (?) । २ बी० गामिनि । ३ बी० मे नही है । (७) १ बी० तिह चिताह न मिरवोहु मेघहि मैन विसारि ।

अर्थ—(१) "[वह] मैला चीर [पहनती है] और सिर मे तेल [देना] नही जानती है, वह, ऐ लोरिक, तेरा वहुतेरा [विरह-] दुख वखानती (कहती) है । (२) सदेश कहते समय उसके नेत्रो से आसू झडने लगे, और वे इस प्रकार झड रहे थे जैसे मेघ प्रखर वर्ण से वरस रहे हो । (३) वह [उस अश्रु-सागर मे] डूब-डूब कर मर रही थी, किन्तु थाह नही पा रही थी, वह कह रही थी, 'करिया (पतवार पकड़ने वाले) के विना मुझे पार कौन लगाए ?' (४) मैना के रूप को देखकर मैं क्या देखू ? मैं ससार मे [उसके रूप जैसा] अपर रूप नही देख रहा हू । (५) वह केवल एक सीपी कण (नाज) का आहार करती है; वह किस प्रकार से जीती है, यह सृष्टिकर्त्ता ही जानता है । (६) वह रमणी, ठवनि [वाली] और गज-गामिनी है, मैना को विधाता ने ऐसा अवतरित किया है । (७) ऐ लोरिक, उसके नेत्रो से सूझता नही है, वह धीरज छोडती रहती है, और नित्य ही वह नारी अपने हृदय-उर मे प्रज्वलित होती रहती है ।"

(३७५)

सुनि सताप मैना कर रोवा । लोरिक 'हिए कइ' कसमर धोवा ।
अब मैना बिनु 'रही(हा?)' न जाई । देहि पख बिधि जाउ उडाई ।
'मदिर' जाइ मैना मुख 'देखउ' । 'बिनु मुख देखे' 'मरन पइ' लेखउ ।
दिवसु 'गएउ' निसि आइ तुलानी । बाभन बात न करति 'खुटानी' ।
सुरिजन 'जाइ' 'सपरि कइ आवहु' । 'लइ जेवन आपना' 'करावहु' ।

दाम लाख दुइ 'लेहुं बरभन' बरद 'सहस्स भरावहु' ।
मोर गवनु 'दिन' दुसरे तुम्ह 'फुनि' 'गोहनि' 'आवहु' ॥

सन्दर्भ—मैं० ३०७।२, भो० पत्र १६ (नवीन), बी० १२६५-१२६७ ।

शीर्षक—मैं० ज़ारी करदने लोरिक अज शुनीदने दुश्वारी मैना ।

भो० शुनीदन लोरिक हाल वेहालिए मैना व गिरिय करदन व फिराके हाल वाज़ नमूदन ।

पाठान्तर—(१) १ बी० हीय कैं । (२) १ बी० रह्यो । (३) १ मैं० जउ न । २ बी० देपौ । ३ भो० बिनु मुख जा जीवन, मैं० तउ यह जीवन । ४ भौ० मरन कै, बी० जीवनु न । ५ बी० लेपौ । (४) १ बी० गया । २ बी० घटानी (खुटानी—फा०) । (५) १ बी० आइ । २ बी० सपरि कै आवोहु, मैं० सीस अन्हवावहु । २ बी० कै जीवनु औ पानि, मैं० लइ अपुना कह जेवन । ३ बी० करावोहु । (६) १ मैं० देउ हउ, बी० लेहु । २ बी० सहस इक जाइ भरावोहु । (७) १ भो० मे नही है । २ बी० दूसरे । ३ भो० पुनि । ४. बी० गौहनि । ५ बी० आइ ।

अर्थ—(१) मैना का सताप सुनकर लोरिक रो पडा और उसने [आसुओ से] हृदय की कालिमा धो डाली । (२) [उसने कहा,] "अब मैना के बिना रहा नही जा रहा है, ऐ विधाता, तू पख दे कि मैं उडकर [उसके पास] चला जाऊ, (३) और मैं घर जाकर मैना का मुख देखू, बिना [उसका] मुख देखे, हो न हो, मैं [अपना] मरण समझ रहा हू ।" (४) दिन गया और रात्रि आ पहुची, किन्तु ब्राह्मण के द्वारा कही जाती हुई वात न समाप्त हुई । (५) [तव लोरिक ने कहा,], "ऐ सुरजन, तुम जाओ, स्नान करके आओ और अपने को ले जाकर भोजन कराओ । (६) हे ब्राह्मण, तुम [मुझसे] दो लाख दाम लो और तुम एक सहस्र बरदिया (वेलो का बोझ) भरा लो, (७) मेरा जाना दूसरे ही दिन होगा, और तव तुम मेरे साथ आओगे (चलोगे) ।"

(३७६)

मैना बात 'विपर जउ' कही । 'सुनतहि' चाद 'राहु परि' गही ।
'पूनिउ' 'जइस मुख' 'दीपत जो' अहा । गई 'सो' जोति 'गहन' होइ रहा ।
'अउ' 'सो' सुरिजु 'जनम' घरि 'जाइहि' ।
सिघ रासि 'लइ' गगनि 'चढाइहि' ।
'वहुरा' लोरु मदिर महि आवा । 'कहा' चाद 'पिउ भया' परावा ।

उट्ठि पानि लइ 'पाउ पखारहु'।
तुम्ह 'जे(जे)वउ' अउ बिपरु 'हकारहु'।
'कवनिउ भाति न 'बइसइ' 'सधू आहि गरास'।
'लोरिक' 'जेवन जेवहि' चादइ किय उसवास'॥

सन्दर्भ—मैं०३०८, भो० पत्र ५५ (नवीन), बी० १२९८-१३००।

शीर्षक—मैं० बाज आमदन लोरिक व खान व मुतफिकर गश्तने चादा अज अखबारे मैना।

भो० कैफियते मैना गुफ्तन लोरिक बा चादा ऊ गमगीन शुदन चादा अज रफ्तन लोरिक।

पाठान्तर—(१) १ मैं० जउ बाभन, बी० बीर (विपर—फा०) जौ। २ भो० सुनइ, बी० सुनताह। ३ मैं० राहु जनु, बी० राह पर।(२) १ बी० पून्यो। २ भो० बी० मुख निसि। ३ बी० दीप जु, मैं० दीपत। ४ बी० सु। ५ भो० कार, बी० षीन। (३) १ मैं० अव, बी० अवहि। २ बी० सु। ३ मैं० सूरिजु (सुरिजु—ना०)। ४ मैं० अपने। ५ बी० जाई। ६ बी० लै। ७ बी० चराई। (४) १ मैं० वहुरि। २ भो० कहेउ। ३ मैं० चित भएउ। (५) १ मैं० पाइ, बी० पाव। २ बी० पषारौहु। ३ भो० जेवहु, बी० जीवोहु। ४ बी० हकारहु। (६) १ मैं० कवन, बी० कौनहि। २ भो० दीसइ, बी० वैसई। ३ भो० सज्जन हू कर आस, बी० लोरिक किछू उदास। (७) १ मैं० लोर, बी० लोरहि। २. भो० जेवन सभाखइ, बी० जीवनु सनेहा। ३ भो० चादा परा उपास, बी० चादहि कियो उपास।

अर्थ—(१) जब ब्राह्मण ने मैना की वार्त्ता कही, उसे सुनते ही चाद राहु की भाति ग्रस्त हो गई। (२) उसका जो मुख पूनो के चन्द्र जैसा दीप्त था, [उसकी] वह ज्योति चली गई और [उसे] ग्रहण [जैसा] हो रहा। (३) [उसने अनुमान कर लिया कि] अव सूर्य (लोरिक) जन्म-गृह को जाएगा, और सिंह राशि को लेकर आकाश पर चढेगा। (४) लोरिक लौटा और मदिर (घर) मे आया, तो चादा ने [मन मे] कहा कि उसका प्रिय [जैसे] अन्य का हो गया था। (५) [उसने कहा,] "उठकर और पानी लेकर पैर धो लो, तुम स्वत जीमो और [जीमने के लिए] ब्राह्मण को बुला लो।" (६) वह [स्वय] किसी प्रकार नही बैठ रही थी, [मानो उसे] सधू (सुरजन) का ग्रास (ग्रहण) हुआ हो। (७) लोरिक जब कि जेवन जीम रहा था, चादा ने उपवास किया।

(३७७)

कारि राति दुख 'रोइ' विहाई। भा 'भिनुसारु' उठा 'रिरियाई'।
पाटन 'राउ' लोरु हकरावा। चला बीरु राजा पहि आवा।
'राउ' पूछ घरि 'कूसर आहा'। 'कहु लोरिक' कस पाएहु 'चाहा'।
'अनचीतउ' आइ एकु बनिजारा। माइ भाइ हउ 'घरहिं' हकारा।
'कहेसि आजु मोरे सगि आवहु'। 'मकु जियतइं मुख देखन पावहु'।
'तेहिं दिन हुत' 'अन पानी न भावै(वइ)' घरु बाहरु न सुहाई(इ)।
उठइ आगि सिर 'पा लहि' बिनु देखे न बुझाई(इ)॥

सन्दर्भ—मै० ३०६, बी० १३०१-१३०३।

शीर्षक—मै० . विदाअ करदने लोरिक बा राव छेतम।

पाठान्तर—(१) बी० गई। २ बी० भुनसारु। ३ बी० रवि आई। (२) १ बी० राय। (३) १ बी० राव। २ बी० कोसर (कूसर—फा०) अहा। ३ बी० कहहु लोर। ४. बी० चहा। (४) १. बी० अन जौ। २ बी० घरह। (५) १ बी० कहै लोरु अैसै घरि आयहु। २ बी० मुकौ जीवै मुषु देष्यो पायहु। (६) १ बी० तवतै मोहि। २. मै० अन पानी (७) १ बी० पाइ लहु।

अर्थ—(१) काली रात [लोरिक ने] दुःख मे रो-रोकर व्यतीत की और सवेरा हुआ तो वह रिरियाता हुआ उठा। (२) [हरदी] पाटन के राजा ने लोरिक को बुलवाया तो वह वीर चला और राजा के पास आया। (३) राजा ने पूछा, "घर पर कुशल तो है? कहो लोरिक, वहा के कैसे समाचार तुम्हे मिले हैं?" (४) [लोरिक ने उत्तर दिया,] "अचानक एक वनजारा आया, [उसके द्वारा] मुझे मेरी माता और भाई ने घर बुलाया है। (५) उसने कहा है, 'यदि तुम आज मेरे सग आ जाओ तो कदाचित् तुम [उनका] मुख उनके जीवित रहते हुए देखने को पा जाओ।' (६) उसी दिन से अन्न-पानी नही भा रहा है और घर-बाहर [कुछ] नही सुहा रहा है, (७) सिर से पैर तक आग उठती है और उन्हे देखे विना वुझ नही रही है।"

(३७८)

राइ घोर 'सै दुइ' पलनाए। पाइक 'सै दुइ साथ दिवाए'।
कापरु आनि लोर पहिरावा। समदि बीरु कछु 'साथ' दिवावा।
'समुद' वीर किछु साथ तुम्ह 'जाएहु'। गोवरु देखि पलटि घरि 'आएहु'।

'फादि' सुखासन चाद 'चलाई'। 'इहि पछिताउ कतइ हउ' आई।
बरद सहस 'एक सधू भरा'। पाटनु छाडि 'सीउ ऊतरा'।
'राहु' गरह जस गरही चादा 'मुख' अधियार।
'सिघ रासि रबि पालटौ(टउ)' सुरिजन के उपगार।।

सन्दर्भ—मैं० ३१०, बी० १३०४-१३०६।

शीर्षक—मैं० विदाअ करदन राव व मदद दिहानीदन बर लोरिक रा।

पाठान्तर—(१) १ बी० सैं दोइ मैं० सहस दोइ। २ बी० सौ दोइ सै बुलाये। (२) १ बी० दरबु। (३) १ बी० तौ लहि। २ बी० जायुहु। ३ बी० आयोहु। (४) १ बी० डाड। २. मैं० चलावा। ३ बी० वहु पछितानी कत हौं। (५) १ बी० दस सूठी भरे। २ बी० सुवनु उतरे। (६) १ बी० राह। २ बी० भई। (७) १ मैं० मीन रासि धनि बैरिनि।

अर्थ—(१) राजा ने दो सै घोडे पलानो से सज्जित कराए और साथ के लिए दो सै पदाति दिलाए। (२) कपडे लाकर (मगा कर) उसने लोरिक को पिन्हाए, और उस वीर को विदा करते हुए कुछ वीर उसको साथ [के लिए] दिलाए। (३) [उसने कहा,] "ऐ वीरो, प्रसन्नतापूर्वक तुम मे से कुछ इसके साथ [गोवर तक] जाना, और गोवर देख कर घर लौट आना।" (४) [लोरिक ने] सुखासन कसवा कर चादा को चलाया, उसे यह पछतावा था कि वह यहा क्यो आई। (५) एक सहस्र बैल सधू (सुरजन) ने भरे और पाटन छोड कर वह उसकी सीमा पर उतरा। (६) राहु के ग्रह से जैसे ग्रस्त हो, वैसा ही अधेरा (अधकारपूर्ण) चादा का मुख हो गया। (७) सुरजन के उपकार (उपाय) से सूर्य (लोरिक) सिह राशि (मैना) की ओर पलट गया है।"

(३७९)

लवटि चाद लोर 'सो' कहा। 'पलटि' नीरु 'गगा नइ' बहा।
'पिरिति' लाइ 'तइ मोसेउ' तोरी। 'जहवा टूटि फुनि तहवा' जोरी।
'तोहि' न खोरि हउ 'बुधि(द्धि)चुकानी'। 'कइ' सनेह हरदी तइ आनी।
तेहि दिन 'सवरु बाच जेहि' कीन्ही। अब 'हौ ठेलि कुवा' महि दीन्ही।
बाह 'देइ' 'धनि' नाव 'चढाई'। 'फुनि रु(रे) काटि गुन' गाग बहाई।
बहुरि लोर चलु हरदी 'रहहि बरिस दुइ' चारि।
बाचा 'पुरवहि आपनि साई' बिनवइ' दासि तुम्हारि।।

सन्दर्भ—मैं० ३११।१, बी० १३०७-१३०९।

शीर्षक—मैं० गुफ्तने चादा लोरिक रा।

पाठान्तर—(१) १ बी० सौ। २ बी० पलटा। ३ बी० गडानी। (२) १ बी० पिरति। २. बी० तै मोसौ। ३ बी० जहा टूट हुत तहा ही। (३) १ बी० तुहि। २ मैं० सरगि लुकानी। ३ बी० कै। (४) १ बी० सभरु वात जु। २ मैं० लै गोवर। (५) १ मैं० देहि। २ बी० ते। ३ बी० चराई। ४ मैं० अव गुन काटि। (६) १ बी० रहाह वरस दोई। (७) १ बी० पूरनि वाचे। २ बी० बिनवै।

अर्थ—(१) चादा ने लौट कर (पलट कर) लोरिक से कहा, "[समुद्र मे बह कर जाता हुआ] जल [अब] पलट कर [पुन] गगा नदी में बह [कर जा] रहा है। (२) मुझसे प्रीति लगा कर तूने उसे तोड दिया, और जहा से वह टूटी हुई थी, वहा तूने उसे पुन जोड दिया। (३) [किन्तु] इसमे तेरा दोप नही है, मै ही वुद्धि मे चूक गई थी जब तू स्नेह कर मुझे हरदी लाया। (४) तू उस दिन को स्मरण कर जिस दिन तूने [स्नेह के निर्वाह का] वचन किया (दिया) था, किन्तु अब तू ने मुझे कुए मे ढकेल दिया। (५) बाहे देकर तूने [इस] स्त्री को [जीवन की] नाव पर चढाया था, [किन्तु] पुन तूने [उसकी] नाव की रस्सी काट उसे गगा मे वहा (डाल) दिया। (६) ऐ लोरिक, तू हरदी लौट चल, वहा पर हम दो-चार वर्ष [और] रहे। (७) ऐ स्वामी, तू अपना वचन पूरा कर, तेरी दासी [तुझ से] यह विनय करती है।"

(३८०)

'हउ जानउ' राजा 'कइ' जाई। अपने हुते 'नहि होब तुराई'।
'अउ अस जानउ पुरुख कइ जाती। सेज न 'देखत एकउ' राती।
'देस देसतर तोहि सग' धाई। 'बनखड गौनेउ' थिर न रहाई।
'करिहु त सोइ जेहि होइ मेरावा'। 'तुम न खोरि हम चाहत पावा'।
'कुजा नातर' मोरे सग आवसि। 'जियहि लाइ धनि अपने रावसि'।
मगरु बुधु (द्धु) विरसपति 'सुकुरु सनीचर' 'काहु'।
'चाद' सुरिजु 'लइ अथवा' 'बारह घरहि उतिराहु'॥

सन्दर्भ—मैं० ३११।२, बी० १३१०-१३१२।

शीर्षक—मैं० जवाव दादने लोरिक बर चादा रा।

पाठान्तर—(१) १ बी० हौ जानौ। २ बी० की। ३ बी० न होत

पराई। (२) १ वी० हौं जानौं (तुल० प्रथम अर्द्धाली) मानसाह की। ३ वी० देण्यो येकैं। (३) १ वी० दोय सह करै येक कौ। २ वी० घर घर गमनी (गमनइ—फा०)। (४) १. वी० घरह सेव जिहि होय न मिरावा। २ वी० तिह न साथु मनसह कर भावा। (५) १ वी० हौ जानो। २ वी० जीभ (जियहि—फा०) लाई मोहि नषत दिपावसि। (६) १. वी० सुकरु सनीसरु। २ मैं० राहु। (७) १ वी० कैतु। २ वी० लै आथवा। ३. वी० वरहै घरह उतराहु।

अर्थ—(१) "ऐ राजकन्या", [लोरिक ने कहा,] "मै जानता हू, कि अपनी ओर से उतावली (जल्दी) न होगी, (२) और ऐसा (यह) [भी] जानता हू कि पुरुप की जाति एक भी रात को सेज नही देखती है। (३) तुम्हारे साथ देश-देशान्तर की दौड लगाकर मैं वनखड गया और स्थिर न रहा। (४) तुमने वही किया जिससे मिलाप होता, इसमे तुम्हारी [ओर से] कोई त्रुटि नही हुई और तुमने [भी] अपना चाहा हुआ प्राप्त किया। (५) अन्यथा तुम मेरे साथ कहा (क्यो) आती ? तुम अपने जी के लिए ही, हे स्त्री [मुझसे] रमण करती हो। (६) अव तुम मगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि [मे मे] किसी को पकड सकती हो, (७) [और] या तो तुम सूर्य (लोरिक) को लो, [और उसके साथ] वारह घरो (राशियो और ग्रहो) मे उतराओ।"

२५. मैनां-सतीत्व-परीक्षा खण्ड

(३८१)

सूरुज दिस्टि सिघ घर गई। मीन 'ठाउ हुत अठई' भई।
'सवन न करइ' चाद कर कहा। 'सग बइठ दुइ लाकर' रहा।
'पहर राति उठि कीन्ह' पयाना। 'दिवस' बीस एक जाइ तुलाना।
'कोस बीस तेहि गोवरा लागइ'। 'उतर देवहा लोग डरि भागइ'।
'घर घर गोवरा' वात जनाई। 'द्यो(देव)हा' कौन[उ?]उतरि गा आई।
खाई कोटु 'सवारहि' 'बइठे सबइ झुझार'।
'जउ' लहि राउ गढु 'होइ लागइ' 'तउ' लहि लोग सभार॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३१२, वी० १३१३-१३१५।

शीर्षक—मैं० रवान करदने लोरिक व चादा सूए गोवर।

पाठान्तर—(१) १ बी० रासि हुतें अथई (अठई—फा०)।(२) १ बी० श्रवन न सुना। २. बी० सिंघ पथ मनु लावत। (३) १ बी० राति दिवसु वोहु। २. मैं० कोस। (४) १ मैं० तीस। २ बी० गोवर तेहि आये। ३ बी० तबैंहि ति किनहू बात जनाये। (५) १. बी० गोवर लोगहि। २ मैं० कोउ एक राउ। (६) १ बी० सवारैंहि। २ बी० सवहे सबै जुझार। (७) १ बी० जौ। २ बी० साजैं। ३ बी० तौ।

अर्थ—(१) सूर्य की दृष्टि सिंह [राशि की मैना] के घर गई और वह मीन (चादा) के स्थान के आठवी हुई। (२) सूर्य (लोरिक) चाद (चादा) के कथनो पर कान नही कर रहा था, [यद्यपि] वह उसके साथ दो दण्ड तक बैठा रहा। (३) फिर एक प्रहर रात रहे उठ कर उसने प्रयाण किया, और बीस-एक दिन मे [स्वदेश] जा तुला (पहुचा)। (४) वहाँ से गोवर बीस कोस लगता था, वह [जव] देवहा मे उतरा, लोग डर कर भागने लगे। (५) गोवर मे घर-घर यह बात विज्ञप्त हो गई कि देवहा मे कोई आ उतरा था। (६) [गोवर मे] लोग खाई और परकोटा सवारने लगे, और सव योद्धा [यथास्थान] वैठ गए। (७) [वे कह रहे थे,] "जब तक [शत्रु] राजा गढ से हो लगे, [तब तक] लोग [खाई और कोट] सभाल ले।"

(३८२)

घर घर 'गोवरां परा खभारू'। 'कहहि' आजु 'राखइ' करतारू।
'तलवा' कोटु झराई खाई। परी राति सभ 'पवरि' बधाई।
सोन रूप 'सब गाठी करहीं'। धरहिं 'उतारि इकतेहि सरहीं'।
मैना के 'जिय अइस' जनावा। 'एइ दर' 'हुतें' भए कोउ' आवा।
जो 'रे' बात लोरिक 'कइ कहा'। 'मकहु सो भैया आवतु 'अहा'।
साझ परी 'माइ खोलिनि' मोरे 'चितहि जनायो(एउ)'।
राति लोर की चाह घनेरी भोर होत पिउ आयो(एउ)'॥

सन्दर्भ—मं० पत्र ३१३, वी० १३१६-१३१८। बी० प्रति इसी कडवक तक लिखित है, इसके आगे के अश के लिए उसमे १३ पृष्ठ सादे छोडे हुए हैं, और एक पृष्ठ पर २¾ कडवको का औसत है, इसलिए वी० के इस त्रुटित अश मे अनुमान से २९-३० कडवक और हो सकते थे।

शीर्षक—हैवत उपतादन दर शहर गोवर।

पाठान्तर—(१) १ बी० गोवर परा खरभारु। २ बी० कहसि।

३ बी० राखै। (२) १ बी० तलब। २ बी० पौरि। (३) १ बी० भल काठी गडही (गाठी करही—फा०)। २ मैं० उसारहिं ढाकि हरदी ('धरहि' आ चुका) है। (४) १ बी० चित अैस। २ बी० हरदी। ३ बी० अबहि को। (५) १ बी० रु। २ बी० की कहै। २ बी० मुकु। ३ मैं० पहुना (?)। ४ बी० अहै। (६) १ बी० मा पौलनि। २ बी० चिताह जनायो, मैं० चितहि असि आई (७) मैं० आजु राति के सपनहि लोरिक सुधि पाई।

अर्थ—(१) गोवर मे घर-घर अशाति मच गई, [लोग] कहने लगे, आज सृष्टिकर्त्ता ही हमारी रक्षा करे! (२) परकोटे के तल और खाई झराए (गहरे कराए) गए, और रात पडी तो समस्त पौरिया बधवा (वद करा) दी गईं। (३) सोना और रूपा (चादी) सब लोग गाठो मे कर रहे थे वे उन्हे उतार-उतार कर रख रहे थे, और [उन्हे गाडने के लिए] एकान्त मे जा रहे थे। (४) [किन्तु] मैना के जी मे ऐसा जान पडने लगा कि कोई यहाँ उक्त दल से होकर आया था, (५) जो लोरिक की बात कहता, ऐसा कोई भाई कदाचित् आ रहा था।" (६) [वह कहने लगी,] "ऐ मा खोइलिन, [अब] सधि (शाति) पडी (प्रतीत हुई) है, क्योकि मेरे चित मे यह जनाई पडा है (७) कि रात मे मुझे घनी चाह लोर की थी, तो भोर होते ही प्रिय आ गया।"

(३८३)

गाउ कोठारइ परा उपासू। मैना के चित अनद हुलासू।
सोवन बहोरि राति जो भूली। देखि तराइन मैना फूली।
रहसि उठी चित बहु निसि जागी। पछिली राति नीद फिरि लागी।
लागत नैन सपन एक आवा। भा बिहान तइ कोउ नसावा।
खोलिनि पूछ सुनहु दहु मैना।
परति साझि जउ बकतिहिं मैना (बैना)।
तोर मन कालि जो रहसा पाइहु पिय कइ चाहि।
सपन[इ?] गनि गुनि मैना कहु किछु देखिउ आहि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३१४।

शीर्षक—मैं० ख़्वाब दीदने मैना अज आमदने लोरिक।

अर्थ—(१) गाव और कोठार मे उपास पडा हुआ था, [किन्तु] मैना के चित्त मे आनन्द और उल्लास था। (२) और वह जो रात मे सोना भूल

गई थी, तारिकाओ (सखियो) को देख कर वही मैंना फूल उठी। (३) क्योकि वह चित्त मे हर्पित हो उठी थी और वह बहुत रात तक जागती रह गई थी, पिछली रात्रि (रात्रि के पिछले प्रहर) मे उसे पुन निद्रा आ गई। (४) नेत्रो के लगते ही एक स्वप्न आया (दीख पडा), किन्तु प्रभात होने पर किसी ने [उस स्त्री को जगाकर] उसे नष्ट (भग) कर दिया। (५) खोलिन पूछने (कहने) लगी, "ऐ मैंनां, सुन, यदि तू कोई वचन कहती, तो सधि पडती (शाति मिलती)। (६) तेरा मन कल जो तक हर्पित हुआ था, क्या तूने [अपने] प्रिय का [कुशल] समाचार पाया ? (७) स्वप्न को सोच समझ कर, ऐ मैंना, तू कहे कि क्या तूने कुछ देखा है।"

(३८४)

दिन भा लोरिक मारी बुलावा। गोवरा कस दहु वात जनावा।
अस जनि कहु कि लोर पठाएउ। जउ को पूछ कहसि हउ आइउ।
फूल करड भरि माली लीतेसि। फिरि फिरि गोवरा घर घर दीतेसि।
देखि फूल मैंना तस रोई। फूर सो भरहि जिन्हहि पिउ होई।
नाह मोर परदेसहि छावा। फूल पान मोहि देखि न भावा।
बर कइ हार मेलेसि माली बचन न भोलि।
वास लागि सति मैंना उठहि वैन अस वोलि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३१५।

शीर्षक—मैं० तलवीदन फिरिस्तादने लोरिक गुलफरोश रा बर मैंना वागुल।

मैंना ने खोलिन से अपने स्वप्न के वारे मे क्या कहा, पिछले कडवक के वाद इस आशय का एक कडवक सभव है यहा और रहा हो।

अर्थ—(१) दिन हुआ तो लोरिक ने माली को वुलाया [और कहा,] गोवर मे किस प्रकार इस वात की सूचना दी जाए [कि मैं हरदी से वापस आ गया हू] ? (२) ऐसा न कहे कि तू लोर का भेजा हुआ है, यदि कोई पूछे तो कहे कि तू [स्वय] आया (गया) है।" (३) माली ने फूल की टोकरिया भर ली और उन्हे फिर-फिर गोवर मे घर-घर मे दिया। (४) उन फूलो को जैसे ही देखा, मैंना रोने लगी, [उसने कहा,] "फूल वे भरती है जिनके प्रिय होते है। (५) मेरा स्वामी तो परदेश मे छाया हुआ है, मुझे फूल-पान देख कर नही भाते है।" (६) माली ने जवर्दस्ती [उसके गले मे] हार डाल दिया, तो भी वह उसके वचनो मे न भूली। (७) किंतु सती मैंना को जंव

उन फूलो मे पति को सुवास लगी (जान पडी), तो वह इस प्रकार का वचन वोल उठी।

(३८५)

कहसि न मारी कत हुत आवा। फूल वास मइ लोरिक पावा।
जानउ अस तू लोर पठावा। सपनइ माझ जाउ देखिउ आवा।
लागि बास मोर हिया जुडाना। अइस फूल पिउ लोरिक आना।
लोर नाउ लइ बहु दुख रोई। जनु सावन बीर बहूटी होई।
सूरुज कर मारग हउ चाहउ। लइ गइ चाद कहा अब नाहउ।
देवस मुहाए रोवउ रैनि जागतहि जाइ।
पाय लागि मइ बिनवउ जउ परदेसी आइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३१६।

शीर्षक—मै० पुरसीदने मैना वर गुलफरोश रा खबर।

अर्थ—(१) "ऐ माली, तू कहता क्यो नही कि कहा से आया है ? फूलो मे मैंने लोरिक [के फूलो ?] की वासना पाई है। (२) मैं ऐसा जान रही हू कि तू लोर का भेजा हुआ है, क्योकि मैंने स्वप्न मे देखा है कि वह आया हुआ है। (३) [इन फूलो की] सुवास लगी, तो हृदय शीतल हो गया, ऐसे ही फूल प्रिय लोरिक लाया करता था।" (४) [तदनतर] लोर का नाम ले-लेकर वह [अपना विरह-] दु ख वहुत रोती रही, [उसकी आखो से रक्त के अश्रु ऐसे गिरे] मानो सावन मे वीर वहूटिया [निकल पडी] हो। (५) [उसने कहा,] "मैं सूर्य (लोरिक) का मार्ग देख रही हू। मेरे स्वामी को चादा ले कर चली गई थी, अव वह स्वामी कहा है ?। (६) सुहावने दिनो मे रोती हू और रातें जागते ही जाती है। (७) मै तुम्हारे पैरो से लग कर विनय करती हू, तुम वताओ यदि वह परदेशी आया हुआ है।"

(३८६)

सुनहु न किर धिय हउ परदेसी। ताहि सझाइ मोर सहदेसी।
सो देखु मोहि को घरहि चलावा। गोवर सपदि मइ देखन आवा।
महरि देखि हउ दही कह आएउ। तोर बिरह जस अउर न पाएउ।
तब तू सुद्धि लोर कइ पावसि। लइ कइ दूध जउ वेगा आवसि।
फूल मोर तोरी झार सुखाने। छार भए अउ जरि कुबिलाने।

वहुल लोक पुर आवा मकहु वोल सुधि कोइ ।
वेगा आउ त पीछे ओ ठा मेरावा होइ ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३१७ ।

शीर्षक—मै० जवाव दादने माली वर मैना रा ।

अर्थ—(१) [माली ने कहा,] "ऐ वेटी, तू सुन न, मैं परदेशी हूं, तू उससे मिले जो मेरा सहदेशीय है । (२) उसने देखो, मुझे अपने घर भेजा और मै तत्काल [उसके घर को] देखने के लिए गोवर आ गया । (३) तुझे महरी देख कर मैं [यहा] दही के लिए आया, किन्तु तेरा विरह जैसा मैंने और [किसी का] न पाया । (४) तू लोर की सुधि तव पाएगी, जव तू [वहा] दूध लेकर शीघ्र आएगी । (५) मेरे फूल तेरी ज्वाला से सूख गए, वे राख हो गए और जलकर कुम्हला गए । (६) वहुतेरे लोग पुर मे आए हुए है, सभव है कि कोई [उसकी] सुधि वोले (कहे) । (७) यदि तू शीघ्र आए, तो [आने के] पीछे उस स्थान पर उनसे मिलना हो जाए ।"

(३८७)

दिन भा मैनां वेगां गई । अउर सहेलि जनी दस लिई ।
वेचत दूध घर गई [लुगाई ?] । दही कह लोरहि महरि वुलाई ।
महरी जेति सव लोरिक देखी । देखत मैना अउर न लेखी ।
[तउ ?] हि लोर चांदा कह वोलिसि ।
सीपि सेदूर चदन तन घोलिसि ।
[आ ?] गू छाडि जउ पाछू आवा । चमकि चमकि धनि पाउ उचावा ।
ओहि कर दूध दहि लीजिए दस गुन दीजिय दान ।
सती रूप जिसु देखेउं तेहिक वडाई मान ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३१८ ।

शीर्षक—मै० रफतने मैना वा सहेलिया दर वेगा व तलवीदन लोरिक मैना रा ।

मै० (२)।१ मे अतिम शव्द छूटा हुआ लगता है । और (४)।१ तथा (५)।१ मे कोष्ठको के स्थानो पर पत्र फटकर निकल गया है ।

अर्थ—(१) दिन हुआ तो मैना शीघ्र ही गई, और [साथ मे] उसने दस जनी सहेलिया ले ली । (२) वे [स्त्रिया] दूध वेचती हुई [उस माली के] घर गई, तो लोरिक ने उन महरियो को दही के लिए वुलाया ।

(३) जितनी महरिया थी, उन सब को लोरिक ने देखा, किन्तु मैना को देखते ही औरो को उसने [कुछ] न लेखा (ध्यान मे रक्खा)। (४) तभी लोरिक ने चादा को बुलाया [और कहा,] "सीपियो मे कर सिन्दूर और चदन [रख लेना और] सभी के शरीर पर लगाना।" (५) आगे के उस स्थान को छोडकर जब वह पीछे [हट] आया, तो उम स्त्री (मैना) ने चौक-चौक कर पैग उठाया। (६) [लोरिक ने कहा,] "उसका दूध-दही लो और दस गुना दान (दाम) [उसे] दो। (७) जिसे मैने सती के रूप मे देखा है, उसका वडप्पन मानो।"

(३८८)

लइ कइ 'दूध तउ' दरब दिवावा। सीप सेधउरा 'माग भरावा'।
सेदुर चदन 'सभ कोइ' लेई। मैना 'आपुन' करइ नहि देई।
सेदुर सो कर जेहि पिउ होई। नाह मोर हरदी हइ सोई।
'जउ लहि वह तजि मोहि कह गवा'। तउ लहि 'हम'अस साध न 'भवा'।
'निसि दिन हउ दुख आसू रोवउ'। नीदि न आवइ कइसे 'सोवउ'।
रोवत दिस्टि खुटानी 'खीनि भई चख जोति'।
चाद सुरुज तेहि परखइ 'बास (?) परी भुइ लोट'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३१९, भो० पत्र ५६ (नवीन)।

शीर्षक—मैं० खरीदने लोरिक शीर व देहानीदने माल वर लोरिक मैना रा।

भो० सितवन लोरिक शीराजाने अज मैना व माल दिहानीदन व आजमूदन मन दिल रा।

मैं० मे (५) मे प्रारभ का अक्षर त्रुटित है तथा 'आसू' शब्द छूटा हुआ है।

पाठान्तर—(१) १ भो० दहि दूध। २ भो० आनि चढावा। (२) १ मैं० सब को। २ भो० आपुहि। ३ भो० नहि। (४) १ मैं० [जउ] लहि मोहि को वह तजि गएऊ। २ भो० मोहि। ३ भो० भएऊ। (५) १ भो० दिन दिन आसू लोहू रोवउ। २ भो० सोवउ। (६) १ मैं० गई चक्ख कइ जोति। (७) १ भो० बीज परइ भुइ टूटि।

अर्थ—(१) [महरियो से] दूध लेकर तव [उन्हे लोरिक ने] द्रव्य दिलाया, और [चदन-भरे] सीप तथा सिंदूर-पात्र से [उन की] माग भराई।

(२) [श्रृङ्गार के लिए] सिन्दूर और चन्दन सभी कोई ले रही थी, किन्तु मैना अपना नही करने दे रही थी। (३) [उसने कहा,] "सिन्दूर वह करता है जिसका प्रिय (पति) होता है, मेरा जो स्वामी है वह तो हरदी मे है। (४) जव तक वह मुझे छोडकर गया हुआ है, तव तक मुझे ऐसी साध नही हो सकती है। (५) मैं रात-दिन दु ख के आसू रोती रहती हू। नीद नही आती है तो मैं कैसे सोऊ? (६) रोते-रोते मेरी दृष्टि समाप्त हो गई और चक्षुओ की ज्योति क्षीण हो गई है, (७) [क्योकि] मैं चाद (चादा) और सूर्य (लोरिक) को परख रही हू और [उनकी] वासना (?) मे पडी हुई भूमि पर लोटती (लुठित होती) रहती हू।"

(३८९)

लोरिक मैनहि 'जान' न देई। करइ धमारि मरम सभ लेई।
मैना कह मन ताहि सझाई। मोर नैन आ ही मीत रचाई।
तइ 'का दीखि 'हउ वेसा दारी'। 'तह तू' मो सउ 'करसि' धमारी।
जानसि अस 'तइ' 'वारी भोरी'। थाप देइ मोहि 'घालत' चोरी।
'आपन नाह' त रहस सझाई। मोर ठाउ 'का करसि' बोलाई।
कोह वहुत कइ मैना चली(लि) भइ ओहि क आवास।
चादा 'भइ तब पालिक ऊपर' धरि वइसारिसि पास॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३२०।१, मसा०।

भो० मे पिछले कडवक के वाद तर्क है 'लोरिक', जो इसी कडवक का है।

शीर्षक—मैं० अँजन लहू। मसा० नीज गुज़ाश्तने लोरिक वर मैना रा वे वाजी व लाग दरयाफ्त करदन।

पाठान्तर—(१) १ मसा० चलइ। (३) १ मसा० कै। २ मसा० मइ अकुल कुवारी। ३ मसा० तव तै। ४ मसा० करइ। (४) १ मसा० तइ। २ मसा० मूवा सारी। ३ मसा० घालव। (५) १ मसा० अपने मान। १ मसा० तोर रहन। (७) १ मसा० तव पालिक सो।

अर्थ—(१) लोरिक मैना को जाने नही दे रहा था, [उसके साथ] वह धमार (हास-परिहास) कर रहा था और [इस प्रकार से] उसका समस्त मर्म ले रहा था। (२) [इस पर] मैना कहने लगी, "मेरा मन उसी [प्रिय] से मिलेगा और मेरे नेत्र उमी मित्र द्वारा रचाए (रजित) होगे। (३) तुझे क्या मैं वेश्या और दारी दिखी हू और इमलिए तू मुझसे ऐसी धमार कर रहा

है ? (४) क्या तू मुझे इस प्रकार भोली बालिका समझता है, और चोरी मे डालते हुए मुझे थाप दे रहा है (मुझे चोरी करने के लिए बढावा दे रहा है) ? (५) अपना स्वामी हो तो हर्ष और मिलन है। तू इस स्थान पर मुझे बुलाकर मुझसे यह क्या कर रहा है ?" (६) बहुत क्रोध कर मैना उसके आवास से होकर चली। (७) चादा तब पलग के ऊपर हुई और उसे भी पकड कर उसने पास मे बिठा लिया।

(३९०)

पिरम समुद अतिय अवगाहा। जउ जग बूड न पावइ थाहा।
चहु दिसि कइसे थाह न पावइ। मानुस बूडइ तीर न आवइ।
मोरे रोए सायर भए। धरती पूरि सरग लहि गए।
फूटी (टि) आखि जनु आसू भए। परइ सो छाइ बान न(नहि) रहे।
तेहि गुन हउ तो नैन न देखउ। राति चाद दिन सूरुज लेखउ।
जान देहि घर आपन मोरिहि सासु मोहिं माइ।
बिसए सताप मइ बैठउ कालि पास तुम्ह आइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३२०।२।

शीर्षक—मैं० अँजन लहू।

अर्थ—(१) [मैना ने कहा,] "प्रेम का समुद्र अति गहरा है, यदि जगत् डूबे (डुबकी लगाए), तो भी उसका थाह न पाए। (२) चारो ही ओर किसी भी प्रकार से वह थाह नही पाएगा, मनुष्य उसमे डूब जाएगा और तीर पर नही आएगा। (३) मेरे रोने से सागर हो गए और वे धरती को पूरित करके आकाश तक जा पहुँचे। (४) मानो आखो के फूटने से आसू हुए, वे आच्छादित पड (हो) रहे है, [इसलिए मेरे नेत्र अपने] वर्ण मे नही है। (५) इसी कारण मे तुझे नेत्रो से नही देख पा रही हू, [बस] रात मे चाद को तथा दिन मे सूर्य को लेखती (ध्यान मे रखती) हू। (६) मुझे तू मेरे घर जाने दे, मेरी सास है जो मेरी मा है। (७) सताप के विश्राम करने (शमित होने) पर मैं कल तेरे पास आ कर बैठूगी।"

(३९१)

उदए भानु 'अउ' राति बिहानी। महरी 'देवहा' जाइ तुलानी।
मैना देखत मदिर बुलाई। बहुरि चाद वह बात चलाई।
कहु 'दहु मैना सू(सु)रुज जसि करा। सो लइ 'चादहि पाटन' धरा।

मोहि तजि 'सूरु' चाद लइ भागा । बरहा 'चाद' आइ अब लागा ।
जउ 'पइ' कतहू चाद हउ 'पावउ' । 'कारा कइ मुह' 'सरग हडिहावउ' ।
जस ओइ कीति सझाई तस जग करइ न कोइ ।
जइसन दाह ओइ मोहि दीन्हा तइसन दाह ओहि होइ ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३२१, भो० पत्र ५६ (नवीन) ।

शीर्षक—मैं० वाज रफ्तने मैना दर पैंका वा सहेलियान खुद ।

भो० अज शव सुवह गाह रौशन वर आमदन व पुरसीदन मैना व पुरसीदन चादा ।

पाठान्तर—(१) १ भो० मे नही है । २ भो० देवहा । (३) १ भो० ओइ सुरुज चाद जसि । २ भो० चादइ हरदी । (४) १ भो० मुरुज । २ मैं० मास । (५) १ मैं० मे नही है । २ भो० देवस चाद जउ । ३ मैं० पाएउ । ४ भो० कार मुह कइ । ५ मैं० नगर फिरावउ (७) १ मैं० दुहु मोहि दीन्हेउ । २ मैं० दुहुक ।

अर्थ—(१) भानु उदित हुए और रात समाप्त हुई, तो महरिया देवहा जा तुली (पहुची) । (२) मैना को देखते ही उसे भवन मे बुला कर चादा ने पुन वह वात चलाई । (३) "ऐ मैना, [तेरे] सूर्य (लोरिक) की जैसी कला है, उसे कह ।" [मैना ने कहा,] "उसको लेकर चांदा ने [हरदी] पाटन मे रख छोडा है । (४) वह सूर्य (लोरिक) मुझे छोड कर और चादा को लेकर भाग गया, और अव वारहवा चाद (चाद्र मास) आ लगा है । (५) यदि कही मैं चादा को पा जाऊ, तो [उसका] मुख काला कर उससे आकाश मे चक्कर लगवाऊ । (६) जैसी उसने साठ-गाठ की वैसा जगत् मे कोई नही करता है । (७) जैसा दाह [उसने] मुझे दिया है, वैसा ही दाह उसे भी हो ।"

(३९२)

चादइ आपनि कीति बडाई । 'मैना' बूझत रही लजाई ।
वोलत वोलत भई चिन्हाई । कहसि न चाद कहां हुति आई ।
वर कइ चादइं 'झूझ उपावा' । 'भया झूझ' जस दाउद गावा ।
'तब उठि लोरिक आपु जनावा । मैनां रही लोर जउ पावा ।'
लोरिक 'चांदहि' तस कइ हरकी । 'झूझन कारन' बहुरि न भरकी ।
चेरी सात पाच कह वोलिसि 'मैनहि' जाइ सवारि ।
आजु 'राति मैनइ घर' जाउ 'ओहिकि हइ' वारि ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३२२, भो० पत्र ५७ (नवीन)।

शीर्षक—मैं० बुजुरगी खुद नमूदन चादा व अहानत करदन मैना।

भो० बुजुरगी व वलदी खुद गुफ्तन चादा व शनाख्तन मैना व जग करदन चादा।

पाठान्तर—(१) १ मैं० मैनहि। (३) १ मैं० जूझ उपावा, भो० झूझ उचावा। २ भो० भई जूझ। (४) १ भो० मे उपर्युक्त (५) यथा (४) है और यथा (५) है अबहु समुझि नहि रहइ लजाई आपनि चाद जो कइत बुलाई। (५) १ मैं० चादा। २ भो० चादा जूझी न। (६) १ मैं० मैना। (७) १ भो० राति मइ ओहि घर, २ भो० राति हइ ओहि करि।

अर्थ—(१) चादा ने अपनी बडाई की, तो मैना के पूछते (प्रश्न करते) हुए वह लज्जित हो रही। (२) बाते होते-होते चिन्हाई (पहचान) हो गई [तो मैना ने कहा,] "ऐ चादा, कह न कि तू [यहा] कहा से आ गई ?" (३) [तब] चादा ने बल कर युद्ध उत्पादित किया और ऐसा युद्ध हुआ जैसा दाऊद ने [पहले] गान किया है। (४) तब लोरिक ने उठ कर अपने को बताया, और मैना रुक गई जब उसने लोरिक को पा लिया। (५) लोरिक चादा को इसलिए मना करने लगा, कि युद्ध करने के लिए वह फिर न भडके। (६) सात-पाच चेरियो को (से) उसने कहा, "जाकर मैना को सवारो। (७) आज रात मैं मैना के घर जाऊगा, [आज] उसी की बारी है।"

(३९३)

मैना चेरिन्ह लइ अन्हवाई। मुगिया 'सारि' आनि पहिराई।
दुसरे पाट 'जउ ओहि बइसारे'। मुखि तबोल चखि काजर 'सारे'।
बदरी हुत जनु उ(उ)छटि 'नीसरा'। देखि सुरुज तब चादा बिसरा।
राति जाइ 'तउ' नारि मनाई। 'चादहु' चाहि अधिक 'पइ' पाई।
'पहिलइ' दुक्ख जउ नारि बखाना। राखेसि मान लोर जस जाना।
कहिसि सुरुज धनि 'चादा (चाद) लइ कस दीतिउ तोहिं' दोस।
'हम मैना जेउ तोतें' 'न रहसहु' चाद परोस॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३२३, भो० पत्र ५८ (नवीन)।

भो० मे पिछले कडवक के बाद तर्क है 'मैना चेरिन' जो इसी कडवक का है।

शीर्षक—मै० . दर शब रफतने लोरिक दर ख़ान मैना व दिल खुश करदन ऊ रा ।

भो० · गुसल दादन कनीजगान वर मैना रा व किसवते ख़ास आरास्तन वर ख़ान बुरदन ।

पाठान्तर—(१) १. भो० सारी । (२) १. मै० जउ वइसारेसि । २. मै० सारेसि । (३) १. भो० निसरा । (४) १. मै० कइ । २ मै० चादा । ३ मै० तइ । (५) १ मै० पहिल । (६) १. भो० छाड़ि जउ मइ कीता । (७) १ भो० हमारिहि छाह जस तरइनि । २. भो० रहि हहि ।

अर्थ—(१) मैना को चेरियो ने ले जाकर स्नान कराया, उसे लाकर मुगिया साडी पहनाई । (२) [फिर] दूसरे पाट पर जब उसे बैठाया, उन्होने उसके मुख मे ताबूल दिया और आखो मे कज्जल लगाया । (३) [उस समय वह ऐसी लगी] मानो वह बादलो से उछट कर निकला हुआ [चद्र] हो । तब उसे देखकर सूर्य (लोरिक) चाद (चादा) को भूल गया । (४) तब रात को जाकर उसने स्त्री (मैना) को मनाया [और कहा,] "तुझे, हो न हो, मैंने चादा से भी अधिक [सुदर] पाया है ।" (५) जब नारी ने पहले (विरह) के दु खो का वर्णन किया, तो लोर ने जैसा-कुछ वह जानता था, उसके अनुसार उसने उसका मान रखा । (६) सूर्य (लोरिक) ने कहा, "ऐ धन्या (स्त्री), चाद (चांदा) को लेकर मैंने तुम्हे कैसे दोष (दु ख) दिए ? (७) [किन्तु] हे मैना, मैं जैसा हर्षित तुझसे होता हूं, वैसा चादा के पडोस (पास) मे नही होता हू ।"

२६. गृह-आगमन खण्ड

(३९४)

गोवरा अपजस बात जनाई । मैनां राखिसि ताहि सझाई ।
अजई के घर खोलिनि गई । लागि गोहारि बात असि भई ।
भा असवार धोर दउरावा । लोरिक सुनि कइ झूझन आवा ।
दौरि खाड अजई सिर दीन्हा । टाटर टूट लोर तेहि चीन्हा ।
तउ हि उतरि कइ भए अकवारा । मइ तुइ मारा ।
काहि लागि तुहुं ढाकिसु उठि आपन घर आउ ।
आगे दइ कइ लोरिक लीतेसि जाहि पूत तुम्ह पाउ ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३२४।

भो० मे पूर्ववर्ती कडवक के वाद तर्क 'गोवरा' है जो इसी कडवक का है।

शीर्षक—मैं० खवर कुनानीदने लोरिक दर शहर गोवर अज आमदने खुद।

मैं० मे (५)।२ मे छोडा हुआ अश सामने के चित्र का रग उभड आने से अपाठ्य हो गया है।

अर्थ—(१) गोवर मे यह अपयश की बात विज्ञप्त हो गई कि मैना को [किसी ने] साठ-गाठ कर रख लिया है। (२) अजई के घर खोलिन गई [और उससे कहा,] "तू मेरी गुहार लग, क्योकि वात ऐसी हुई है।" (३) [अजई] सवार हुआ और उसने घोडे को दौडाया, यह सुनकर लोरिक युद्ध करने के लिए आया।(४) दौडकर अजई ने [उसके] सिर पर खड्ग दिया, [जिससे] उसका टाटर टूट गया तो उसने लोरिक को पहचान लिया। (५) तभी वे [घोडो से] उतर कर अकपाली मे हो (बँध) गए। [अजई ने कहा,] ' मैने तुम्हे मारा। (६) किस लिए तुम ढके (छिपे) हो? उठ कर अपने घर आओ।" (७) उसने लोरिक को आगे कर लिया और कहा, "तुम जिसके पुत्र हो, वह [माता—खोलिन] तुम्हे पाए!"

(३९५)

चढि [?] तुरै लोर घर आवा। पाय लागि कइ माइ मनावा।
मात कह[इ] अस पूत न कीजइ। बूढि माइ कह दोख न दीजइ।
खोलिनि वहुअइ दोऊ आनी। चादा मैना दूनइ रानी।
पाइ परी अकवारइ धरी। काजर सेदुर दोऊ करी।
आगिनि परजारि कइ रसोइ वधारी। कोठा बारी सेज सवारी।
चाद सुरुज अउ मैना बरिस सहस भा राजु।
गावहु गीत सहेलिया गोवर बधावा आजु॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३२५।

शीर्षक—मैं० दर खान आमदने लोरिक व पाय मादर उफ्तादन।

अर्थ—(१) घोडे पर चढ कर लोरिक घर आया। पैरो से लगकर उसने माता को मनाया। (२) माता कहने लगी, "पुत्र ऐसा न करो, बूढी माता को दोप (दु ख) न दो।" (३) खोलिन दोनो वहुओ को लाई। चादा और मैना [अव] दोनो रानिया थी।(४) वे उसके पैरो मे पडी और [तदनतर] उन्होने उसे अकपाली मे पकडा (भरा)। दोनो ने कज्जल और सिंदूर [से

शृंगार] किए। (५) अग्नि जलाकर उन्होने रसोई बघारी (तैयार की) और उन्होने कोठे, वाटिका और शैया को सवारा। (६) [मैना की सखियो ने कहा,] "चाद (चादा), सूर्य (लोरिक) और मैना का सहस्र वर्षो का राज्य हुआ! (७) सहेलियो, गीत गाओ, आज गोवर मे वधावा (हर्ष का आयोजन) है।"

(३९६)

लोरिक पूछहि कहु मोहि माई। कत दहु मैना कत हुत भाई।
तोरे पाछे वावन आवा। वैना मैना काढ़इ लावा।
अजई करि गोहारि उठि धावा। वैनां मैना आइ छुडावा।
तउहि महरहु नाउव चलावा। माकर कह अस वोलि पठावा।
कहा लोर इहि देस परानां। हरदी पाटन जाइ तुलानां।
भई वेर हइ माकर मारि गाइ लइ जाहि।
ऐसइ बीर कतहु दहु पाइय सवरू (कुवरू?) राढ को आहि॥

सन्दर्भ—मैं० पुत्र ३२६।

शीर्षक—मैं० पुरसीदने लोरिक मादर रा व जवाव दादने मादर।

अर्थ—(१) लोरिक पूछने लगा, "मेरी माता, कहो कि मैना कहा थी और भाई कहा था?" (२) [उसने कहा,] "तेरे [जाने के] पीछे वावन आया और वैना और मैना को वह [घर से] निकालने लगा। (३) अजई ने गुहारी की और वह उठकर दौडा, उसी ने वैना तथा मैना को आकर छुड़ाया। (४) तभी महर ने भी नाई भेजा और माकर को ऐसा कहला भेजा (५) उसने कहा, "लोर इस देश से भाग गया है और हरदी पाटन चला गया है। (६) ऐ माकर, [उपयुक्त] वेला हो गई है, तू मार-पीट कर उसकी गाए ले जा। (७) ऐसा (तेरे जैसा) वीर कही क्या पाया जाता है? राढ (वलहीन हुआ) सवरू (कुवरू?) [तेरे समक्ष] कौन (क्या) है?"

(३९७)

सुनि कइ माकर कटक चलावा। वोहा 'कुवरुहि मारइ धावा'।
'वहुल कटक सिउ' माकर अहा। एक कुवरू कर दहु काहा।
राजा पह 'कुवरू चलि' आवा। 'वागर माकर कुवरू' मरावा।
'अन दुख पूत तोहि विन भएऊ'। 'परिहस' गाढे न कोउव गएऊ।
'कुवरू मारा नाउव सुनावा'। राजा कापर 'तेहि' पहिरावा।

एक 'दुख पूत मोहि' तोरा दूसर 'ओहि क जउ' लाग।
दिवस रोइ कइ फेकरउ राति जाइ मोहि जागि ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३२७, भो० पत्र ६ (नवीन)।

भो० मे इस कडवक के वाद तर्क है 'डारहि हाथ', जो अगले कडवक का होगा। इसके आगे के कडवक किसी प्रति मे नही मिलते है। जैसा कि वी० के सवध मे कडवक ३८२ की सन्दर्भ-टिप्पणी मे कहा गया है, असभव नही कि पूरी रचना मे इसके आगे भी १४-१५ कडवक रहे हो।

शीर्षक—मै० अंजन ॰ । भो० शुनीदने माकर कैफियत रफ्तने लोरिक व आमदन वालश्कर व गुश्तन सवरू व बुर्दने माद गाव।

पाठान्तर—(१) १ मै० कुवरू मारन धावा। (२) १ भो० वहुत कटक सिउ, मै० वहुल कटक मह। (३) १ भो० तउ सवरू। २ भो० धरि करि माकर सवरू। (४) १ भो० देखि पूत अस पीछेइ भएउ। २ मै० बिरहे (५) १ भो० कुवरहि नाऊ हकारइ आवा। २ भो० तेहि। (६) १ भो० मे अपाठ्य है। २ भो० ओहिकर।

अर्थ—(१) यह सुनकर माकर ने कटक चला दिया और वह वोहा मे कुवरू को मारने दौड पडा। (२) माकर वहुतेरे कटक से (के साथ) था, एक (अकेला) कुवरू भला क्या करता ? (३) कुवरू जव चल कर राजा के पास [उसकी सहायता प्राप्त करने के लिए] आया, तो वक्र (कुटिल) माकर ने कुवरू को मरवा डाला। (४) ऐसा दुख, हे पुत्र, तेरे बिना (न रहने के कारण) हुआ और इस परिहस (परिहास पूर्ण स्थिति) और सकट मे कोई [सहायक] न हुआ (५) जव नाई ने कुवरू का मारा जाना सुनाया, तो राजा (महर) ने उसे वस्त्र पहनाए। (६) एक दुख तो, हे पुत्र, मुझे तेरा था ही, दूसरा जो उसके लिए हुआ, (७) दिन भर मै रो-रो कर चिल्लाती रहती हू और रात मुझे जागते-जागते बीतती है।"

परिशिष्ट

प्रक्षिप्त कडवक

[कोष्ठको के बाहर दी हुई सख्याएँ प्रक्षिप्त माने गए कडवको की क्रम-सख्याएँ हैं, और भीतर दी हुई सख्याएँ स्वीकृत कडवको के साथ उनकी स्थिति का निर्देश करती है।]

१ (२४ अ)

पौरि छाडि चलि भीतर गयो। येक पौरि फिरि दा (दो) उ भयो।
अस धौ बाहरु दक्खिन बाउ। जिव बिसभर गा उठै न पाउ।
तर उपरि धरि बानी फिराई। बास काटि सरके(कि)हि सब छाई।
जरी जरत पट उटग किवारा। भये (?) झरोखा सजे दुवारा।
ही (ही) गुर चित्र कियो रतनारी। कनक नीर स्यै भरी छिहा[री]।
भीतर के (कै?) राजा मनि बारी फूली सोवन जाइ।
घर घर नीर बह(हु)ल तर आनी गग बहाइ॥

सन्दर्भ—बी० ७५-७७।

मै० यहा पर अत्रुटित है, जो कडवको के साथ दिए हुए चित्रो से प्रकट है, और उसमे यह कडवक नही आता है। फिर इसमे भवनो का जो वर्णन है, वह खाई और परकोटे के वर्णनो को देखते ही बहुत रक प्रतीत होता है यथा (३) मे कहा गया है कि उनमे बास काट कर सरकडे से सब छाजन की हुई थी, पुन, आगे चादा की चौखडी का जो वर्णन उसके लोरिक द्वारा आरोहण के प्रसग मे किया गया है, उसकी तुलना मे यह वर्णन बहुत हेटा है। इन कारणो से यह कडवक प्रक्षिप्त ज्ञात होता है।

२ (३१ अ)

का गा येकड न भना। कुहकत देपि महरि सिर धुना।
कह धौ बात जु पूछौ रोइ। बा(बा)झ बेलि फर कैसे होइ।
न्यौतिहौ(हौ) जौ आनीये कागा। ज(न)य(ज)नौ कवन धरम फरु लागा।
भयो सपूरन दसये मासा। जनमि चाद मनि पूजी आसा।
अति रुपवति करम आगरी। काकौ या धन विधना धरी।

चाद सुरिज तेहि निरमरा सहद्यौ गिनी जु वारि ।
गन गधर्ब रिपि देवता देपि बिमोहे नारि ।।

सन्दर्भ—वी० १००-१०२ ।

मैं० यहा पर अत्रुटित है, जो कडवको के साथ आए हुए चित्रो से प्रकट है। इस कडवक मे फूला रानी को निस्सतान वता कर सिर पीटते हुए उससे कौए से सतानोत्पत्ति के विषय मे प्रश्न कराया जाता है, और कौए के बिना कोई युक्ति वताए ही गर्भ के दस मास पूरे हो जाते है और चादा का जन्म हो जाता है। यह प्रसग-योजना असगत और अटपटी लगती है। पुन दोहे का दूसरा चरण विल्कुल ज्यो का त्यो आगे आए हुए कडवक ८२ का दूसरा चरण है, जैसा वह मैं० मे भी है। अत यह कडवक प्रक्षिप्त लगता है।

३ (५३ अ)

सुन सखी माह मास कइ बाता । अपुने (?) राग सभइ धनि राता ।
कर गहि रवन्ह कठ लइ लावइ ।
अति पियारि सखी (सुख ?) सेज विछावइ ।
तिल दिन वाढि होइ तिल धानी । हउ तिल एक पिय सग न जानी ।
रइनि डेरावनि बरवरि(?) कारी । घटइ न आवइ बजर कइ मारी ।
जागत लोयन आछइ राते । फिरि राते ।
रइनि तुसारे कछू न हेरउ(रिउ) रहउ(हिउ) भुव बरु गिय लाइ ।
सउर सुपेती कत बिनु तिल एक थामि न जाइ ।।

सन्दर्भ—शि० । मैं० यहाँ पर त्रुटित है ।

शीर्षक—शि० कैफियत करदन फिराक माह फागुन पेश सहेलियान जुदाई शौहर [स्पष्ट है कि फारसी शीर्षक अशुद्ध है ।]

इसके पूर्व पौष का भी एक कडवक रहा होगा, यह शि० मे दिए हुए उसके चित्र से प्रकट है, किन्तु यह वारहमासा प्रक्षिप्त ज्ञात होता है, क्योकि माघ मास का उल्लेख तो स्वीकृत ५१ मे आ चुका है, जो मैं० तथा वी० मे मिलता है। पुन वी० यहा पर अत्रुटित है, और उसमे सबधित वर्णन मे शीत, ग्रीष्म तथा वर्षा के प्रतिनिधि मासो माघ, ज्येष्ठ तथा भाद्र के वर्णन आए हैं। ऐसा लगता है कि इन तीस मासो के वर्णन के स्थान पर एक पूरे बारहमासे की कल्पना शि० परम्परा मे की गई थी।

४ (५३ आ)

चइत मास सब (?) खेलहि । भुइ(?) ।
जो[व]हु कतहु सवहि जग भूली । सभइ वना फति धरती फूली ।
नौ खड फूले फूल सोहाए । मदिर मदिर ।
सखी वसत सभ (?) देखइ आई । ।
ही उर जइस वइसदर बरई । ।
. ।
, ॥

सन्दर्भ—शि० ।

शीर्षक—अपाठ्य है ।

प्रथम अर्द्धाली अधिकतर अपाठ्य है । पत्र के फट जाने के कारण (३)।२ का उत्तरार्द्ध (४)।२, (५)।२, (६) तथा (७) शेष नही है ।

इसके पूर्व फाल्गुन का भी एक कडवक रहा होगा, यह शि० मे पाए जाने वाले उसके चित्र से प्रकट है ।

यह कडवक भी प्रक्षिप्त लगता है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी ।

५ (२१० अ)

मोरा मरमु चाद तै सुना । तुम्ह फुनि कहहु जु तुम्हरै मना ।
जहा मन पिय के नेहु न होई । पर वेदना न जानै कोई ।
सारस हिरन जु वनह वसाही । वाझु प(पि)रीतम झूरि मराही ।
जिह पै दई न पिरम पिलावा । सो कस आपै मानु [स] कहावा ।
सब बुधि तिहि पहि कहै सयाना । इह जगि पिरम सुवादु जि जाना ।
कहु रसु आपुनु चादा जिहि चितु सुनै सिराइ ।
नेह कहानी भावै पिरति न हिये बुझाइ ॥

सन्दर्भ—वी० ६४६-६४८ ।

चादा की स्नेह-साधना सुनने के लिए लोरिक को इस प्रकार का अनुरोध करने की आवश्यकता नही थी । वाद के कडवक मे चादा ने जो अपनी स्नेह-साधना का परिचय दिया है, उसके लिए ऐसे शिथिल अनुरोध की कोई आवश्यकता नही प्रतीत होती है 'पर वेदना न जानै कोई' (२), 'जिह पै दई न पिरम पिलावा' (४), और 'पिरति न हिये बुझाइ—आदि वहुत शिथिल उक्तिया लगती है । इसके साथ ही यह भी दर्शनीय है कि मै० यहा

पर अत्रुटित है इसके पूर्व और पश्चात् के—दोनो कडवक उसमे एक ही साथ दिए हुए हैं, दोनो के बीच मे कोई चित्र भी नही है। इसलिए यह कडवक प्रक्षिप्त लगता है।

६. (२७८ अ)

चाहौ पडित पूरब दिस चला। घरी महूरत गिनि कहि भला।
अस गिनि पडित कहौ सजोगू। मया करै जनु राजा लोगू।
जस सुष होइ नगर कर बासा। औ राजा भल पुरवै(वइ)आसा।
गिनहु मोर औ चादा रासी।
ष(घ)री धरत जस (जनि?) गिनत भुलासी।
यह फुनि बात न कहिहहु काऊ। जस नरु सुनै न सहदे राऊ।
सोवन जरित लै(लइ) अगुठी लोर बिप्र कौहु दीन्ह।
गनि गुसाई औ भल भाषौहु फुनि बिनती बहु कीन्ह॥

सन्दर्भ—बी० ८५८-८६०।

मै० तथा म० यहा पर अत्रुटित है, पुन इस कडवक का मुख्य भाव कडवक २७६ के (१) मे आ जाता है, जो बी०, मै० तथा म० मे समान रूप से है, और दोनो को प्रामाणिक मानने पर पुनरुक्ति होती है, इसलिए यह कडवक प्रक्षिप्त लगता है।

७ (२७६ अ)

'बिहफइ' नारि आइ 'समुझाई'। चाद चीर 'जेइ बहुरि' फिराई।
चदनु 'सीतर' 'घसि तनु' लावा। 'बेइलि' चपा भरि सीस 'गुदावा'।
तिलक माग चखि काजर कीन्हा। तीस पान मुख बीरा दीन्हा।
अभरन पहिरा 'अउ गिय' हारू। 'हाथन्ह मेहदी किएउ' सिंगारू।
'सोरह' करा सपूरन भई। लोर लागि 'मालिनि घर' गई।
'जिमि हिं(?) नखत लखि पाई' 'गरह जो भई' निसक।
मुरिजु सनेही चादा 'पूनिउ' भई करक॥

सन्दर्भ—म० पत्र १४४।२, बी० ८६४-८६६।

मै० यहा पर अत्रुटित है, जो उसके चित्रो से प्रकट है, पुन. दिन ही मे चांदा कैसे अपने घर से निकल कर मालिन के घर गई, जहा उसे लोरिक भी मिल गया, यह नही बताया गया है। अत यह तथा बाद का अतिरिक्त कडवक प्रक्षिप्त लगते हैं।

शीर्षक—म० रसीदन बिरस्पति वर चादा।

पाठान्तर—(१) १ बी० बिहपैं। २ बी० समझाई। ३ बी० भाप-हरि। (२) १ म० उसीनर। २ बी० सो घसि। ३ बी० बेलि। ४ बी० चरावा। (४) १ बी० औ गै। २ बी० हाथा महदी सभैं। (५) १ बी० सोराह। २ बी० मारनि कैं। (६) १ बी० जिन्हा न पिलहि पायो। २ बी० गाजहु भए। (७) १ बी० पून्यो। २ म० कलक कलक।

८ (२७९ आ)

दिनु भा 'बिह्फइ' आइ तुलानी। 'भई' उतावलि चादा रानी।
सुरिजु सुमतु 'बिरस्पति' पावा। लेत खाड 'मालिनि' घर आवा।
पाइतु धरि 'तउ' चाद 'बोलाई'। 'बिहफइ कही सो जनु दिन पाई'।
विहसति चाद लोर पहिं गई। सीसु नाइ धनि ऊभी' भई।
'अइस' चलहु न सुधि 'कोउ' पावा। साझ चलहु 'न कोउ गोहनि' आवा।
'लोरिक' कहा सुनहु 'दहु' 'चादा' गवनु करबि अब 'साझ'।
भोग बिरास पिरम रस हरदी पाटन 'माझ'॥

सन्दर्भ—म० पत्र १४५।१ [यह सख्या बाद की है, क्योकि इसका '४' पूर्ववर्ती कडवक के '४' से भिन्न है], बी० ८६७-८६९।

म० मे इस कडवक के बाद तर्क है 'रइनि खेलि', जो स्वीकृत कडवक २७८ का है।

शीर्षक—दस्तान रसीदन विरस्पति बा चादा अस्त।

मैं० यहा पर अत्रुटित है, अत यह कडवक भी प्रक्षिप्त लगता है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी।

पाठान्तर—(१) १ बी० बिहपैं। २ बी० भइ। (२) १ बी० चाद तुम्ह। २ बी० मारन। (३) १, म० जौ। २ बी० बुलाई। ३ बी० बिहपैं कहा सुनहु धन आई। (४) १ म० ठाढी। (५) १ बी० तैंमैं। २ बी० को। ३ बी० को गौहनिन। (६) १ बी० लोरक। २ बी० धौं। ३. बी० मे नही है। ४ बी० साझ। (७) १ बी० माझ।

९ (२८० अ)

लइ लोरिक घरु बारु दिखावा। देखि चाद 'किछु चितहिं न लावा'।
चलहु लोर 'पुनि हो भिनुसारा'। लागु 'गोहार सब' लोगु हमारा।
'मुकु(मकु)' सुनि 'पावइ' बावन बीरू। 'परहि दगध पुनि मोर' सरीरू।

'ओहि' देखत 'कोइ जाइ न पारइ' । 'बोलत बोल माझ मुह मारइ' ।
'अरजुन जइस धनुक कर गहइ' । 'ओहि कड हाक न हस्ती सहइ' ।
'औगी भुय(भइ ?) तुम्ह आछौ चादा' 'अइसइं' मोहि न डराउ ।
'राउ' रूपचद बाठा 'मारेउ' अव बावन परि जाउ ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १४७।२, वी० ८७३-८७५ ।

मँ० यहा पर अत्रुटित है, जो उसके चित्रो से प्रकट है । लोरिक ने चादा को उसका घर-बार क्यो दिखाया, इसका कारण नही समझ पडता है । इसलिए यह कडवक प्रक्षिप्त लगता है ।

शीर्षक—म० दस्तान आमदन चादा जेर कस्र वाफतन ।

पाठान्तर—(१) १. वी० कुछु चित न सुहावा । (२) १ बी० होयहै भुनसारा । २ वी० गोहार स । (३) १ म० मत । २ वी० पावै । ३ वी० विरह दगध फुनि मोहि । (४) १ बी० उहि । २ बी० को जान न पारा । ३. वी० वात कहत सिर मुप महि मारा । (५) १ बी० अरजन जैस धुनपु कर गहै । २ बी० उहि की हाक न मानई रहै । (६) १. म० कहहि लोर मुनहु तुम्ह चादा । २ वी० अैसै । (७) १ बी० राव । २ वी० मार्यो ।

१० (२८० आ)

'ओडन खाड मैना लइ' सूती ।
'सब (सहि)' निसि जाग बिरह कइ' भूती ।
दुहु 'मिलि घसि तइ रोड सचारा' । 'करहि गहत जनु उठी झनकारा' ।
मैना माजरि रूप मुरारी । 'एहि गुन कतहु (कहत) न देखउ नारी' ।
ओडन गाढ (खाड)' 'गेडुवा (कुडौर) सिर धरा' ।
'नैन नीर चख झरि झरि परा (काजर झरा)' ।
काउ ऊच नहि बोलसि बोलू । अउगुन करति राखि 'मोर' तौलू ।
'एत रूप (सरूप)' सयानी 'अउ कुलवती बारि (नारि)' सजोग ।
तुम्ह 'पथ[नही है]'चादा मनु राता' । अव 'तेहि[नही है] परा' विजोग ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १४७।१ तथा १४८।१, वी० ८७६-८७८ ।

[म० मे यह कडवक दो वार आया है, अत प्रथम वार का पाठ सामान्य

रूप से देते हुए दूसरी वार का कोष्ठको मे दिया जा रहा है] ऊपर दिया हुआ पाठ म० का है, वी० के पाठान्तर यथास्थान नीचे दिए जा रहे है। मैं० यहा पर अत्रुटित है, और ओडन-खाड तो अपना लोरिक लेता ही गया है (दे० ओडन खाड लोरकर गहा—परवर्ती कडवक), पुन कडवक का सगठन सदिग्ध है (१), (२), तथा (४) ओडन-खाड से सवधित है शेष पक्तिया मैना की आत्म-प्रशसा की है। अत यह कडवक भी प्रक्षिप्त लगता है।

शीर्षक—म० दस्तान शमशीर व सिपर लोरिक गिरफ्तन मैना।

टिप्पणी—पहले स्थान पर इस कडवक के बाद तर्क है 'लड लोरिक घर', जो इसके पहले आने वाले कडवक का है, और दूसरे स्थान पर कडवक के वाद तर्क है 'कार' जो स्वीकृत २८१ का है।

पाठान्तर—(१) १ वी० वोडन सिर दे मैना। २ वी० सव। ३ वी० की। (२) १ डी० घाटेहि मिलि रुड सचारी। २ वी० कर गहि जान उठै झनकारी। (३) १ वी० इहि ढग कतहु पिषीय न नारी। (४) १ वी० सिरहते लीन्हा। २ वी० रोइमि लाख बहुत दुष कीन्हा। (५) १० वी० मौ। (६) १ वी० अते सरूप। २ वी० गावति जोग। (७) १ वी० अस नेहु। २ वी० चाद मनु वीधा। ३ वी० सो पर्‌यो।

११ (२८१ अ)

रहु कवरू भल बात न जानैहि। अनजनते कस काहि बखानै।
रग कर वूड न पावै तीरू। चाद रहा रग मोर सरीरू।
बात सबै याह पड षड गई। मुहि लगि चाद कलकी गई (भई?)।
अब जौ रहौ त लागै लाजा। चाद मरै फुनि हमरे काजा।
दइ कर लिष्या सु मेट(टि) न जाई। महर धिया सग मो सहा आई।
मैना माजरि तजि कै रगु चाद सौ कीन्ह।
दुप ता निसहि वहु फिरि के अबहि दिसतरु लीन्ह॥

सन्दर्भ—वी० ८८२-८८४।

मैं० तथा म० यहा पर अत्रुटित है, और रग का तर्क लोरिक कुवरू से करता, यह कम सभव प्रतीत होता है। यो भी भागने की इस जल्दी मे सवाद का खिचना कम सभव और स्वाभाविक प्रतीत होता है। इसलिए यह तथा वाद के तीन अतिरिक्त कडवक प्रक्षिप्त लगते है।

१२. (२८१ आ)

बोला कंवरू सुनि धौ लोरा। कहा करासि चाद फुनि तोरा।
अति बड महर धिया सग आये। कुर कौ बहुत अंकरकु लाये।
छाडि देहु घर आपनै जाई। जस नहि परिहसु महर कराई।
अत सुनि महर करसि बड बैरू। हम डरु आहि होइ तुम्ह पैरू।
वोछ पुरषु अस करिहै काजा। सरग कार मुष होइ घर लाजा।
भल न कीन्ह अस लोरिक चादा कै बैराई।
माइ वूढि औ माजरि मैना गगा दीन्ह वहाइ॥

सन्दर्भ—वी० ८८५-८८७।

यह कडवक भी प्रक्षिप्त ज्ञात होता है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी।

१३ (२८१ इ)

मुनी वात लोरिक भइ झारा। फिरि फिरि गोवरु निरषि निहारा।
चांद तेहि सका मनि करै। वचनु भापै वाइकु न सरै।
झूरै मनहि औ[रु] डर षाई। बैरु न अस तुम्ह महरु कराई।
महरि वचनु इक मोसौ कीन्हा। आधे गोवर राजु मोहि दीन्हा।
राउ रूपचद बांठा मार्‍यौ। असमै गोवरु महरु उबार्‍यौ।
फुनि चांदा लागे मनु मोरा। येह परि तुम्ह सौ पर्‍यो बिछोरा।
अब तुम्ह [भ]अै सयाने पौलनि करिहौ सार।
विरहिनि माजरि मैना झूर न देहु किहि वार॥

सन्दर्भ—वी० ८८८-८९१।

यह कडवड भी प्रक्षिप्त ज्ञात होता है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी। इस कडवक मे पांच के स्थान पर छ अर्द्धालियाँ हैं, यह भी सन्देह-जनक है।

१४. (२८१ ई)

कुंवरू कहा लोर अस भावै। विरह जरत अम्ह कैस कलावै।
एकै लोर सुनहु मोरी वाता। देषहु नारि जिसे मनु राता।
अति वर राई वराई गये। यद्र अहल्या तिवई रये।
देषहु चदु कलकी भयो। रावन मीय हेतु फुनि गयो।
नल पडौ कौ कहिये गियानू। तुम्ह फुनि तिय सग भये अयानू।

मैना रूप न तीवई देष्यो इहि सैसारि।
कहा भाई तुम्ह तजिहौ कहौ सु मोहि बिचारि ॥

सन्दर्भ—बी० ८६२-८६४।

यह कडवक भी प्रक्षिप्त ज्ञात होता है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी।

१५. (२८२ अ)

भादौ मास निसा अधियारी। मन महि डरै न चादा नारी।
छाइ रह्यौ घन मेघ अडबरु। जानु कि धरती लागौ अबरु।
बरषत नान्ही बूद सुहाई। चली चाद मुधि काह न पाई।
फिर ताह कौउ न दीसै लोगू। सभ को अपनै करै सभोगू।
इक अधियारी बरसैहि मेहा। ता रुति भौगी तजैहिन गेहा।
चाद चल लै लोरु तहा अति अधियारी रैनि।
को नहि दीसै ना मिलै बोल न कोउ बैनि ॥

सन्दर्भ—बी० ८६६-६०१।

यह तथा आगे के चौदह कडवक चादा-लोरिक की उस खोज से सम्बन्धित है जो दोनो के गोवर छोडने पर महर के द्वारा कराई जाती है, और जिसमे असफल होने की सूचना बावन को दी जाती है। इनमे लोर-चादा का भागना भादो मे बताया गया है (२८२ अ २), जबकि स्वीकृत कडवको मे वह सावन मे कहा गया है (२७५ २)। मैं तथा म० यहा पर अत्रुटित है, और उनमे इन पन्द्रह कडवको मे से एक भी नही है, अत ये निश्चित रूप से प्रक्षिप्त हैं।

१६ (२८२ आ)

बीती निसा भयो भुन सारा। कहै बिरसपति बोलहु बारा।
दिन दिन रैनि दुपह बिहानी। आजु कि तुम्हारी झार बुझानी।
मनमहि भेदु बिरसपति जानै। कबही दूसर पहि न बपानै।
तबहि नरायन चेरि बुलाई। चाद न बोलै देपहु आई।
उठी बिरसपति सेज निहारी। सो जनही कही उपइ बारी।
कहै बिरसपति चाद सुनि भेदु न जानै कोऊ।
औगुनु मोहि भयो कछु तौ मोहि कहि समुझाऊ ॥

सन्दर्भ—बी० ६०२-६०४।

१७ (२८२ इ)

मदिर महि चादा छिपि रही। ढूढत रानी चाद न लही।
सूना मदिरु सेज सब सूनी। देनि बिरसपति झौहा रूनी।
सबै तरायनि तहा मुरझाई। मदिर माहि परी बिललाई।
ऐक वार चाद तुम्ह आवोहु। मुषा कवरु तुम्ह आइ दिषावोहु।
अहो बिधाता भयो बिवोगू। देषि करंकु हसै सभ लोगू।
तबहि विरसपति उतरी कहयो महरि सौ जाई।
सैज सून चादा की मदिर देषौ आई॥

सन्दर्भ— वी० ६०५-६०७।

१८. (२८२ ई)

महरि महरु मदिर चरि धावा। चाद दुलारी देष न पावा।
सूनी सेज चांद तह नांही। मूरछि परा झुरैहि मन माही।
इक अफसोसु झूरिहै कोऊ। अहो चांद कहु लै गयो कोऊ।
गोवर माहि उठ्यो वहु सोरू। रैनि वडी तहा होइ न भोरू।
कोउ(ऊ) सुधि न जानै काहू। अहो सोरु योहु कौनु अगाहू।
निसि अधियारी रैनि डरु कोय न बाहरि जाई।
चादा सुधि न जानही तहा को कहै न आई॥

सन्दर्भ—वी० ६०८-६१०।

१९. (२८२ उ)

मनहि वहु करै विलापा। अहे विधात दीन्ह सतापा।
अवहि दिपावोहु वारा मोरी। कौन पाप मो धीया बिछोरी।
चाद दुलारी मो कोहु देहू। कै मो जीउ कढि कै लेहू।
कौ रस हौ यह ऐत वियोगू। इक दुषु औरु हसै सभ लोगू।
तुम्ह विनु औरु न कोय मिलावै। तुम्ह पसाइ अब चादा आवै।
महरि महरु मूरछि परहि कोन उठावै आई।
अति वियोग चेता नही तवहि न मुरछा जाई॥

सन्दर्भ—वी० ६११-६१३।

२०. (२८२ ऊ)

पवनि छतीसक आये बारा। लही सु तबहि चाद की सारा।
कोइ कहै उपइ वाह गई। कोइ कहै देवाह हरि लई।
रूपवति सदरि जैसै बारी। यद्र अषारै भइ पियारी।
कोई कहै किने हरि लीन्ही। देषि सरूप यद्र कौह दीन्ही।
कोई कहै राकसु लै जाई। सीय समान कि देषी आई।
वाजुर सुधि कोई लहै कबहू वोहु ले जाई।
बहुत दिवस वोहु येक दिन पर्यो देषि मुरझाई॥

सन्दर्भ—बी० ६१४-६१६।

२१ (२८२ ऋ)

उठि महरु बिरसपति बूझै। तो कौहु चाद गइ निजु सूझै।
तबहि बिरसपति झूरै नैना। गहबरि मनि तहा बोलै बैना।
जौ हौ भेदु चाद कौ पाऊ। तौ हौ चाद कैसै गेहि न धाऊ।
जेत वियोग कौर तनि सहै। बारै बार बिरसपति कहै।
महरि रोसु तहा अधिका कीन्हा। साचु बिरसपति तै कछु दीन्हा।
सुन्यो बिरत मै नर महि लोरिक सौ कछु नेहु।
अबहि पठावोहु कोइ जनु ढूढहु ता घर गेहु॥

सन्दर्भ—बी० ६१७-६१६।

२२ (२८२ ऋ)

महरु क [हा] यह दोय जन धावोहु। लोरिक कौ बेगि लै आवोहु।
दोय जन बेगि लोर घरि आवा। घर महि ढूढा लोरु न पावा।
मैना षौलनि दोऊ जागी। लोरिक नही दाह तनि लागी।
देषि कछु नहि बोल ऊभारा। मनमहि जाना लोरिक मारा।
मोर कहत लोरकु ना रहा। तैसै करत अबहि करु लहा।
दोइ जन घरु ढूढताह तहा न पावहि लोरु।
सही पिरम रस चादा कहु लेइ सु नाठा चोरु॥

सन्दर्भ—बी० ६२०-६२२।

२३. (२८२ लू)

घर महि नही लोर हथियारा। दीठी सूनी सेज अपारा।
दोउ नेवर चादा तने। चलत पथ तै बोलहि घने।
लोर उतार सेर पर धरा। चांदा लेइ पयाना करा।
वै दोई नेव जनाह पिछानै। दोउ लेय महर पहि आनै।
देषि महरु तहा उठा रिसाई। लोरिक कुनबा मारहु जाई।
मत्री कहहि राय सुनु अैसी करै न कोई।
यकु करकु तुम्ह चाद लगि दूसर मारत होइ॥

सन्दर्भ—वी० ६२३-६२५।

२४. (२८२ लू)

जाइ भौहरै मैना पैठी। षैलनि आई तहा ही बैठी।
भीतिरि रोवै झौहा दोऊ। जातेहि बाहरि सुनै न कोऊ।
इकु रोवैहि अरु डरिहैहि षरी। लोरिक लागि अवस्था परी।
महरु कहै कोऊ जनु धावोहु। लोरिक चापि पकारि लै आवोहु।
महरु कि मन्त्रिह तो समुझावा। लोरिक कहहु कौन दिस धावा।
महर लाज उपनी घनी कछु न बोलै बैनि।
तब मंत्री बाहरि कहैहि देषु छमासी रैनि॥

सन्दर्भ—वी० ६२६-६२८।

२५. (२८२ ए)

मंत्री कहहिं निवारहु रोजू। जलमहि जाते लहै न षोजू।
निसि अधियारी भादौ मासा। देपि गगनु रो लेइ उल्हासा।
वहुरि बात यह नगुन लीजा। लेताह अकरकु कुर कौहु दीजा।
अैसे हुइय न होय कै काऊ। सुनि करि समझा सहदे राऊ।
जा दिनि जनमी चादा बारी। मत्रेहि तिहि दिन बात बिचारी।
परथसि चिन्ता गरभ की उपनी अगि अपार।
ईछ करी देवाह तनी पाछै जनमी बार॥

सन्दर्भ—वी० ६२९-६३१।

२६ (२८२ ऐ)

जा दिनि चाद कि परगट भई। चिंता महर तनी नहि गई।
देस देस का नरवै राई। तिन्ह की मुधि गोवर महि आई।
महरि न उतरु काहू दीन्हा। बहुरिह काहू पयाना कीन्हा।
करम सजोग जैत घर व्याही। बावन बरु पायो तिह ताही।
इक बावनु अरु चषि है कानी। मनमहि डरी चादा रानी।
कुर करकु ता दिन दियो सीर न राष्यौ ताहि।
चाद कि बरजी ना रही तब घरि आइ आहि॥

सन्दर्भ—वी० ६३२-६३४।

२७ (२८२ ओ)

लोरिक पूठि ये विधि आवै। जै आवै तौ परी लजावै।
वाजुर ताहि रूप मुरझावा। राव रूपचद जा लगि आवा।
गोवरु सहरु राई तहा जारा। पाईक वहुत महर कर मारा।
अति कऊ घरि चादा गई। हमरै जानै भल अस भई।
वहुत द्यौस चादा जौ रहती। कौन जानै कछु चादा करती।
अव तिस गयाह जु भल भई उपनी अगेह सिधि।
जानौ औषध वाहरी गइ निरतर व्याधि॥

सन्दर्भ—वी० ६३५-६३७।

२८ (२८२ औ)

रासि जनम की महरि सचारी। असि नाह भली विचारी।
अव यह बात कहे जो कोऊ। मोर सास ना लहिहै कोऊ।
पर इक पाइक कौहु बुलाई। बावन सुधि कहौ अव जाई।
यकु लोरिकु अरि यनु यहु मोरा।
मो तेहि अधिकु कि बावन तोरा।
जैसै वावनु आडा आवै। ता पहि लोरु जान नहि पावै।
इकु जनु भेज्यौ महरि तहा बावनु कहियो जाई।
सुनि करि बावनु रौसु करि चरा तुरगम धाई॥

सन्दर्भ—वी० ६३८-६४०।

२९ (२८२ अ)

बाहुरि महरि बात न चलाई। यहै सुधि लोरिक सभ पाई।
गइ सु चादा सबही जानी। गोवर माहि किने न बषानी।
कुरि करकु काहू कै आवै। ताते उत्तिमु आधिकु लजावै।
वोछा पुरुपु ने जानै ग्यानू। तैसौ मानु तैसौ अपमानू।
कुरि करकु नरवै कै लागै। प्रगटै सुधि सुरायाहू आगै।
लाज उपनी महर कै कछु सुषु अगि न होई।
चाद करकी बाताह गोवरि कहै न कोई॥

सन्दर्भ—बी० ६४१-६४३।

३० (२८६ अ)

परि गई चादा हेठि न काऊ। कछु न सभारै हाथ न पाऊ।
लोरहि दुहु चषि नीद न आवै। जागै झूरै बहुरि सतावै।
हिरदै पोलनि मैनां नारी। झूरि झुरि लोरिक्र मनहिं बिसारी।
उठि उठि लोर भौ धोरू। रैनि छमासी होय न भोरू।
देपी चादा सूत न जागै। दुहु चषि लोरिक नीद न लागै।
रवनि ठवनि गजगामिनि मैना दइ सवार।
मै कस जानौ अबही केरि करै इहि बार॥

सन्दर्भ—बी० ६५६-६५८।

इस तथा वाद के तीन कडवको मे चादा नाव पर अकेली चढ कर चल देती है, और जब नाविक उससे अनुचित प्रेम का प्रस्ताव करता है, गहनो के किनारे पर ही छूट जाने का वहाना करके वह नाव को वापस कराती है और तव उसके साथ लोरिक भी नाव पर सवार होता है। इन कडवको मे इस शका का समाधान नही है कि जिस लोरिक के लिए उसने विवाहित पति और पिता का घर छोडा, उसको सोता छोड कर चादा ने नदी पार करने की चेप्टा क्यो की। प्रसग के स्वीकृत कडवको से इनका विरोध स्पष्ट है (दे० २८८ अ-आ की टिप्पणी)। २८६ अ ६ लगभग वही है जो आगे ३७४ ६ है। फिर म० यहा पर अत्रुटित है और, उसमे ये नही है। अत ये अवश्य ही प्रक्षिप्त हैं।

३१ (२८६ आ)

रैनि विलाप करत मुरझाना। उठी चाद जहा उगयो भाना।
चादहि पेवट देषि हकारा। देपत परि गा हुइ बिसभारा।

षिन इक मूरछि बहुरि नि जागा। चाहत अधिक रग मनु लागा।
सुरग देषि परी जहा नारी। फुनि पेवट यह बात उभारी।
कहौ कौन तू अस कै आई। सपी सहेली को न सहाई।

फुनि चादा अस बोली षेवट पारि पठाऊ।
मोत्यो हारु मै देहो तू बड बार न लाऊ॥

सन्दर्भ—बी० ६५९-६६१।

३२ (२८६ इ)

लोरु न जान चाद चरि नावा। षेवट षेव चला जस धावा।
अरघ लागि फुनि [नि] रषिसि आहै। चाद रवन अस पेवटु चाहै।
चादहि पूछ तोर कस भाऊ। कहहु मोहि कस करहु पसाऊ।
मोरें आहि जु भल घरि नारी। कहहु तौ करिहौ दासि तुहारी।
कर गहि बाह चाद गै मेलैं। झरकि छुडाइ चाद तह ठेलें।

जिहि रुति दाप सुपकणी बाईस तिहि मुप रोगु।
दई लेष सब पाइ है का मनि वौरे हस लोगु॥

सन्दर्भ—बी० ६६२-६६४।

३३ (२८६ ई)

चाद कहा मोहि औटे लेहू। हम सुरग होय जस नेहू।
अरथ मो सभ पारै राहा। मैं बहरी हा औ काहा।
चलहु अरथु लै आवह जाई। फुनि मनसा तुम्ह है सु कराइ।
हरषा पेवटु नाव बहोरी। अस तिरिया मोहि बिधि लै जोरी।
षिन इक काजि करौ न कुभाऊ। ऐ गौहनि कै दुसस(र) न आऊ।

षेइ नाव ले आवा अब घन करिहौ काह।
रग कर धन छाडै रगु सैसार अथाह॥

सन्दर्भ—६६५-६६७।

३४-३५ (२८८ अ-आ)

चादा नारि उतावरि चली। खेवट कहा वात हइ भली।
गई चाद जह लोरिक रहा। खेवट सरगा वइसि एक अहा।

गुन बाधे वह खेवट सरगा घेरत आइ।
लइ कइ पार उतारउ सो धनि जउ लहि लोक तह आइ॥
माझ गाग हुत खेवट कहा। कवन नारि घर कहवा अहा।
रइनि कहा तुम्ह कीन्ह बसेरा। नदी न देखेउ गाउ न खेरा।
घर हुत विहिया चलिउ रिसाई। घरि एक राति गांग हउ आई।
तू मेहरी कइ जाति अकेली। साथ न कोऊ सखी सहेली।
काहे न कोउ मनावन आवा। जेहि घर आहि सो आव न पावा।
सासु ननदि मोरि माखिउ दीख न कूवह पनार।
मोर साई बिरुद्धा तेहि छाडीउ घर बार॥
चादहि खेवट सो अस कहा। अभरन मोर वहि पारहि रहा।
खेवट सरगा खाचि लइ आवा। बोलतहि लोरिक माथ उचावा।
दीन्हि तिराई खेवट कही। दुइ जन चले न तीसर अहा।

सन्दर्भ—मैं० २३७।१ ३ तथा २३९ ४ के बीच।

शीर्षक—पहले दोहे के बाद है सवार शुदन लोरिक चादा बर कश्ती, तथा दूसरे दोहे के वाद है : गुज़ार शुदने लोरक व चादा अज आबे गाग।

स्वीकृत २८८ म० पत्र १५३।१ पर पूर्ण कडवक के रूप मे दिया हुआ है, अत यह प्रकट है कि म० पाठ मे ये पक्तिया कभी न रही होगी और कदाचित् उसके किसी पूर्वज मे भी न रही होगी।

इन पक्तियो के सन्दर्भ मे भी प्रश्न यह उठता है कि लोरिक को इस पार ही छोड कर चादा को अकेले नदी पार करने की उतावली कौन-सी थी ? स्वीकृत कडवको मे कहा गया है कि [उस औघट घाट पर] कोई नाविक न देख कर लोरिक ने एक छलना का आश्रय लिया, [वह छिप गया] और चादा वार-वार अपने को इस अभिप्राय से दिखाने लगी कि [उसे अकेली जान कर] कोई नाविक कदाचित् आ जाता, और जव एक नाविक उसे सरगा के निकट दिखाई पडा, उमने अपना कगन चमकाया। जव चादा को अकेली देख कर एक केवट सरगा लेकर आया, तव लोरिक भी प्रकट हो गया और लोरिक तथा चादा—दोनो उसके सरगे पर चढ गए, केवट इस पार ही रह गया और लोरिक करिया लेकर सरंगा खेने लगा। दोनो ने दैव-सयोग से नदी पार की और वे डूवते-डूवते बचे। यदि घटना किसी और प्रकार से घटित हुई होती,

जैसी कि ऊपर की अतिरिक्त पक्तियो मे वह घटित होती वताई गई है, तो स्वीकृत कडवको मे भी वह उसी प्रकार से वर्णित होती। स्वीकृत कडवको और इन दो कडवको की पक्तियो मे इस प्रकार स्पष्ट विरोध है। फलत ये अतिरिक्त पक्तिया निस्सदेह प्रक्षिप्त है।

३६ (२९६ अ)

'धीमर' जाइ 'राइ' गुहरावा। कौतिगु एकु 'जो रे' दिखरावा।
तितिया एक 'जो दइय' उपाई। सरग 'हुते जनु' आछरि आई।
'अइसी तिरिया कतहु न देखेउ'। चाद 'तराइनि' एक न 'लेखेउ'।
'पुरुख एकु आहइ ओहि' पासा। देखत 'दुहु कह मारि गइ' सासा।
'अउर' पिटार 'सब सोनइ' भरा। 'अदस न जानउ केहि कह' धरा।
चलहि राउ ओहि 'मारि कइ' 'तउ लइ आइय जाइ'।
'घरहि माझ होइ उजियारा' 'अस तिरिया जउ आइ'॥

सन्दर्भ—म० पत्र १५७।२; बी० १०३१-१०३३।

शीर्षक—दस्तान रवाने शुदन वावन तरफ खान खुद।

मैं० यहा पर अत्रुटित है, जो उसके चित्रो से प्रकट है, धीमर के कहने पर राजा ने क्या किया यह भी कडवक मे नही कहा गया है, इसलिए यह कडवक प्रक्षिप्त ज्ञात होता है।

पाठान्तर—(१) १ बी० धीवरि। २ बी० राउ। ३ बी० दई। (२) १ बी० जु दई। २ बी० हते जानौ। (३) १ बी० ऐसी तिरी न काहू देष्यौं। २ बी० तरायनि। ३ बी० लेष्यौ। (४) १ बी० पुरुपु येकु जौ है वहि। २ बी० रहै लेहि मर। (५) १ बी० और। २ बी० सुवन सव। ३ बी० अैस न जानौ कहा है। (६) १ बी० मारहु। २ बी० चाद लिआवहु जाई। (७) १ बी० घरिह माहि उजियारा। २ बी० अैसी तिरी जौ आई।

३७ (३०७ अ)

राजइ आगे लोर हकारा। अकउ लाइ पाट वैसारा।
वूझइ बात लोर मोहि कहऊ। मास चारि तुम्ह इहवा रहऊ।
फुनि मइ पठउब पाटन लोरा। वार न बका होइ जेहि तोरा।
चादहि आनि मदिर वइसावहु। तुम्ह सजोइ पटसार उतारहु।
घोर आनि वाधहु घोरसारा। सार करउ जानउ परिवारा।

सुनि लोरिक असि बिनई राजा हम न रहाहि ।
गोवर छाडि हम आए इहवा अब हरदी दिसि जाहि ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र २५८ । इसके स्थान पर एक अन्य कडवक शेष तीन प्रतियो मे मिलता है और इसके पूर्व और बाद के कडवको मे, जो मैं० मे भी है, हरदी जाने का जो कथन है, इस कडवक के दोहे मे उसकी पुनरुक्ति है, इसलिए यह कडवक प्रक्षिप्त लगता है ।

३८ (३११ अ)

सर्वाहि बहेलिया केरी(रि) खुटानी । नियरी मीचु दई विहि आनी ।
पइसि बीर कोपिया सब जीवा । ओही धनुक [?] बरु गीवा ।
जो सभारइ सो तस मारा । को रोवइ को करइ पुकारा ।
एक मुह मोइ उठे सौ मुहाई । बहु मारे बहु गए पराई ।
जार्ताह मर्राह जान नही पारइ । आगे भाजइ पाछे निहारइ ।
ढे(डे)ढउ सहंस बहेलिया तिन्हको मीचु घटानि ।
कउआ चील्हि सो फाग भा जबुक गीध अघान ।।

सन्दर्भ—भो० पत्र ३१ (नवीन) ।

इस कडवक के अन्त मे प्रति मे कडवक ३११ आ का तर्क है ।

शीर्षक—जग कर्द लोरिक बा अहेरियान व योजवानान व बअजे गुश्तन्द व बअज़े गुरेख्तन्द ।

यह तथा इस प्रसग के कोई अन्य कडवक न मैं० मे हैं और न बी० मे, जो इस अश मे अत्रुटित हैं । इसलिए इस प्रसग के कडवक प्रक्षिप्त है ।

३९ (३११ आ)

रगत रोहिनी आवइ गधाई । चला लोर छोडिहि सो ठाई ।
वहुरि वीर ओडन कर लीन्हा । पुरुब दिसा तब पायत कीन्हा ।
कर कइ गहे ते सोहर सूते । चउरासी लख निद्रा भूते ।
रुड मुड मर्हि मेदिनि वा(पा)रा । वहु रोवहि बहु करहि पुकारा ।
सवरत नदी जो 'भई पवारा । डाकिनि जोगिनि उतरि न पारा ।
चलो(लेउ) सो वनखड लोरिक वसेउ वीर वनजाइ ।
पाकरि रुख देखि करि तेहि तर रहइ लुभाइ ।।

सन्दर्भ—भो० पत्र ३२ (नवीन) ।

भो० मे इस कडवक के अन्त मे एक तर्क है जो वाद के कडवक का होगा ।

शीर्षक—जाए जग गुज़ाश्त खाने शुद चादा व लोरिक तरफ हरदी ।

यह कडवक भी प्रक्षिप्त ज्ञात होता है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की सन्दर्भ-टिप्पणी ।

४० (३२८ अ)

गारुरि समदि चाद 'लइ' चला । 'ओहि तेइ बात कहेसि' अति भला ।
वाई 'दिसि' तू लोर न जाइसि । 'दहिनी' बाट बहुत 'फर पाइसि' ।
पिरम भुलान 'वह बोलु न मानइ' । बाट 'चलत सो हारि न जानइ' ।
'डाडी कइ लोरिक' चाद 'चलाई' । 'दहिनी दिसि ओइ दिस्टि न लाई' ।
सूरु आपन 'डड छाडहि' कहा । जहा 'बरजहि ठाढ हइ' तहा ।
'बार अठउ तेइ' जाइ तुलाना लोरिक सारगपूर ।
दिन कर मूडु उचावा राता 'जइस' सिंदूर ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १७३, बी० ११२२-११२४ ।

मै० इस स्थान पर अत्रुटित है और उसमे एक भी कडवक सारगपुर तथा वहा के द्यूत-युद्ध से सबधित नही है, पुन इसमे लोरिक बावन को मारने की बात कहता है (३२८ औ ४), किन्तु कथा मे बावन इससे हार कर गोवर लौट गया है (२९७.१), इसलिए तेईस कडवको का यह प्रसग प्रक्षिप्त लगता है ।

म० मे इस कडवक के बाद तर्क है 'हिया सिरान' जो ऊपर आए हुए कडवक ३२८ का है, जिससे ज्ञात होता है कि म० का आदर्श या उसका कोई पूर्वज यहा किंचित् अस्त-व्यस्त हो गया था ।

शीर्षक—म० विदाअ करदन लोरिक हकीम रा ।

पाठान्तर—(१) बी० लै । २ बी० दाहिनि बाट कहसि (तुल० दूसरी अर्द्धाली) । (२) १. बी० दिस । २ बी० दाहिनि । ३. बी० फिरि (फर—फा०) आइसि । (३) १ बी० बोलु नहि मानै । २ बी० चला वोहु हरि न मानै (तुल० प्रथम चरण का तुक) । (४) १ बी० डडी कै लोरिकि । २ बी० चलावा । ३ बी० दाहिनि दिस वाह द्रिष्टि लगावा । (५) १ बी० बरु छाडै । २ बी० वजिये ठाढा ही (हइ—फा०) । (६) १ बी० सुर अथवत डडु । (७) १ बी० जैस ।

४१ (३२८ आ)

सागर पुर जौ लोरिकु आवा । सायर तीर महापति पावा ।
पूछ महापति कत हूते आवसि । खेलु जुवा धन बहुत कमावसि ।

उहु जु आहि जुवा कौ रूखा । देषत हिये होइ अति सूपा ।
लोरु सुनाई तौ परु पैसारे । सारि आनि कै पासा ढारै ।
वैसि जाइ तहा कूकू लोरा । देषौ यहै जुवा फरु मोरा ।
वोर तरै जावै सा छलु करि ढाकी सारि ।
सारि हाथ लै महापति आवा पहिल बार उंनि पारि ॥

सन्दर्भ—बी० ११२५-११२७ ।

४२ (३२८ इ)

सारि हाथ लै महापति आवा । पासा [लो?]रि जु देषे धावा ।
कहसि महापति मै भी षेलबि । हाथ लेइ तौ पासा मेलबि ।
विदू चौकु दुई तैसा जानौ । दस जोरत हुत लेषै आनौ ।
पाच तीन औ साता ढारौ । सात दूवा चौकु सभारौ ।
ये दावै तौ माझ बुलाऊ । बीती बार छकर चलाऊ ।
बाराह दूवा पासै षेलहि हम परदेसी बार ।
सुरिजु चादु सरगि स्यो यब कै बीती पार ॥

सन्दर्भ—बी० ११२८-११३० ।

४३. (३२८ ई)

दूसर वार जु लोरिकु हारसि । अभरन उपरि हाथु उभारसि ।
ऐकु दाउ पै पेलि बिनानी । सूर उतपि तब चौहा आनी ।
नव दस सेतो येक न ढारै । तौ याहि तिरिया जूवा हारै ।
परै न दाऊ चाद बुझावा । बूझा लोरु पाट उलटावा ।
देपि महापति कोहु उचावा । चादा मनहि हुवा पछितावा ।
थाप येक उठि लोरिक मारसि महपति परा लुटाई ।
वडी वार कै समुझा सव वुधि गई घटाय ॥

सन्दर्भ—वी० ११३१-११३३ ।

४४ (३२८ उ)

जाइ महीपति लोगु चलावा । भाई महापति असपति आवा ।
आगे लोरिक पीछै धना । जाई परे झाऊ के वना ।
दाहिनी दिस ते पनिच वजावा । पाछै धरि के आगै आवा ।

बहुते लोग बहुत असवारा। षाड पाइका होय चमकारा।
कहै लोरु तुम्ह जाहु पराई। हम आगै तोरी रहै न बडाई।
छाडि जाहु तुम्ह तिरिया मत जहु मूड कटाई।
येक बार लरु हम सौ सभ को जाहु पराई॥

सन्दर्भ—वी० ११३४-११३६।

४५ (३२८ ऊ)

लोरिक आई षरगु चमकावा। असपति आ' आवा।
फरी कटि लोरिकि अस मारा। मूड काटि कै माझ अडारा।
दूसर रावत आगै सरा। माथ घाउ दै लोरिक धरा।
पाऊ फिराई लोरु तस मारसि। मूडु काटि कै बाह बिदारसि।
यको बीरु न उहि पहि जाई। बेलुक परग माथ पै खाई।
राउ कहै तस करिये जौ यह तिरी रहाइ।
राषसु येकु महापति ल्याइस लोरहि सूझ न जाइ॥

सन्दर्भ—वी० ११३७-११३९।

४६ (३२८ ऋ)

चाद देपि तौ सुरिजु न देपौ। सुरज का बानु चाद भरि छेकै।
लोरिक कहा चाद मुनु आई। राषसु लागा सुझ न जाई।
मतरि चाद कै राषमु भागा। लोरिकु बहुर सूत जस जागा।
देपि लोरिक रापस कै साधा। माझ काटि कीतसि दोई आधा।
धुनपु साधि चादा तस तानसि। बहुते रावत ठाढे आनसि।
लवटा लोरु नगर महि आवा वैर(रि)हि भयो तरास।
मारि नगरु मै सभ उठि जारौ महपति कत तू जासि॥

सन्दर्भ—वी० १०४०-१०४२।

४७ (३२८ ऋ)

लवटा लोरु नगर महि आवा। बैठा पौरि महापति पावा।
झूट पकरि कै उहिकौ लीतसि। मूड काटि कै दुहु दिस कीतसि।
राय वस्तु दडु देई पठावा। लोरिक लीन्ह पाट पहिरावा।
जिय भुजि के उठि चला। कोई सुगनु हुवा तिह भला।
पैसत हरदी बेस्या आई। चादा जोरि सुरिजु ले आई।

माथ नाइ कै सेवा कीतसि चादा रही लजाई ।
निश्चल नगर सुहावै की तिथि हरदी पाटण रहिया छाई ।।

सन्दर्भ—बी० ११४३-११४५ ।

४८ (३२८ लू)

चांद सुरिजु महुवरि आवा । पाटण माझ उतारा पावा ।
टका सहस चारि उनि दीता । पाटन भीतरि राना कीता ।
पांड पुरहरी काढि जिवावा । कापरु आनि लोर पहिरावा ।
येक आन मोरि दूसर तोरी । तोरी बहुल मोरि फुनि थोरी ।
. .. . ।

दिवसु लोरु महुवरि पै आछै साझ परी घर जाई ।
आधी राति चाद स्यो सुरिजु केरि कराई ।।

सन्दर्भ—बी० ११४६-११४८ । एक अर्द्धाली बी० मे नही है ।

म० प्रति महुवरि-ओलगानी के इस प्रसग के पूर्व ही खडित हो गई है, किन्तु यह प्रसग उसमे भी रहा होगा, यह निम्नलिखित पक्ति से प्रकट है जो म० मे तोता योगी द्वारा किए गए चादा के अपहरण प्रसग मे है—

हम फुनि हरदी पाटन जानी । राजा महोर कीनि ओलगानी ।

(३२८ अ ट. ५)

४९ (३२८ लू)

चाद राति जौ कीन्ह सजाई । राज कहा यह कत हूते आई ।
महते कहा मुरिजु लै आवा । चाद का भाउ सरगि कत पावा ।
उहि की जोति भया उजियारा । परि गा राजा जिउ न सभारा ।
औरि गरह सब मारि अडारै । जूझु सुरिज स्यौ कोई न पारै ।
राव कहा महता कस कीजै । दरबु सूर दै चादा लीजै ।

महते कहा मुनौ धौ राजा बोल्यौ मनहि विचारि ।
चाद नारि तौ पाइये सुरिजु हरेवैहि मारि ।।

सन्दर्भ—बी० ११४९-११५१ ।

५० (३२८ ए)

राजा 'महता' इकु मतु कीन्हा । लोरु बुलाइ पान 'लइ' दीन्हा ।
लोरिक काजु 'अम्हारा कीजइ' । पतिया मोरि हरेवहि 'दीजइ' ।

पतिया 'बात आगे' अरथायसि । 'पतिया भाइ अरथ जसु पायसि' ।
घोरा कापरु लोरहि दीन्हां । 'इहवहिं समदत आकौ लीन्हा' ।
'तउहि त' लोरु 'साहि' घरि आवा । 'चाद भेट लइ' केतनि धावा ।
'बस करि सो कैकान' अडावा रात जु राजा दीन्ह ।
घोरइ चढि 'तब' लोरिकु लीन्हा चाद जु साबर कीन्ह ॥

सन्दर्भ—शि०, बी० ११५२-११५४ ।

शीर्षक—शि० अज मशविरत वजीर करद बर्ग दाद राव महोर लोरिक रा व फरस्तादन नाम खुद विरादर ।

कडवक के अत के चार शब्द शि० मे अपाठ्य है ।

पाठान्तर—(१) १ बी० महतें । २ बी० लै । (२) १ बी० हमार कीजै । २ बी० दीजै । (३) १ बी० पानि अैस । २ शि० पढतहि पतिया लोरहि लायसु (?) । (४) १. बी० लोरिकि हरपित वैहि सो लीन्हा । (५) १ बी० तैहि । २ बी० साह । ३ बी० ठाढ आगै होइ । (६) १ बी० घन कै सावर आनि । (७) १ बी० कै ।

५१ (३२८ ऐ)

लोर हरेव कटक नेरावा । राउ अहेरे षेलन आवा ।
हाथी सहस चारि लै आवा । उट घोर मोहि गनत न पावा ।
रावत पाइक धानुक आये । और पषरिया लाष चराये ।
वेलिक षाड जैस उजियारा । तारा सरगि गनि को पारा ।
स्यगनि घटा और पयाना(?) । टडौ हररौ करत पयाना ।
पेलति षेलति आवति राजा देपि वीर असबार ।
पूछौ योहु को पायकु भेवा कत हूते आइ मुरारि ॥

सन्दर्भ—बी० ११५५-११५७ ।

५२ (३२८ ओ)

पाइक आगै आइ मिलाना । कत तू षतरी आइ तुलाना ।
राजा महुवरि हौ जु पठावा । देषौ राव अहेरै आवा ।
जिह कौ मुहवरि सरगि चलावै । पाती दे करि इहा पठावै ।
कहसि लोरु तुम्ह आपु उबारौहु । पतिया देषहु बहुरि सभारौहु ।
पाई [क?] साथेहि लोरिक आवा । देकर पतिया पाउ उठावा ।

पाढि कै पतिया अलगै वोलसि लोरहि लेहु मझाई ।
तैसै ले धरि आवौहु जैसे निसरि न जाई ।।

सन्दर्भ—वी० ११५८-११६० ।

५३. (३२८ औ)

लोरिक कौ सब लोगु बुलावै । सुमती लोरु नेर नहि आवै ।
ढुक राहेहि कै भजि जु जाई । बहुरि न जीवत बैसे आई ।
हौ सु आहि जिह बाठा मार्‌यौ । अैरु गगेउ रूपचंदु हार्‌यौ ।
वावनु म(मा)रि वीर हौ आयो । चांद महर धी तिरिया पायो ।
हाथ खाड लै लोरु उठावा । जूझे रावत बेगि बुलावा ।
वहुते राव देषि मोहि भागैहि तू स राड को आहि ।
मूड काटि कै पैरि वधाऊं ना तरु जिउ ले करि जाहि ।।

सन्दर्भ—वी० ११६१-११६३ ।

५४ (३२८ अ)

सुनि कै राजा कोपु उचावा । आपन कोड मरन तू आवा ।
तुहि कै मीचु दई दिषरावा । तौ तू मो सौ जूझे आवा ।
कौन अ(आ)हि जो करै ढिठाई । कहौ हकारि जीउ लै जाई ।
सुन न वोलु उभो पै आहै । रावत मन जूझे पै चाहै ।
सगरे कटकहि सरगि चलाऊ । नातरु ईहा मूडु कटाऊ ।
वहुते रावत वहुत इक घोरा लोरिक ते षन आव ।
फरिया लीन्ही पाव न छाडौ रोपि रहौ दोड पाव ।।

सन्दर्भ—वी० ११६४-११६६ ।

५५. (३२८ अ)

तीसर साहन घोर चलावा । तरप पाड लौरिक सिरि आवा ।
स्याउ (?) वोडन दुहु दिस कीतसि । चरू भरवि वहि लोहू पीतसि ।
येक हाथ कं पकरि अडारै । दूसर हाथ मेलि तस मारै ।
देपि हरेव फामु करि लावा । चिरियेहि जैसै लोरु विधावा ।
काटा फामु हरेव कर धरा । उभरा लोरु हरेउ पसि परा ।

मूड काटि कै पैरि वधायसि तब उठि चलिया बीर ।
गाइ दरबु सभु लै आवा चांदनु लाइ सरीर ॥

सन्दर्भ—वी० ११६७-११६६ ।

५६ (३२८ क)

लोरिक वूरी पाटन आवा । जेठा पूतु हरेव का पावा ।
नाउ बलालु औरु पुनवता । ठाकुरु भला औरु गुनवता ।
जिय का दानु बलालहि दीतसि । अरथु दरवु सबु उहिका लीतसि ।
बैरी उहिका मारि अडारसि । ठाव हरेव क टीका सारसि ।
आपनु नायेहि नगरु बसावा । अवरै बस्तु लेइ घरि आवा ।
हरदी आइ तुलाना लोरिक महुवरु देषि डराई ।
गाइ दरवु हरेव कारे माधी गढ महि दीन्ह पठाई ॥

सन्दर्भ—वी० ११७०-११७२ ।

५७ (३२८ ख)

सुनि कै महुवरि कोटु लवावा । जानसि लोरिक मारन आवा ।
गढ महि गभिनी गामु सरावैहि । फाट धरति तौ आपु लुकावैहि ।
अैसौ दुरोहु राव दुषु कीता । हरदी पाटन वा दुषु दीता ।
जौ व पुरुषु तू आहि सयाना । पर की तिरिया देपि लुभाना ।
जैसौ दुरायह राय न कीजै । अगि चराइ भेदु नहि दीजै ।
राजहि अैस न छाजई परतिय देषि लुभाई ।
लोभी पापु सकौरै लोभहि पापु न जाई ॥

सन्दर्भ—वी० ११७३-११७५ ।

५८ (३२८ ग)

महुवरि सुरिजु आनि गै लावा । देइ दरबु बहु घरहु चलावा ।
लवटा सुरिजु चाद पहि आवा । सुरिजु देषि चाद जिउ पावा ।
आपुनु दुख सबु चाद सुनावा । महुवरु राउ गरहु भरि आवा ।
ज्यो ज्यो आपनु मोहि न दीन्हा । त्यो त्यो राव चाहि जिउ लीन्हा ।
अस दुपु लोरिक तुम्ह बिनु भया । अैस कालु सो दूभरु भया ।

आजु राति जै सुरिजु न आवति कालि राहु मोहि लीत ।
हौ तौ उहि कौ बोलु न मानति जै करौत सिर दीत ।।

सन्दर्भ—बी० ११७६-११७८ ।

५९. (३२८ घ)

सूरी(रि)जु चादा आगै चला । नगर माहि देषि घरु भला ।
तहु वहा लोरि धौरहरु कीता । काढि जीउ तौ चादहि दीता ।
चादहि राति सुरिजु जौ आवा । अगरु धसाइ चदनु तनि लावा ।
चाद सुरिज सब नषत बसारा । षेलहि दूवै फूल कि मारा ।
बाह बाह गै राति बिहावहि । नैन नैन देषि द्योस गवावैहि ।
षाड घीउ जस मिरिया आछैहि कोई कतहू न जाइ ।
पिरम मात जस भूले अैसै रहै लुभाइ ।।

सन्दर्भ—बी० ११७९-११८१ ।

६० (३२८ ङ)

सावनि चाद सुरिज सौ माती (?) । रवै रैनि दिनु पिरम की माती ।
सायर देषि नित नित जाही । हसा जोरी केरि कराही ।
निसि अधियारी बरसै पानी । चाद सुरिज लै सुरगि लुकानी ।
पिरम पियाला रस भरि लेही । सेज चरे धर पाउ न देही ।
. . ..
चारि मास इक चित भई षेलहि रहस दोउ षेल ।
येक सेज इक बैठहि दुहु महि होय चित मेल ।।

सन्दर्भ—बी० ११८२-११८४ । कडवक की एक अर्द्धाली नही है ।

६१. (३२८ च)

माह मास निसि सौरि बिछावहि । पिरम रसायनि धरे भरावहि ।
विरहु पकरि कै आनि मिरावा । धिरत पांड सौ भूजि पकावा ।
सेज चरे नित रली कराही । यहै रसायनु चुवत पिवाही ।
मुरिजु चाद लै भीरि गै सोवै । दोड जन देषत येको होवै ।
चादा मुरज सुरज जस भई । सुरुज चाद चाद होइ गई ।

सुरिजु चाद को भाषै चाद बोल उठि देई।
पान चाद कौहु दीयहि सूरिजु उठि कै लेई।।

सन्दर्भ—वी० ११८५-११८७।

६२ (३२८ छ)

जेठ मास भरि फूल बिछावै। कुस चंपा लै सीस गुथावै।
सेदुर चदनु सीसु भरावै। अवरु मनोहरु थनहरि लावै।
बिहसिचि चादा पहरै आगी। अन दोइ भाति सुरग सुरगी।
सहमा नैन करति अति हाला। दही पषारति लबे बाला।
जै लै चाद सुरिज पर जाई। सुरिजु चाद सौ रली कराई।
जे(ये)कु वरसु भा चाद सुरिज सौ सोइ कतहु न जाइ।
सुरिजनु आइ उतरा गोवर तो मैना सुधि पाय।।

सन्दर्भ—वी० ११८८-११९०।

६३ (३२८ अ क)

उठि गइ चादइ नीदि भलि आई। जस सपने हउ नागहि खाई।
कहिसि बिचारि पथ सिर जाही। सपन कि सउथुक वूझिय नाही।
सुठि चारि मइ सौतुक दीसी। काल्हि रेनि जउ बन मह पईसी।
करम हमार सिद्ध एक आवा। जेहि हुत हम तुम्ह फेरि मेरावा।
पाउ सिद्ध कर छाडेउ नाही। जब लगि जीवहि सेव कराही।
देइ असीस सिद्ध असबोला तू मोर भाइ।
बाट माझ एक तोता जोगी मत चादहि लइ जाइ।

सन्दर्भ—म० पत्र १७३।

यहा पर मैं० तथा वी० अत्रुटित हैं और उनमे यह तथा प्रसग के परवर्ती ११ कडवक नही मिलते है। वी० मे इस सर्पदश तथा चादा-अपहरण प्रसगो के स्थान पर महापति और असपति से द्यूत-युद्ध का प्रसग है। लगता है कि ३२८ अ के बाद म० के किसी पूर्वज के खडित हो जाने पर इन प्रसगो की कल्पना कर ली गई, जो कथा के किसी लोक-गाथा रूप मे भी नही मिलते हैं।

शीर्षक—म० वहोश शुदन चादा आजा (?) लोरिक गुफ्त।

६४. (३२८ अ ख)

लोरिक जउ तोहि पीरा परही। चाद तोरि जउ तोता हरही।
दइय सवरि मोहि सवरेसि लोरा। ठांउ ठाउ मइ आउब तोरा।
एतना कहि सिध चला उडाई। चाद लोर ओइ रहे लुभाई।
धरि इक ओहिं सिर बइठ नवाए। फुनि उठि चलि कइ बाट खुटाए।
दिवस चारि जो चलतहि भए। नगर एक पइसार तेहि गए।
लोरिक कहा चाद तुम्ह बइसहु हउं सो नघ(ग)र मह जाउं।
कनिक आनि ओलावती परि जेवन कछु रे कराउ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १७४।
म० मे इस कडवक के वाद तर्क 'चाद मढी' है, जो अगले कडवक का है।
शीर्षक—म० · चु लोरिक तुरा रोज़ बद उफ्तद मारा याद कुन।

६५ (३२८ अ ग)

चाद मढी बइसारि छपाई। लोर नगर मह सउदइ जाई।
तोतइ छपिउ देखि तउं पावा। छद लाइ चादा पहं आवा।
आसन मारि वइठ तह आई। अब मो पह कित चांदा जाई।
सीगी पूरि नाद तिसु कीया। कीन (?) बैसदर बरा तेहि दीया।
सुनतहि चाद वेधि तसि गई। रीझति मरन सनेही भई।
जइस अहेरिया पापरधि मिरिग बेधि लइ जाइ।
तोता भएउ अहेरिया चादहि गोहन लाइ लाइ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १७४।
शीर्षक—म० दरमियान वुतखान हिन्दुआ चादा रा मानद।

६६ (३२८ अ घ)

सीगी पूरि मतु सो लावा। चाद मन किछु चेत न आवा।
चादा गोहन लइ चला भुलाई। गाव गीत अउ किछु न कराई।
तइसिइ सग भइ चाद सभागी। गाव गाव फिर गोहन लागी।
देखि सिद्ध अउ कथ अधारी। भूली किछु न सभारी वारी।
चादहि प(वि)सरा सभ सयसारु। बिसरा लोर जीयन जो अधारू।

सुने नीद रव रूरे पाछे हेर न बारि।
लोर आइ जउ देखइ मढी चादा बिनु अधियारि ।।

सन्दर्भ—म० पत्र १७५।

म० मे इस कडवक के बाद तर्क 'सूनि' है, जो अगले का है।

शीर्षक—म० चीजी अफसून आ जना ख़्वाद कि चाद दीवान शुद।

६७ (३२८ अ ड)

सूनि मढी देखि लोरिक रोवा। काहे कह बिधि कीन्ह बिछोवा।
अब हउ जउ रे सरग चढि धावउ। तउ नहि खोज चाद कर पावउ।
लोर चहू दिसि भइ भइ आवा। खोज चाद कर राति न पावा।
रैनि गई पै चाद न पाई। उठा सुरुज चलि खोज कराई।
आजु राति जउ चाद न पाई। सारस परि रे मरउ उडाई।
ठाव ठाव जउ लोरिक बूझइ धनिया एक सुधि पाई।
अथए सुरुज चाद जसि तिरिया तोता दिख लइ जाई ।।

सन्दर्भ—म० पत्र १७५।

शीर्षक—म० चू लोरिक आमद चे बीनद कि चाद दर बुतख़ान नेस्त।

६८ (३२८ अ च)

लोरिक जउ तोता सुनि पावा। खोजतहिं खोजि जाइ नियरावा।
नगर एक पइसत सुधि पाई। तोता सग तिरिया एक आई।
बीर नगर तउ चाहन लागा। फीक (?) होत तोता कर रागा।
सुनतहि नाद लोर गा आई। देखि चाद मन रही लजाई।
दौरि लॉर तोता कर गहा। अरे भिखारी तोहि मारउ काहा।
धरे जटा लइ चला राव पह तोहि फिरावउ सूरि।
झूठिहि जटा लागि विहरानी ओहट भा चलि दूरि ।।

सन्दर्भ— म० पत्र १७६।

म० मे इस कडवक के बाद तर्क है 'आखि काढि' जो अगले का है।

शीर्षक—म० चू शुनीद लोरिक कि दस्त पा बुरीद वरदरस्त।

६९ (३२८ अ छ)

आखि काढि कइ तोता धावा। लोर कहा हउ एइ पइ खावा।
लोरिक भागि चला जो डराई। मत तोता मोहि फ(भ)सम कराई।

तोतइ खा(घा)लि लोर मोकरावा। सिद्ध बचन हुत मन मह आवा।
सिद्ध आइ लोरिक पथ ठाढा। लोरहि तोतहि बोल जउ बाढा।
दूनउ कहहि मोरि जोई। दोउन्ह माझ मगावज होई।
चांदा ठाढी कौतुक देखइ मुह मह बकति न आव।
बिकी खेल अउ गीत भुलानी रावल सीस डोलाव॥

सन्दर्भ—म० पत्र १७६।
शीर्षक—म० चश्म कुशादह करदन व दीदन तोता लोरिक रा।

७० (३२८ अ ज)

सिद्ध कहइ तुम्ह काहे जूझहु। करहु गियान अब मन मह बूझहु।
सभा करहु अउ करहु बिचारा। दहु को जीतइ को रन हारा।
जूझइ चाहि जउ पूछा भला। बांन्हा जोरे लोरिक चला।
चाद साथ भइ अउ सिध भवा। भीतर नगर सभा मह गवा।
नगर अथाई बइठि जउ दीठी। इन्द्र सभा परि सभा बईठी।
सभा सवारि जउ रावत बइठ उहाई जाइ।
चारि खड का न्याव निवारहि एकउ भर नहि जाइ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १७७।
म० मे इस कडवक के वाद तर्क 'आइ' है जो अगले कडवक का है।
शीर्षक—म० . दरमियान जोगी व लोरिक गुपत शुदन।

७१ (३२८ अ झ)

आइ चहू मिलि कीन्ह जुहारू। जूझि मरत हहि करहु बिचारू।
वोला सभा कहहु दुहु आई। काहि लागि तुम्ह जूझहु भाई।
एक एक आपनि वात चलावहु। झूठ साच आपन तुम्ह पावहु।
उठि लोरिक तउ अइसा कहा। बइठि तोतइ यहि चेटक अहा।
सींगी पूरि चाद हरि लीन्हा। सगरिइ रइनि खोज मइ कीन्हा।
खोजत पाएउ तोता धरेउ विहरि गए वार।
छुवतहि जटा लागि विहरानी जानां सब संसार॥

सन्दर्भ—म० १७७।
शीर्षक—म० ' हर चहार कम सलाम रसानीद अस्त।

७२ (३२८ अ ञ)

पूछइ सभा कहहि दहु लोरा। कवन लोग घर कहवा तोरा।
कहवा अइसि तिरी तइ पाई। काकरि रही यह कहवा जाई।
काहे निसरेहु दुइ जन होई। इतर साथ नहि आइहि कोई।
कवनि पुहुमि हुत लोरिक आएहि। कहवा जाहि कहा वह गाएहि।
घर हुत काहे निसरे लोरा। लोग कुटुब किछु कहे न तोरा।
काहि लागि तुम्ह निसरे साच कहहु तुम्ह बात।
हम फुनि देखि नियाव निबारहि पूछहिं तुम्हरी बात ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १७८।
म० मे इस कडवक के वाद का तर्क स्पष्ट नही है।
शीर्षक—म० गुप्त जोगी ज़न मन अस्त।

७३ (३२८ अ ट)

तोता कह मोरि बारि बियाही। परी राउ तोरइ को आही।
सभा कहइ दहु अब का कीजइ। इन्ह दुहु कह कस ऊतर दीजइ।
दोउ कहहिं यह मोरी जोई। इन्ह दुहु महं हर साखि न होई।
वह तोता यह रावन अहइ। धनि पूछहि दहु वह का कहइ।
चादहि मन किछु चेत न आवा। अइस मत्र पढि तोतइ लावा।
लोर कहा यह मोरी तिरिया अनु मोहि गोहन आइ।
भा भिखारि हइ तोता जोगी सकति चढइ लइ जाइ ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १७८।
शीर्षक—म० गुप्तन जोगी कि ई जन मन अस्त।

७४ (३२८ अ ठ)

जाति अहिर हम लोरिक नाऊ। गोवर नगर हमारेउ ठायू।
सहदेउ महर कि चांदा धिया। महर बियाह बावन सिउ किया।
बावन केरि नारि लइ आएउ। चादा तिरी महर धिय पाएउ।
हउ जो आहि जेइ बाठा मारा। आसो राव रूपचद हारा।
हम फुनि हरदी पाटन जानी। राजा महुवरि कीनि ओरगानी।

चाद सनेह जउ निसरेउ छाड़ि कुटुब घर बार ।
तुम्हरे देस यह तोता जोगी रहा होइ बटपार ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १७६ (?) ।

म० मे इस कडवक के बाद तर्क है 'सुनतहि' जो इसी प्रसग के बाद के किसी कडवक का रहा होगा, जो अब प्राप्त नही है ।

शीर्षक—म० पुरसीदन जात गुआल इस्म लोरिक जन चादा ।

७५ (३३१ अ)

'तव कै (गै) लोरु' 'राइ गोहरावा' । बहुरि गगेऊ गरहु होइ आवा ।
चाद लेउ ताहि सरगि 'चलावउ' । 'सभै' 'तराइन माझ बइसावउ' ।
कहा लोर तुम्ह खाड 'सभारहु' । 'मोहि सिउ गगेऊ तुम्ह नहि पारहू' ।
एक खाड 'लोरिक' तस लावा । फरी 'काटि' टाटर महिं आवा ।
बापु बापु 'कइ' आपु 'उबारेसि' । भाइ माइ'कइ' 'ओइ जिउ हारेसि' ।
'कहेसि' चेर 'तोर होइहउ' 'लेइ डडु जिउ राषि' ।
कहा लोर सुनु 'गगेऊ' 'अइस बोलु केहि' 'आखि' ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १५८।१, बी० १०५८-१०६० ।

मै० यहा पर अत्रुटित है और यह प्रसग भी अकस्मात आया हुआ है, इसलिए यह प्रसग प्रक्षिप्त लगता है ।

म० मे इस कडवक के वाद तर्क है 'डडु लै', जो बाद के कडवक का है ।

शीर्षक—म० दास्तान वाज मुश्तइद शुदन व आमदन राव गगेऊ बर लोरिक ।

पाठान्तर—(१) १ म० पहिलै लोरिक । २. वी० राय गुहनावा (गुहरावा—ना०) । (२) १ वी० चलाऊ । २ म० सरग । ३ वी० तराय महि वैसाऊ । (३) १ वी० आपु उवारहु । २ वी० मोसै गगेव कहा तुम्ह पारहु । (४) १ वी० लोरक । २ म० फाटि । (५) १ वी० कै । २ वी० उवारसि । ३ वी० कै । ४ वी० उहु जिउ हारसि । (६) १ वी० कहसि । २ वी० तोरौ होइहौ । ३ म० अकसर कइ मुह झारिव । (७) १. म० कहेसि सेवक । २ वी० गगेव । ३ वी० अैस वोलु तू । ४ म० भाखि ।

७६ (३३१ आ)

डडु ले लोरिक कीत पयाना । पाकुरि देषत आइ तुलाना ।
पाई पीई करि दून्यो वसे । नागिनि चाद सोवत निसि डसे ।

उठा जबहि सूरीजु परगासा। चाद गरै देष्यै नहि सासा।
हाथ चलाइ पाव धरि पाई। लोरिक जानौ प(व)रग की पाई।
कर पलोय ले र तस कीता। तुहि तरि आइ पूर दुषु लीता।
मूड मारि कै रोवै उभी बाह पसारि।
दई बिधाता चाद जिवावोहु बरि मोहि घालहु मारि ॥

सन्दर्भ—वी० १०६१-१०६४।

म० मे भी यह कडवक रहा होगा क्योकि म० पत्र १५८ पर इसका तर्क है। वाद वाला कडवक म० मे है ही। किन्तु मैं० यहा पर अत्रुटित है और इस तथा ३३१ ई के सारे विस्तार स्वीकृत कडवक ३१३ तथा ३१७ मे आ चुके है, जो वी० तथा अन्य प्रतियो मे समान रूप से है। इसलिए यह तथा वाद के दो कडवक प्रक्षिप्त लगते है।

७७ (३३१ इ)

सात दिवस लगि 'सरग' 'डफारा'। 'सूक सनीचर' आनि बइसारा।
राहु केतु '[त?]स' देखत अहा। सूरिज 'मेह पाउ नहि रहा'।
'वुध' बिरसपति दोउ 'बुलाए'। चाद कि चित करहु 'दुहु आए'।
'वरु' मोहि लइ 'करि' मारि 'अडावहु'। चाद मोर 'पइ' आजु 'जियावहु'।
'करिकै' 'बछा' 'के ढाई' 'धरे'। मीन सिघ 'आगू होइ खरे'।
सुरिजु 'कि रोवत तिरियइ' 'अउरु' नखत को आहि।
'ओहिकि' झार सरगि सभ 'जरई' 'अउर' धरति 'कस' आहि ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १६३, बी० १०६५-१०६७।

शीर्षक—म०. दास्तान करदन लोरिक अज़ सूर चादा।

यह कडवक भी प्रक्षिप्त ज्ञात होता है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी।

पाठान्तर—(१) १ वी० सुरिज। २ वी० डभारा (डफारा—फा०)। ३ वी० सुकरु सनीसरु। (२) १ म० यह। २ वी० सीस पाइ वहवहा। (३) १ म० सुक्र। २ वी० वुलाई। ३ वी० तुम्ह आई। (४) १ वी० वरि। २ वी० कै। ३ वी० अडावौहु। ४ वी० पै। ५ वी० जिवावोहु। (५) १ म० ककुहा। २ वी० अछ। ३ वी० कहौ लै। ४ वी० घरी। ५ वी० कौ आगे वरे। (६) १ वी० रोवै तौ तिरिया रोवहि। २ वी० और। (७) १ वी० उहि की। २ वी० जरिहहि। ३ वी० और। ४ म० को।

७८. (३३१ ई)

पाकुरि काटि लोर चिय रचा। झाप देइ मै राषौ बचा।
तिहि षिन येकु गारुरी आवा। कनक जप देकै चाद जगावा।
सुरिजु पाव गारुर कै परा। चाद अमावस पून्यो करा।
रहसा सुरिजु चाद गै लाई। सुरिजु चाद लै माथ चराई।
पानी सुरिजु वारि सिर पीता। पून्यो चाद गारुरी कीता।
मरत्यो ते रु जगायो जब हौ करौ बधाई।
तोर पसाइ चांद मै पाई गहनै गही छुड़ाई॥

सन्दर्भ—बी० १०६८-१०७०।

म० यहा पर अत्रुटित है और उसमे यह कडवक नही है, किन्तु इस प्रसग के अन्य दो कडवक म० मे भी है, केवल यही नही है, इसलिए लगता है कि यह कडवक म० अथवा उसके किसी पूर्वज मे प्रतिलिपि करने से रह गया। यह कडवक भी प्रक्षिप्त है—दे० ३३१ आ की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शब्द-कोश

इस शब्द-कोश मे केवल उन्ही शब्दो को सकलित करने का यत्न किया गया है जिनके सवध मे भाषा अथवा अर्थ-सवधी स्पष्टीकरण आवश्यक था, और उन शब्दो के भी प्रयोग के कुछ ही स्थल निर्दिष्ट किए जा सके है। आशा है कि इस प्रयास से रचना के प्राचीन भाषा-रूप और अर्थ को समझने मे सहायता मिलेगी। सख्याए क्रमश कडवको और उनकी पक्तियो की है।

अउ अओ अतस्—यहा से, इसी समय से २३१ १। अउ वह, ३३४ ७। अउछ् आउछ् आकुच्—आकुचन करना, सिमटना १३१ ७ (तुल० 'उछ्')। अउर अवर · अपर—और, अन्य ५६ ६, १४४ ७, ३८७ १। अकवार। अक्कवारी अकपाली—आलिगन ७५ ५, ७५ ६, २६५ ७, ३६४ ५। अकुरी अक+डी—आकडी, जिसकी सहायता से वरहा अटकाया जाता था २८० ३। अगिराय्—अगडाई लेना ६३ १। अगीठी अग्नि+इष्टिका ५१ ३। अछ्—खिचते हुए होना, आधिक्य के साथ होना २८ ७। अथव् अस्तम्+इ—अस्तमित होना, शान्त होना ३०६ ६ (दे० आथव्)। अवराई आम्रराजि १६ १। अवराउ। अवराव आम्राराम २५६ ४। अकरक कलक २२३ २, २२८ ५। अक्खत . अक्षत—समूचा चावल १६५ ५, २४४ ५। अखार . अक्खाड अक्षवाटक—अखाड़ा, मल्ल-भूमि १११ ६। अगर . अगुरु ३४१.४। अगियारि अग्गिआरिआ अग्निकारिका—अग्नि कर्म २४४ ३। अगुर आकर (?)—आकर पदार्थ, जिससे अन्य पदार्थों की रचना होती है २ ७। अगुसारय् . अग्र+सारय्—आगे वढाना, आगे चलाना १२६ १। अघाय् अग्घव्—तृप्त होना १६१ ७, १७२ ३। अचभा अत्यद्भुत (?) १७१ १। अचगर—औद्धत्यपूर्ण, अन्यायपूर्ण ३०१ ६। अजोर् योजय्—जोडना ७५ ३। अठाउ अस्थान २७४ २। अडागर . अडक्खिय+डा—विना कुचला हुआ, समूचा २७ ४, १४७.३। अतिरेख अतिरेक—आधिक्य ६६ ५। अथाई आस्थानिका—गोष्ठी २६ १। अधारी—आसन-क्रिया करने के समय हाथो को टेकने की एक लकडी १६४ ३। अनत अन्यत्र

४४ २ । अनवट अगुष्ठ पैर के अगूठे का आभरण-विशेष ३२८ ६ । अनवन अण्ण+वण्ण . अन्य+वर्ण—अनोखा, अद्भुत ३० २, ८८ १ । अनारी अणाढिय अनादृत—तिरस्कृत ६५ ४ । अनियार—अनी (बर्छी की-सी नोक) वाला ७६ ७, ३२४.२ । अनी . अनीक—सेना १२२ ५ । अपान अप्पाण . आत्म—जीव ३१५.७ । अवेर अवेला—देरी ६० ५ । अभिर्—भिडना २६२ २ । अभुवाय् अभ्युपपद्—कृपा अथवा आश्रय प्राप्ति के लिए [इष्ट देवता की] सेवा मे पहुचना [अथवा उसे व्यक्त करने के लिए किसी नावित द्वारा सिर का हिलाया जाना] १७६ ६, २६१ ४ । अरकत आरक्त ७६ ३ । अरग्—चुप होना २६० १ । अरघ अर्घ—पूजा की सामग्री, पूजा का आयोजन १४१ ६ । अरथ अर्थ—धन ३४ ४ । अरसी आदर्शिका—आईना ७३.४, ३३२ ४ । अलख अलक्ष्य—जो दृष्टि मे न आ सकता हो ३१२ ५ । अवगाह्—जल मे प्रविष्ट होना ९८ ७ । अवगाह . अवगाढ—गभीर, गहरा २१.२, ७८.६, २०५ ५ । अवघट अप+घट्ट—बुरा घाट २८६ ७ । अवधार् अव-धारय्—निश्चय करना ३६६ ३ । अवसान अवसन्न—अवसादपूर्ण २२४ ३ । अवास आवास ३६७ ५ । असकिति . असत्कृत्य—असत्कार्य ३७ ३ । असरार असराल—निरतर १९४ ३ । असरौ आश्रय—आसरा ९९ ३ । अस्तानी अस्त्यान—उपेक्षा, तिरस्कार २३४ १ । अस्थन स्तन ७७ ७, १९६ ३ । अहिआन्=अलिज्ञान करना पहचानना ३३१ २ । अहेर . आखेट २४३.७ ।

आएस आदेश—नमस्कार, ['आदेश' कहकर नमस्कार करने वाला] योगी १६७ १ । आक अक—चिह्न, पहिचान ६१ २ । आत अत्र—आत ७८ ५ । आथव् अत्थम् अस्तम्+इ—अस्त होना २४.५ (दे० अथव्) । आव आम्र—आम २६१ ७ । आख् अक्ख् आ+ख्या—कहना २९५ ४, ३११ ६ । आगर अग्र—बढा-चढा, बढकर २० ६, ३६ ६, २४१ ६ । आछ् अस्—होना ३२ ६, ७२ ४, १७५ ४, २५६ ७ । आछरि अप्सरस्—अप्सरा ८२ ३, २४६ १ । आथि—थी ७५ ४ । आधि—मानसिक व्यथा ४७ १ । आन् आ+नी—लाना ४६ १, २३९ ४ । आन । आन . अन्य और, दूसरा ११३ ३ । आरौ—आहट २२५ ४ ।

ईंगुर हिंगुल—सिंगरफ २४ ३, ३० १ । ईठ . इष्ट—२५४ ५ ।

उछ् · आकुच—आकुचन करना, गात्र—सकोच करना १९८ ३, ३९३ २ (तुल० 'अउंछ्') । उग् उग्ग् उद्+गम्—उगना, निकलना १३९ ६ । उघर् उग्घड् उद्+घट्—खुलना २४१ ५ । उघार् उग्घाड् उद्+

घाटय्—खोलना १५७ ७। उचाट उच्चाटन—कार्यादि मे अरति २४६ ४। उचाव् · उच्चय्—उठाना ५४ ४। उजार उज्जड [दे०]—ऊजड, निर्जन स्थान ३२२ ५। उजियार औज्ज्वल्य—प्रकाश, निर्मलता ४१ ३, ७१.३। उजियार उज्ज्वल—प्रकाशपूर्ण २७५ ७। उजियारि। उजियारी यथा 'उजियार' १०१ ७। उटव्—साहस करना, बाजी लगाना १८५ ४, २१४ २। उतराय् उत्तर् उत्+तॄ—[पानी आदि से] ऊपर या बाहर आना ३८० ७। उदिनल उदिण्ण उदीर्ण—उदीयमान ६६ ४, १८४ १, २७८ ७। उदेग उद्वेग २४६ ४। उधस् उद्ध्वस्—उध्वस्त होना, तितर-बितर होना २२० ३। उपटाव् उत्पातय्—उठाना, उमडाना ३२२ २। उपन्–उत्पन्न होना २१६ ६। उपराज् उपरच्—उत्पादित करना १८५ २। उपहर उप्पेहड [दे०]—आडवर युक्त २४३ २। उपाय। उपाव् उप्पाअ् उत्पादय्—निर्मित करना ७७ ५, १६४ ५। उवर् उव्वर उद्+वृ—शेष रहना, वच रहना १२६ ७। उवार् उव्वार उद्+वर्त्तय्—वचाना १३६ ३, २५७ ४। उभर्। ऊभर—उब्भ (ऊर्ध्व) होना, उठना १२६ १। उभार् उब्भाड्—उब्भ (ऊर्ध्व) करना, उठाना ३२६ ५। उरेह् उल्लिख्—रेखाकन करना १६३ १। ऊतर . उत्तर ६४ ४। ऊबट उव्वट उद्+वर्त्म—अटपटा मार्ग २८१ ४।

ऊभ उब्भ ऊर्ध्व—उठा हुआ २७७ ४, २६१ ७।

एकसर—अकेला ३५१ ६। एत इयत्—इतना ७३७।

ओछ . उच्छ तुच्छ १२१ ३। ओर अवर अपर—अन्य [छोर] २४ ५, १७८ ३। ओरग् ओलग् अवलग्—सेवा करना ११२ १। ओर-गाव्—सेवा या चाकरी कराना ३०२ ५। ओरगावन—सेवा, चाकरी ३२ ६। ओरमाव् ओलव अव+लम्ब्—लटकाना, नीचा करना ६५ ३। ओरवानी–ओलती ३४३ ५। ओरहन उपालम्भ २६६ १, २७२ ५। ओल्लार्—लिटाना १५४ १। ओहट अपघट्टक—दूर का स्थान ३६ २।

कउ कदा—कब २२३ ४। कडहार कर्णधार २०५ ६, ३६३ ३। कवर कमल २५६ ७। कक्कर कर्कर १४८ २। कखाव्—काखो मे से करते हुए धारण करना ३६५ ४। कचपची किचि-पचिअ कृत्ति-प्रचित—कृत्तिका से समृद्ध [नक्षत्र माला] १६२ ४। कचोर कच्चोल—कटोरा, प्याला ७५ २, १३७ ४। कट—शरीर-यष्टि ३३ ६। कटवा—काटकर पकाया जाने वाला पदार्थ १४५ २। कटार कर्त्तर १२५ ४। कत कुत—क्यो (?) ६१ ५। कनइ—पास ११६.२, १७१ ४। कनिक कणिक—आटा ४२ ६। कवि काव्य १४४ ६। कवित कवित्व काव्य १८ १। कविलास

कैलास—शिवलोक ३० ७ । करडी करण्ड+इका—टोकरी, डलिया, पेटिका १६५ ५, २७० १, ३८४ ३ । करटा करट्ट [दे०]—अपवित्र अन्न खाने वाला ब्राह्मण २५४ ५ । करन · करण—अवयव ६३ ५ । करवत करपत्र—आरा ३५७ ३ । करस . कलश ३०.४, २४८.४ । करह · कलह १३३ ५ । करा · कला १३८.६, ३५६.४ । करि : कडि · कटि—कमर ७६ २, ७६ ७ । करि । करिया · कट (वास, काष्ठ)+इका—करिआ, पतवार ५३ २, ७६.७, २८८ ५, ३३३ ३, ३७४ ३ । करी कलिका ८२ ४, २७० १ । करुव कटुक-कडुवा १४६ २ । कलाई कलाचिका ८४ ५ । कसमर . कश्मल—पाप, कालिमा ३७५ १ । काइ । काइ किम्—क्या, क्यो ६८ ७, ३६६ ७ । काउ । काऊ कआ+उ कदा+अपि—कभी भी ३८ २, ४४.३, १३४ ७ । काख कक्षा—बगल ३६५.३ । कादव कर्दम—कीचड ८६ ६ । कावरि कम्बि+डी—वास की वह फाटी जिसके दोनो छोरो पर लटका कर पिटक आदि ढोए जाते हैं ३३७ ३ । कागरूक—उल्लू पक्षी १६ ५ । काछा कक्षा कच्छा—कमर पर वाधने का वस्त्र धोती ८६ ५ । काढ् कड्ढ् . कृष्—खीचना, निकालना ५० २ । कानि—लिहाज़ २८५ ३ । कापर कप्पड कर्पट—कपडा २६ ४, ३३७ १ । कावि काव्य ३२६ ४ । कारक कलक—कालिमा, कालिख २७१ ५ । कारन । कारुन कारुण्य १५६ १, ३१०.३ । किंगिरी किन्नरी—एक प्रकार की सारगी १६४ ५ । कित कुत्र—कहां २३० ६ । किनरप कन्दर्प—कामदेव ४७ २ । कियाह · कयाह—जाति-विशेप का घोडा ७५ ४ । किर किल—निश्चय ही, प्राय पादपूर्ति के लिए प्रयुक्त २३८ ५, ३८६ १ । किरीज . किरिंज—वास का टोकरा २८१ २ । कीन वान क्रयेण-वर्ण—क्रय क्रिया जाने वाला वाना (पदार्थ), सौदा १५६ १ । कीनर किन्नर—रूपवान् पुरुष २८ ५ । कीर कील ५६ ३ । कुंडर . कुण्डल १३७ १ । कुविलाय् । कुमिलाय् कुड्मलाय्—कुडमल की भाति हो जाना, सिकुड जाना, मुरझा जाना १३८ ३ । कुवर कुमार—कुमार-भुक्त, गुजारेदार २६ ७ । कुर कुल २६ १, २६ ७, ४५ ६, ५१ १ । कुरल्—कूजन करना २२.६ । कुरुज क्रौंच—पक्षी-विशेप २२ ५, ३६३ ४ । कुवडा · कूप+डा—कुवा २६३ २ । कुवान . कुवर्ण—हीन वर्ण का ८७ ४ । कुसर कुशल १००.२ । कुसियारा कोप—गोझा, गुझिया ४० २ । कूकू : कुकुम—केसर ३१ ४, १४५ ५ । कूज क्रौंच—पक्षी-विशेप १४६ २ । केत । केतिक कियन्—कितना ८०.४, ७५४ २, ३३६.७ । केर [दे०]—सवध, सापेक्षता ७४२.१ । केरि केलि २७.१ । केवच्छ . कपिकच्छु—एक प्रकार की रोएंदार

फली जिसके स्पर्श से खुजली होती है १८२ १। कोप कुड्म—कोपल ५७ ६। कोटवार कोट्टपाल—नगर अथवा गढ का रक्षक २४ ७। कोठा कोष्ठ—प्रकोष्ठ ३९५ ५। कोठार कोष्ठागार—नाज का सग्रहागार ३८३ १। कोड कोड्ड [दे०]—खेल-कूद २८ ६, ५६ ३, २६७ ४। कोरि कोडि कोटि—करोड १३०.३। कोह क्रोध ३८९ ६। कोहाय्—क्रुद्ध होना, रोष करना ४४ ७। कोही . कोहिल्ली [दे०]—तापिका, तवा २३० ४।

खड—कथा का अश ६४ ६, ३२९ ४। खडवानी . खण्ड+पानीय–पानी मे खाड का घोल १५१ १। खडौर खण्ड+पूर। खण्ड+वर्त्तक—खाड (शक्कर) का लड्डू १९४ ५। खध्—गध देना २७ २। खधाई—गधी २५ ३। खजहजा · खाद्य+भ्रज्ज्य+क—खाद्य (वे पदार्थ जो अपने प्रकृत रूप मे खाए जाते है) तथा भ्रज्ज्य (वे पदार्थ जो भून कर या तल कर खाए जाते हैं) · १५२ ७, २१३ ३, ३३७ ५। खभार क्षोभ—अशाति १३९ १, ३८२ १। खरवार · खल्लवार : बडा पेटक, पेटारा ३३८ ५। खरी खडिआ खटिका—खडिया मिट्टी ३३२ २। खलीती स्खलित—बल अथवा साधन से हीन २१९ ६। खस् [दे०]—गिरना ३१० ६। खाई खाति—खाई २३ १, ३८१ ६। खाड खड्ड खड्ग—खाडा २०२ ४। खाव स्कम्भ—खभा ७१ ४। खिरउरा क्षीर+पूरक। क्षीर+वर्त्तक—दूध का लड्डू ४० २। खिस् दे० —गिरना २३ ७ (दे० 'खस्')। खीर क्षीर १४९ १। खीरोदक . क्षीरोदक—एक प्रकार का श्वेत झिलमिला वस्त्र १५३.१। खुट् क्षी—क्षय होना खडित करना ६० १, २१७ २, ३८८ ६। खुरुहुरी क्षुद्र फली २७ ६। खूट–टुकडा १४२ ५। खूना क्षुण्ण—मर्दित-चूर्णित [शरीर वाले साधु] २० २। खेम—कुसर क्षेम-कुशल ३३५ १। खेर। खेरा खेडय खेटक—जन-समूह, गाव १३० ४, २५२.६। खेरी खेटिका—फलक, ढाल ११० ४। खेल्—क्रीडा करना २७८ १। खेवट कैवर्त्त—केवट २८७ २। खेह—धूल ३१४ ३। खोपा—सिर के बालो का जूडा १९५ ४। खोर् खोड् [दे०]—अग—मार्जन करना २१ ५। खोरि—त्रुटि, दोष ३१४ ७। खोरी—गली २५ ६। खौंद खाविन्द [फा०]—स्वामी, पति १० ७, ११ १।

गडुवा कन्दुक—तकिया १९६ १। गर—गरगच (?), वह टीला जो किसी गढ के वाहर उसके भीतर लक्ष्य-वेध करने के लिए वनाया जाता है ९२ १। गरुव गुरु+क—भारी २३३ १। गह ग्रह—ग्रहणीय [पेय] ७५ २। गहबर—भाव-पूरित १ ७। गाग गगा २२७ ७। गाज् गज् . गर्ज्—गर्ज्न करना ८७ १। गाढ गड्ढ गर्त्त—गड्ढा ९२.१। गारि .

गल्ल—वात १२० ४। गारुरि गारुड—सर्प के विष को मन्त्रादि के द्वारा उतारने वाला ६५ ४। गास ग्रास—कवर १४६ ४। गिय ग्रीवा ५०.३। गुन् . गुणय्—विचार करना २३६ १। गुन . गुण—रस्सी, डोरी ६७.१। गुनियारी—गुणनीय वार्त्ता (?) ३२९.५। गुहार—पुकार १०५ ५, २९२.१। गुवा। गूवा गुवाक—एक जाति की सुपारी १८ ३, ९२.५, ३४१.१। गूद : ग्रथ्—गूथना २७ ५। गोइद : गोपेन्द्र—गोविन्द ८२.६। गोव् : गोपय्—छिपाना २३० ३, ३५८ ३। गोवर गोपुर। गोकुल—नगर-विशेष १८.२ [तथा पुन· अनेक बार], गोवार गोपाल—ग्वाला २५ १। गोहन [अवधी]—साथ १६५.४, ३१८ ४।

घाउ घात घाव ५८ २, ३२४ ३। घात—घाव ११०.४। घाम : घम्म घर्म—धूप ५२·१। घाल् घल्ल् [दे०]—डालना ५९ ४, ३२५ ५। घोर घोटक—घोडा ९४ ५।

चउतरा · चत्वरक—चबूतरा ३३२ ३। चदरावलि चन्द्रावली—जिसकी कहानी कुतुवन ने 'मृगावती' नाम से लिखी है ६० ७, ६१ ५। चख चक्खु चक्षुष्—आख ३४३ ३। चरुवा चरु+क—थाली, पात्र-विशेष ३४५.३। चलन चरण ८० १, ८५ १। चाद चीर—एक प्रकार का महीन श्वेत वस्त्र ७३ ३। चाक चक्क · चक्र ७५ १। चाचरि चर्च्चरी—फाग, फाग की धूम १२९ ५। चिल्हवासु—चील्हो को फसाने का कठिन फदा ३५७ २। चीय · चीअ—चिता ३२५ ३। चीस्—चीत्कार करना १९७ ४। चेना—चीनी कर्पूर ३४१ ४। चेर चेड · चेट—सेवक ४२ ३, पुत्र १२२ ७, १२३ ४, १२३ ५, १२४ ४, १२५ २, १२५ ३, १२५ ५ ['कुवरू के चेर' को १२५ ६ मे 'कुवरू क पूत' कहा गया है]।* चोख चोक्ख [दे०]—शुद्ध, पवित्र २१ २।

छइल छइल्ल—छैला १६७ ५। छद छद्म ११३ ६, २१४ ३। छठि षष्ठी १८८ १। छपय छप्पय षट्पद—भ्रमर १३७ ४। छरहटा छल-कृत्य (?) २८ १। छाज् छज्ज् [दे०]—शोभा देना ९६ १। छात छत्र ८ १। छार क्षार—राख ३५० ७। छाला खल्ल [दे०]—खाल, चर्म १९४ ३। छिनारि छिण्णा+डी [दे०]—असती, कुलटा स्त्री २५१ ५, २५० ४। छेक् [अवधी]—अवरोध करना ९१ ७।

ज जइ यदा—जब १४०.६, १७१ ७, २४८ ४। जइ। जउ यदि

* 'चेर' का यह अर्थ पुरानी पजाबी मे भी मिलता है, यथा एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु। (जपुजी, पौडी ३०)

३७ ४, १६८ ७, २५६ ५ । जउ यदा—जब ४६.७, १६८ ३ । जजमान यजमान—यज्ञ कराने वाला, पुण्यात्मा २५ २ । जमधर यमदष्ट्रा—शस्त्र-विशेष १२३ ५ । जरम जन्म—जीवन ४३ ५, ६५ ४ । जलकुक्कुरी—जल कुक्कुटी—मुर्गावी २२ ३ । जलहर जल-स्थल—जलाशय ५१ ५ । जाई जाया २८४ ३ । जावत यावत्—जितना १४३ ७ । जाजर जज्जर जर्जर—कुरकुरा, खस्ता ४०.१, १४६ १ । जाड जाड्य—शीतजनित जडता ५१ ४, ५६ ३ । जार् ज्वालय्—जलाना ६६ ६ । जिन्—जीतना १३५ १ । जूत जुत्त युक्त—जोड, जोडी का १२५ ७ । जूरा जूट . जूडा, केश-कलाप ६५ ५ । जे पादपूर्ति मे प्रयुक्त किया जाता अव्यय, अवधारण सूचक अव्यय १६७ ६ । जेत यावत्—जितना १५२ ५ ३८७ ३ । जेंव्—जीमना ३१३ ३ । जेवनार । जेवनारि जीवन-वारि—रसोई ३६ २, २०६ १ । जोई योगिता—स्त्री २८ १, ३७ ४, २६७ ३ । जोग योग—सयोग, मिलन ३०८ २ । जोगित । जोगिति योग्यता—सामर्थ्य ३४ ६, ५७ ३, ६७ ४ । जोन्ह ज्योत्स्ना ३१३ ४ । जोर योग्य—जोड, समकक्ष २५६ ३ ।

झर क्षर्—गिरना, टपकना ३४६ २ । झर । झल ज्वाला १८० ६, २४६ ३ । झरना क्षरण २१ १ । झरोखा जालाक्ष ५४ ३ । झाख्—झाकना २३ ४ । झार ज्वाला ५६ ४, १३६ ३ । झारि [अवधी]—सपूर्ण रूप से ६३.२, १४२.३, १६३ १ । झीन क्षीण १३७ ३ । झुरव् ज्वालय्—जलाना ४३ ६ । झूझ् युध्—युद्ध करना ११२ १ झूझ जुज्झ . युद्ध २६ ४ । झूर् ज्वल्—सतप्त होना १६४ ४ ।

टकोर—जिह्वा को चटखाकर निकाली जाने वाली ध्वनि-विशेष ११५ २ । टका—एक पुराना सिक्का ३०७ ३ । टाक टक—एक पुरानी तौल जिसके छ गुणित का छटाक होता था २८१ ४ । टाक—टका, एक पुराना सिक्का ३३८ १ (दे० 'टका') । टाकिनि टक्किनी—टक्क (पंजाब) देश की स्त्री, जाति-विशेष की स्त्री २४५ १ । टाड ट ड [दे०]—व्यापारी-दल, सार्थ ३४० १ । टिकइत तिलक+आयत्त—जिसे तिलक लगता हो, सामत ३४ ७ । टेसू किंशुक १२६ ४ ।

ठाढ ठड्ढ स्तब्ध—खडा [अवधी] ८२ ३, २११ ३ ।

डड दण्ड—मार्ग १४०.५ । डडाहर . दण्ड+भर—भारी डडा १२६ ३ । डफार—धाड २३५ ७ । डाड दण्ड—कर २६ ७ । डाग डगा [दे०]—लाठी, यष्टि १०६ १, २६८ १ । डागवइ डगवइ . द्रगपति एक सामान्य शासक जिसकी एक घोडी के लिए, जो दिन मे घोडी रहती और

रात मे अप्सरा हो जाती थी, कृष्ण ने उस पर आक्रमण किया था, जिससे उसकी रक्षा भीम ने की थी (दे० डगवै पर्व—सपा० डा० शिवगोपाल मिश्र, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग) १६८.२। डाक डक्क [दे०]—वाद्य-विशेष २०४। डाभ दर्भ ३२६ ६।

ढाठी—मुह का बधन ८८ ५। ढुक्—पहुचना ११६ २।

त। तइ . तदा—तव १२० ६, १३२ ५। तउ ˙ तदा—तब ६७.५। तव् . तम्—तप्त होना ११६ ६। तबोर। तवोल ताम्बूल—[।] सज्जित पान २२० ५, २४५ ६। तबल [फा०]—बडा ढोल ८७ १। तरई तारिका ३० ५। तरस् : तृष्—प्यासा होना २६२ ४। तराई तारिका २४७ ४। तरास . त्रास—डर ११६ ६। तरास ˙ त्रास—चावुक ११८ ६। तरासा : त्रासिन्—त्रास देने वाला ७० १, ७०.५। तवारा ताप ५४ ४। तायन ˙ तर्जन—चाबुक ११४ ३। तारा तडाग—तालाव २०.१। तारि तीक्ष्ण १३२ २, १३३ ६। तारी . तालिका—सूची ६ ६, तारी ताल+इका—ताली, हथोडी १०४.१। तिअ तिग्ग : तिग्म—तीक्ष्ण ७३ २। तिर् तृ—तैरना ११६ ४। तिरिच्छ तिर्यक्—तिर्छा १३० ७। तिरीअ तीक्ष्ण १३ ३। तुग उत्तुग—अत्यधिक ऊचा ८८ ५। तुचा त्वचा २६६ १। तुराई। तुराई त्वरा—वेग, शीघ्रता ६०.४, ३८० १। तुल्—तुल जाना, पहुच जाना १८१ १। तूर : तूर्य—तुरही (वाद्य-विशेष) ८७ ५, १२६ ५। तौर्—तौलना ३२६ ७।

थनहर। थनहार स्तन+भर—भारी स्तन ७७.२, १०७ ३। थाक थक्किअ—श्रान्त २६१ १। थाक् . थक्क्—श्रान्त होना २१६ ७। थाल स्थाल ७७ १। थाह स्थाघ ६८ ३, ३७४ ३, ३८६ २। थोर ˙ स्तोक—थोडा १६४ २।

दडजा दायाद ४२ १। दखिना . दक्षिणा ३५५ ३। दर दल ६० ५। दर-मर्—दलित-मृदित होना २५ ६। दह ह्रद—कुड, जलाशय ५१ ६। दहा दद्ध दग्ध—जला हुआ ३३० १। दारिउ। दार्यो : दाडिम—अनार का दाना १८ ४। दारी दारिआ [दे०]—वेश्या, वारागना २५२ ५। दिव दिव्व दिव्य—तप्त लोहादि, जिनका स्पर्श मध्य युग मे अपने को निर्दोष प्रमाणित करने के लिए करना पडता था ६६ ४। दिया . दीअअ—दीपक ४१.३, १५६.२। दियार [अर०]—प्रदेश ११। दुअरिया ˙ दौवारिक—द्वार-रक्षक १५६ ६। दुमना दुर्मनस्—दु खित या खिन्न मन वाला २५५ ४, ३०५ ७। दुलारु दुर्ललित—प्यार से विगाडा हुआ,

अत्यधिक प्रिय ४६ ३। दुहेल दुखित ४४ २, २३२ ६। देर—धारी ३० ४। देवर . देउल देव-कुल—देवस्थान २० १। देवउठान देवोत्थान ३४६ ७। द्योस दिवस १८ ७।

धना . धन्या—स्त्री ७६ ४। धनि धन्या—स्त्री ८०। धर धरा १०३ २। धाइ धात्री—धाय, उपमाता १५७ ६। धानुक धाणुक्क धानुष्क—धनुर्धर ४६ ५, ६७ ६। धाह—धाड ३१० १। धिय दुहितृ—कन्या ६६ २, १७५ १। धौराहर धवलगृह—प्रासाद ३० १, १५३ २।

नइ। नई नदी १५ ३, ८६ १, २०६ ५, ३७६ १। नख् नघ्—लाघना २८६ ५। नखत नक्षत्र ६६ ३। नगर खड—नगर की शक्कर, सफेद शक्कर, चीनी २७.४। ननद . ननादृ—पति की बहिन ४४ ६। नयर नगर २५६ ४। नरवइ नरपति—राजा २५६ ६। नाऊ नापित—नाई ३३१ ४। नाख्। नाख् नाशय्—फेकना १०५ ६। नाग णग्ग नग्न १५० ३, २६२ ५। नाह नाथ—स्वामी, पति ३४४ २। नावित ज्ञापित—दर-सनिया, वह व्यक्ति जो किसी देवी-देवता की उपासना करता और उससे आदेश प्राप्त करता [हुआ विज्ञप्त करता] है १७६ ६, २६१ ४। नास् नश्—भागना ११७ १। निखात निक्षत—निहत, मारा हुआ १५० १। निरातर निरन्तर ७५ २। निचल निश्चल २५५ ३। निमानी निर्मानित—तिरस्कृत २१२ ५। नियर निकट ३२५ ३। निरजन निरञ्जन—निर्लिप्त ब्रह्म ३१२ ५। निरु—निश्चित रूप से २२१ ५। निसर् णिस्सर् · निर्+सृ—बाहर निकलना ३१६ १। निसु [अवधी]—ठेठ, बिल्कुल १५६ ६। निहार् णिभाल् निभालय्—देखना ६८ ५। नेत नेत्र—एक प्रकार का रेशमी वस्त्र ४१ २, १५१ १। नैनू नवनीत—मक्खन १४६ ३। नौता निमत्रण १४२ ४। नौहार—प्राण लेने वाला, वधिक ५४ ५।

पइ परम्—हो न हो २५८ १, ३१३ ७, ३७३ ५। पइठ् प्रविश्—प्रविष्ट होना १८४ १। पइस् प्रविश्—प्रविष्ट होना २११ १। पइसार प्रवेश+डा—प्रवेश ३१६ १, ३६२ ७। पउ पद—पैर ८१ २, ३२२ ३। पउदर् पद—दलित करना ११७ ७। पउनारी पद्म-नाल+इका ७६ २। पगति पक्ति ८१ २। पवरी प्रतोली—मुख्य द्वार २४ ६, २६ ५, ६२ १। पवार। पवारी (दे० 'पवार')। पवारा पवाद प्रवाद—लबी गाथा २८ ५। पखर्—अश्व-हस्ती आदि को पाखर से सज्जित करना ८६ १। पखार् प्रक्षाल्—धोना ६८ ४, ३७६ ५। पखिना प्रक्षीण—अत्यधिक दुर्बल ३५६ ४।

पजर् प्रज्वल्—जलना ३७४ ७। पटतार्—पडताल या जाच करना १०६ १। पटसारी पट+शालिका—शामियानी ४१.१। पटुवा पट्टवाप—बुनकर १३१ ३। पटोर पट्ट-कूल—रेशमी वस्त्र ३१ ७, ४० ३। पडिवाह . प्रतिवाह—आक्रमणो को रोकने वाला, शत्रु को पीछे धकेलने वाला ८२, ८६। पतागी पत्तगी पत्राङ्गिका २६१.२। पतिय् प्रति+इ—प्रतीति करना ५८ ५, २६५ ६। पतियार प्रत्यय+डा—विश्वास ३२६ ५। पनच . प्रत्यञ्चा ६७ १। पनवार। पनवारि पर्णमाला—पत्तल १४२ ६। पनवारी पर्ण+वाटिका ६२ २। पबार् पवाड् प्र+पातय्—गिराना, फेकना ८६ ५, २६० ३। पयान प्रयाण ६०.१। पर् पार् पारय्—सकना २६८.४। परतर प्रान्तर ३६५ ५। परख् [अवधी]—प्रतीक्षा करना ११४ १। परचुर प्रचुर १२३ ५। परजर् प्रज्वल्—जलना १०३ १। परजार् प्रज्वालय्—जलाना, १२० १। परबार् प्रपातय्—गिराना, फेकना १५६ ३। परसन . प्रसन्न १७६ ७। पराकिरिति प्राकृति—आकृति, रूप ६३.७। पराय् . परा+अय्—पलायित होना, भागना २६ २। परि—प्रकार से, भाति से १५८ ७, १५६ ३, १७१ ३, २२३ ५, ३४२ ७। परि परम्—हो न हो ३३६ ४। परिछाही प्रतिच्छाया १६२ १। परिछेव परि+छिद्—काटना, काटकर अलग करना २१५ ३, २७७.३। परिमल—एक प्रकार का सुगधित लेप २७ २। पलान् पर्याणय्—पर्याण (जीन आदि) से सज्जित करना ४० ५, ८७ ६। पलुह्। पल्हुव् प्ररुह—अकुरित होना, हरा-भरा होना २१३ २, ३२४.५। पवनि—पाने वाली जातिया, जो विवाहादि के अवसरो पर नेग-चार (पुरस्कार) आदि पाती है २४५ ५। पवान प्रमाण—तक ८२ २। पवार प्रवाल—मूगा २७ ७, ३४१.४। पसार् . प्रसारय्—फैलाना ३७१.३। पसार प्रसार ४१६ ५। पसाव . प्रसाद—कृपा १२० २, ३०७ १। पसेज प्रस्वेद—पसीना ६६ ३। पहिय पथिक ३३६ २। पाई पादत्री—जूती, चप्पल ८५ १। पाइत (दे० पायत)। पा पाअ . पाद—पैर ८१ ५, १८२.५ पाडे पडिअ पण्डित ३६ २। पाट . पट्ट—फलक, सिहासन ८ १। पाट—पटका, कमरवद ११४.२। पाउ . पाअ पाद—चरण ३५ १। पाऊ पाउअ [दे०]—वस्त्र १२३ २। पाख पक्ख पक्ष २८४ २। पाखर पक्खर [दे०]—सन्नाह, सन्नाह-सज्जित सैनिक १३३.३। पाज . पज्जा पर्याय—अधिकार-विशेष ३६८ २। पाट। पाटा . पट्ट—फलक, पीढा, सिहासन १५१ ५। पाट—पटसन, रेशम १८७ १। पाटन पत्तन—महानगर ३६० २-५। पाथर पत्थर . प्रस्तर ६२.४।

पाधर पद्धर—रण मे अप्रवृत्त सैनिक या भृत्य १०४ २। पान पण्ण· पर्ण—पत्ता २२ ४, ८३ ४,—सज्जित ताबूल २६ ३। पापधि पार्पद्धिक—वधिक, बहेलिया २२३ ५, २५४ ७। पापरधि (दे० पापधि)। पायत पादत्र (?)—प्रस्थान का प्रतीक २७७ ७, ३१६ १। पायक पदातिक—पैदल सैनिक या सिपाही ४६ ५, ८६ ३, १०४ २। पार् पाड् पातय्—गिराना २३६ ५। पार् पारय्—सकना १२१ ५, २८१ ७, ३२६ ३। पारधि पारधी पार्पद्धिक—वधिक, बहेलिया ६७ २, १४२ ६, १४३ १। पालक। पालिक पर्यंक—पलग १६५ १, ३८६ ७। पावरी पादत्री १६४ २। पावस प्रावृट्—वर्षा २७५ २। पास पार्श्व १७७ ७। पिछउरी पश्च+पटी—पीठ पर डाला जाने वाला वस्त्र-विशेष, चादनी १३५ ४। पियासा . पियासत्—प्यासा ३२८.२। पियर पीत+डा—पीला २२६ ३, ३६१ ३। पिरथमी पृथ्वी १ ६। पिरम प्रेम ७२ १, २८६ १, ३२३ १, ३२४ १-७। पीहर पितृगृह—मायका २६५ ७। पुख—वाण का अग्र भाग १८५ ५ (दे० फुक)। पुरग पुडग पुटक—आच्छादन ३३ ६। पुरइनि पुटकिनी—कमलिनी २२ ४, ३४० ४। पुरुस पुरुष—पुरुष की लबाई (जो ३½ हाथो की मानी जाती है) २३ १। पुनिउ पूर्णिमा २६६ ३, ३५५.२। पूर् पूरय्—पूर्ति करना, भरना ८४ ४। पेखन प्रेक्षणक—तमाशा २८.१। पेटार पेटक+डा ३३८ ३। पेल् प्रेरय्—ठेलना, ढकेलना ३५८ २। पैंत—जुए का दाव २१४ २। पोइनि पद्मिनी ७७ ४। पोखर पुष्कर—तडाग २० १। पोर पर्वन—गाठ ८२ ३। पोह—गोबर की छोत, बैल की विष्ठा २३१ १। पौनि (दे० पवनि) २५ ५।

फटिक स्फटिक—बिल्लौर १६४ १। फतिगा फडिंगा—पतिंगा ३३ ७। फर फड्ड स्पर्धक (?)—फड, जुए की विछी हुई बाज़ी १०५ २। फरहरा [अवधी]—पताका १२३ १। फाद फद स्पन्द—फाग १६० ७। फास पाश—फासी का फदा १८५ ६। फिट्—नष्ट होना ३१८ २। फूल फुल्ल—खिला हुआ पुष्प २७ १, ३८५ ३। फुक पुख—वाण का अग्रभाग ११५ ५, २६३ ७ (दे० पुख)।

वइस् उपविश्—वैठना ६३ २, ३४२ २। वइसाखी—वह लकडी जिसे टेक देकर कमज़ोर पैरो वाले चलते है ३६६ ३। वउसाउ : व्यवसाय—पुरुपार्थ ७६ ५, १८३ ३। वदन—तिलक, रोली २५० २। वकति · वक्ति—वाक्य, कथन ७ २, १६६ ३, १६६ ६। वखान् वक्खाण् [दे०]—वर्णन

करना २६ १, ३४ २, २३०४। बटपार वट्टपाडय . वर्त्मपातक—डाका डालने वाला ५६ ६, ३१८.१। बटिया—पीसकर बनाया जाने वाला व्यजन १४५ २। बडवा . वडवा—घोडी ११५ २। बतीसी—वत्तीस दातो की पक्ति १३७.२। बध् वृध्—बढना १६ ७। बधाई। बधाव वर्धापण—हर्ष-सूचक सगीत-वाद्यादि का समायोजन १३५.६, १६३ १, ३३८ ६। बनासपति · वनस्पति १५० ६। बनिज . वाणिज्य ३७२ १। बनिजारा वाविज्य-कारक २५ ३। बविहा पपीहा १६ २। बर : बल ६५ ५, १०६ ७। बरउत वर+उत्क—वर होने का आकाक्षी ३४ ५। बरत्—[रस्सी] वटना १८७ १। बरदी—बैल, बैल का बोझा—४२ ७। बरिक्—बचना ५४ ५। बरन . वर्ण—रग २२६ २। बरु . वरम्—अच्छा १०१ ३, २६० १, २७२ ४। बरुवा वटु—विद्यार्थी २८ २। बरोक . वरौत्क्य—वरिच्छा ३३७ ६। बहुर व्याघुट्—लौटना, वापिस होना २६२ ६। बहुयरि वधू—[पुत्र-] वधू २२६ ३। बाइ वापी—बावली १८ २। बाउ . वापी—बावली ६२.४। बाउर . बाउल। वातूल—वातग्रस्त, पागल ६८.२, ३१६। बागर वक · वक्र—कुटिल ४७ ७, २५२ १, ३६७.३। बाठ बठ [दे०]—अविवाहित, स्नेह-रहित ६० ४। बाध वध—वह वस्तु जो किसी के पास बधक (गहन) रखी गई हो ३०८.१। बाव्—वाम पक्ष मे रखना, उपेक्षा करना १४२ १। बाखरि . वक्खल+इका—आच्छादित गृह ४६ ५। बाग वल्गा—लगाम ६० ५, २५७ ६। बाज · वर्ज—वर्जित २७६,२। बाज् —भिडना, पहुँचना १०२ १। बाजिर वाद्यकर—बाजा बजाने वाला ५४ १। बाट वट्ट वर्त्म—मार्ग ३६० १। बात वत्ता वार्त्ता—३०१ १। बादर वार्दल—मेघ २७५ ४। बान . वण्ण वर्ण—रग २३ ४, २५० २ जाति १५१ २। बान वण्ण वर्णक—बाना, पहनावा ३३६ १। बानी वण्णिआ वर्णिका—बानगी, नमूना २२४ ३। बामी . वल्मीक—बिल ३०६ ३। बार् · वार्—वारण करना २५० ५। बार · वार द्वार २६.१। बार वार—दिन २३४ ३ बार बाल—बालक १४२ ३, १५४.२, ३६३ ७। बार वेला—देरी १६४.५। बारक बालक १८५ ३। बारी बालिका २४१ ५। बारी . वाटिका १५० २। बास् वास्—[पक्षियो का] बोलना १६ १, १६ ७। बासिग . वासुकि १३ १। बासी . वासित—वह जो ताजा न हो, पहले का बचा खुचा हो २५३ ३। बासुगि—दे० 'बासिग'। बाह् वाह—टालना ३१४ ३, ३१७ ५। बिद् विद्—जानना ६३.७। बिंदुका बिन्दु ७४.१। बिगोव्—तिरस्कार करना ५१.५, २७३.३, ३४७ ५। बिटार :

विट+डा—चरित्रहीन व्यक्ति २५२ ६ । विड विट—चरित्रहीन व्यक्ति, धूर्त्त २२९ ७। बिथर् वित्थर् वि+स्तृ—फैल जाना २६० ६ विधास् विध्वस्—विध्वस्त करना ७५ ७, २५९.१ । बिनती । बिनाती विज्ञप्ति—कथन, निवेदन १४०.७, ३२९ ६ । बिनान विज्ञान १० ३, २५ ४, २९ १, ३० ३, ५६ २ । बिपाउ—पाद-हीन, पगु, निश्चेष्ट ६४.७ । बिरवा विटप २१० ६ । बिरार बिडाल १५४ ६, २२१.२ । बिरिछ वृक्ष २३८ २ । बिरी वीटिका—[पान का] छोटा बीडा (दे० 'बीरी') । बिरुद्धा बिलुब्ध ५३ ६, ५३ ७, ३४० ७ । बिला वि+ली—विलीन होना । १७१ ३ । बिलोअ वि+लोड्य—मथन करना २५२ ७ । बिसर् वि+स्मृ—भूलना ७२ २ । बिसव् विश्रम्—विश्राम करना १८६ ७, १९२ ५, २७८ २, ३९० ७। बिसहर विषधर—सर्प ६५ १, २५३ ५, ३१४ ५ । बिसाउ विस्वाद २३६ ६ । बिसार विशाल ३५ २, ८७ ५ । बिसार विषाक्त ५८ १ । बिहफड बिहप्फइ बृहस्पति—एक स्त्री-पात्र [जो कथा मे अनेक बार आया है] । बिहर् विहड् । विघट्—टूटना २२१ ५ । बिहाऊ । विधावित—उल्लसित, प्रस्फुरित ५४ १ । बिहाव् वि+हा—परित्याग करना, व्यतीत करना ३९ ५ । बिहेर् बिहेड् वि+हेटय्—पीडा पहुँचाना, मारना २५४ ७ । बीजु।बीजुरी विज्जु विद्युत १५८ ७ । बीरा बीलय—ताटक ८४ १ । बीरा वीटक—[पान का] बीडा २६ ५, ४९ २, १११२ ६, ३०८ ३ । बीरी वीटिका—[पान की] बीडी २४०.२ (दे० बिरी) । बुकाव् [अवधी]—चावना, फाकना ९० ३ । बुझ् विधम्—[अग्नि का] शात होना २०१ १ । बुझाव् विध्मापय् [अग्नि को] शात करना २३९ ७ । बुडकाव् ब्रोडय्—डुबाना १३ २ । बूड् ब्रुड्—डूबना ७८ ७, २८८ ७ । बेकरार बेकरार [फा०]—बेचैन १३८ १, १९५ ४, ३४७ ४ । बेगर—अलग ३१ २ । बेडिनि . विटा—नटिनी, अवधी-क्षेत्र मे अब भी बेडियो-बेडिनो की एक जाति है, किन्तु वह प्राय नाचने-गाने का व्यवसाय करती है, नटो-नटनियो की जाति अलग है १९१ ४ । बेना वीरण—उशीर, खस २७ ३, ३४१.२ । बेलक—एक विशिष्ट प्रकार का बाण ११९ २ । बेसव् विसाध् (?)—क्रय करना ५८ ४ । बेसवार बेसवार—धनिया आदि मसाला ४२ ६, १४५.६ । बेसहनि विसाधनीय—क्रय की जाने वाली वस्तु १५६ १ । बेसा वेश्या २५२ ५ । बेसाह् विसाध्—क्रय करना १८७ १, ३६० ७ । बैन वयन वचन ३६० १ । बैना विवाहादि के अवसरो पर सबधियो आदि को दी जाने वाली मिठाइया २६८ १ । बैसदर वैश्वानर—

अग्नि १४५ १, ३१० ६ । बोर् ब्रोडय्—डुबाना २७२.६ । बोहित . बोहित्थ —जलपोत ६८ ५, ११६ ४ ।

भडहाई—भडता २३१.४ । भति · भक्ति—प्रकार १९५ ५ । भर . भट —योद्धा १३९ ३ । भररा—वाद्य-विशेष २० ४, 'शैव साधु-विशेष १.२ । भव् भ्रम्—चक्कर लगाना, फिरना २४.७, ९८.५ । भाग्—भग्न होना २६० १ । भात . भत्त . भक्त—उबाला हुआ चावल १५२ १ । भिनुसार—प्रभात २७८.१ । भामनगारी · भामनकारिन्—भुलावे मे डालने वाला २७ ६ । भीम—प्रसिद्ध पाडव योद्धा २५७ ३ । भुआ भुजा ७६.१, १९१ १ । भुगुति भुक्ति—भोग, भोजन ५ २ । भुजग—भ्रमर ७४'२, २१७ १, २१७.६, २१७ ७ । भुव भुजा २२६ १ । भुवग भुजग—सर्प ३०८.७ । भूज् · भुज्—भोग करना २६ ६, ६१ ७, ३१३.३ । भेभर भिब्भल विह्वल ४८ २, १६८ २ । भोज प्रसिद्ध मध्य-युगीन शासक २५७ ३ ।

मख् मक्ख् म्रक्ष्—माख करना, ममता करना २२४ ६ । मजीठि मञ्जिष्ठा ३४१ १ । मझान मध्याह्न ४९ ३ । मझारी मार्जारी—बिल्ली २२१ २ । मत मत्र—परामर्श १२१ ५ । मसउरा मास-वर्त्तक—मास का बना हुआ वडा १४५.२ । मढ · मठ—मंदिर २० १ । मयन मयण मदन —मोम १८७ २, ३४१ १ । मया—ममता १२४ १ । मरार मराल १५४ ७ । मरोह—करुणा २०१ १ । मसवास मास-वास—एक मास का कल्प, जो किन्ही पर्वो पर [प्रयागादि] तीर्थो मे किया जाता है २५३ ३ । मसियर। मसियार मशाल [फा०] १८७ ५ । महता . महामात्य (?) ६० ६ । महादे महादेवी ३१ ३ । माअ माइअ मात—मरा हुआ ३४३ १ । माई—सहेली, सखी २८६ २ । माकर । मर्कट . कथा का एक पात्र ३९७ ४ । माछ मत्स्य —मछली २२ १ । माज् मज्ज् मृज्—साफ करना ८१ ५ । माझा—मध्य आयु वाला व्यक्ति (?) ६३ २ । माख मक्ख म्रक्ष—स्नेह २०२ २ । मारा : माला २४८ २ । मारि—मरी १५ ५ । मारी मालि मालिन्—पुष्प-व्यवसायी २७.४, ३८४१ । मिरिघ . मृग १४३.१ । मीचु।मीचु मृत्यु १९९ ६ । मुगेर : नगर-विशेष, जो कलिंग देश मे था ३३५ ४ । मुतिसिरी मौक्तिक-श्री—मोतियो का आभरण-विशेष १४८ ३ । मेढ मेढ मेष—भेडा १४३ ४ । मेघवना मेघवर्ण वाद—के रग का वस्त्र-विशेष ८३.२ । मेछ म्लेच्छ ३४५ ७, ३४९.६ ।मेद।मेघ मेद—एक प्रकार का परिमल, जो किसी जन्तु की चर्बी मे बनाया जाता था २७ ३, ३१ ४, १९४ ३ । मेराव · मिलाप १६० ३ ।

मेल् [दे०]—छोडना, डालना १६० ५, २६० ७, २७२ १। मल्हान—झूमकर चलने की गति ८१ ३। मेहरी महिलिका—स्त्री २६७.५, ३१८ २। मैंगर मदगलित—मदमत्त ८६ ६। मैंना माजरि मदन-मञ्जरी कथा की पात्र-विशेष, लोरिक की विवाहिता स्त्री २८२.६, ३५७ ७। मैंमत · मदमत्त ११३.१। मोअ् : मोच्य—मुक्त करना, विताना ५१ २। मोख मोक्ष ६७.५, मोती · मौक्तिक १६६ १ मोकर् मुच्—मुक्त होना २६२ ४। मोकराव् मोचय्—मुक्त करना ४२.७। मोर् मोड् मोटय्—मोडना ७६ २।

रइनि रयणी रजनी २२ ७, १५५ १, ३४६ १। रई रइअ रचित—रजित (?) २२० ४। रजाएसु राजादेश ६१ २, ६३ ७। रयन रत्न १४४ ३। रर् रड् रट्—चिल्लाना १५४ ७, २८२ ७। रब् रम्—रमण करना २३० ५। रवनि रमणी १६५ ४। रसोइ रसवती—रसोई १४५ १। रहरा रभस्+डा—हर्ष, सुख ५० ६, ६१ ५। रहस रभस्—हर्ष, सुख ८५ ७ १८६ ३, २५५ ७, ३६३ ७। राउत राअउत राजपुत्र ८७ १। राउर। राउल राजकुल—राजभवन ३३२ १, ३६५ ५। राक रक—दरिद्र ३४६.५। राध राद्ध रद्ध—पक्व, पकाया हुआ ६३ ३। राध रद्धि [दे०]—महान्, श्रेष्ठ ४४.५। राध . राध राद्ध—पास मे आगत ८३ १, २४८ ६। राग—टागो का कवच ११६ ५। राज्—शोभित होना १५६.१। राव् : राव् रम् २४६ ६, २५३ ४, २८४ ४, ३४६ ६। राजनेत : राजनेत्र—एक जाति का चावल १४८ ३। राट . राट्ठ राष्ट्र—राज्य १२ ५ ३४०.४। राढ रड्ड [दे०]—सिसक कर गिरा हुआ, शोकादि के कारण क्षीण हुआ ३६६ ७। रात रत्त रक्त—लाल, सुदर ४४.३। रात रत्त रक्त—अनुरक्त ५६ ५, २०८ ७। राय रात . रक्त—अनुरक्त ३५२ ७। रावत · राजपुत्र—सामत २५ ४। रावट—एक प्रकार का काला और चिकना पत्थर २१.७। राही राहिय राधित—अभीप्सित ६५ ७। रिहारी . रेखा (?)—कार्य-शैली (?) ४५ २। रूअ . रूप १८५ ७। रूख वृक्ष २०१.७। रूप रौप्य—चादी ४६ ३, ३४१ ४। रेस [दे०]—वास्ते, लिए २६२.४। रेह् लिख्—[चित्र मे] लिखना, अकित करना १६३ २। रोझ . ऋष्य—नील गाय १४३ २। रोमथ् रोमथय्=जुगाली करना। चावे हुए को चाबना ३६८ ६। रोहितास रोहिताश्व—अग्नि, जिसके वाहन लाल घोडे माने गए हैं १०३.१।

लग—काया, शरीर ८२ १। लखन · लक्षण ६३ ५। लहन—प्राप्य,

प्रारब्ध ३१४७। लांछन . लाञ्छन—कलक २६६१। लाध् लभ् (?) प्राप्त करना ३४०४। लिलार: ललाट १२२। लिह · लिख्—लिखना १६३५। लुक् . लुक्क् [अवधी]—छिपना ६०७। लुर् लुण्ठ्—लोटना ६५१। लेजु रज्जु—रस्सी २३४३। लोट् लुण्ठ्—लोटना ३८८७। लोयन . लोचन १८१.५, २२०५।

वानी · पानीय २१३२।

सइ . स्वय १३०२ १४०६, ३३९७। सउं समम्—साथ ४८५, ११२७, १२३७, १६३.४ (दे० सेउ)। सउतुक · सप्रत्यक्ष (?) १७११। सउर . सउड [दे०]—पलग का गद्दा ४२५। सकर सकट १०४५। संकिरित . सस्कृत १२४। सकरी . शृडखला ८४०। सकार् सक्कार—सत्कार करना, सम्मान करना ३५४। सच् स+चि—उपचय करना १६३२। सजोड सयोग—सज्जा, रण-सज्जा और उसके उपकरण १०२२। सजोग (यथा 'सजोइ') ३०१२। सझा स+ध्या—मिलना ३८६१, ३८९२ ३८९५, २९१६। सतावा सताविअ · सतापित—सतप्त किया हुआ २४९४। सतार . सतरण ३६३३। सदूर शार्दूल—शरभ १८१२। सनेह सनेह: सन्देह ७४५। संपर्—स्नान करना ३७५.५। सभार्—सभालना, स्मरण करना १३९१। सपूरन सम्पूर्ण ३०८६। सवन। सवन श्रवण—कान ६२१, १८०.७, ३४०१। संवर् : स्मृ—स्मरण करना १८९२। सवार् · संभार्य—मसाला आदि से सस्कृत करना, निर्माण करना १८३५। सगर सकल २३५, १४९५ · सगाई स्वकत्व—सगपना, सबध ३५३। सजन स्वजन १८६५। सती—सत्यनिष्ट २०५१। सतुर सत्वर—त्वरा के साथ ३१८४। सद्द शब्द २०१३। सनीछर शनैश्चर ३२५। सपूरन सम्पूर्ण ३०८६। समद् . समद् सम्+आदा—भेट करना, विदा करना १९०.३, ३३८३। सयसार . संसार १४५, १४६, ३२२। मर . शर—चिता १०१७। सर् . सृ—जाना १०४३। सरइ शराव—सकोरा ४३५। सरगा—एक प्रकार की नाव २८७२। सरग स्वर्ग—आकाश ८४२ सरभरि—सादृश्य २४२२। मरागति : शराकत [अर०]—जमात ४१७। सराप शाप ३१९३। सलोनी—भुजाओ का आभरण-विशेष २९०३। ससिहर शशधर—चन्द्रमा ९६५। सह—समस्त २६४२, २६७३, ३५१.२। सहदेउ सहदेव—प्रसिद्ध पांडव विद्वान् २५७२। सहदेसी · सदेशीय (?)—एक ही देश का नियामी ३७०.५। सहरी . शफर+इका—छोटी मछली ५१९ (दे० सिहनी)। सहार सहकार—आम की एक विशिष्ट जाति ३५९.३। सहार्=

सभालना ३६२ ६ । सही सखिन्—सखी १६६ १ । साझि · सन्धि=शान्ति ३८२ ६, ३८३ ५ । साठि सठिइ सस्थिति—पूजी ३२६ २ । साध् स+धा जोडना, लगाना, ३२३ १ । साभर साभल शम्वल—मार्ग के लिए ली गई भोजनादि सामग्री ८६ ६, २०५ ६ । सासउ सशय ११७ १, २६३ १ । सातु सक्तु—सत्तू ४५ ३ । साथ सत्थ सार्थ—समूह, प्राणि-समूह ३६२ ४ । साथरी स्रस्तरी—चटाई २५७ ४ । साथी सार्थिक—सार्थ का व्यक्ति ३२२ १ । साध सद्धा . श्रद्धा—आकाङ्क्षा ४४ ४, १३६ ७, २११ ५ । सान शाण—शान का पत्थर ६७ २ । सायर · सागर ३१६ ४, ३४४.२ । सार्‌य—सभाल करना, सवारना ७६ ४ । सारि शालि—चावल १४८ १ । सारी सारिका—मैना १९ २ । सारी साडिआ शाटिका—साडी १३९ २ । साल् शल्यय्—शल्य के समान पीडा पहुँचाना ५८ २ । साहन साधन—सैनिक बल २३ ७, ३०२.३ । साहनी साधनिक—सेनापति ८६ ३ । सियर सीय+डा शीत ४६ ४ । सियार श्रृगाल—स्यार १५४ ६ । सिरज् सृज्—सृष्टि करना १ १-५, २ १-६, ३.१-६, ४ १-६, ५.१-६ । सिरवाहि शिरो व्याधि ५६ ३ । सिराय्—पूरा पडना, सार्थक होना ४५ ७, २१८ ७ । सिराव् . शीतलय्—शीतल करना २११ ५ । मिलउटी · शिला+पट्टिका—सिल ७६ ३ । सिहरी शफरिका—मछली २२ २ (दे० सिहरी) । सीउ . सीअ शीत ५१ २ । सीग । सीगा श्रृग—सीग के आकार का वाद्य-विशेष ८७ ५, १२९ ५ । सीगी श्रृग—सीग का वना हुआ वाद्य-विशेष २०.५ । सीप सुत्ति शुक्ति—सीपी ४८ ४ । सीह सीह · सिंह २९ १, ३६ १ । सुखासन—एक प्रकार की पालकी या पालकी-गाडी (तुल० 'रामचरित मानस' २ १८६) ४८ ७, २४६ ६, ३०७ २ । सुगाय् शुकाय्—शुक की भाति सदेह या अविश्वास करना २५०.६ । सुद्धि शुद्धि—समाचार ३८६ ४ । सुभर—भली भाति, भरा हुआ, भरपूर २१ १ । सूक सुक्क शुष्क ९१ १ । सूग शूक—करुणा ३५५ ६, ३५७ १ । सूत सुत्त सुप्त—सोया हुआ १९५ ४ । सूध शुद्ध—शात २६५.७ । सून—प्रसून, पुष्प २७ १, १६५ ६ । सूवा—शुक १९ २ । सेउ समम्—साथ २४९ १ (दे० सउ) । सेधउरा सिन्दूर पूर—सिन्दूर का पात्र ७७ २, २४७ १, ३८८ १ । सेवाइ सेवार सिवा [फा०]—अतिरिक्त, अधिक १७ ६, ६२ ५ । सोनी सौवर्णिक—कलशो-दीवालो आदि पर सोने का पानी ढालने वाला २५ ४ । शोर शोर [फा०] ३०९ ६ । सोवन सोवण्ण सौवर्ण—स्वर्ण-निर्मित १३७ १, २४८ २ । सोहाग सौभाग्य—सुभगता ६४ १, ७४ २ ।

